Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राचीन भारत में दाम्पत्य मर्यादा

डॉ॰ महेशचन्द्र जोशी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

© डॉ० महेशचन्द्र जोशी

प्रकाशक :

दीपक जोशी

सच्चिदानन्द प्रकाशन

६०५/१, कृष्णागली–७, मौजपुर

दिल्ली—११००५३

प्राप्तिस्थान :

१. मोतीलाल बनारसीदास, बँगलोरोड, जवाहरनगर, दिल्ली ११०००७

शाखाएँ :

पो० बॉ० नं० १०७५, चौक, वाराणसी २२१००१

अशोक राजपथ, पटना ८००००४

२४ रेसकोर्स रोड, माधव नगर, बँगलोर ५६०००१

१२० रॉयपेट्टा हाईरोड, मैलापुर, मद्रास ६००००४

२. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू० ए०, जवाहर नगर, बँगलोरोड, दिल्ली ११०००७

३. चौखम्बा विद्याभवन

(पो० बॉ० नं० १०६९) चौक, वाराणसी २११००१

४. चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी

प्रथम संस्करण १९८८ ई०

मूल्य—रु० १५०.०० सजिल्द

रु० १२०.०० अजिल्द

मुद्रक :

श्रीविद्या प्रेस,

छित्तूपुर (बी० एच० यू०)

वाराणसी २२१००५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पद्मभूषण आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय कृत शुभाशंसा

भारतीय समाज का मेरुदण्ड है गृहस्थाश्रम। अन्य आश्रमों की भी उपयोगिता कम नहीं है, उनका अपना महत्त्व है, परन्तु गृहस्थाश्रम तो उन तीनों का आधार-स्थानीय होने से नितान्त महनीय तथा महत्त्वशाली है। गृहस्थाश्रम को महनीयता प्रदान करने वाली वस्तु विवाह है। इसीलिए विवाह षोडश संस्कारों में आदरणीय स्थान पाने का अधिकारी है। इसकी महत्ता तथा उपादेयता का वर्णन करने वाले ग्रन्थों की धारा प्राचीन काल से ही प्रवाहित होती आई है और आज भी वह गतिमान है।

डॉ० महेशचन्द्र जोशी रचित यह नवीन शोधप्रबन्ध 'प्राचीन भारत में दाम्पत्य मर्यादा' इसी शृङ्खला की एक अनुपम कड़ी है। आजकल सूची-पाण्डित्य के आधार पर इतस्ततः विक्षिप्त प्रमेयों का संकलन कर विरचित होने वाले शोधप्रबन्धों से यह निःसन्देह भिन्न है, गम्भीर है तथा मूलग्रन्थों का पर्याप्त अनुशीलन करके लिखा गया एक वैदुष्य-सम्पन्न ग्रन्थरत्न है। लेखक ने इसके लिए घोर परिश्रम किया है, संस्कृत के मूल ग्रन्थों का पुंखानुपुंख अध्ययन किया है और इसी कारण यह परिश्रमसाध्य प्रमेय-बहुल प्रामाणिक ग्रन्थ आलोचकों की दृष्टि को हठात् आकृष्ट करने में समर्थ है।

विवाह के अनुष्ठान तथा महत्त्व के ऊपर ग्रन्थों की कमी नहीं है। परन्तु उसके अन्तस्तल तक पहुँच कर मीमांसा करने वाले ग्रन्थों की संख्या अंगुलीगण्य है और यह ग्रन्थ इसी कोटि में आता है। विवाह के विषय में अनेक भ्रान्त धारणाओं का खण्डन इसमें उपलब्ध होता है। विद्वान् लेखक ने प्रमाणित किया है कि मानवी सृष्टि से पूर्व दिव्यसृष्टि के आरम्भ से ही विवाह-संस्था का उदय हो चुका था और इस निष्कर्ष को सिद्ध करने के लिए लेखक ने वेद, पुराण तथा धर्मशास्त्रों के साथ ही साथ पाश्चात्य समाजशास्त्रीय विचारकों के तर्कों को सम्मिलित कर तुलनात्मक शैली को अपनाया है।

वैवाहिक जीवन की मर्यादा का विशद वर्णन इस ग्रन्थ का प्राण है। पातिव्रत धर्म का अभिराम विवेचन करने का यहाँ सफल प्रयास है। अतिचारों के कारण तथा स्वरूप को दिखला कर उनके लिए प्रायश्चित्त तथा शास्त्रीय दण्ड-विधान विस्तार से प्रतिपादित किये गये हैं। इस प्रकार यह ग्रन्थ विवाह-संस्था का गम्भीर विवेचन कर अपनी विशिष्टता प्रदर्शित करने में सर्वथा समर्थ है। यह ग्रन्थ विद्वान् लेखक के गम्भीर मनन, विस्तृत अध्यवसाय तथा सुचारु प्रणयन के लिए सर्वथा श्लाघनीय है। मैं इसके प्रणेता डॉ० महेशचन्द्र जोशी को ऐसे गम्भीर ग्रन्थ के निर्माण के लिए प्रभूत आशीर्वाद देता हूँ और आशा रखता हूँ कि यह सर्वथा लोकप्रिय, विद्वत्समादृत तथा प्रेरणाप्रद होगा। तथास्तु।

कार्त्तिकपूर्णिमा सं० २०४५

बलदेव उपाध्याय
शारदा मन्दिर, ३७ बी, रवीन्द्रपुरी, वाराणसी–५.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पद्मभूषण आचार्य डॉ० पी० एन० पट्टाभिरामशास्त्रिकृता

शुभाशंसा

पवित्रतमोऽयं भारतदेशश्चिरात् संस्कारप्रधानः परिगण्यते। अत्रैव जातमात्रः शिशुः जातकर्मनामकरणादिभिः संस्कारैस्संस्क्रियते। विहितसंस्कारसंस्कृता मानवा विलक्षणां काञ्चनशक्तिमादधते। सैव शक्तिस्संस्कृतिरित्यभिधीयते। विविधदोहदप्रदानपूर्वकं कर्षणादिसंस्कारैस्संस्कृता एव केदाराः फलप्रदा भवन्तीति लोके वयमनुभवामः, तथैव मानवा अपि संस्कृता एव समाजोपकारकाः समाजपरिष्कारकाश्च भवितुमर्हन्ति। तत्र समाजोपकारायैव धर्मग्रन्थेषु गार्हस्थ्यं विहितम्। कृतदारपरिग्रहा एव गृहस्थाः कथ्यन्ते। प्राक्तने काले तादृशगृहस्थानां दाम्पत्यं कीदृशमवर्ततेति सम्यग्विविच्य डॉ० महेशचन्द्रेण जोशी इत्युपाह्वेन राष्ट्रभाषया प्रणीतोऽयं ग्रन्थः। विवाहसंस्कार-महत्त्वं दाम्पत्य-मर्यादायाः स्वरूपं दुराचारस्य दुष्परिणामं दुराचारिणां कृते प्रायश्चित्तं दण्डश्चात्र साधु विवेचितम्। ग्रन्थमेनमधीत्येदानीन्तना लोकाः प्राक्तन्या संस्कृत्या परिचितास्तां संस्कृतिं समेधयन्त्विति कामयते।

प्रबोधिनी एकादशी, सं० २०४५

पट्टाभिरामशास्त्री
४।७ हनुमानघाट, वाराणसी–१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विषय-सूची

अध्याय		पृष्ठ
	आभार	१
	शुभाशंसा	२-३
	प्राक्कथन	७-१०
	भूमिका	११-१६
१.	विवाह-संस्था का उद्भव : आधुनिक विद्वानों की दृष्टि में	१-२९
	(१) अनियमित यौन-सम्बधों की अवस्था १-५. प्राचीन भारत में अनियमित यौन-सम्बधों की अवस्था का अभाव ५-२०. श्वेतकेतु विवाह-संस्था का प्रवर्तक नहीं था २०-२२.	
	(२) सामूहिक विवाह विषयक मत २२-४. प्राचीन भारत में सामूहिक विवाह प्रथा का अभाव २४-६.	
	(३) विवाह-संस्था की स्वाभाविक उत्पत्ति २६-९.	
२.	विवाह-संस्था की दैवी उत्पत्ति	३०-५८
३.	विवाह की आवश्यकता, उद्देश्य एवं वैवाहिक कर्तव्य	५९-१०६
	(१) विवाह की नैसर्गिक आकांक्षा ५९-६४.	
	(२) विवाह की आवश्यकता-गृहस्थाश्रम में प्रवेश ६४-८, व्यक्तित्व की पूर्णता ६८-९, ऋण-परिशोधन ६९-७१, एक आवश्यक संस्कार ७१-३, धार्मिक कृत्यों के सम्पादन की क्षमता ७३-५. अर्थसाधन ७५, सामाजिक प्रतिष्ठा ७५. सुखीजीवन ७५-६, कामसेवन ७६-८२, मोक्षलाभ ८२-४.	
	(३) नारी के लिए विवाह की आवश्यकता ८४-९.	
	(४) विवाह के उद्देश्य ८९-९२.	
	(५) वैवाहिक कर्तव्य ९२-१०६. कन्याचयन ९५-९. कन्या के विवाह का दायित्व ९९-१०२, वरान्वेषण १०२-४, कन्या के द्वारा वर का चयन १०४-६.	
४.	विवाह-संस्कार एवं दाम्पत्य-निष्ठा	१०७-१३०
	(१) विवाह एवं इसके पर्यायवाची शब्द १०७-११२.	
	(२) दाम्पत्य का तात्पर्य ११२-११३.	
	(३) दाम्पत्य-परिनिष्ठा हेतु विवाह-संस्कार की आवश्यकता ११३-६.	
	(४) विवाह-संस्कार और इसका उद्देश्य : दाम्पत्य की परिनिष्ठा ११६-११८. दाम्पत्य को प्रभावित करने वाले कृत्य— समञ्जन ११८. कन्यादान ११८-१२०. समीक्षण १२०. निष्क्रमण १२०. होम १२०-१२१. अग्निसाक्षित्व १२२.	

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अग्निप्रदक्षिणा १२२. पाणिग्रहण १२३. अश्मारोहण १२४. सप्तपदी १२४-५. हृदयालभन १२५-६. ध्रुवदर्शन १२६-७. प्रेक्षकानुमन्त्रण १२७. चतुर्थीकर्म १२७. समशन १२७-८.
(५) वैवाहिक कृत्यों का दाम्पत्य जीवन में प्रभाव १२८-१३०.

५. सुखमय दाम्पत्यजीवन १३१-१५४
(१) दाम्पत्य-सम्बन्ध १३१-१४२.
(२) सहधर्माचरण १४२-५.
(३) दाम्पत्यप्रेम १४५-१५४.

६. मर्यादा का अनुपालन १५५-१८९
(१) पुरुष की एकनिष्ठता १५५-१६०
(२) ऋतुकालाभिगमन १६०-१६२.
(३) अन्यस्त्रीवर्जन १६२-६.
(४) पातिव्रत्यपालन १६६-१७२. पातिव्रत्यविधान १७२-९
(५) नारी के शीलनाश के कारण १७९-१८०
(६) नारी के स्वातन्त्र्य का नियमन १८०-१८३.
(७) पत्नी की रक्षा १८३-९.

७. अतिचार की प्रवृत्ति १९०-२५२
(१) निकटाभिगमन १९०-२०८. पिता-पुत्री में यौनाचार १९१-६. माता-पुत्र के यौनाचार की कल्पना १९६-८. भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध १९८-२०५. भ्राता की पत्नी के साथ यौन-सम्बन्ध २०५-८. (२) परस्त्रीगमन २०८-२१८ (३) कन्यागमन २१८-२२६. (४) वेश्यागमन २२६-२३४. (५) नारीकृत अतिचार २३५-२४७. (६) अतिचार की अनुमति के प्रसङ्ग २४७-२५२.

८. अतिचार का दुष्परिणाम २५३-२९२
(१) अतिचार की अक्षम्यता २५३-२६१. (२) व्यभिचारी स्त्री पुरुषों का सामाजिक बहिष्कार २६१-९. (३) व्यभिचार के दुष्परिणाम २६९-२७५. (४) व्यभिचारजन्य पाप २७५-२८०. (५) व्यभिचार का फल नरकयातना २८०-२८६. (६) व्यभिचार का कर्मविपाक २८६-२९२.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

९. अतिचार का प्रायश्चित्त एवं दण्ड २९३-३५०

(१) अतिचार का प्रायश्चित्त २९३-३१७

गुरुतल्पग एवं अगम्यागामी का प्रायश्चित्त २९५-३००. परस्त्रीगमन का प्रायश्चित्त ३००-३०३, हीनवर्णागमन का प्रायश्चित्त ३०३-५, उत्तमवर्णागमन का प्रायश्चित्त ३०५-६, कन्यागमन का प्रायश्चित्त ३०६-७, वेश्यागमन का प्रायश्चित्त ३०७-८. अतिचारिणी नारी का प्रायश्चित्त ३०९-३१७.

(२) अतिचार का दण्ड ३१७-३४८

(क) कर्तव्यच्युत दम्पती का दण्ड ३२०-३२१.

(ख) समाज द्वारा अतिचारी स्त्रीपुरुषों का निग्रह ३२१-२.

(ग) अतिचारी पुरुष के लिए विहित राजदण्ड ३२२-३३६. गुरुतल्पग का दण्ड ३२६. परस्त्रीगमन का दण्ड ३२७-८. उत्कृष्टवर्णागमन का दण्ड ३२८-३३०. हीनवर्णागमन का दण्ड ३३०-३३१. कन्यादूषण का दण्ड ३३१-४. दासी एवं वेश्या के साथ बलात्कार तथा भिक्षुणीगमन का दण्ड ३३४-६. अप्राकृतिक मैथुन का दण्ड ३३६.

(घ) अतिचारिणी नारी का दण्ड ३३६-३४८. पति के द्वारा अतिचारिणी का निग्रह ३३८-९. अतिचारिणी का त्याग ३३९-३४३. अतिचारिणी का दण्ड-स्थानीय प्रायश्चित्त ३४३-४. अतिचारिणी के लिए विहित राजदण्ड ३४४-६. कुमारी के अतिचार का दण्ड ३४६-७. वेश्या का दण्ड ३४८. निष्कर्ष ३४८-३५०.

१०. उपसंहार ३५१-३६८

आधारग्रन्थानुक्रमणी ३६९-३७३

सहायकग्रन्थसूची ३७३-३७६

शब्दानुक्रमणिका ३७७-३८७

संकेतसूची ३८८-३८९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राक्कथन

समाज की संरचना की भित्ति परिवार है। परिवार ही समाज की मूलभूत इकाई है। समाज के विभिन्न अंग और विभाजन परिवारों के विभिन्न स्तरों पर मिलन और संगठन के ही रूप हैं। परिवार समाज को बनाये रखने और बढ़ाने का माध्यम है। समाज के आदर्शों और उसकी व्यवस्थाओं की शिक्षा, सातत्य और संवर्धन के लिए यह सफल पाठशाला, प्रयोगशाला और कार्यशाला रहा है। परिवार के माध्यम से ही व्यक्ति का जन्म होता है और वह समाज में अपनी भूमिका निभाने की योग्यता भी परिवार से ही प्राप्त करता है। परिवार के द्वारा ही वह समाज के अन्य व्यक्तियों और वर्गों से सम्पर्क और सम्बन्ध स्थापित करता है। समाज के सभी वर्गों का पालन और पोषण भी परिवार के द्वारा ही होता है।

परिवार के संगठन के मूल में सहयोग और सामञ्जस्य के विचार हैं। परिवार अबोध शैशव और अशक्त वार्धक्य में सुरक्षा देता है। परिवार में श्रमविभाजन का विचार भी निहित है। परिवार के सदस्य सहयोग देने में परस्पर सहायक और पूरक होते हैं। परिवार की धुरी के रूप में पति और पत्नी का अस्तित्व है। पति और पत्नी को परस्पर जोड़ने और एक सूत्र में बाँधने का कार्य विवाह की व्यवस्था से होता है।

समाजशास्त्री विवाह और परिवार के गौरव और उसकी उपयोगिता की विवेचना में मुखर हो जाते हैं। इसके माध्यम से कामसंतुष्टि के साथ ही मनोवैज्ञानिक स्थिरता, आर्थिक सुरक्षा, व्यक्तित्व के निर्माण और संवर्धन, सामाजिक सातत्य और विकास और सांस्कृतिक मूल्यों और स्थापनाओं के संरक्षण के लिए समुचित अवसर और व्यवस्था उपस्थित होते हैं।

परिवार की सफलता और विवाह की सार्थकता पति और पत्नी के सम्बन्धों की सहजता और सामञ्जस्य पर आधारित हैं। पति और पत्नी के बीच एक दूसरे के प्रति समझदारी और समादर के विचार, सहयोग करने और पूरक बनने के प्रयास, इस सम्बन्ध के सम्यक् संचलन के लिए आवश्यक अपेक्षित गुण हैं। दम्पति के रूप में दोनों परस्पर अभिन्न हैं। अनेकशः उल्लिखित रूपक में वे परिवार की गाड़ी के दो पहिये हैं। स्पष्ट है गाड़ी एक पहिये पर नहीं चलती। दोनों ही पहिये समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। जहाँ दोनों ही समान महत्त्व वाले हों, वहाँ कौन श्रेष्ठ है इसका विचार ही अनावश्यक है।

पाश्चात्य जगत् में स्त्रियों की समानता, समान अधिकार और स्वतंत्रता के लिये आन्दोलन हुये हैं। विज्ञान और तकनीक के विकास के चलते जीवन के अनेक क्षेत्रों में स्त्री पुरुषों के साथ भागीदार हो रही है। कुछ कार्य पहले स्त्रियों की क्षमता के

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बाहर माने जाते थे, उनमें भी अब स्त्रियों की उपस्थिति सहज रूप से स्वीकृत हो रही है। समान कार्य के आधार पर समान अधिकार की मांग तो उचित ही है। अपने जीवन को बनाने और उसका स्वरूप निश्चित करने का अधिकार स्त्री को पुरुष के समान ही प्राप्त होना चाहिये। स्त्री-मुक्ति का यह आन्दोलन स्वाभाविक ही रहा है।

मुक्ति और स्वतंत्रता तो सर्वथा वांछनीय हैं। किन्तु ये शब्द उच्छृंखलता के पर्याय नहीं हैं। दुरवस्था तो तब उत्पन्न होती है जब स्वतंत्रता के नाम पर बन्धनों को ही नहीं तोड़ा जाता, औचित्य की सीमायें भी गिरायी जाती हैं, मर्यादा की लक्ष्मणरेखा भी लांघी जाती है। सभ्यता और संस्कृति के विकास की दिशा ही यह है कि मनुष्य में पशु-जैसी जो प्रवृत्तियां हैं उनका नियमन और उन्नयन हो। परिवार की कल्पना में पति-पत्नी के मधुर, प्रगाढ और परस्पर सहयोग के संबंधों के द्वारा इसी उद्देश्य की प्राप्ति अभीष्ट रही है। जहां स्त्री अपने स्नेह और त्याग के सहारे पुरुष को बांधती और संयत करती है, वहीं पुरुष भी स्त्री को भटकने से रोकने का गौरव पाता है।

आज जब शताब्दियों से विभिन्न धर्मों और समाजों में स्वीकृत मर्यादायें और परंपरायें ढह रही हैं तब शुभ के निर्धारण के लिये विचार और उसकी प्राप्ति के लिये प्रयास के सन्दर्भ में प्राचीन भारतीय व्यवस्थाओं का विवेचन सर्वथा संगत और समीचीन है। अशुभ को शुभ में परिवर्तित करने का प्रयास भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। अशिव से शिव की ओर यात्रा ही भारतीय संस्कृति के विकास के इतिहास को रेखांकित करती है। उच्छृंखलता की पाशविक प्रवृत्ति को किस प्रकार मर्यादित करके उसे भी कल्याणकारी बनाया जा सकता है इसका उत्कृष्टतम उदाहरण भारतीय व्यवस्थाओं में मिलता है।

भारतीय इतिहास में परवर्ती काल में कुछ परिस्थितियों के चलते स्त्री के साथ उत्पीड़न और अत्याचार की कई शर्मनाक परंपरायें चल निकलीं। किन्तु प्रारंभिक काल की व्यवस्थाओं से इनका समर्थन नहीं होता। यहां हम स्त्री के विभिन्न रूपों और उनकी स्थिति का विवेचन नहीं करेंगे। हम अपने को स्त्री और उसके पति के संबंधों तक ही सीमित रखेंगे। पति और पत्नी के अभिन्न रूप की जैसी कल्पना भारत में अर्धनारीश्वर शिव में अभिव्यक्त हुई वैसी अन्य किसी समाज में नहीं मिलती। दम्पति शब्द भी उनके संयुक्त व्यक्तित्व का ही द्योतक है। भारतीय साहित्य में पति-पत्नी के मधुर संबन्धों की एक लम्बी चित्रावलि है। पति से अपनी निकटता में पत्नी अनेक रूपों में उपस्थित होती है। पति पत्नी की इच्छाओं और भावनाओं का समुचित समादर करता था। परिवार की सुख, शांति और समृद्धि में दोनों ही समान रूप से परस्पर सहयोग के आधार पर भागीदार थे। कथा-साहित्य में ही नहीं, पुराणों और महाकाव्यों में भी परस्पर स्नेह की डोरी से बँधे दम्पतियों के उदाहरण मिलते हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

धर्मशास्त्रीय व्यवस्थाओं में भी इसके निर्वाह के आदर्श प्रस्तुत किये गये हैं। कामसूत्र में तो स्नेह, सहयोग और समान भागीदारी की जैसी मुक्त कल्पना है वह आधुनिक काल की परिस्थितियों में भी स्पृहणीय है। यद्यपि आधुनिक काल के परिवेश में इन व्यवस्थाओं की नई अभिव्यक्ति होगी, किन्तु इनके पीछे निहित भावनायें और पत्नी के व्यक्तित्व की मांगों की स्वीकृति सदैव ही सभी समाजशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों के मन में प्रशंसा और श्रद्धा के भावों को जगायेंगी।

डा० महेशचन्द्र जोशी ने अपने इस शोधग्रन्थ में प्रशंसनीय कार्य किया है। प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति, विवाह की व्यवस्था और परिवारों के स्वरूप पर कई विद्वानों ने गवेषणापूर्ण कार्य किया है। किन्तु स्त्री और पुरुष के संबंधों की सांगोपांग विवेचना अभी तक नहीं हो पाई थी। कुछ ग्रंथकारों ने धर्मशास्त्रीय व्यवस्था और मर्यादा का भी उल्लेख किया है। किन्तु प्रायः स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में मर्यादा का व्यतिक्रम और अतिचार ही अधिक आकृष्ट करता रहा है। अशोभन की भी स्थिति है, किन्तु वही एकमात्र सत्य नहीं है। विकृति तो कभी भी सहज प्रकृति नहीं होती। प्रकृति में शुभ और अशुभ दोनों की उपस्थिति है। संस्कृति ही प्रकृति की नियति है। अशुभ का शमन और उन्नयन और शुभ का संवर्धन ही अभीष्ट है। डा० जोशी ने इसी कारण से दाम्पत्य-मर्यादा को अध्ययन का बिन्दु बनाया है। उन्होंने मर्यादा की स्थापना, उसके स्वरूप और उसकी कल्याणकारी व्यवस्था के विवेचन को अपने शोध के लिये आवश्यक आधार माना है। विषय की सामाजिक प्रासंगिकता और उपादेयता को ध्यान में रखकर उन्होंने मर्यादा भङ्ग करने और आदर्श से च्युत होने के दुष्परिणामों और उसके कारण उत्पन्न पाप और अपराध के लिये प्रायश्चित्त और दण्ड के विधानों का भी विवेचन किया है।

इस सन्दर्भ में पूर्ववर्ती कुछ विद्वानों के विचारों के चलते कुछ पूर्वाग्रह और भ्रान्त मत प्रचलित हैं। कुछ नृतत्त्वशास्त्रियों और उनके प्रभाव से कुछ इतिहासकारों ने ऐसे मतों का प्रचार किया। कुछ जनजातियों में प्राप्य विवाह के स्वरूप और स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के विषय में विचार और कुछ प्राचीन ग्रन्थों में विवाह और अतिचार के विषय में प्राप्त उल्लेख पर कल्पना ने अतिरञ्जित और संवर्धित कलेवर चढ़ा दिया। डा० जोशी ने इन अर्द्ध-सत्यों का विशद विवेचन बिना किसी पूर्वाग्रह से बाधित हुये किया है।

प्राचीन साहित्य में उपलब्ध उल्लेखों को उनकी समग्रता में देखना चाहिये। आंशिक तथ्य को उसके सन्दर्भ से पृथक् कर देने के कारण ही अनर्गल और असम्मत निष्कर्ष निष्पन्न होते हैं। प्राक्काल में स्वच्छन्द कामाचार और कालान्तर में विवाह की व्यवस्था की स्थापना के विचार साहित्यिक उल्लेखों की आलोचनात्मक विवेचना की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। अब नृतत्त्वशास्त्रियों ने यह स्वीकार किया है कि

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अत्यन्त सुदूर प्राचीन काल में जब मानव समाज का गठन हुआ तभी से स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों ने स्थिर रूप लिया था। आदिम काल में ये संबंध कैसे थे इनका ज्ञान प्राप्त करने के कोई विश्वसनीय साधन नहीं हैं। उस काल की स्मृति कालान्तर में किस प्रकार बनी रही, इसकी व्याख्या नहीं हो पाती। इस प्रकार के उल्लेखों में कल्पना का योगदान अवश्य था, किन्तु प्रायः परिस्थिति और सन्दर्भ की आवश्यकता के अनुसार उनके विवरण प्रस्तुत किये गये। प्राचीन भारतीय साहित्य में सामूहिक विवाह प्रथा का एक भी सुनिश्चित उल्लेख नहीं है। बहुपतिप्रथा के उल्लेखों को ही विद्वानों ने सामूहिक विवाह प्रथा का उदाहरण मान लिया है। कुछ विद्वान् भारत में विवाह-प्रथा का प्रवर्तन श्वेतकेतु के द्वारा मानते हैं। श्वेतकेतु उपनिषद् कालीन ऋषि थे। अन्य प्रमाणों से ज्ञात है कि उपनिषदों के काल से बहुत समय पूर्व ही विवाह की परम्परा प्रतिष्ठित थी। महाभारत के श्वेतकेतु-प्रकरण से भी इस मत का समर्थन नहीं होता। सभ्यता और संस्कृति के विशिष्ट तत्त्वों के प्रवर्तन के बारे में उत्तरकालीन परम्पराओं का ऐतिहासिक आकलन करने में सतर्कता अपेक्षित है। श्वेतकेतु कदाचित् विवाह के नियमों को व्यवस्थित और दृढ करने वालों में प्रमुख थे।

निकटाभिगमन, अतिचार और अनियन्त्रित यौन सम्बन्धों के जो उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्य हैं उनकी डॉ० जोशी ने जो व्याख्या की है वह सटीक है। उन्होंने सन्दर्भों को समझा है, विवरण के सभी तथ्यों का विचार किया है, प्रस्तुतिकर्ता के उद्देश्य की पृष्ठभूमि को उजागर किया है और उल्लेख के शब्दों और वाक्यों का व्याकरण और तर्क सम्मत अर्थ किया है। इन उल्लेखों से ही स्पष्ट है कि ये चारित्रिक स्खलन के छिटपुट उदाहरण हैं। इन्हें प्रचलित परम्परा और मान्य व्यवस्था नहीं कहा जा सकता। सभी युगों और सभी देशों में अपवाद के इन उदाहरणों के होने की सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता। किन्तु इनके आधार पर इन्हें किसी देश या काल विशेष में प्रचलित या स्वीकृत नहीं कहा जा सकता। यम-यमी के सम्बन्धों के विवरण में तो यम स्वयं इसका विरोध करते हुये इसके स्वीकृत न होने का तर्क देता है।

डा० जोशी का यह शोध-प्रबन्ध सर्वथा स्तुत्य है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के अध्ययन के इतिहास में प्रामाणिक और स्थायी महत्त्व का योगदान दिया है। भ्रान्तियों के निराकरण और वास्तविक व्यवस्था के स्वरूप की संरचना में वे सफल हुये हैं। कोई भी समाजशास्त्री और प्राचीन भारतीय समाज और संस्कृति का अध्येता इस ग्रंथ का अध्ययन किये बिना अपने ज्ञान में संशोधन की सम्भावना को त्यागेगा। ऐतिहासिक सत्य की स्थापना के प्रयास के नाम पर मैं यह कामना करूँगा कि यह पुस्तक अधिक से अधिक अध्येताओं तक पहुँचे।

वाराणसी
विजयादशमी, अक्टूबर २०, १९८८

लल्लनजी गोपाल

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भूमिका

प्राचीन समाज के साङ्गोपाङ्ग अध्ययन में उसकी घटक इकाई के रूप में परिवार के स्वरूप का अध्ययन भी समाविष्ट है। परिवार के आधार स्तम्ब हैं दम्पती, जो कि विवाह के द्वारा एक सूत्र में बँधते हैं। अतः विवाह और दाम्पत्य जीवन विषयक अध्ययन भी उसमें सम्मिलित है। अब तक अनेक विद्वानों के द्वारा प्राचीन साहित्यिक स्रोतों के आधार पर न केवल पारिवारिक जीवन पर अपितु विवाह संस्था के इतिहास, उसके स्वरूप, विवाह-प्रकार, विवाह-संस्कार आदि विषयों पर भी प्रशंसनीय और प्रामाणिक कार्य किया जा चुका है। कभी-कभी आधुनिक वातावरण के प्रभाव में आकण्ठ मग्न लेखक जब वर्तमान जन-साधारण के आचार और व्यवहार को अपने अन्तर्मन में रख कर और अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होकर प्राचीन साहित्यिक स्रोतों का विश्लेषण करते हैं तो सहस्रों वर्षों की समृद्ध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले प्राचीन सामाजिक जीवन पर अपने दृष्टिकोण का भी आवरण डाल देते हैं। जब कि किसी अध्ययन की सार्थकता वस्तुनिष्ठ यथार्थ की अभिव्यक्ति में ही निहित है और इसके लिए लेखक को अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों से सर्वथा मुक्त रहना आवश्यक है, किन्तु ऐसा हो नहीं पाता। यही कारण है कि कुछ लेखकों ने प्राचीन भारत में विवाह-संस्था के उद्भव के पूर्व कामाचार के प्रचलन तथा अतिचार की प्रवृत्ति के बोधक सन्दर्भों के विवेचन में उत्साहातिरेक का परिचय देकर वास्तविकता पर आवरण डाल कर भ्रमोत्पादन किया है। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में ऐसे सन्दर्भों की यथासंभव समीक्षा करके ऐसी भ्रान्तियों के निराकरण का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त प्राचीन संस्कृत साहित्य में प्राप्त विवाह-संस्था के आविर्भाव विषयक साक्ष्यों, वैवाहिक जीवन की आवश्यकता के बोधक सन्दर्भों एवं दम्पती के पारस्परिक सम्बन्ध और कर्तव्यों तथा दाम्पत्य जीवन की मर्यादा के विषय में प्राप्त होने वाले उद्धरणों के भी विवेचन का एक विश्वसनीय प्रयास प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है, क्योंकि इस दिशा में पूर्ववर्ती विद्वानों ने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया है।

प्राचीन भारत में दाम्पत्य मर्यादा विषयक अध्ययन आधुनिक सामाजिक समस्या की दृष्टि से भी प्रासंगिक लगता है। आधुनिक समाज के अन्तस्तल में अनेक सुलगती हुई समस्याएं पड़ी हुई हैं। पारिवारिक वातावरण में प्रसुप्त असन्तोष की चिनगारी भी इनमें से एक है। इस पारिवारिक अशान्ति के मूल में एक कारण परिवार के घटक पति और पत्नी में माधुर्य का अभाव हो सकता है। दम्पती के जीवन को विरस बनाने का हेतु बेमेल विवाह, दम्पती में से किसी एक या दोनों की कोई शारीरिक अक्षमता, एक दूसरे के प्रति कर्तव्यों की अवहेलना या अन्य कुछ भी हो सकता है। अमर्यादित यौन-सम्बन्ध या अतिचार की प्रवृत्ति भी दाम्पत्य जीवन में कड़ुवाहट का कारण बन सकती है। आधुनिक समाज में दाम्पत्य जीवन की समस्याओं को सुलझाने के विषय में कुछ समाजसेवी व्यक्ति या संगठन तो कार्यरत हैं ही, अनेक समाजशास्त्री

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भी इन समस्याओं के निदान और प्रतीकार के उपायों के सर्वेक्षण में संलग्न हैं। प्राचीन साहित्य में प्राप्त दाम्पत्य सम्बन्ध के स्थायित्व विषयक सूचनाओं और सदुक्तियों का अनुशीलन समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी उपयोगी हो सकता है।

वर्तमान समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अनैतिकता की दुष्प्रवृत्ति का उन्मेष हो रहा है। यद्यपि इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के द्वारा सभ्यता के शिखर पर पहुँचे हुए आधुनिक मानव के जीवन स्तर में जो सुधार हुआ है तथा जो सुख-सुविधाएं उसे उपलब्ध हुई हैं उनकी कल्पना भी पिछली शताब्दियों में नहीं की गयी होगी। किन्तु नैतिकता और चारित्रिक गुणों की दृष्टि से आधुनिक समाज की उपलब्धियाँ अभी कोई विशेष उल्लेखनीय नहीं लगती। अद्यावधि प्रायः समाज के प्रत्येक स्तबक में कहीं न कहीं और कुछ न कुछ मनुष्यों में कोई न कोई चारित्रिक त्रुटि संलक्षित होती रहती है। आधुनिक समाज में उत्पन्न चारित्रिक संकट एवं अपराधाचरण की दुष्प्रवृत्ति के हेतुओं में से एक है अमर्यादित यौनाचार की भावना। नयी पीढी में अपने पूर्वजों के द्वारा स्थापित मान्यताओं एवं नैतिक मर्यादाओं के प्रति अनास्था के उद्रेक तथा असंगत आचार-विचार के कारण इस कुत्सित प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। औद्योगीकरण और नगरीकरण की वर्तमान अर्थव्यवस्था में पिछली शताब्दियों की कुटुम्ब-व्यवस्था विघटित हो रही है। प्रायः नवयौवन में अनेक युवकों तथा कुछ युवतियों को भी कुछ तो उच्च शिक्षा के नाम पर और विशेषतया जीविका के लिए पारिवारिक परिवेश से पृथक् एक नये वातावरण में स्वतन्त्र जीवन का जो अवसर मिलता है वह उन्हें अनुशासनहीन और अमर्यादित बनाने तथा उनकी चित्तवृत्ति को विकृत बनाने में सहायक हो जाता है। यौवनोन्माद तो अनर्थकर होता ही है, उस पर भी अनुशासन और सत्सङ्गति का अभाव, तामसिक भोजन, अश्लील कहानियाँ और उपन्यास, पर्दे पर दिखलाये जाने वाले कामोत्तेजक दृश्य तथा परिवार-नियोजन के उपायों की सुलभता आदि कारणों से स्त्री-पुरुषों में उन्मुक्त यौन-सम्बन्धों की लालसा तथा वैवाहिक मर्यादा के बाहर यौनाचार की घृणित प्रवृत्ति का उद्रेक होना स्वाभाविक ही है। अशिक्षा-कुशिक्षा, दूषित पारिवारिक परिवेश, वेश्या-प्रथा का प्रचलन आदि से भी इस दुराचार की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। कुछ समाजशास्त्रियों के द्वारा कुछ महानगरों के विभिन्न वर्गों में कराये गये सर्वेक्षणों से विदित होता है कि अनेक भ्रमितबुद्धि स्त्री-पुरुष वैवाहिक मर्यादा के बाहर काम-सन्तुष्टि को अधिक अनुचित नहीं समझते। जहाँ प्राचीन काल का मनुष्य सुदूर अतीत में ही काम-सम्बन्धों को मर्यादित करके ही पशु-प्रवृत्ति से ऊपर उठकर सुसंस्कृत बना था, वहीं आज के कुछ विकृत मनःस्थिति वाले लोग मानसिक स्वतन्त्रता के नाम पर सारे नैतिक बन्धनों को तोड़कर सुसंस्कारों को तिलाञ्जलि देकर और सारी मर्यादाओं का उल्लंघन कर आधुनिकता के बल पर उच्छृङ्खल होकर पैशाचिक आचरण किंवा पशुचर्या को ही अपनी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सभ्यता की पहचान मानने लगे हैं। यह मानसिक विकृति किसी असाध्य व्याधि से भी अधिक संक्रामक और घातक हो रही है। फलतः यौन अपराधों में उत्तरोत्तर वृद्धि, दाम्पत्य जीवन में विघटन या वैमनस्य का बीजाङ्कुरण, वेश्याप्रथा का अभिशाप तथा घातक यौनरोग समाज और प्रशासन के लिए चिन्ता के विषय बन गये हैं।

कतिपय आधुनिक समाजचिन्तकों की धारणा है कि अनेक प्रकार के परिवर्तनों के कारण आज की सामाजिक परिस्थितियाँ पहले जैसी नहीं रह गयी हैं, अतः वर्तमान समाज के लिए प्राचीन आदर्श, नैतिक मूल्य और व्यवस्थाएँ अर्थहीन हो गयी हैं। यही सोच कर वे आधुनिक सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु अपने देश के प्राचीन इतिहास का आश्रय लेने की अपेक्षा आधुनिक काल की किसी भारतीय या विदेशी विचारधारा का अनुसन्धान ही अपेक्षित समझते हैं। किन्तु यह एक ध्रुव सत्य है कि वर्तमान सामाजिक समस्याओं को सुलझाने हेतु मानव सदैव अतीत के अनुभवों का भी लाभ उठाना चाहता है और इसके लिए वह तद्विषयक इतिहास का अवलोकन करता है। वर्तमान समाज की समस्याएँ चाहे जैसी भी हों उनके समाधान हेतु तद्विषयक इतिहास के अनुसन्धान या पुनरवलोकन का अपना विशिष्ट महत्त्व है, क्योंकि इससे न केवल उन समस्याओं से जूझने की प्रेरणा मिलती है, अपितु उनके समाधान हेतु निर्देश भी प्राप्त होते हैं। यदि वर्तमान अथवा भावी समाज के लिए कोई अनुकरणीय आदर्श भी प्रस्तुत करना हो तो भी उसके लिए भविष्य की किसी काल्पनिक घटना की अपेक्षा अतीत की अनुकरणीय घटनायें तथा नैतिक प्रतिमान ही मार्गप्रदर्शक हो सकते हैं। यही कारण है कि वर्तमान वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा की होड़ में पीछे होने पर भी प्राचीन इतिहास के अध्ययन की आवश्यकता और महत्ता आज भी यथावत् बनी हुई है और बनी रहेगी। इसके अनुसन्धान और अनुशीलन की धारा कदापि अवरुद्ध नहीं हो सकती। वर्तमान काल में प्राचीन इतिहास के उन पक्षों का अध्ययन विशेषतया अपेक्षित है जो आधुनिक परिस्थितियों में भी समाज के लिए उपयोगी, व्यवहार्य और शिक्षाप्रद हो सकें। प्राचीन भारतीय संस्कृति में जीवन के शाश्वत मूल्यों की सही पहचान की गयी है। इसमें मनुष्य को भौतिक सुखोपभोग की स्वीकृति देते हुए भी इन्द्रिय-लौल्य के लिए नैतिकता को तिलाञ्जलि देने एवं मर्यादा को तोड़ने की छूट किसी को नहीं दी गयी है। हमारे शास्त्रों में दी गयी प्रत्येक विधि या निषेध परक व्यवस्था के पीछे एक दार्शनिक दृष्टिकोण, सुपरीक्षित तर्क का आधार और अनुभवों की पृष्ठभूमि रही है। हमारी प्राचीन सामाजिक मर्यादाओं और आदर्शों के उत्स प्रायः तपोवनों और आश्रमों के ऋषि-मुनि, सन्त, योगी अथवा लोकसंग्रह के निमित्त अपने जीवन को दाँव पर लगा देने वाले महापुरुष रहे हैं। हमारी प्राचीन समाज व्यवस्था के कर्णधारों के मन में अपने लिए किसी व्यक्तिगत लाभ या भौतिक सुख की कोई लालसा नहीं थी। उन्होंने जो कुछ किया अथवा जो कुछ कहा उसका उद्देश्य अपने समाज तथा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उसकी भावी-पीढियों को मङ्गलमय बनाना मात्र था। अतः प्राचीन साहित्य में काम-भावना की वैवाहिक मर्यादा के अन्तर्गत सन्तुष्टि, दाम्पत्य-सम्बन्ध के स्थायित्व, मर्यादा के अनुपालन की यथार्थता और सार्थकता, अनैतिकता से जनित हानियों तथा अमर्यादित यौन-प्रवृत्ति के शोधन और निग्रह विषयक जो विवरण हैं उनका ऐतिहासिक अध्ययन आधुनिक समाजशास्त्रियों को भी चिन्तन के नये आयाम तथा यौन-समस्याओं के समाधान के लिए मार्गनिर्देश प्रदान कर सकता है।

राजनीतिक और सामाजिक इतिहास एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। किसी देश-काल की राजनीतिक स्थिति से सामाजिक जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ता है तो सामाजिक परिस्थितियाँ भी बहुधा राजनीतिक परिवर्तन का कारण बनती हैं। अतः राजनीतिक इतिहास और सामाजिक इतिहास परस्पर निरपेक्ष नहीं हैं। किन्तु इनकी विषय-वस्तु की भिन्नता के कारण इनका पृथक् अध्ययन ही सुविधाजनक होता है।

जिस प्रकार राजनीतिक इतिहास में घटनाचक्र की गतिशीलता एवं राजाओं तथा राजवंशों के उत्थान-पतन आदि का त्वरित क्रम लक्षित होता है उस प्रकार की आकस्मिक परिवर्तनशीलता सामाजिक इतिहास के क्षेत्र में नहीं लक्षित होती। सामाजिक व्यवस्थाओं और मूल्यों का विकास एवं उनमें परिवर्तन शनैः शनैः होता है और इसमें अनेकानेक वर्षों किं वा शताब्दियों और कभी-कभी तो सहस्राब्दियों का भी समय लग सकता है। इनके आविर्भाव, विकास, परिवर्तन अथवा तिरोभाव का असंलक्षित क्रम युग-व्यापी रहता है। अतः सामाजिक इतिहास के किसी पक्ष विशेष पर शोध हेतु दीर्घ कालावधि के साहित्यिक स्रोतों का सर्वेक्षण समीचीन एवं सन्तोषप्रद समाधान या निष्कर्ष प्राप्त करने में अधिक सहायक होता है। इसी परिप्रेक्ष्य में हमने प्राचीन भारत में दाम्पत्य-मर्यादा के एक अध्ययन हेतु ऋग्वेद से लेकर बारहवीं शताब्दी तक के संस्कृत साहित्य के उपलब्ध प्रमुख स्रोतों का उपयोग किया है।

प्राचीन भारत में दाम्पत्य-मर्यादा विषयक जितने तथ्य हमें अभीष्ट हो सकते हैं उनका विवरण न तो किसी एक साहित्यिक ग्रन्थ और न पूर्णतः किसी एक साहित्यिक विधा में ही उपलब्ध हो सकता है। अतः नाना साहित्यिक स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं को यथासंभव ऐतिहासिक तारतम्य से एक सूत्र में पिरो कर ही हम अपनी प्रतिपाद्य विषय-वस्तु का एक सही और विश्वसनीय प्रतिरूप उपस्थापित कर सकते हैं। हमारे लिए सर्वप्रथम साहित्यिक स्रोत ऋग्वेद है तथा तत्पश्चात् अन्य संहिताएं हैं। वेदों का सर्वोपरि महत्त्व इसलिए भी है कि वे परवर्ती समस्त साहित्य के मूल स्रोत हैं। हमारे धर्मशास्त्रों के अनुसार स्मृतियों में श्रुति के ही अर्थ का प्रतिपादन है। पुराणों का उद्देश्य भी वेद-प्रतिपाद्य विषय-वस्तु का ही उपबृंहण माना गया है। यद्यपि वैदिक संहिताओं के ऋषियों ने बहुधा देवों के यशोगान एवं प्रार्थनाओं आदि में ही अपनी वाणी का सदुपयोग किया है, तथापि उनके द्वारा अभिव्यक्त भावों में यत्र-तत्र तत्कालीन

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सामाजिक अवस्था के प्रतिबिम्ब भी दृष्टिगत होते हैं। वेदकालीन यज्ञधर्म की मीमांसा एवं यज्ञीय विधि-विधानों का प्रतिपादन करने वाले ब्राह्मण-ग्रन्थों और विवेक-ख्याति तथा मोक्ष का प्रतिपादन करने वाले उपनिषदों में भी कहीं-कहीं तत्कालीन सामाजिक अवस्था विषयक प्रामाणिक और अन्य किसी स्रोत से अप्राप्य अति महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। गृह्यसूत्रों में विवाहादि संस्कारों तथा गृहस्थ दम्पती के द्वारा सम्पाद्य नाना धार्मिक कृत्यों का समावेश है तो धर्मसूत्रों में समस्त वर्णों एवं आश्रमों के लिए आचार-संहिता के निर्देश के साथ ही व्यवहार और प्रायश्चित्तादि धर्मशास्त्रीय विषयों का भी प्रतिपादन किया गया है। रामायण तथा महाभारत जैसे महनीय ग्रन्थों में प्राचीन सामाजिक इतिहास के प्रत्येक पक्ष पर प्रभूत सामग्री है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में प्रदत्त व्यवस्थाएँ मौर्य साम्राज्य की स्थापना-काल की सामाजिक अवस्था का एक प्रतिबिम्ब हमारे समक्ष प्रस्तुत करती हैं। हमारे लिए मनु आदि की स्मृतियाँ तो परम उपादेय स्रोत हैं ही, इसके साथ ही इनकी वैदुष्यपूर्ण टीकाएँ और निबन्ध-ग्रन्थ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनके लेखकों ने स्मृति-वचनों की सटीक व्याख्या और अर्थ-सङ्गति के साथ ही स्वयं अपनी ओर से भी महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाएँ दी हैं और साथ ही अनेक प्राचीन आचार्यों के ग्रन्थों, जो आज उपलब्ध नहीं हैं, से ऐसे दुर्लभ वचन उद्धृत किये हैं, जो कि सामाजिक इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उधर आख्यान, उपाख्यान आदि से संवलित पञ्च-लक्षणात्मक पुराणों में मानवीय सृष्टि के आरम्भ से लेकर पूर्वमध्यकाल तक के सामाजिक इतिहास की प्रभूत सामग्री है। भारतीय सांस्कृतिक साहित्य की महान् निधि स्वरूप ये पुराण वेदार्थ का उपबृंहण करते हैं, स्मृतियों की विषय-सामग्री से संवलित हैं, आयुर्वेद, ज्योतिष, कर्मकाण्ड आदि नाना विषयों को अपने में समाहित किये हैं और अपने धार्मिक विधानों तथा आचारों के उपदेश से भारतीय समाज को अद्यावधि नियमित करते रहे हैं। दाम्पत्य जीवन विषयक किसी भी ग्रन्थ में पुराणों की विषय-सामग्री का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में उपर्युक्त सभी स्रोतों के साथ ही पुराणों में प्राप्त विषय-सामग्री के भी अधिकतम उपयोग की चेष्टा की गयी है। किसी भी देश काल का साहित्य उसकी सामाजिक स्थिति का वास्तविक प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं नाटक, गद्यकाव्य, पद्यकाव्य, गाथा, नीतिग्रन्थों, कथासरित्सागर जैसे कथा ग्रन्थ तथा राजतरङ्गिणी जैसे इतिहासग्रन्थ का भी उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त यथास्थल कुछ दर्शनशास्त्रीय और साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों, कामशास्त्रीय ग्रन्थों, चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता तथा अष्टांगसंग्रह जैसे आयुर्वेदिक ग्रन्थों और बृहत्संहिता एवं राजमार्तण्ड जैसे ज्योतिष-शास्त्रीय ग्रन्थों का भी यथास्थल उपयोग किया गया है। प्रस्तुत विषय से सम्बद्ध जो थोड़े बहुत अभिलेखीय साक्ष्य उपलब्ध हो पाये हैं उनका भी यथास्थल इसमें उपयोग किया गया है। कहीं-कहीं पर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और बहुधा सहायक ग्रन्थों के उद्धरणों के आधार पर बौद्ध एवं जैन साहित्य से प्राप्त सूचनाओं का भी उपयोग किया गया है।

प्राचीन साहित्य की सभी विधाओं का अध्ययन तुलनात्मक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी होता है। हम यह देखते हैं कि जो तथ्य और शाश्वत मूल्य श्रुति-प्रतिपादित हैं उनका अनुमोदन और विशद प्रतिपादन स्मृतियों में भी है। इतिहास-पुराणादि के विभिन्न कथानकों में भी श्रुति-स्मृति-सम्मत मूल्यों की ही स्थापना है। श्रुति-स्मृति और पुराणादि सत्साहित्य में प्रतिपादित नैतिक मूल्यों का ही प्रतिफलन काव्य-ग्रन्थों में लक्षित होता है। धर्मशास्त्रीय विधानों में ज्यौतिष, आयुर्वेद और कामशास्त्र के मूल-सिद्धान्तों की अवहेलना नहीं है तो धर्मशास्त्रों के द्वारा निर्धारित नैतिक मर्यादाओं और सनातन मूल्यों का अनुसरण ज्यौतिष और आयुर्वेद जैसे शास्त्रों में ही नहीं, यथासंभव कामशास्त्र में भी किया गया है। अतः प्रतिपाद्य विषय के साथ न्याय करने के लिए समग्र साहित्य में अन्तर्निहित साक्ष्यों का अवलोकन अपेक्षित होता है। यद्यपि इस विधि को अपनाने में विपुल शोध-सामग्री के संकलन तथा उसके एक समान तथ्यों के एकत्र सम्पादन में कुछ कठिनाई और किसी तथ्य के यथास्थल उल्लेख में त्रुटि हो सकती है, किन्तु विभिन्न विधाओं की शोध-सामग्री को विभिन्न ग्रन्थों या विभिन्न अध्यायों में रखने की अपेक्षा तत्तत् विधाओं की समग्र शोधसामग्री में से समान तथ्यों को एक अध्याय में एकत्र सम्पादित करना तुलनात्मक दृष्टि से अधिक उपयुक्त होता है और इससे विषय-वस्तु की यथासंभव एक सही छबि सामने आ जाती है। प्रस्तुत ग्रन्थ में यही विधि अपनायी गयी है। इसमें यथासंभव शोधसामग्री को आधार ग्रन्थों के ऐतिहासिक पौर्वापर्य के अनुसार ही उपस्थापित किया गया है, किन्तु कहीं-कहीं वस्तुगत तथ्यों के प्रतिपादन के अनुरोधवश यह क्रम छोड़ना भी पड़ा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के दश अध्यायों में क्रमशः (१) विवाह-संस्था की उत्पत्ति-विषयक भ्रान्त धारणाओं तथा प्राचीन भारत में कामाचार के प्रचलन विषयक असंगत विचारों का खण्डन, (२) विवाह-संस्था की दैवी उत्पत्ति विषयक साक्ष्यों एवं मानसीसृष्टि तथा अतिमानवीय दम्पतियों का सर्वेक्षण, (३) विवाह की नैसर्गिक आकांक्षा, आवश्यकता, उद्देश्यों तथा वैवाहिक कर्तव्यों का निरूपण, (४) विवाह-संस्कार की सोद्देश्यता एवं उपयोगिता का विवेचन, (५) दाम्पत्य-सम्बन्ध के स्थायित्व, दम्पती के सहधर्माचरण एवं दाम्पत्य प्रेम की मीमांसा, (६) दाम्पत्य मर्यादा के अनुपालन विषयक यथार्थ और आदर्शों का निरूपण, (७) अतिचार-विषयक उल्लेखों की समीक्षा, (८) अतिचार के दुष्परिणामों तथा (९) अतिचारी स्त्री-पुरुषों के लिए प्रायश्चित्त एवं दण्ड-विधानों का पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया है और अन्तिम (१०) उपसंहारात्मक अध्याय में सभी अध्यायों के सारांश के साथ निष्कर्ष रूप में दाम्पत्य-मर्यादा के पालन की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रथम अध्याय

विवाह-संस्था का उद्भव : आधुनिक विद्वानों की दृष्टि में

क्षुधा, पिपासा, निद्रा आदि के सदृश काम की सहज प्रवृत्ति की सन्तुष्टि भी अनादि सृष्टि से ही मनुष्य के लिए अपरिहार्य रही है। प्रत्येक व्यक्ति को काम-भावना की मूल प्रवृत्ति की सन्तुष्टि का अवसर सुलभ कराने तथा काम-सम्बन्धों को नियमित और मर्यादित बनाने के लिए स्त्री-पुरुषों को विवाह-संस्कार के द्वारा दाम्पत्य-सूत्र में बाँधने की व्यवस्था सर्वाधिक उपयुक्त एवं समीचीन है। सुदूर अतीत से ही मनुष्य ने काम-भावना की सन्तुष्टि हेतु विवाह-संस्था का प्रवर्तन और दाम्पत्य-मर्यादा का पालन करके स्वयं को पशु-प्रवृत्ति से ऊपर उठा कर संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

विवाह-संस्था के आविर्भाव के विषय में आधुनिक इतिहासकारों तथा नृतत्त्व-शास्त्रियों के द्वारा तीन मत उपस्थापित किये गये हैं। (१) प्रथम मत के अनुसार सुदूर अतीत में गम्यागम्य विषयक विचार के अभाव में स्वच्छन्द कामाचार या अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था (Promiscuity) का प्रचलन रहा होगा और कालान्तर में इसके प्रतिबन्धित होने पर विवाह-संस्था का उदय हुआ होगा। (२) दूसरे मत के अनुसार अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था के पश्चात् सामूहिक यौन-सम्बन्धों या सामूहिक विवाह (Group-Marriage) की अवस्था आयी होगी और तदनन्तर ही व्यक्तिगत विवाह का प्रचलन हुआ होगा। (३) तीसरे मत में मैथुन एवं सन्तान-रक्षा प्रभृति सहज प्रवृत्तियों के कारण आदि काल से ही विवाह-संस्था के स्वाभाविक अस्तित्व की कल्पना की गई है। जब कि प्राचीन भारतीय वाङ्मय में ईश्वरीय सृष्टि के साथ ही विवाह-संस्था के प्रादुर्भाव की चर्चा है। प्रस्तुत अध्याय में विवाह-संस्था के आविर्भाव विषयक उपर्युक्त मतों की समीक्षा भारतीय वाङ्मय में प्राप्त तत्सम्बन्धी साक्ष्यों के सन्दर्भ में की जा रही है।

१—अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था—

अनेक पाश्चात्य इतिहासकारों, नृतत्त्वशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों की यह मान्यता है कि अति प्राचीन काल के समाज में नैतिक मूल्यों एवं सदाचार की स्थापना के पूर्व विवाह-संस्था का अभाव रहा होगा और अपनी काम-वासना की पूर्ति के लिए कोई भी पुरुष बिना भेदभाव के किसी भी नारी के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित करता रहा होगा।[1] इस अवस्था को ये विद्वान् प्रोमिस्क्युटी (Promiscuity) अर्थात् प्राग्विवाह-स्थिति की अनियमित यौन-सम्बन्धों या स्वच्छन्द कामाचार की अवस्था

---

१. द्र०—वेस्टरमार्क : हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज भाग १, अध्याय ३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कहते हैं। लबोक के अनुसार—'प्रोमिस्क्युटी' प्राक्कालीन मनुष्यों के असभ्य समाज की वह अवस्था है, जिसमें विवाह-संस्था का अस्तित्व ही नहीं था।[१] बाख़ोफ़ेन प्रभृति लेखकों ने विश्व के अनेक देशों के प्राचीन साहित्य में से कुछ उद्धरण भी अपने मत के समर्थन में जुटाये हैं। साथ ही इन लेखकों ने अपने मत के समर्थन में विश्व की कुछ जातियों की ऐसी प्रथाओं का उल्लेख किया है, जिनमें वैवाहिक मर्यादा का अभाव अथवा यौन-सम्बन्धों की शिथिलता प्रकट होती है।[२] इनके मतानुसार गम्यागम्य के विचार से रहित पशु-प्रवृत्ति की स्थिति में न तो घर और न परिवार ही बन सकता था और न वंश-परम्परा ही अक्षुण्ण रह सकती थी। अतः मैथुन की सहज प्रवृत्ति के साथ ही घर-परिवार को बना कर रहने, वंश परम्परा को अक्षुण्ण रखने तथा आदिम असभ्य मानव की एक या अधिक स्त्रियों के साथ स्वामित्वपूर्ण सहवास की भावना ही विवाह एवं परिवार-संस्था के उदय का कारण रही होगी। इनकी मान्यता है कि मानव-सभ्यता के विकास के साथ नैतिक मान्यताओं की स्थापना होने पर समाज द्वारा यौन-सम्बन्धों की स्वच्छन्दता पर अंकुश लगाकर एक पुरुष के लिए एक नारी (या एकाधिक नारियों) के साथ यौन सम्बन्ध की वैवाहिक मर्यादा स्थापित की गई होगी।[3] इस तरह ये विद्वान् अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था (प्रोमिस्क्युटी) से ही विवाह-संस्था का उदय मानते हैं। अनेक भारतीय विद्वान् भी इस मत के समर्थक हैं। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार "यह मानना नितान्त भूल होगी कि मानव समाज एक ही दिन में सदाचारी बन गया होगा तथा सभी जातियों में वैवाहिक बन्धन समान रूप से दृढ़ हो गया होगा"।[४] उनके विचार से "यह मानना ही पड़ेगा कि मानव समाज के शैशव काल में ऐसी अवस्था अवश्य वर्तमान थी जिसमें किसी प्रकार का वैवाहिक बन्धन नहीं था"।[५] डॉ० भगवत शरण उपाध्याय भी यह मानते हैं कि विवाह-संस्था का उदय मानव-सभ्यता की पर्याप्त विकासावस्था के पश्चात् हुआ होगा।[६]

---

१. लबोक : ओरिजन आफ सिविलाइजेशन, तृतीय सं०, पृ० ९१।

२. द्र०—हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास, पृ० २८।

३. हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज, भाग १, अध्याय ३।

४. हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास, पृ० २८। ५ वही, पृ० २९।

६. वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० ५१। डॉ० उपाध्याय ने यह स्वीकार किया है कि विवाह संस्था का सूत्रपात ताम्र-प्रस्तरकाल (chalcolithic age) के भी पहले हो चुका होगा (वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० ५१-२)। उनके अनुसार ईसा पूर्व दूसरी या तीसरी सहस्राब्दियों अर्थात् ईसा से बीस या तीस हजार वर्षों के पूर्व ही विवाह-संस्था का विकसित रूप अस्तित्व में आ चुका था और इसका अभ्युदय उसके बहुत पूर्व हो चुका होगा (वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० ५२)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था के अनन्तर विवाह-संस्था के आविर्भाव की कल्पना करने वाले पाश्चात्य विद्वानों में से अन्यतम डा० ब्लाख के अनुसार आदिम मानव समाज में यौन-सम्बन्धों की अनियमितता (सेक्सुयल प्रोमिस्क्युटी) वास्तव में विद्यमान थी। उन्होंने विभिन्न देशों एवं जातियों में प्रचलित विवाह-बन्धन रहित यौन-सम्बन्धों को उसी परम्परा का अवशेष माना है और प्राचीन तथा मध्यकालीन साहित्य में वैवाहिक मर्यादा से रहित समाज के उल्लेखों एवं विश्व के विभिन्न देशों में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विवाह-संस्था के प्रवर्तन के उल्लेखों को भी अपने मत के समर्थन में प्रमाण रूप में उपस्थापित किया है[1]। मैक्लेनन के अनुसार भी अनेक देशों में ऐसी परम्परा पायी जाती है जिससे द्योतित होता है कि पूर्वकाल में विवाह संस्था नहीं थी और एक न एक विधि-प्रवर्तक आचार्य द्वारा इसका प्रवर्तन किया गया था। मिस्र देश में मेन्स ने, चीन में फोही ने, ग्रीक देश में सेक्रोपस ने और भारत में श्वेतकेतु ने विवाह-संस्था का प्रवर्तन किया था।[2] इस तरह विभिन्न देशों में विवाह-संस्था के प्रवर्तन का श्रेय किसी न किसी व्यक्ति को दिया गया है।[3]

किन्तु उपर्युक्त लेखकों के मत का टेलर, स्टार्च, वेस्टरमार्क, रौबर्ट लुई, होब्हाउस्, मेसन, ईवान्स प्रिचार्ड प्रभृति विद्वानों ने सूक्ष्म परीक्षण करके तर्कसंगत विधि से खण्डन किया है।[4] आदिम मानव समाज में अनियमित यौन-सम्बन्धों या कामाचार की अवस्था (promiscuity) का अस्तित्व सिद्ध करने वाले लेखकों ने प्रायः विदेशी यात्रियों, धर्म-प्रचारकों एवं प्रशासकों के द्वारा लिखित विवरणों से प्राप्त सूचनाओं को प्रमाण माना है। किन्तु वे विवरण प्रायः अपूर्ण या खण्डित हैं, उनमें किसी समुदाय के विषय में जो भी सूचनाएँ हैं वे प्रायः उसके अन्तरङ्ग परिचय के विना लिखी हुई होने से सतही हैं अथवा दुर्भावना से प्रेरित होकर लिखी गयी हैं। पुनश्च इनके लेखकों को तत्तत् समुदायों के सांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं सामाजिक परम्पराओं के सम्यक् ज्ञान के अभाव में उनके द्वारा वस्तुस्थिति का सम्यक् आकलन न हो पाने से उन उल्लेखों के त्रुटिपूर्ण होने की संभावना ही अधिक है।[5] अतः वे विवरण आदिम मानव समाज में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था को सिद्ध करने के लिए प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। पुनश्च जैसा कि वेस्टरमार्क ने कहा है कि ये लेखक भ्रमवश विवाह शब्द

---

१. द्र०—हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास, पृ० १५-२३।
२. मैकलेनन : स्टडीज इन एन्सेण्ट हिस्ट्री, पृ० ९५।
३. द्र०—फार्म्स आफ मैरेज इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० १३४।
४. इस विषय में विशेष विवरण हेतु देखिए—के० जी० गोस्वामी : क्वेश्चन ऑफ प्रोमिस्क्युटी इन एन्सेण्ट इण्डिया, कलकत्ता रिव्यू, अगस्त १९३९, पृ० १२७।
५. द्र०—फार्म्स आफ मैरेज इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० १२३-४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के अभाव, धार्मिक कृत्यों या संस्कार के विना सम्पन्न किये गये विवाह, पति-पत्नी में सम्बन्ध-विच्छेद की बहुलता, सामुदायिक-विवाह, नैतिक शिथिलता, दाम्पत्य-मर्यादा के अतिक्रमण एवं विवाह के पूर्व मैथुन को ही अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था (प्रोमिस्क्युटी) मान बैठे हैं, जो कि नितान्त असङ्गत है।[१] इन लेखकों के द्वारा अपने मत के समर्थन में प्रदत्त सभी तथ्यों का सूक्ष्म विवेचन करते हुए वेस्टरमार्क ने बतलाया है कि ये तथ्य वस्तुतः यह नहीं प्रमाणित कर पाते हैं कि प्राचीन समाज में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था (प्रोमिस्क्युटी) वास्तव में विद्यमान थी।[२] वेस्टरमार्क (हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज, खण्ड १, पृ० १३३) के निष्कर्ष को डॉ० राजबली पाण्डेय ने इन शब्दों में प्रस्तुत किया है—"निश्चय ही यह असंभव नहीं है कि कतिपय जनों में स्त्री और पुरुष के बीच यौन-सम्बन्ध पूर्णतः स्वेच्छाचारी रहे हों, किन्तु इस धारणा के पक्ष में कोई भी तर्कसंगत प्रमाण नहीं है कि मानव इतिहास के किसी युग में स्वेच्छाचारी यौन-सम्बन्ध सामान्य रूप से प्रचलित था"।[३] रौबर्ट लुई के अनुसार विवाह-बन्धन की शिथिलता को ही 'प्रोमिस्क्युटी' नहीं कहा जाता, अपितु यह एक ऐसी काल्पनिक अवस्था है जिसमें समाज अपने सदस्यों के यौन सम्बन्धों को नियमित करने में कोई रुचि न रखता हो। यदि यौन-सम्बन्धों के लिए निकटाभिगमन के प्रतिबन्ध शिथिल होते और माता-पिता अपनी सन्तानों के साथ भी यौन-सम्बन्ध स्थापित करते तो उस अवस्था को 'प्रोमिस्क्युटी' कहा जाता, किन्तु इतनी छूट न तो कहीं देखी जाती है और न साहित्य के इतिहास में ही इसका कोई प्रमाण उपलब्ध है।[४] इस विषय में उपलब्ध समस्त तथ्यों का विवेचन करके रौबर्ट लुई[५] तथा वेस्टरमार्क[६] जैसे पाश्चात्य तथा प्रो० के० जो० गोस्वामी[७] जैसे भारतीय विद्वान् भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव समाज में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था कभी भी नहीं रही। वस्तुस्थिति यह है कि अनियमित यौन-सम्बन्धों की

---

१. फ्यूचर आफ मैरेज इन वेस्टर्न सिविलाइजेशन, पृ० १६।
२. हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज, भाग १, पृ० १३३।
३. हिन्दू संस्कार, पृ० २०२।
४. रौबर्ट एच० लुई : एन इन्ट्रोडक्शन टु कल्चरल एन्थ्रोपॉलॉजी, पृ० २३१।
५. वही, पृ० २३१; प्रिमिटिव सोसाइटी, पृ० ५०-६।
६. हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज, भाग १ पृ० ११३।
७. क्वेश्चन आफ प्रोमिस्क्युटी इन एन्सेण्ट इण्डिया, कलकत्ता रिव्यू (अगस्त १९३९), पृ० १२८। प्रो० गोस्वामी ने इस प्रसंग में वेस्टरमार्क के इस विचार को सहमति पूर्वक उद्धृत किया है कि वानरों (लंगूरों) एवं वनमानुषों जैसे बड़े स्तनपायी जन्तुओं के समान मनुष्य भी स्वभावतः अनियमित यौन-सम्बन्धों वाले नहीं रहे होंगे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कल्पना करने वाले लेखक अति प्राचीन काल के किसी भी समाज या समुदाय में इसके प्रचलन का कोई भी ठोस प्रमाण नहीं दे पाये हैं। विश्व के किसी भी देश के प्राचीन साहित्य में ऐसा कोई भी असंदिग्ध और अकाट्य प्रमाण नहीं प्राप्त हुआ है जिसके आधार पर आदि काल में विवाह-संस्था या मर्यादित यौन-सम्बन्धों का नितान्त अभाव तथा अनियमित यौन सम्बन्धों की अवस्था का सुनिश्चित अस्तित्व सिद्ध हो सके। अतः जैसा कि प्रो० काणे ने कहा है—'अनियमित यौन सम्बन्धों की अवस्था (प्रोमिस्क्युटी) विषयक मत का अब कोई समादर नहीं रह गया है'।[1] डॉ० राजबली पाण्डेय के अनुसार "यह समझना भ्रम है कि अतिप्राचीन काल में यौन-सम्बन्ध स्वेच्छाचारी तथा पूर्णतः अनियमित था। प्रसिद्ध मानवशास्त्री आदिम मानव सभ्यता विषयक अपने व्यापक तथा गंभीर ज्ञान के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्राचीन काल में भी स्त्री और पुरुष के बीच यौन सम्बन्ध स्वेच्छाचारी नहीं था"।[2] प्रो० कृष्ण गोपाल गोस्वामी जैसे भारतीय विद्वानों के अनुसार भी विवाह-संस्था का अस्तित्व मानव-सभ्यता के आरंभ से ही उसकी प्रत्येक विकासावस्था में रहता रहा है, यह अन्य बात है कि उसमें नैतिक शिथिलता कभी अधिक या कम रही हो।[3] अतः यह मानने में कोई अनुपपत्ति नहीं है कि मानव समाज के शैशव काल से ही विवाह-संस्था का अस्तित्व किसी न किसी रूप में अवश्यमेव रहा है और यौन सम्बन्धों की दृष्टि से मानव समाज नितान्त अमर्यादित कभी भी नहीं रहा है।

(क) प्राचीन भारत में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था का अभाव—

यद्यपि ऋग्वेद से लेकर इतिहास-पुराण पर्यन्त भारतीय संस्कृति के आधारभूत एवं प्रतिबिम्ब स्वरूप समस्त वाङ्मय में कहीं भी आरम्भिक मानव समाज में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था का परिचायक कोई स्पष्ट और अकाट्य प्रमाण नहीं है, तथापि कतिपय पाश्चात्य और उनके दृष्टिकोण से प्रभावित अनेक भारतीय विद्वान् भी यह मान बैठे हैं कि प्राचीन भारत में भी कभी विवाह-बन्धन रहित अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था रही थी। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने कहा है कि "इस देश में भी प्रारम्भ में विवाह-बन्धन रहित समाज था, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता"।[4] किन्तु इन विद्वानों की कल्पना का समर्थन साहित्यिक स्रोतों से नहीं हो पाता।

प्राचीन भारतीय समाज में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था (Promiscuity) विषयक अपनी कल्पना को साहित्यिक स्रोतों से प्रमाणित करने की प्रतिबद्धता से अनेक

---

१ हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग २, खण्ड १, पृ० ४२८।

२ हिन्दू संस्कार, पृ० २०२।

३ क्वेश्चन आफ प्रोमिस्क्युटी इन एन्सेण्ट इण्डिया, कलकत्ता रिव्यू (अगस्त १९३९), पृ० १२८।

४ हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास, पृ० २९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इतिहासकारों ने वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य (विशेषतः महाभारत) के कुछ साक्ष्यों की तत्त्वतः समीक्षा किये बिना उनकी मनमानी व्याख्या करके भ्रान्तिपूर्ण मत उपस्थापित किये हैं। किसी तथ्य की गवेषणा, किसी वाक्य या उद्धरण का तात्पर्य-ज्ञान तथा उसकी समुचित व्याख्या और किसी विचार या मत को प्रामाणिकता प्रदान करने के लिए भारतवर्ष में एक विचार-सरणि प्राचीन आचार्यों ने दी है, जिसे मीमांसा तथा न्याय दर्शनों में देखा जा सकता है। इस सरणि का अनुसरण न करके किसी भी विचार के समर्थन में कोई भी साक्ष्य बिना उसके तात्पर्य ज्ञान के उद्धृत कर देने से वह प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। किन्तु अनियमित यौनसम्बन्धों की अवस्था के पक्षपाती इतिहासकारों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है। पुनश्च इन्होंने प्राचीन साहित्य में प्राप्त निकटाभिगमन (Incest) एवं नैतिक-शिथिलता (Sexual Laxity) को भी अनियमित यौनसम्बन्धों की अवस्था से अभिन्न मान कर व्यामोह उत्पन्न कर दिया है। प्राचीन साहित्यिक स्रोतों का विवेचन करने पर हम पाते हैं कि सुबद्ध तथा सुव्यवस्थित विवाह-संस्था एवं मर्यादित दाम्पत्य जीवन वाले समाज में भी काम-वासना के उफनते आवेग में प्रवाहित चित्तवृत्ति के कारण विवश व्यक्तियों के द्वारा कभी-कभी और कहीं-कहीं निकटाभिगमन एवं नैतिक शिथिलता में संभाव्य व्यभिचार की अपवाद स्वरूप घटनाएँ हो जाती थी। ऐसी घटनाओं के विवाह-संस्था के उदय के पूर्व ही घटित होने और तत्पश्चात् इनके प्रतिबन्धित हो जाने का कोई संकेत प्राचीन साहित्य में नहीं है। जबकि अनियमित यौन सम्बन्धों की अवस्था का अस्तित्व विवाह संस्था के प्रादुर्भाव के पूर्व ही माना जाता है। अतः निकटाभिगमन एवं नैतिक शिथिलता को अनियमित यौन सम्बन्धों की अवस्था से अभिन्न नहीं माना जा सकता।

प्रस्तुत प्रसंग में हम अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था के प्रमाण रूप में गिनाये जाने वाले कुछ प्रमुख उदाहरणों की समीक्षा करेंगे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सुविकसित विवाह-संस्था वाले समाज की पृष्ठभूमि में से ही कुछ व्यक्तियों के द्वारा दाम्पत्य मर्यादा का अतिक्रमण करके निकटाभिगमन, परस्त्रीगमन, नारी द्वारा परपुरुष-गमन एवं स्त्री-पुरुषों द्वारा विवाह-बन्धन में बंधे बिना काम-वासना की सन्तुष्टि विषयक अन्य जिन उदाहरणों को इतिहासकारों ने पूर्वाग्रहवश अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था के प्रमाण रूप में गिनाया है, वे वस्तुतः अतिचार की छिट-पुट प्रवृत्ति के उदाहरण हैं, जिनकी विस्तृत समीक्षा आगे (सप्तम अध्याय में) की जायेगी।

समस्त विश्व में इतिहास के प्राचीनतम साहित्यिक स्रोत ऋग्वेद में तथा परवर्ती वैदिक साहित्य में भी कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता जिससे कि वैदिक समाज अथवा उससे भी पूर्ववर्ती सुदूर अतीत के मानव समाज में अनियमित यौन-सम्बन्धों की

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह-बन्धन रहित अवस्था का अस्तित्व सूचित होता हो।[1] तथापि डॉ० रामशरण शर्मा जैसे विद्वान् प्राचीन समाज में इस अवस्था के अस्तित्व के अप्रत्यक्ष साक्ष्य वैदिक साहित्य में बतलाते हैं।[2] इसके प्रमाण रूप में उन्होंने प्रजापति का दुहितृगमन प्रसंग, पूषा के लिए माता का दिधिषु और स्वसा का जार जैसे विशेषणों का प्रयोग तथा ऐतरेय ब्राह्मण से मातृगमन एवं भगनीगमन की चर्चा करने वाली गाथा को उदाहरण रूप में उद्धृत किया है।[3] किन्तु ये वस्तुतः निकटाभिगमन के उदाहरण हैं।[4] डॉ० राजबली पाण्डेय ने इस प्रसङ्ग में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि "ऋ-वेद कालीन समाज में परिवार संस्था दृढतापूर्वक प्रतिष्ठित हो चुकी थी, जो यौन-सम्बन्धों की प्राग्वैवाहिक स्थिति में सम्भव नहीं थी। वैदिक साहित्य में यौन-सम्बन्धों की स्वेच्छाचारिता का कोई भी उदाहरण नहीं मिलता"।[5] डॉ० भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार अति प्राचीन काल में सम्भाव्य विवाह-बन्धन रहित अवस्था अथवा शिथिल दाम्पत्य-सम्बन्ध वाली सामाजिक अवस्था विषयक कोई भी बात कथा-मात्र को भी ऋग्वैदिक ऋषियों के समय में स्मृति-शेष नहीं थी।[6] प्रो० काणे का भी यही निष्कर्ष है कि न केवल ऋग्वेद, अपितु सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में अनियमित यौन-सम्बन्धों वाले समाज का कोई संकेत नहीं मिलता।[7] वस्तुतः सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में प्राग्विवाह-स्थिति में संभाव्य स्वैराचार या अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था का परिचायक कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है और न ही ऐसा कोई उल्लेख है जिसके आधार पर सुदूर अतीत में भी मानव समाज में ऐसी अवस्था के अस्तित्व का संकेत मिलता हो।

रामायण में मानव समाज में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था का कोई साक्ष्य नहीं है। यद्यपि इसमें अप्सराओं के अनियमित यौन-सम्बन्धों का उल्लेख है। रावण रम्भा से कहता है कि अप्सराओं का कोई एक पति नहीं होता और न देवलोक के निवासी किसी एक स्त्री का परिग्रह करते हैं।[8] महाभारत (वनपर्व ४६।४२) में भी अप्सराओं को अनावृत (उन्मुक्त यौन-सम्बन्ध वाली) बतलाया गया है। महाभारत और पुराणों में अप्सराओं के अनेक पुरुषों के साथ यौन-सम्बन्धों के उल्लेख हैं।[9]

---

१ द्र०—दास, ए० सी० : ऋग्वैदिक कल्चर, पृ० १००; शास्त्री, शिवराज : ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध, पृ० ३२९।

२ पर्सपेक्टिव्स् इन सोसल हिष्ट्री आफ अर्ली इण्डिया, पृ० ३५। ३ वही, पृ० ३६।

४ इनकी समीक्षा आगे सप्तम अध्याय में 'निकटाभिगमन' शीर्षक में देखें।

५ हिन्दू संस्कार पृ० २०१। ६ वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० ५०।

७ हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग २, खण्ड १, पृ० ४२७।

८ देवलोकस्थितिरियं सुराणां शाश्वती मता।
पतिरप्सरसां नास्ति न चैकस्त्रीपरिग्रहः॥ रामा० ७।२६।३९।

९ इस विषय में विशेष विवरण अगले अध्याय में देखें।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किन्तु अप्सराएँ अष्ट देवयोनियों में से अन्यतम हैं,[1] वे मूलत: देवलोक की रहने वाली हैं तथा जन्म और कर्म (आकाशगमन आदि) की दृष्टि से भी वे अतिमानवीय धरातल की हैं। भले ही उनके अस्थायी यौन-सम्बन्ध मनुष्यों के साथ भी हुए हैं, किन्तु उन्हें कभी भी मानुषी नहीं माना गया है। पुनश्च वे स्वर्वेश्या (स्वर्गलोक की वेश्या) हैं।[2] उनसे विवाहिता नारी की भाँति एक पुरुष के साथ नियमित यौन-सम्बन्ध की अपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः अप्सराओं विषयक ऐसे उल्लेखों के आधार पर प्राचीन भारतीय मानव समाज में अनियमित यौन-सम्बन्धों के अस्तित्व को सिद्ध नहीं किया जा सकता।

पं० शान्तिकुमार नानूराम व्यास ने रामायण काल में वानरों में यौन-सम्बन्धों की अनियमितता के एक उदाहरण के रूप में केशरी नामक वानर की पत्नी अञ्जना के गर्भ से वायु द्वारा हनुमान् के जन्म का वृत्तान्त (रामा० ४।६६।८-२० से) उद्धृत किया है।[3] किन्तु यह एक वानरी के साथ देवता वायु के सम्बन्ध का उदाहरण है, न कि वानर-समाज का। जब कामार्त वायु ने केशरी नामक वानर की पत्नी अञ्जना का आलिङ्गन किया तो उसने कहा था कि यह कौन है जो मेरे एकपत्नीव्रत को नष्ट करना चाहता है ? इस पर वायु ने कहा था कि मैं तुम्हें हिंसित (धर्षित) नहीं करूँगा, मैंने केवल मनसा (= मानसिक संकल्प से) तुम्हारे साथ समागम किया है।[4] यहाँ अञ्जना द्वारा स्वयं को एकपत्नीव्रता (पतिव्रता) बतलाया जाना स्वयं सिद्ध करता है कि वानरों में भी दाम्पत्य मर्यादा का पालन होता था। अत: रामायण काल में भी न वानरों में और न मानव समाज में ही अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था थी।

भारत में सुदूर अतीत में अनियमित यौन-सम्बन्धों या स्वैराचार की अवस्था का अस्तित्व मानने वाले इतिहासकारों ने महाभारत में पाण्डु के द्वारा प्राचीन काल की नारियों को कामचारिणी बतलाये जाने तथा उसकी पुष्टि हेतु गोधर्म एवं उत्तरकुरु की चर्चा के साथ ही श्वेतकेतु के उपाख्यान की चर्चा को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है।[5] दीर्घतमा के स्नुषागमन प्रसङ्ग[6], माहिष्मती की नारियों की स्वेच्छाचारिता[7] तथा कुछ अन्य दृष्टान्तों को भी इसी प्रसङ्ग में उद्धृत किया गया है। इन प्रसङ्गों की समीक्षा करने पर हम पाते हैं कि सन्तानोत्पादन में अक्षम पाण्डु ने अपनी पत्नी कुन्ती को नियोग द्वारा परपुरुष से सन्तानोत्पादन हेतु प्रलोभित करने के लिए ही यह कहा था कि प्राचीन काल में स्त्रियाँ अनावृत (अर्थात् अनियन्त्रित) थीं, वे कामाचारविहारिणी एवं स्वच्छन्द थीं। उस काल में अपने पति के अतिक्रमण में

---

१ अमर० १।१।११। २ अमर० १।१।५२; अग्नि ३६०।१०।

३ रामायण कालीन समाज, पृ० ६१। ४ रामा० ४।६६।१४-८।

५ वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० ५०।

६ वही, पृ० ५०, पा० टि० १। ७ वही, पृ० ५२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कोई अधर्म नहीं माना जाता था, अपितु यही प्राचीन काल का धर्म था। पशुओं के द्वारा इस पौराणिक धर्म का पालन अद्यावधि किया जाता है। महर्षियों ने भी इस धर्म को आदर दिया है। उत्तरकुरुओं में भी इस धर्म का पालन अद्यावधि होता है। यह सनातन धर्म स्त्रियों के लिए अधिक अनुकूल है।[1] इस तरह के वचनों से भी नियोग द्वारा सन्तानोत्पादन के लिए कुन्ती के तत्पर न होने पर उसे प्रलोभित करने के लिए पाण्डु ने श्वेतकेतु-उपाख्यान की चर्चा की थी। श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक के समक्ष ही एक ब्राह्मण को अपनी माता का हाथ पकड़ कर ले जाते देखकर क्रुद्ध हो उठा था तो पिता ने उसे शान्त करते हुए कहा था कि यह तो सनातन धर्म है, इस पृथिवी में सभी वर्णों की स्त्रियाँ अनावृत अर्थात् स्वच्छन्द-कामाचार वाली हैं। जैसी यौनाचार की स्वच्छन्दता गौ आदि पशुओं में है तद्वत् प्रवृत्ति प्रजाओं में भी अपने-अपने वर्ण के अन्तर्गत लक्षित होती है।[2] यहाँ यह विचारणीय है कि क्या उद्दालक जैसा ऋषि वास्तव में ऐसा कह सकता था? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उद्दालक और श्वेतकेतु का उक्त वार्तालाप वास्तविक था तथा जनश्रुति से इसके वक्ता पाण्डु या लेखक-कवि को यह वस्तुतः ज्ञात था। यह विशुद्ध रूप से कवि-कल्पित भी हो सकता है। यदि यह वास्तविक होता तो इसके महत्त्व को देखते हुए महाभारत के दूसरे स्थलों में, पुराणों में, रामायण में तथा इसके भी पूर्व वैदिक वाङ्मय में कहीं न कहीं इसकी चर्चा अवश्य होती, क्योंकि भारतीय साहित्य में महत्त्वपूर्ण तथ्यों के अनेकत्र उल्लेख की प्रवृत्ति पायी जाती है। डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ने माना है कि सम्भवतः ऐसी परम्पराओं का ज्ञान ऋग्वेद के ऋषियों को भी रहा होगा, किन्तु वर्ण्य विषय की प्रकृति या प्रसङ्ग के अनुकूल न होने से उसमें उनका

---

१ अनावृताः किल पुरा स्त्रिय आसन् वरानने।
कामाचारविहारिण्यः स्वतन्त्राश्चारुलोचने ॥ ४ ॥
तासां व्युच्चरमाणानां कौमारात् सुभगे पतिम्।
नाधर्मोऽभूद् वरारोहे स हि धर्मः पुराभवत् ॥ ५ ॥
तं चैव धर्मं पौराणं तिर्यग्योनिगताः प्रजाः।
अद्याप्यनुविधीयन्ते कामद्वेषविवर्जिताः ॥ ६ ॥
पुराणदृष्टो धर्मोऽयं पूज्यते च महर्षिभिः।
उत्तरेषु च रम्भोरू कुरुष्वद्यापि वर्तते।
स्त्रीणामनुग्रहकरः स हि धर्मः सनातनः ॥ आदिपर्व ११३।४-७ (पूना सं०)।

२ मा तात कोपं कार्षीस्त्वमेष धर्मः सनातनः।
अनावृता हि सर्वेषां वर्णानामङ्गना भुवि ॥ १३ ॥
यथा गावः स्थितास्तात स्वे-स्वे वर्णे तथा प्रजाः ॥ आदिपर्व ११३।१३-४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समावेश उन्होंने नहीं किया होगा।[1] किन्तु यह डॉ० उपाध्याय की कल्पना मात्र है। वस्तुस्थिति यह है कि महाभारत में पाण्डु ने कुन्ती को मात्र नियोग हेतु प्रलोभित करने के उद्देश्य से ऐसे वचन कहे हैं। अतः यहाँ शाब्दिक अर्थ की अपेक्षा इसी तात्पर्यार्थ की प्रमुखता है और जिस तरह वेद के आपाततः अनर्गल एवं विपरीत प्रतीत होने वाले भावों के समाधान हेतु पूर्वमीमांसा के सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है, तद्वत् यहाँ भी करना चाहिए। इसी तरह जब सूर्य ने कुन्ती से स्त्री-पुरुषों की कामाचार की प्रवृत्ति को लोक का स्वभाव तथा मर्यादित यौन-सम्बन्धों को विकार अर्थात् अस्वाभाविक एवं कृत्रिम बतलाया था[2] तो उनके वचनों का मुख्य तात्पर्य कौमार्य-भङ्ग की आशंका से भयभीत कुन्ती को आश्वस्त करके उसे समागम के लिए प्रलोभित करना मात्र था। अतः ऐसे प्रसङ्गों के शाब्दिक अर्थ को आवश्यकता से अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

पाण्डु ने इस प्रसंग में श्वेतकेतु के उपाख्यान की चर्चा संभवतः इसलिए भी की होगी कि श्वेतकेतु के पिता उद्दालक ने भी अपनी पत्नी में सन्तानोत्पादन हेतु एक शिष्य का नियोग किया था, जिसके फलस्वरूप श्वेतकेतु का जन्म हुआ था।[3] इससे सूचित होता है कि वे सन्तानोत्पादन में अक्षम थे।[4] पति के वृद्ध और अक्षम होने पर उसकी स्वीकृति से परपुरुष के साथ गर्भधारण पर्यन्त रमण के परिणामस्वरूप निर्लज्ज हो जाने पर चञ्चल स्वभाव की स्त्री पुनः इन्द्रिय सुख के लिए स्वेच्छया भी परपुरुष के साथ रमण का साहस कर सकती है और ऐसी स्त्री का पति अपनी नपुंसकता को छिपाने के लिए तथा उसके प्रत्यक्ष दुराचार के दोष को यथासम्भव हलका बनाने के ध्येय से भी सम्पूर्ण समाज की महिलाओं को कामचारिणी बतला सकता है, किन्तु उसकी बात को कोई भी बुद्धिमान् पुरुष न तो विश्वसनीय कहेगा और न प्रामाणिक ही। कदाचित् प्राक्कालीन नारियों में उद्दालक द्वारा सम्भावित कामाचार की आंशिक सत्यता रही भी हो तो भी उसके समानान्तर समाज में उच्च नैतिक आदर्शों का वर्णन भी प्राचीन साहित्य में अनेकत्र है। अपनी माता को परपुरुष के साथ जाते देख कर

१ वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० ५२-३।

२ अनावृताः स्त्रियः सर्वा नराश्च वरवर्णिनि।
स्वभाव एष लोकानां विकारोऽन्य इति स्मृतः॥
वनपर्व (पूना सं०) २९१।१५, (गीता प्रे० सं० ३०७।१५)।

३ उद्दालकः श्वेतकेतुं जनयामास शिष्यतः। शान्तिपर्व ३५।२२ (पूना सं०)।

४ बृहदारण्यकोपनिषत् ६।४।४ (१-२२) में उद्दालक के काम-सम्बन्धी विचारों के आधार पर उन्हें डॉ० चन्द्र चक्रवर्ती जैसे विद्वान् कामविज्ञानी बतलाते हैं (सेक्स लाइफ इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० ११६)। हो सकता है कि पुंस्त्व (सन्तानोत्पादन क्षमता) की अपनी कमी के कारण अन्तर्मुखी होकर उद्दालक ने काम के वैचारिक पक्ष को उजागर करने में अपनी प्रतिभा का प्रयोग किया होगा।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्वेतकेतु ने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की थी उससे यह नितान्त स्पष्ट है कि उस युग में भी किसी नारी का परपुरुष के साथ समागम समाज-सम्मत और सह्य नहीं था। श्वेतकेतु ने भी केवल एक ही दृष्टान्त–अपनी माता का देखा था। यह भी सम्भव है कि उद्दालक ने श्वेतकेतु को शान्त करने के लिए ही ये बातें गढ़ी हों। किन्तु श्वेतकेतु तब भी शान्त नहीं हुआ और उसने तत्क्षण यह व्यवस्था दी कि आज से अपने पति का अतिक्रमण करके परपुरुष-समागम करने वाली नारी को भ्रूणहत्यातुल्य पाप लगेगा तथा विवाहिता पत्नी का अतिक्रमण करने पर पति को भी वही पाप लगेगा।[1] इसी वचन के आधार पर कुछ विद्वानों ने श्वेतकेतु को एक पुरुष और एक नारी के बीच पति और पत्नी के सम्बन्ध की आदर्श दाम्पत्य-मर्यादा का प्रवर्तक बतलाया है।[2] किन्तु यह मत कदापि स्वीकार्य नहीं है। साहित्यिक स्रोतों की दृष्टि से इस तरह के वचन महाभारत के पूर्व वैदिक साहित्य में पर्याप्त मात्रा में देखे जा सकते हैं।[3] धर्मशास्त्रीय व्यवस्था देने वाले प्रमुख ऋषियों में से अधिकांश श्वेतकेतु के पूर्ववर्ती थे। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (१।२।५।४-६) में श्वेतकेतु को पश्चात् कालीन ऋषि बतलाया गया है। महाभारत के श्वेतकेतु के उक्त वचनों की व्याख्या के प्रसंग में नीलकण्ठ ने भी बतलाया है कि श्रुति में भी पुरुष के लिए परदारगमन में प्रत्यवाय एवं नारी के लिए परपुरुषासक्ति में दोष बतलाया गया है।[4] इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि श्वेतकेतु दाम्पत्य मर्यादा का विधान करने वाला प्रथम व्यक्ति कदापि नहीं था, अपितु उसने दाम्पत्य मर्यादा के उल्लंघन में पाप की कल्पना विषयक अपनी विधि को श्रुति (वेद) के आधार पर ही प्रस्तुत किया था।[5]

---

१ व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्या अद्य प्रभृति पातकम् ।।१७।।
भ्रूणहत्यासमं घोरं भविष्यत्यसुखावहम् ।
भार्यां तथा व्युच्चरतः कौमारब्रह्मचारिणीम् ।।१८।।
पतिव्रतामेतदेव भविता पातकं भुवि ।। आदिपर्व ११३।१७-९ (पू० सं०)।

२ द्र०–चटर्जी, हेमन्त : फार्मस् आफ मैरेज इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० १३४।

३ (क) अनृतं वा एषा करोति या पत्युः क्रीता सत्यथान्यैश्चरति।
—मै० सं० १।१०।११।

(ख) वरुण्यं वा एतत् स्त्री करोति यदन्यस्य सत्यन्येन चरति।
—शत० ब्रा० २।५।२।२०

४ यथा स्तेनो यथा भ्रूणहैवमेष भवति योऽयोनौ रेतः सिंचतीत्ययोनौ अदारेषु पुंसां गमनात् प्रत्यवायः श्रुतिसिद्धः तथा अमीषां निष्कृतं जारिणीवेति मन्त्रे जारिण्या निष्कृतेः पीडायाश्च दर्शनात् स्त्रीणामपि परसंगे दोषोऽस्तीत्यत्रोक्तः।
—नीलकण्ठ (महा० नीलकण्ठी सहित १।१२२।१५ पूना से प्रकाशित)।

५ द्र०—तथापि श्रौतार्थस्यैव कयाचिद् भङ्‌ग्या व्यवस्थेयं विहितेति ज्ञेयम्।
—नीलकण्ठ (महा० नीलकण्ठी सहित १।१२१।१५ पूना से प्रकाशित)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यह उल्लेखनीय है कि श्वेतकेतु द्वारा बनायी गयी मर्यादा की चर्चा करते हुए भी पाण्डु ने स्वयं उस व्यवस्था को ताक में रख कर यह कहा है कि ऋतुकाल में पत्नी पति का अतिक्रमण न करे, अन्य कालों में वह स्वच्छन्द है। सत्पुरुषों ने इसे प्राचीन काल से चला आ रहा धर्म बतलाया है।[1] किन्तु प्राचीन काल में भी नारी के स्वच्छन्दाचरण को धर्म कभी नहीं माना गया। यदि इसे धर्म कहा जायेगा तो अधर्म क्या होगा? पुनश्च यदि श्वेतकेतु ने वस्तुतः मर्यादा बना दी थी तो पाण्डु ने उसके अतिक्रमण की प्रेरणा कुन्ती को क्यों दी? अतः पाण्डु की इन उक्तियों का तात्पर्य केवल कुन्ती को मानसिक रूप से नियोग के लिए उद्यत करके परपुरुष से सन्तानोत्पादन में प्रवृत्त करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। अन्यथा ऐसे वचन यदि वस्तुतः धर्मशास्त्रीय दृष्टि से प्रमाण रूप में उद्धरणीय और समाज द्वारा आदर्श रूप में मान्य होते तो पाण्डु जैसे सन्तानोत्पादन में अक्षम व्यक्ति की अपेक्षा अन्य किसी ऋषि के द्वारा कहे गये होते, क्योंकि महाभारत में अन्य कितने ही प्रसङ्गों में कई ऋषि-मुनियों और सत्पुरुषों ने धर्मशास्त्रीय व्यवस्थाएँ दी हैं।

प्राचीन समाज के विषय में पाण्डु और उद्दालक जैसे अक्षम व्यक्तियों के द्वारा कथित वचनों में यदि कथञ्चित् आंशिक सत्यता रही भी हो तो भी इतना तो मान ही लेना चाहिए कि किसी भी देश, काल और समाज में सभी स्त्री-पुरुष नितान्त सच्चरित्र ही नहीं हो सकते। दाम्पत्य-जीवन में मर्यादा-स्थापन के लिए चर्चित श्वेतकेतु स्वयं भी सभी मानों में मर्यादित और निर्दोष नहीं था। शतपथब्राह्मण (११।५।४।१८) से ज्ञात होता है कि मधु-ग्रहण ब्रह्मचारी के लिए वर्जित होते हुए भी वह उसे खाने पर बल देता था। इतना ही नहीं, महाभारत में तो यहाँ तक कहा गया है कि श्वेतकेतु को ब्राह्मणों के साथ कपट व्यवहार के आरोप में उसके पिता ने त्याग दिया था।[2] अतः जो व्यक्ति स्वयं मर्यादित न हो उससे दूसरों के लिए मर्यादा स्थापित करने की आशा कैसे की जा सकती है? इसी प्रसङ्ग में यह उल्लेखनीय है कि द्वारिकानाथ मित्तर के विचार से श्वेतकेतु उपाख्यान में अनार्यों का संकेत है, जिनमें कि सामान्यता नैतिक शिथिलता पायी जाती है।[3] किन्तु उनका यह मत तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि श्वेतकेतु और उसके पिता उद्दालक वैदिक आर्य और ऋषि रहे हैं। उनके द्वारा

---

१ ऋतावृतौ राजपुत्रि स्त्रिया भर्ता यतव्रते।
नातिवर्तव्य इत्येवं धर्मं धर्मविदो विदुः॥
शेषेष्वन्येषु कालेषु स्वातन्त्र्यं स्त्री किलार्हति।
धर्ममेतं जनाः सन्तः पुराणं परिचक्षते॥ आदिपर्व ११३।२५-६ (पू० सं०)

२ ऋषिणोद्दालकेनापि श्वेतकेतुर्महातपाः।
मिथ्या विप्राननुचरन् संत्यक्तो दयितः सुतः॥ शान्तिपर्व (गी०प्रे०) ५७।१०।

३ द्र०—पोजिशन आफ वूमेन इन हिन्दू ला, (१९१३), पृ० २००।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यक्त विचार केवल अपने समाज के विषय में हैं; उनमें अनार्यों के विषय में कोई संकेत नहीं है।

पाण्डु द्वारा अति प्राचीन समाज की स्त्रियों में स्वच्छन्दता और अनियमित यौन-सम्बन्धों के आरोप तथा उसी प्रकरण में उद्दालक के वचनों के उद्धरण का उद्देश्य कुन्ती को नियोग द्वारा परपुरुष से सन्तानोत्पादन में प्रवृत्त करना था, किन्तु तब भी उनके प्रलोभन का जादू कुन्ती के हृदय में सहसा नहीं उतर पाया और उसने तत्काल यही उत्तर दिया कि मैं मन से भी परपुरुष के साथ रमण की कामना नहीं करती।[1] उसने इस प्रसङ्ग में रानी भद्रा का भी उदाहरण दिया था, जिसने अपने मृत पति राजा व्युषिताश्व के शव के साथ लेट कर सात सन्तानों को जन्म दिया था।[2] पाण्डु ने कुन्ती से जो कुछ भी कहा उसका यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता। अपनी पत्नी को परपुरुष से गर्भाधान हेतु प्रेरित करने वाला पति उसके शील-संकोच और कुल मर्यादा के भाव को भुलाने के उद्देश्य से यदि भूतकाल की नारियों को स्वैरिणी बतलाये तो एतावन्मात्र से इसे ऐतिहासिक सत्य नहीं माना जा सकता। वस्तुतः उपर्युक्त प्रसंगों में तथ्यों की वास्तविकता की अपेक्षा कवि-कल्पना का पुट ही अधिक प्रतीत होता है। उक्त पंक्तियों में कवि ने पाण्डु के काल से भी हजारों वर्ष पूर्व की सामाजिक स्थिति की चर्चा अपनी कल्पना से की है। उसने प्राचीनतम-समाज में भी विवाह संस्था का नितान्त अभाव न बतला कर केवल स्त्रियों की स्वच्छन्दचारिता की चर्चा की है। ऐसा अनियमित यौन-सम्बन्धों वाले समाज में ही नहीं, अपितु दाम्पत्य मर्यादा में शिथिलता की स्थिति में भी सम्भव है। अतः ऐसी स्थिति को विवाह-संस्था के नितान्त अभाव का सूचक नहीं माना जा सकता।

पाण्डु तथा उद्दालक के द्वारा पशुओं की कामाचार की प्रवृत्ति का प्राचीन मानव समाज में आरोप भी उचित नहीं है। मैथुन में गम्यागम्य का विचार न करने की पशु-प्रवृत्ति को पुराणों में गोधर्म की संज्ञा दी गयी है।[3] प्राचीन काल में भी मानव-समाज में गोधर्म की प्रवृत्ति को सहन नहीं किया जाता था। इस विषय में एकमात्र दृष्टान्त दीर्घतमा का है, जिसने सुरभि के पुत्र वृषभ से गोधर्म की शिक्षा ग्रहण करके औतथ्य की पत्नी, जो उसकी स्नुषा (पुत्रवधू) थी, के साथ बलात्कार की चेष्टा की, जिसे शरद्वान् सहन नहीं कर सका। उसने दीर्घतमा को दुराचारी बतलाते हुए गङ्गा में फेंक दिया था।[4] इस वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गम्यागम्य के विचार से रहित प्राग्विवाहस्थिति में सम्भाव्य अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था भारतीय

१ न ह्यहं मनसाप्यन्यं गच्छेयं त्वदृते नरम् ॥ आदिपर्व १२०।५।

२ आदिपर्व १२०।३६-७।

३ ब्रह्माण्ड ३।७४।५४-५; वायु उ० ३७।५४-५; मत्स्य ४८।४९-५०।

४ ब्रह्माण्ड ३।७४।५७-६४; वायु उ० ३७।५७-६३; मत्स्य ४८।५२-८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समाज में कभी भी नहीं थी। महाभारत के अनुसार दीर्घतमा द्वारा गोधर्म का आचरण किये जाने पर उसकी पत्नी ने रुष्ट होकर उसका भरण-पोषण न करने की धमकी दी थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस काल में भी नारी को पति का पर-नारी-सेवन सह्य नहीं था। उधर पत्नी की फटकार से क्षुब्ध दीर्घतमा ने भी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए यह कहा था कि 'अब से कोई भी स्त्री कभी भी एक से अधिक पति नहीं रख सकेगी। पति के जीवित रहते या मृत्यु के बाद भी जो नारी दूसरे पुरुष को ग्रहण करेगी वह समाज द्वारा निन्दित होगी'।[1] इस वचन के आधार पर दीर्घतमा को स्वैराचार की प्रवृत्ति को नियन्त्रित करने वाला या दाम्पत्य मर्यादा की स्थापना करने वाला मान लेना भी उचित नहीं है। वस्तुतः दीर्घतमा के मुख से कहलाये गये इन वचनों का फलितार्थ पूर्वतः स्थापित दाम्पत्य-मर्यादा के अतिक्रमण की प्रवृत्ति को नियन्त्रित करना या उस दुष्प्रवृत्ति की निन्दा करना मात्र है।

पाण्डु के द्वारा उत्तरकुरु की स्त्रियों में स्वैराचार का जो उल्लेख किया गया है,[2] उसे भी सर्वथा सत्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि महाभारत एवं पुराणों में कुछ साक्ष्य इसके विरोध में भी प्राप्त होते हैं। पुराणों में स्पष्टतः कहा गया है कि उत्तरकुरु के लोग पराई स्त्रियों का सेवन नहीं करते।[3] स्वयं महाभारत में भी यह वर्णन है कि उत्तरकुरु में मिथुनों की उत्पत्ति होती है, जो चकवा-चकवी की तरह एक दूसरे पर अनुरक्त रहते हैं और ग्यारह हजार वर्ष की दीर्घ आयु तक जीवित रहते हैं तथा एक-दूसरे को कभी नहीं छोड़ते।[4] पुराणों में भी उन मिथुनों को चक्रवाक-युगलों की तरह परस्पर अनुरक्त बतलाया गया है।[5] अतः ऐसी स्थिति में वहाँ स्वैराचार का अस्तित्व कैसे माना जा सकता है? पुनश्च प्राचीन साहित्य में उत्तरकुरु विषयक वर्णन अतिमानवीय धरातल के एवं अतिरञ्जनापूर्ण हैं। प्रोफेसर काणे[6] एवं अल्टेकर[7] सदृश विद्वान् उत्तरकुरु के उपर्युक्त स्वैराचार विषयक वर्णन को वास्तविक नहीं, अपितु 'मिथिकल' मानते हैं। उत्तरकुरु के अतिमानवीय भूमि होने के अनेक साक्ष्य

---

१ आदिपर्व १०४।३४-६ (पू० सं०); द्र०—सुखमय भट्टाचार्य—महाभारतकालीन समाज, पृ० ४।

२ आदिपर्व ११३।७ (पू० सं०)। महाभारत का इसी तरह का एक अन्य उदाहरण, डा० भगवतशरण उपाध्याय ने 'वूमेन इन ऋग्वेद' (पृ० ५२) में उद्धृत किया है—यत्र नार्यः कामचरा भवन्ति। महा० १२।१०२।२६।

३ ब्रह्माण्ड २।१५।८०; लिङ्ग पू० ५२।२१; वायु पू० ४५।२०।

४ भीष्म पर्व ७।८-११।

५ वायु पू० ४५।१६; मार्क० ५९।२१; लिङ्ग पू० ५२।२०।

६ हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग २, खण्ड १, पृ० ४२८।

७ पोजिशन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० २९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राचीन साहित्य में प्राप्त होते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण (८।२३) में वसिष्ठ सत्यहव्य ने अत्यराति जानन्तपि से कहा है कि उत्तरकुरु को जीतने में कोई भी मनुष्य समर्थ नहीं हो पाया है। दिग्विजय यात्रा के क्रम में जब अर्जुन उत्तरकुरु की सीमा में पहुँचे तो वहाँ की पुरी के द्वारपालों ने उसे मनुष्य के लिए दुष्प्रवेश्य बतलाया[1] और कहा कि वहाँ पहुँचने पर भी मनुष्य अपने चर्म-चक्षुओं से कुछ नहीं देख सकता।[2] पुनश्च पुराणों में बतलाया गया है कि उत्तरकुरु में धर्माधर्म का कोई भी विचार नहीं है।[3] अतः उत्तरकुरु जैसी अतिमानवीय भूमि विषयक वचनों के आधार पर सामान्य धरती के मनुष्यों के विषय में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। इस प्रकार पाण्डु तथा उद्दालक के उपर्युक्त वचनों की समीक्षा से यही निष्कर्ष निकलता है कि उनके आधार पर प्राचीन समाज में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था या विवाह-बन्धन रहित स्वैराचार की अवस्था कथमपि सिद्ध नहीं होती।[4]

अब हम प्राचीन भारत में स्वैराचार या अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था के प्रमाण रूप में उद्धृत अन्य दृष्टान्तों की समीक्षा करेंगे। महाभारत के सभापर्व में माहिष्मती नगरी की नारियों की स्वच्छन्दता के एक उल्लेख को अनियमित यौन सम्बन्धों का उदाहरण माना गया है, जो कि अनुचित है, क्योंकि माहिष्मती की नारियाँ पहले से स्वच्छन्द नहीं थीं, अपितु वहाँ के राजा नील की कन्या को पत्नी रूप में प्राप्त करने से प्रसन्न विप्रवेशधारी अग्निदेव ने उन्हें स्वच्छन्द रहने का वर दिया था।[5] माहिष्मती प्राचीन भारत की एक विख्यात नगरी थी। प्राचीन साहित्य में इसका उल्लेख अनेकत्र है, किन्तु वहाँ की नारियों की स्वच्छन्दता को चर्चा अन्यत्र कहीं भी नहीं है। अतः अग्नि के विप्रवेश धारण कर राजकन्या से रमण और अन्त में विवाह करने की अतिमानवीय स्तर की घटना से सम्बद्ध होने से यह विवरण भी पूर्णतः यथार्थ नहीं माना जा सकता। डॉ० अल्टेकर ने भी यह माना है कि सहदेव की दिग्विजय यात्रा में स्वल्प काल में देखा गया होने के कारण माहिष्मती की नारियों के स्वैराचार का वर्णन पूर्णतः विश्वसनीय नहीं हो सकता[6]।

---

१ इदं पुरं यः प्रविशेद् ध्रुवं न स भवेन्नरः। सभापर्व २८।१०। द्र०—अर्जुन का कथन—न प्रवेक्ष्यामि वो देशं विरुद्धं यदि मानुषैः। सभापर्व २८।१५।

२ प्रविष्टोऽपि हि कौन्तेय नेह द्रक्ष्यसि किञ्चन।
न हि मानुषदेहेन शक्यमत्राभिवीक्षितुम् ॥ सभापर्व २८।१२।

३ न तत्र विद्यते धर्मो नाधर्मः संप्रवर्तते ॥ वायु पु० ४५।४८।

४ द्र०—हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग २, खण्ड १, पृ० ४२८; हिन्दू किनशिप, पृ० ५३ (१९४७); फॉर्मस् ऑफ मैरेज इन एन्सेण्ड इण्डिया, पृ० १३६।

५ सभा पर्व (गी० प्रे० सं०) ३१।३०-८; (पूना सं० २८।१६-२४)।

६ पोजिशन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० २९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महाभारत में उत्सवसङ्केत संज्ञक सात पर्वतीय गणों (गणराज्यों) में अर्जुन की विजय का उल्लेख है ।[१] उन गणों को रघु ने भी पराजित किया था ।[२] नीलकण्ठ के अनुसार उत्सवसङ्केत का तात्पर्य है—स्त्री-पुरुष की परस्पर प्रीति से निष्पन्न मिलन । इन गणों में दाम्पत्य-व्यवस्था नहीं है ।[३] इन वचनों के आधार पर कुछ विद्वानों ने उन गणों में विवाह-संस्था का अभाव बतलाया है । दाम्पत्य-व्यवस्था का तात्पर्य दाम्पत्य मर्यादा ही होना चाहिए । दाम्पत्य मर्यादा में शिथिलता को दाम्पत्य व्यवस्था का अभाव कहा जा सकता है, विवाह-संस्था का अभाव नहीं । महाभारत के लेखक का उक्त विषय में मौन रहना तथा अन्यत्र भी ऐसी चर्चा का अभाव यह सूचित करता है कि उत्सवसङ्केत संज्ञक गणों में विवाह संस्था का नितान्त अभाव नहीं था, अन्यथा महाभारतकार ने उसकी चर्चा स्पष्ट शब्दों में की होती । पुनश्च नीलकण्ठ की व्याख्या महाभारत की रचना के लगभग दो हजार वर्ष बाद की होने से प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित नहीं, अपितु 'उत्सव-सङ्केत' शब्द के व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ के बल पर की गयी कल्पना मात्र पर आधारित प्रतीत होती हैं । अतः उसे प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता और उसके आधार पर उक्त गणों में विवाह-संस्था का नितान्त अभाव भी नहीं सिद्ध किया जा सकता ।

चारित्रिक शिथिलता के वर्णनों के आधार पर किसी देश या काल के समाज विशेष में विवाह-संस्था के अभाव की कल्पना नहीं की जा सकती । उदाहरणार्थ बौधायन धर्मसूत्र (१।१।२।१४) में अवन्ती, अङ्ग, मगध, सौराष्ट्र, दक्षिणापथ उपावृत्, सिन्धु (सिन्ध) तथा सौवीर देशों के निवासियों को 'सङ्कीर्णयोनि' बतलाया गया है, जिसका तात्पर्य स्पष्ट करते हुए गोविन्दस्वामी ने लिखा है कि उक्त देशों में स्त्रियों में व्यवस्था नहीं है ।[५] इससे केवल इतना प्रकट होता है कि इन देशों में दाम्पत्य मर्यादा का कदाचित् कठोरता से पालन नहीं होता रहा होगा । इसी तरह महाभारत में मद्र, वाहीक तथा आरट्ट देश की महिलाओं की स्वच्छन्दता के उल्लेख के आधार पर भी वहाँ विवाह-संस्था का अभाव नहीं बतलाया जा सकता । कर्ण ने शल्य के आक्षेप के

१ गणानुत्सवसङ्केतानजयत् सप्त पाण्डवः । सभापर्व (गी० प्रे०) २७।१६ ।

२ शरैरुत्सवसङ्केतान् स कृत्वा विरतोत्सवान् । रघु० ४।७८ ।

३ उत्सवसङ्केतं स्त्रीपुंसयोः परस्परप्रीतिरेव सङ्केतं न तु दाम्पत्यव्यवस्था । —नीलकण्ठ ।

४ सेवस लाइफ इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० ७० ।

५ स्त्रीषु व्यवस्था नास्तीति यावत् । बौ० ध० सू० १।१।२।१४ पर गोविन्द स्वामिकृत विवरण ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रसंग में कहा है कि मद्र देश की नारियाँ स्वेच्छानुसार पुरुषों से सम्पर्क करती हैं,[१] मद्यपान से बेसुध होकर वस्त्र उतार कर नग्न-नृत्य करती हैं तथा मैथुन के विषय में वे असंयत और स्वेच्छाचारिणी हैं।[२] वे समस्त स्त्री-समुदाय की मल-स्वरूप हैं।[३] कर्ण ने वाहीक देश की नारियों को नंगी होकर नाचने वाली[४] स्वच्छन्द एवं काम-चारिणी[५] तथा दासों के साथ रमण करने वाली[६] बतलाया है। कर्ण ने यह भी कहा है कि दस्युओं ने आरट्ट देश की एक सती (पतिव्रता) स्त्री का हरण करके उसके साथ दुराचार किया तो उसने उन्हें शाप दिया कि उनके कुल की स्त्रियाँ बन्धकी (व्यभि-चारिणी या वेश्या) हुआ करेंगी।[७] यहाँ हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि कर्ण ने शल्य के प्रति विद्वेष की भावना से प्रेरित होकर इन देशों की सभी नारियों पर दोष लगाया है, जो कि विश्वसनीय नहीं है। किसी भी समाज में सभी नारियाँ दुश्चरित्र नहीं हो सकती। कर्ण के आक्षेपों का उत्तर देते हुए स्वयं शल्य ने कहा है कि सच्चरित्र नारियाँ सर्वत्र होती हैं।[८] इस तरह के वर्णन से यही प्रकट होता है कि मद्र, वाहीक एवं आरट्ट देशों में स्त्रियों में दाम्पत्य-मर्यादा के अतिक्रमण की प्रवृत्ति थी, किन्तु वहाँ विवाह-संस्था का अभाव या अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था में सम्भाव्य नितान्त स्वैराचार की स्थिति कदापि नहीं थी। इस प्रकार महाभारत में कोई भी ऐसा प्रसंग नहीं है जिसके आधार पर प्राचीन समाज में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था को सिद्ध किया जा सके। डा० चक्रवर्ती ने आभीर, अन्धक और सात्वतों के विषय में छिटपुट नैतिक शिथिलता के उदाहरणों के आधार पर उन जातियों में अनियमित यौन-सम्बन्धों (सेक्सुअल प्रोमिस्क्युटी) के प्रचलन की कल्पना की है।[९] किन्तु उक्त जातियों में विवाह-संस्था का नितान्त अभाव बतलाने वाला कोई भी दृष्टान्त उपलब्ध नहीं होता। उनमें नैतिक शिथिलता का तात्पर्य यह नहीं कि उनमें विवाह-संस्था का प्रचलन नहीं था।

मनु के द्वारा स्त्रियों की चञ्चलता तथा स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति को द्योतित करने के लिए उद्धृत एक वैदिक मन्त्र (यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता—इत्यादि। —मनु ९।२०) को स्व० के० पी० जायसवाल ने प्राचीन भारत में स्वैराचार (अनि-यमित यौन-सम्बन्धों) की अवस्था का उदाहरण माना है।[१०] मेधातिथि के मनु-भाष्य से स्पष्ट होता है कि मातृकर्तृक परपुरुष-स्पृहा रूप दोष के पिता के वीर्य के प्रभाव से

१. पुम्भिर्विमिश्रा नार्यश्च ज्ञाताज्ञाताः स्वयेच्छया। कर्णपर्व ४०।२६ (गी० प्रे०)।
२. वही ४०।३५-६। ३. वही ४५।२३। ४. वही ४४।१२।
५. अनावृता मैथुने ताः कामचाराश्च सर्वशः। वही ४४।१३।
६. वही ४४।३४, ४६। ७. वही ४५।११-३। ८. वही, ४५।४२।
९. सेक्स लाइफ इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० ११५। १०. के० पी० जायसवाल: मनु एण्ड याज्ञवल्क्य, टैगोर ला लेक्चर्स, १२, सेक्शन १, पाद टिप्पणी।

२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दूर होने की आशंसा वाले इस मन्त्र का जप पुत्र के द्वारा (आप० श्रौ० सू० १।९९ के अनुसार) चातुर्मास्य यज्ञों में तथा (शांखा० गृ० सू० ३।१३।५ के अनुसार) श्राद्ध में पाद्यानुमन्त्रण में किया जाता है। इस मन्त्र की शब्दावली से स्पष्ट होता है कि इसमें पातिव्रत्य छोड़ कर परपुरुष पर मोहित होने की सम्भावना केवल एक स्त्री के विषय में व्यक्त की गयी है। अतः इसके आधार पर प्राचीन भारतीय समाज में स्वैराचार या अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था की कल्पना करना नितान्त अनुचित है।

ऋग्वेद (१०।९५), शतपथब्राह्मण (११।५।१।१) तथा इतिहास-पुराणादि साहित्य में वर्णित पुरूरवा तथा उर्वशी के अस्थायी यौन-सम्बन्ध को भी कुछ लेखकों ने अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था के उदाहरणों के साथ जोड़ा है। वस्तुतः उर्वशी ने समय-पूर्वक (अर्थात् शर्त बाँध कर) पुरूरवा के साथ रहना स्वीकार किया था और उसके खण्डित होने पर वह उसे छोड़ कर चली गयी थी।[1] इसे अस्थायी विवाह या समयपूर्वक विवाह का ही दृष्टान्त कह सकते हैं। प्राचीन साहित्य में इस तरह शर्त बाँध कर होने वाले विवाहों के अनेक उदाहरण हैं, जिनमें नागराज वासुकि की बहिन के साथ ऋषि जरत्कारु,[2] देवहूति के साथ प्रजापति कर्दम,[3] मण्डूकराज की कन्या के साथ राजा परीक्षित्,[4] गङ्गा के साथ शान्तनु,[5] कुणिगर्ग की कन्या के साथ शृङ्गवान्[6] के विवाहों का उल्लेख किया जा सकता है। इन विवाहों में प्रायः 'समय' (शर्त) के पूर्ण हो जाने या खण्डित हो जाने पर पति या पत्नी में से कोई भी एक दूसरे को छोड़ देता था। किन्तु उनके ऐसे आचरण के कारण इन विवाहों को अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था से नहीं जोड़ा जा सकता। इन दृष्टान्तों की समीक्षा के अन्त में इस बात की भी संक्षेप में चर्चा कर देनी चाहिए कि महाभारत के उद्योगपर्व (अध्याय ११४-११९) में ययाति की माधवी नामक कन्या के क्रमशः चार पुरुषों के साथ सहवास (जिसे डा० वनमाला भवालकर ने 'कान्टेक्ट बेसिस' पर किया गया विवाह बतला कर उपर्युक्त समयपूर्वक सम्पन्न विवाहों की श्रेणी में रखा है[7]) को भी अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था के तथाकथित दृष्टान्तों के साथ नहीं जोड़ा जा सकता।

इस प्रकार हमने ऊपर इस प्रकरण में जितने दृष्टान्तों का विवेचन किया है, वे सभी प्रायः सुविकसित विवाह-संस्था वाले समाज में से कुछ व्यक्तियों के द्वारा दाम्पत्य मर्यादा के उल्लङ्घन पूर्वक अथवा विवाह किये विना अनैतिक ढंग से काम-वासना की सन्तुष्टि के उदाहरण मात्र हैं। प्राचीन समाज में भी ऐसे अनैतिक यौन-सम्बन्ध एक स्थायी प्रवृत्ति के रूप में या नियमतः सर्वत्र नहीं दृष्टिगत होते, अपितु

---

१. विष्णु ४।६।४१-५९; भाग० ९।१४।२०-३१। २. आदिपर्व १३।२८; ४७।८-६, १५-४३। ३. भाग० ३।२२।१९। ४. वनपर्व १९२।११-२। ५. आदिपर्व ९८।३-४। ६. शल्यपर्व ५२।१५-६। ७. महाभारत में नारी, पृ० १६२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कदाचित् और कभी-कभी वासना के प्रवाह में निमग्न मूढ व्यक्तियों की अस्थायी प्रवृत्ति के रूप में ही दृष्टिगोचर होते हैं। इनके आधार पर प्राचीन समाज में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था की कल्पना करना ही असंगत है। इन सभी दृष्टान्तों में महाभारत का श्वेतकेतु उपाख्यान बहुचर्चित रहा है। अनेक प्रबुद्ध इतिहासकार इसे प्रामाणिक या विश्वसनीय नहीं मानते। प्राचीन भारत में कामाचार या अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था रही होती तो महाभारत के पूर्वकालिक साहित्य—रामायण एवं उसके भी पूर्व वैदिक साहित्य में इसकी चर्चा हो सकती थी। वहाँ ऐसी चर्चा का अभाव महाभारत के उक्त वर्णन की अविश्वसनीयता का ही द्योतक है। डा० अविनाशचन्द्र दास के अनुसार यदि इसे विश्वसनीय भी माना जाय तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि यह वर्णन ऋग्वेद-काल की अपेक्षा अति प्राचीन समाज की अवस्था विषयक है।[1] प्रो० अल्टेकर के अनुसार भी महाभारत में प्राप्त ये सङ्केत प्राग्वैदिक काल के हो सकते हैं, क्योंकि ऋग्वेद में हमें विवाह-संस्था का सुव्यवस्थित एवं सुप्रतिष्ठित रूप दिखलाई पड़ता है।[2] डा० राजबली पाण्डेय के अनुसार "इसके आधार पर अधिक से अधिक यही सिद्ध किया जा सकता है कि किसी प्रागैतिहासिक काल में आर्य लोग एक ऐसी स्थिति के बीच से भी गुजर चुके थे, जब समाज इस प्रकार के सम्बन्धों को सहन कर लिया करता था"।[3] हम पीछे भी कह चुके हैं कि महाभारत का यह वर्णन काल्पनिक लगता है। यदि इसके आधार पर किसी प्रागैतिहासिक समाज में स्वैराचारिता या अनियमित यौन-सम्बन्धों की कल्पना भी की जाय तो तब भी यह मानना पड़ेगा कि उक्त अवस्था इण्डो-यूरोपीय भाषा-भाषी जन-समुदायों के पूर्वजों के विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में फैल कर बसने के बहुत पहले कभी रही होगी।[4] क्योंकि इन सभी आर्य जातियों के प्राचीन साहित्य में प्राप्त होने वाले वैवाहिक-सम्बन्धों के वाचक शब्दों में समानता के साथ ही इन जातियों के वैवाहिक कृत्यों तथा प्रथाओं में भी अनेक समानताओं से यह सिद्ध होता है कि सुदूर अतीत में इनके पूर्वजों के विश्व के विभिन्न भागों में बसने के बहुत पहले ही विवाह-संस्था सुप्रतिष्ठित हो चुकी थी।[5]

---

१. ऋग्वैदिक कल्चर, पृ० १००।
२. पोजिशन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० ३१।
३. हिन्दू संस्कार, पृ० २०१।
४. द्र०—ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध, पृ० ३२८-६।
५ प्रो० रामगोपाल ने (इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्राज्, पृ० २०४ में श्राडर प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों के मत के आधार पर) यह कहा है कि इण्डो-आर्यन्, पारसी, रोमन तथा अन्य आर्य जातियों की विवाह-प्रथाओं एवं वैवाहिक कृत्यों में कई समानताओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि सुदूर अतीत में ही, जब आर्य एक धरती पर निवास करते थे, विवाह-संस्था पूर्ण विकासावस्था को प्राप्त हो चुकी थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस तरह प्राचीन समाज में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था की कल्पना कर लेने पर भी उसका अस्तित्व सिद्ध करने के लिए संपूर्ण प्राचीन भारतीय वाङ्मय में कोई भी ठोस, असंदिग्ध तथा अकाट्य प्रमाण नहीं है। पुनश्च प्राचीन वाङ्मय में ऐसे प्रमाण हैं जो आदि काल में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था की कल्पना के विपरीत जाते हैं। इसमें आदि सृष्टि के मनुष्य मर्यादित तथा आदर्श चरित्र वाले बतलाये गये हैं। इससे विदित होता है कि प्राचीन समाज भले ही आर्थिक दृष्टि से अविकसित था, किन्तु वह नैतिकता और चारित्रिक गुणों में समृद्ध था। इसमें आदि-युगों की अपेक्षा आगामी युगों और विशेषतः कलियुग में चारित्रिक गुणों का निरन्तर अपकर्ष तथा अनैतिक प्रवृत्तियों की उत्तरोत्तर वृद्धि की कल्पना की गयी है। आरम्भिक समाज में दाम्पत्य मर्यादा की पूर्ण प्रतिष्ठा का चित्रण प्राचीन साहित्य की विशेषता है। इसमें अनैतिक काम-सम्बन्धों के जो उल्लेख हैं, उन्हें व्यभिचार या नैतिक शिथिलता (Sexual Laxity) के अन्तर्गत रखा जा सकता है। यदि काम-वासना के प्रबल आवेग के नियन्त्रण के अभाव में या चारित्रिक दुर्बलतावश प्राचीन काल के कुछ स्त्री-पुरुष व्यभिचार में लिप्त हो बैठे हों और इसका उल्लेख कवियों की रचनाओं में हुआ हो तो उसके आधार पर समस्त प्राचीन समाज में विवाह-बन्धन रहित अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था का आरोप तर्कसंगत नहीं है। नैतिक शिथिलता या व्यभिचार को अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था से अभिन्न नहीं माना जा सकता। नैतिक शिथिलता की प्रवृत्ति सुप्रतिष्ठित विवाह-संस्था वाले समाज में भी देखी जाती है, जबकि अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था का काल्पनिक अस्तित्व किसी भी समाज में विवाह-संस्था के आविर्भाव के पूर्व ही माना जाता है। अतः प्राचीन भारत में विवाह-संस्था के विकास की पूर्वावस्था में कामाचार या अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था (Promiscuity) का अस्तित्व नहीं सिद्ध किया जा सकता।

(ख) श्वेतकेतु विवाह-संस्था का प्रवर्तक नहीं था—

महाभारत के श्वेतकेतु-प्रकरण के आधार पर मैकलेनन आदि पाश्चात्य विद्वान् ही नहीं, प्रोफेसर अल्टेकर[१] एवं डा० भगवतशरण उपाध्याय[२] आदि भारतीय विद्वान् भी श्वेतकेतु को भारत में विवाह-संस्था का प्रवर्तक मानते हैं। किन्तु उनके मत का अनुमोदन नहीं किया जा सकता। यदि श्वेतकेतु ही विवाह संस्था का प्रवर्तक होता तो महाभारत के पूर्व रामायण में तथा उससे भी हजारों वर्ष पूर्व के वैदिक साहित्य में इसका उल्लेख हो सकता था। वैदिक साहित्य[३]—विशेषतः ब्राह्मणों, उप-

---

१, पोजिशन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० २९-३०।

२. वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० ५१।

३. द्र०—वैदिक इण्डेक्स २, पृ० ४०९—४१० में 'श्वेतकेतु'।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

निषदों, श्रौतसूत्रों एवं धर्मसूत्रों में श्वेतकेतु की चर्चा है। किन्तु विवाह-संस्था के प्रति श्वेतकेतु के योगदान का वहाँ कोई उल्लेख नहीं है। डा० भगवत शरण उपाध्याय जैसे कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि श्वेतकेतु द्वारा कामाचार या शिथिल यौन सम्बन्धों की स्थिति को नियन्त्रित करके विवाह-संस्था के प्रवर्तन का ज्ञान ऋग्वैदिक ऋषियों को भी रहा होगा, किन्तु वर्ण्य विषय की प्रकृति में न आने से अथवा समुचित प्रसंग के अभाव में उसका समावेश ऋग्वेद में नहीं हो पाया होगा। किन्तु उनकी इस कल्पना का समर्थन नहीं किया जा सकता। महाभारत के उक्त अकेले प्रसंग के अतिरिक्त विवाह-संस्था पर प्रकाश डालने वाले समस्त वैदिक एवं लौकिक संस्कृत वाङ्मय में श्वेतकेतु के प्रयास की चर्चा का नितान्त अभाव उक्त कल्पना में प्रश्न चिह्न लगाता है। यदि श्वेतकेतु ही इतनी महत्त्वपूर्ण संस्था का प्रवर्तक होता तो भारतीय ऋषि और कवि इतने कृतघ्न नहीं थे कि वे उसके स्तुत्य प्रयास को उपेक्षित और विस्मृत कर देते। इस प्रसंग में प्रो० कृष्णगोपाल गोस्वामी का यह कथन समीचीन है कि उद्दालक और श्वेतकेतु छान्दोग्य उपनिषद् के दो प्रसिद्ध ऋषि हैं। वहाँ भी श्वेतकेतु द्वारा विवाह-संस्था के प्रवर्तन की चर्चा संभव थी और वहां यह चर्चा स्वाभाविक भी रही होती। जो वर्णन जहाँ पर स्वभावतः अपेक्षित था उसकी वहाँ कोई चर्चा न होने के कारण उसकी अपेक्षा बहुत बाद के साहित्य—महाभारत में उसकी चर्चा को कोई ऐतिहासिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता।[1] पाश्चात्य विचारकों के द्वारा उपस्थापित विवाह-संस्था के विकासवादी मत के परिप्रेक्ष्य में प्रो० गोस्वामी ने कहा है कि यदि विवाह-संस्था के विकास का सिद्धान्त स्वीकार किया जाता है तो इसे व्यक्ति विशेष के द्वारा आकस्मिक रूप से प्रवर्तित नहीं, अपितु विकास की एक स्वाभाविक प्रक्रिया का परिणाम माना जायेगा।[2] अतः इस दृष्टिकोण से भी श्वेतकेतु को विवाह-संस्था का संस्थापक या प्रवर्तक नहीं कहा जा सकता। वेस्टरमार्क भी यह नहीं मानता है कि भारत में श्वेतकेतु ने विवाह-संस्था का प्रवर्तन किया था। उसने विवाह-संस्था के विषय में अपनी स्वाभाविक उत्पत्तिवादी विचारधारा के अनुरूप ही इस प्रसंग में यह मत व्यक्त किया है कि सभी महत्त्वपूर्ण संस्थाओं का प्रवर्तक किसी न किसी आचार्य को मानने की प्रवृत्ति के कारण ही विवाह-संस्था के प्रवर्तन के साथ श्वेतकेतु के नाम को जोड़ा गया है।[3] किन्तु वेस्टरमार्क की यह धारणा सर्वथा समीचीन नहीं है। यह संभव है कि किसी आचार्य के विचारों को परिमार्जित करने वाली शिष्य-परम्परा नये विचारों एवं कृतियों का श्रेय अपने प्राचीन आचार्य को ही दे, किन्तु किसी आचार्य को उसके यत्किञ्चित् योगदान के बिना मिथ्या श्रेय देने की प्रवृत्ति भारत में नहीं थी।

---

१. क्वेश्चन आफ प्रोमिस्क्युटी इन एन्सेण्ट इण्डिया (कलकत्ता रिव्यू, अगस्त १६३६)। २. वही।

३. हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज, भाग १, पृ० १०६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्वेतकेतु को अधिक से अधिक केवल मर्यादा परक वचनों का विधान करने का श्रेय दिया जा सकता है।

श्वेतकेतु को विवाह-संस्था का प्रवर्तक सिद्ध करने की कुचेष्टा का कोई सांस्कृतिक आधार भी नहीं है, क्योंकि विवाह-संस्था समाज में श्वेतकेतु के जन्म से अनेकों पीढ़ियों के पूर्व सुप्रतिष्ठित हो चुकी थी। उसके पिता उद्दालक का भी विवाह हुआ था और उसकी माता उद्दालक की विवाहिता पत्नी थी, न कि कोई साधारणी स्त्री। प्रो० कृष्णगोपाल गोस्वामी ने भी यह माना है कि श्वेतकेतु के उपाख्यान में परिवार संस्था को स्वीकार किया गया है, जो कि विवाह-संस्था के अभाव में संभव नहीं है।[१] अतः हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि श्वेतकेतु ने दाम्पत्य मर्यादा की शिथिलता का भले ही नियमन किया हो, किन्तु वह विवाह-संस्था का स्थापक या प्रवर्तक कदापि नहीं था। विवाह-संस्था की कल्पना भारतीय साहित्य में मानव-सृष्टि के शैशवकाल से ही प्राप्त होती है।

२—सामूहिक विवाह विषयक मत—

१९ वीं शताब्दी के मध्य में अमेरिकी नृतत्त्वशास्त्री मोर्गन ने यह मत उपस्थापित किया था कि आदिम मानव-समाज की अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था के पश्चात् अगली विकासावस्था में सामूहिक विवाह (Group Marriage) का प्रचलन हुआ।[२] इस मत के समर्थकों के अनुसार अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था के अनन्तर मानव समाज में एक समूह के पुरुषों का दूसरे समूह की स्त्रियों के साथ यौन-सम्बन्धों का प्रचलन हुआ होगा।[३] वे मानते हैं कि विश्व के अनेक जन-समुदायों में व्यक्तिगत यौन-सम्बन्धों की परम्परा स्थापित होने के पूर्व सामूहिक यौन-सम्बन्धों का ही प्रचलन रहा होगा। इस प्रकार सामूहिक विवाह की प्रथा को अनियमित यौन-सम्बन्धों एवं व्यक्तिगत विवाह की प्रथा के मध्य की कड़ी माना गया है। सामूहिक विवाह के दृष्टान्त प्रायः उन क्षेत्रों से ही उपलब्ध बतलाये गये हैं जहाँ का जन-समुदाय प्राकृतिक कारणों से इतर विश्व के साथ कम से कम जनसम्पर्क के कारण अपनी प्राचीन परम्पराओं को अधिक सुरक्षित रख सका है। वेस्टरमार्क प्रभृति विद्वानों के अनुसार सामूहिक विवाह के कुछ दृष्टान्त उन्हें तिब्बत, वर्मा, श्रीलंका तथा विश्व के अन्य कई देशों में प्राप्त हुए हैं।[४] ब्रिफाल्ट (Briffalt) ने विश्व के अनेक देशों, प्रान्तों, जातियों

१ द्र०—क्वेश्चन आफ प्रोमिस्क्युटी इन एन्सेण्ट इण्डिया, कलकत्ता रिव्यू (अगस्त १९३९) पृ० १२८।

२ द्र०—इन्साइक्लोपीडिया अमेरीकाना में 'ग्रुप मैरेज'।

३ द्र०—हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास, पृ० २५-७।

४ द्र०—हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज, भाग ३, पृ० २२३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एवं जन-जातियों में प्रचलित सामूहिक विवाह (ग्रुप-मैरेज), संयुक्त-विवाह (कलेक्टिव मैरेज) तथा साम्यवादी यौन-सम्बन्धों (सेक्युयल कम्युनिज्म) का सविस्तार अध्ययन प्रस्तुत किया है। उसने सामूहिक विवाह के अन्तर्गत पुरुष के द्वारा पत्नी की समस्त बहिनों के साथ विवाह या यौन-सम्बन्ध (सोरोरल पोलीगेमी) तथा पत्नी द्वारा पति के सभी भाइयों के साथ यौन-सम्बन्ध (फ्रैटर्नल पोलीएण्ड्री) और अविवाहित भ्राताओं का विवाहित भ्राता की पत्नी या पत्नियों के साथ यौन-सम्बन्ध को गिनाया है। इन दोनों प्रथाओं के संयुक्त रूप को तथा जिस अवस्था में एक समूह के समस्त पुरुष दूसरे समूह की समस्त स्त्रियों के साथ विवाह या यौन-सम्बन्ध करते हों उसे भी सामूहिक विवाह में गिनाया है। संयुक्त-विवाह (कलेक्टिव मैरेज) प्रायः उस अवस्था की संज्ञा है जिसमें पति एवं उसके भ्राता तथा कुल के अन्य पुरुष चाचा आदि भी वधू के साथ यौन-सम्बन्ध के अधिकारी माने जाते हैं। यौन-सम्बन्धों का साम्यवाद (सेक्युयल कम्युनिज्म) वह अवस्था है जिसमें पुरुष के सजातीय, सकुल्य एवं मित्र भी उसकी पत्नी के साथ यौन-सम्बन्ध कर सकते हैं और पुरुष अपनी पत्नी की सखियों, अपने सकुल्यों एवं मित्रों की पत्नियों के साथ समागम कर सकता है तथा स्त्री अपने पति के पारिवारिक जनों, मित्रों आदि के साथ समागम कर सकती है।[1] इसी प्रकार ब्रिफाल्ट ने बहुपत्नीप्रथा, बहुपतिप्रथा आदि विभिन्न वैवाहिक प्रथाओं को भी सामूहिक विवाह के अन्तर्गत गिनाया है। कतिपय लेखक बहुपतिप्रथा (पोलीएण्ड्री) तथा सामूहिक विवाह में निकट सम्बन्ध मानते हैं, किन्तु इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है। बहुपतिप्रथा में एक स्त्री के अनेक पति रहते हैं, किन्तु सामूहिक विवाह में, जैसा कि वेस्टरमार्क ने भी माना है, कई पुरुषों को कई स्त्रियों के साथ समागम का अधिकार रहता है, जबकि उनमें से किसी भी स्त्री का विवाह एक से अधिक पुरुषों के साथ नहीं हुआ रहता।[2] नार्थकोट ह्वाइटब्रिज टौमस ने भी यह स्वीकार किया है कि कुछ लेखकों ने सामूहिक विवाह का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में किया है। उसके अनुसार सामूहिक विवाह उसे कहते हैं जिसमें किसी समाज के जाति, वर्ग या कुल के रूप में विभक्त विभिन्न समूहों में से एक समूह के समस्त पुरुष दूसरे समूह की समस्त स्त्रियों के पति हों तथा प्रथम समूह की समस्त स्त्रियाँ दूसरे समूह के समस्त पुरुषों की पत्नियाँ हों।[3] मोर्गन एवं ब्रिफाल्ट प्रभृति लेखकों के द्वारा सामूहिक विवाह के जो दृष्टान्त प्रस्तुत किये गये हैं उनकी अनेकरूपता को देखते हुए इसकी किसी सर्वसम्मत परिभाषा की आशा भी नहीं करनी चाहिए।

वस्तुतः मोर्गन प्रभृति लेखकों ने आधुनिक काल में अविकसित संस्कृतियों वाले कुछ

---

१. द मदर्स, भाग १, अध्याय ११–२, पृ० ६१४-७६६ (लन्दन द्वि०सं० १९५२)

२. द्र०—शार्ट हिस्ट्री आफ मैरेज, पृ० २६८।

३. द्र०—इनसाइक्लोपिडिया अमेरिकाना में 'ग्रुप मैरेज'।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जन-समुदायों में तथाकथित सामूहिक विवाह की प्रथाओं अथवा इससे मिलती-जुलती बहुपति-विवाह जैसी प्रथाओं के आधार पर ही प्राचीन समाज में सामूहिक विवाह के प्रचलन की कल्पना की है। किन्तु आधुनिक दृष्टान्तों के आधार पर प्राचीन काल में मानव सभ्यता के विकास के प्रथम सोपान में सामूहिक विवाह की प्रथा के आविर्भाव की कल्पना को प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। व्यक्तिगत विवाह-प्रथा के पूर्व सामूहिक विवाह के प्रचलन को सिद्ध करने के लिए कोई भी प्रमाण प्राचीन साहित्य में उपलब्ध नहीं है। ब्रोनिस्लाव मालिनोव्स्की सदृश विद्वान् सामूहिक विवाह की उपस्थापना का भली भाँति खण्डन कर चुके हैं।[1] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मोर्गन ने प्राचीन समाज में सामूहिक विवाह विषयक मत की उपस्थापना प्रमुखतया पोलीनेशियन समाज के विषय में अपने अध्ययन के आधार पर की थी, क्योंकि वह उस समाज को अविकसित संस्कृति का प्रतिनिधि मानता था। किन्तु उसके मत का खण्डन करने वाले वेस्टरमार्क, अल्फ्रेड अर्नेस्ट क्लावले, एण्ड्रयू लाँग, नार्थकोट ह्वाइटब्रिज टौमस जैसे विद्वानों ने यह बतलाया है कि पोलिनेशियन संस्कृति वास्तव में एक संमिश्रित (कम्प्लैक्स) संस्कृति है। यह अन्य आदिम संस्कृतियों की अपेक्षा अधिक विकसित है। अतः इस संस्कृति में सामूहिक विवाह का जो स्वरूप पाया जाता है उसे प्राचीन विश्व में विवाह-संस्था के विकास की पहली या दूसरी कड़ी का निदर्शन नहीं माना जा सकता।[2] सामूहिक विवाह की धारणा वर्तमान काल में कुछ अविकसित संस्कृतियों वाले जन-समुदायों में प्राप्त दृष्टान्तों के आधार पर कल्पित की गई है। उसका कोई सुनिश्चित ऐतिहासिक स्रोत प्राचीन साहित्य में कहीं भी नहीं प्राप्त होता।

(क) प्राचीन भारत में सामूहिक विवाह प्रथा का अभाव—

ब्रिफाल्ट ने प्राचीन भारत में भी सामूहिक-विवाह के पर्याप्त उदाहरण गिनाये हैं, किन्तु वे उचित नहीं लगते। उसने रामायण (१।७३।२६—३३) में दशरथ के चार पुत्रों का विदेहराज जनक एवं उसके भ्राता की पुत्रियों (सीता, उर्मिला, माण्डवी एवं श्रुतकीर्ति) के साथ विवाह को सामूहिक विवाह का दृष्टान्त कहा है।[3] उसकी दृष्टि में यहाँ एक वंश के चारों भ्राताओं का दूसरे वंश की चारों बहिनों के साथ विवाह के कारण यह सामूहिक विवाह का एक उदाहरण बनता है। किन्तु इस प्रसंग में उसने यह विस्मृत कर दिया है कि राजा दशरथ तथा जनक के वंशों में आदिकाल से ही सुव्यवस्थित विवाह-संस्था चली आ रही थी। राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न का विवाह यद्यपि एक ही परिवार की कन्याओं के साथ हुआ था, तथापि यह दृष्टान्त सुव्यवस्थित एवं

---

१. सेक्स, कल्चर एण्ड मिथ, (लन्दन १९६३), पृ० ३३-४।

२. द्र०—इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना में 'ग्रुप मैरेज'।

३. द मदरस्,भाग १, पृ० ६८२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यक्तिगत विवाह की हा परम्परा में आता है। अतः इस दृष्टान्त को सामूहिक विवाह की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। ब्रिफाल्ट ने बहुपतिप्रथा को सामूहिक विवाह का ही एक स्वरूप मानते हुए महाभारत से पांच पाण्डवों के साथ द्रौपदी के विवाह को भी सामूहिक-विवाह के एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।[1] किन्तु यह महाभारत कालीन प्रवृत्ति या प्रथा नहीं, अपितु वनवास की आपत्ति के समय पाण्डवों द्वारा आपद्धर्म के रूप में अपनायी गयी एक विशेष स्थिति मात्र थी, जिसके विरुद्ध आज के आलोचकों का मुख खुलने से बहुत पहले तत्काल ही स्वयं राजा द्रुपद ने सटीक आवाज उठाते हुए इसे अश्रुतपूर्व तथा लोक और वेद के विरुद्ध बतलाया था।[2] ब्रिफाल्ट ने ऋग्वेद[3] एवं अथर्ववेद[4] से जो संदिग्ध उदाहरण दिये हैं,[5] वे कुछ सीमा तक बहुपतिप्रथा के ही कहे जा सकते हैं, न कि सामूहिक विवाह प्रथा के। सामूहिक विवाह को कल्पना अविकसित व्यक्तिगत विवाह-संस्था वाले समाज के विषय में की गई है। जब कि वैदिक समाज पर्याप्त विकसित संस्कृति वाला समाज था और उसमें सामान्यतः व्यक्तिगत विवाह-सम्बन्धों का ही प्रचलन था। अतः वेदों में प्राप्त बहुपतिप्रथा के कुछ संदिग्ध प्रसंगों के आधार पर प्राचीन भारत में सामूहिक विवाहों का प्रचलन नहीं बतलाया जा सकता। ब्रिफाल्ट ने एक ऋषि के द्वारा दश कन्याओं, जो परस्पर भगिनी थी, के साथ विवाह को सामूहिक विवाह के अन्यतम भेद 'सोरोरल पोलीगेमी' (एक परिवार की सभी कन्याओं के साथ विवाह) के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।[6] किन्तु यह वस्तुतः बहुपत्नीप्रथा का उदाहरण है। बहुपत्नी प्रथा को सामूहिक विवाह से अभिन्न नहीं कहा जा सकता। पिता द्वारा अपनी अनेक कन्याओं का विवाह एक वर के साथ करने के अनेक उदाहरण भारतीय संस्कृति के इतिहास में मानव-सृष्टि के आदि-क्रम से ही प्राप्त होते हैं। इतिहास-पुराण में दक्ष के द्वारा अपनी दश कन्याएँ धर्म को, तेरह कन्याएँ कश्यप को तथा सत्ताईस कन्याएँ सोम को दिये जाने का उल्लेख सर्वविदित है। किन्तु भारतीय संस्कृति में इस तरह के विवाह को सामूहिक विवाह की संज्ञा कदापि नहीं दी गयी है। प्राचीन भार-

---

१. द मदरस्, भाग १, पृ० ६८२-३।

२. एकस्य बह्व्यो विहिता महिष्यः कुरुनन्दन।
नैकस्या बहवः पुंसः श्रूयन्ते पतयः क्वचित्॥
लोकवेदविरुद्धं त्वं नाधर्मं धर्मविच्छुचिः।
कर्तुमर्हसि कौन्तेय कस्मात् ते बुद्धिरीदृशी॥ आदिपर्व १९४।२७-८।

३. (क) ....योषा वृणीत जेन्या युवा पती। ऋ० १।११९।५।
(ख) ....साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः। ऋ० १।१६७।४।

४. स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह। अथर्व० १४।२।१।

५. द मदरस्, भाग १, पृ० ६८३—८। ६. वही, भाग १, पृ० ६१९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तीय साहित्य में एक ही पिता की अनेकों कन्याओं के किसी एक पुरुष के साथ विवाह के उदाहरणों से विदित होता है कि वे सभी उस पुरुष की समान रूप से विवाहिता पत्नियाँ होती थी। किन्तु सामूहिक विवाह के जो दृष्टान्त विश्व के अनेक क्षेत्रों से दिये गये हैं उनमें पत्नी की सभी बहिनों के साथ यौन-सम्बन्ध की स्वीकृति होने पर भी सभी के साथ विवाह अनिवार्य नहीं बतलाया गया है।

सामूहिक विवाह की अवस्था का प्रचलन व्यक्तिगत विवाह की व्यवस्था के पूर्व बतलाया गया है। किन्तु प्राचीन भारतीय साहित्य से विदित होता है कि इस देश में आदिकाल से ही व्यक्तिगत विवाह का प्रचलन रहा है। बहुपत्नीप्रथा के कुछ दृष्टान्त तो अपवाद रूप में ही पाये जाते हैं, सर्व-साधारण में इसका प्रचलन अत्यल्प था। सामूहिक विवाह की प्रथा का प्रचलन सिद्ध करने के लिए वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में कोई भी ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अतः प्राचीन भारत में प्रागैतिहासिक युग में भी इसका प्रचलन विना किसी प्रमाण के केवल कपोल-कल्पना के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सकता।

३—विवाह संस्था की स्वाभाविक उत्पत्ति—

हॉवर्ड प्रभृति कतिपय विद्वानों का मत है कि मानव जाति के शैशव काल से ही नर-नारी युगलों में परस्पर साहचर्य और यौन-सम्बन्ध प्रचलित रहा होगा। यह सम्भव है कि आरम्भ में किसी युगल का यह सम्बन्ध अस्थायी रहता हो अथवा किसी युगल के द्वारा इसका अतिक्रमण होता हो, तथापि आदि मानव की काम-वासना की स्वाभाविक प्रवृत्ति एवं जीवन-क्षेत्र में पारस्परिक सहयोग की भावना ने निसर्गतः इस सम्बम्ध को स्थायित्व प्रदान करके विवाह-संस्था को जन्म दिया होगा।[1] वेस्टरमार्क का मत है कि विवाह-संस्था का विकास मनुष्य की एक आदिम आदत से हुआ होगा। उसके अनुसार अति प्राचीन काल में भी एक पुरुष तथा एक या अधिक स्त्रियों में सहवास, परस्पर मैथुन तथा इसके फलस्वरूप उत्पन्न सन्तानों का मिल कर पालन-पोषण करने की प्रवृत्ति रही होगी। पुरुष अपने परिवार का संरक्षक रहा होगा तथा स्त्री उसकी सहायता एवं उसके बच्चों की देख-भाल करती रही होगी।[2] पक्षियों एवं वानर आदि पशुओं के मिथुनों में परस्पर सहवास, मैथुन एवं सन्तान की सुरक्षा आदि की सहज प्रवृत्ति लक्षित होती है। वेस्टरमार्क की धारणा है कि काम-वासना की सन्तुष्टि, सन्तान का प्रसव एवं उसकी रक्षा आदि जिन कारणों से पशु-पक्षियों के मिथुनों को ऐसे सम्बन्धों की अनिवार्यता प्रतीत हुई होगी, प्रायः वैसे ही कारणों एवं वैसी ही अनिवार्यताओं ने आदिम मानव समाज के मिथुनों को परस्पर सहवास हेतु प्रकृत्या

१. द्र०—हॉवर्ड : हिस्ट्री आफ मेट्रीमोनियल इन्स्टीट्यूशन, पृ० ९०-९१।

२. हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज, भाग १, पृ० २७-८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रेरित किया होगा।[१] कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि ऐसे पक्षियों एवं वानरों के अनुकरण पर मनुष्य ने भी एक स्त्री के साथ रहना सीखा होगा।[२] परन्तु उनकी यह धारणा विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि समस्त प्राणि-जगत् में मनुष्य प्रारम्भ से ही सर्वाधिक बुद्धिमान् रहा होगा और उसे इन सहज प्रवृत्तियों की शिक्षा पशु-पक्षियों से ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं पड़ी होगी। प्राचीन भारतीय साहित्य में पशु-पक्षियों एवं कीट-पिपीलिकाओं के आदर्श दाम्पत्य जीवन का चित्रण अनेकत्र है,[३] किन्तु उनसे प्रेरणा लेकर किसी नर-नारी युगल के परस्पर सहवास अथवा उनसे शिक्षा लेकर दाम्पत्य के आदर्श-पालन का कोई उल्लेख उसमें कहीं भी नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि सृष्टि के अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक विवेकशील एवं अधिक संवेदनशील होने के कारण मनुष्य ने प्रकृत्या प्रेरित होकर दाम्पत्य-व्यवस्था अपनायी होगी।

वेस्टरमार्क के अनुसार प्रारम्भिक मनुष्य की किसी स्त्री के साथ समागम से एकान्तिक सुख-प्राप्ति, उससे उत्पन्न सन्तान से अपने वंश की वृद्धि होने के कारण उन दोनों की रक्षा एवं लालन-पालन की भावना और स्त्री को भी पुरुष के संयोग से आनन्दानुभूति तथा अपनी और अपने शिशुओं की सुरक्षा एवं पालन-पोषण में पुरुष की सहायता की अपेक्षा के कारण स्वभावतः एक स्त्री-पुरुष मिथुन के स्थायी सहवास का प्रचलन हुआ होगा, जिसे आरम्भ में लोकाचार ने और तत्पश्चात् विधि ने भी मान्यता दी होगी।[४] डा० राजबली पाण्डेय ने बतलाया है कि "विवाह के मूल में सम्भवतः नवजात शिशु की पूर्ण असहाय अवस्था तथा विभिन्न अवधियों के लिए माता व नवजात शिशु की रक्षा व उनके लिए उस अवधि में भोजन की आवश्यकता थी। अतः स्त्री और पुरुष के स्थायी सम्बन्ध की जड़ ही पैतृक कर्तव्यों में निहित है। पारस्परिक प्रेम आदि अन्य कारण भी इस सम्बन्ध के मूल में विद्यमान थे"।[५] किन्तु नर-नारी का पारस्परिक प्रेम ही उनके सम्बन्ध के स्थायित्व में प्रमुख कारण रहा होगा। पैतृक कर्तव्य स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को कुछ काल (गर्भिणी के प्रसवानन्तर स्वस्थ होने तथा बच्चों के आत्मनिर्भर होने) तक ही बनाये रख सकते हैं, उसको आजीवन चिरस्थायी रखने के लिए वे पर्याप्त नहीं हैं।

आदि मानव द्वारा किसी भी स्त्री के साथ बर्बरता पूर्वक वासना की सन्तुष्टि से विवाह संस्था का उदय नहीं हो सकता था। किसी अनिच्छुक स्त्री का अपहरण करके उसके साथ सम्भोग मात्र पशु-प्रवृत्ति है। रामायण में कहा गया है कि अनिच्छुक स्त्री

---

१. फ्यूचर आफ मैरेज, पृ० ७। २. वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० ५१।

३. द्र०—शान्तिपर्व १४४।१-१७; मत्स्य २०।२८-३७; २०९।१०-३१; भाग० ११।७।५४-९। ४. हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज भाग १, पृ० २७-८।

५. हिन्दू संस्कार, पृ० २००-२०१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के प्रति कामुक होने से पुरुष का शरीर सन्तप्त (क्षीण) हो जाता है, इच्छुक स्त्री की कामना करने से ही वास्तविक आनन्दानुभूति होती है।[१] देवीभागवतपुराण में स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्ध में अनुराग की प्रमुख भूमिका स्वीकार की गई है और यह बतलाया गया है कि बलात्कार से यौन-सम्बन्ध का रस (आनन्द) नष्ट हो जाता है।[२] बर्बरता-पूर्वक अपहृत और अनिच्छुक स्त्री को काम-वासना की शान्ति का साधन बनाने से यौन-सम्बन्ध सुखद और स्थायी नहीं हो सकता। अतः विवाह की राक्षस तथा पैशाच विधियों को प्राचीन मानना भी युक्तिसंगत नहीं है। इस प्रसंग में डॉ० राजबली पाण्डेय के ये विचार तर्कसंगत हैं कि "केवल यौन प्रवृत्ति के आधार पर स्त्री और पुरुष के बीच स्थायी सम्बन्ध का विकास संभव नहीं था और न ही आदिम मनुष्य में आदर्श प्रेम की वह ज्वलन्त धारणा ही थी जो आज दम्पती को घनिष्ठतम सम्बन्धों में बाँधने में समर्थ है। असभ्य स्त्री की दुर्बलता को भी विवाह सम्बन्ध के विकास का श्रेय नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वह आत्मरक्षा की दृष्टि से उतनी ही समर्थ व सबल थी, जितना पुरुष।[३]

भारतीय संस्कृति में नर-नारी के स्वाभाविक आकर्षण को ही विवाह के मूल में माना गया है। आरम्भिक तमिल साहित्य में विवाह-पूर्व-प्रणय-विषयक कविताओं के आधार पर श्रीनिवास आयङ्गर ने भी ऐसी ही मान्यता व्यक्त की है।[४] महाभारत में कहा है कि प्रकृति ने मनुष्यों के मन में कुछ ऐसा मोह भर रखा है जिससे पुरुष सदैव स्त्रियों के प्रति आकृष्ट होते हैं और स्त्रियाँ पुरुषों के प्रति आकृष्ट हुआ करती हैं।[५] अतः एक दूसरे के प्रति स्वाभाविक आकर्षण, प्रेम और उत्सर्ग की सहज भावना, काम-वासना की संतुष्टि, सन्तान की कामना, नवजात-शिशु एवं प्रसूता स्त्री की रक्षा आदि के कारण आदि काल से ही नर-नारी युगलों में सहवास की सहज प्रवृत्ति रही होगी और कालान्तर में उनके इस स्थायी सम्बन्ध को 'विवाह' या इसके पर्यायवाची विभिन्न अभिधानों से ख्यापित किया गया होगा। आरम्भिक समाज में नर-नारियों का विवाह सम्बन्ध संभवतः किसी संस्कार या अन्य किसी औपचारिकता के विना ही सीधे और

---

१. अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते।
इच्छतीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना॥ रामा० ५।२२।४२-३।

२. रतिस्तु कारणं प्रोक्तं शृङ्गारस्य महात्मभिः।
रसहानिर्बलात्कारे कृते तु सति जायते॥ देवीभाग० ६।८।८।

३. हिन्दू संस्कार, पृ० २००। ४. हिस्ट्री आफ तमिल लिट्रेचर, पृ० १६९।

५. इमे वै मानवा लोके स्त्रीषु सज्जन्त्यभीक्ष्णशः।
मोहेन परमाविष्टा देवसृष्टेन पार्थिव॥
स्त्रियश्च पुरुषेष्वेव प्रत्यक्षं लोकसाक्षिकम्। अनु० ३९।१-२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सरल ढंग से निष्पन्न होता रहा होगा। संस्कार पक्ष की न्यूनता या शून्यता के कारण उसे अवैध नहीं समझा जाता था। आदिकाल के विवाहों में संस्कार-पक्ष की न्यूनता या शून्यता के कारण हमें तत्कालीन समाज में विवाह-संस्था के नितान्त अभाव की कल्पना नहीं कर लेनी चाहिए। विश्व में अद्यावधि कुछ अल्प-सभ्य, वनवासी और घुमन्तू कबीलों या जातियों में विवाह का संस्कार पक्ष न्यून, दुर्बल या शून्य-प्राय है, किन्तु उनमें विवाह-संस्था का अभाव नहीं है। विवाह-संस्था के प्रादुर्भाव के कुछ काल पश्चात् ही इसके संस्कार-पक्ष को महत्त्व प्राप्त हुआ होगा और शनैः शनैः देश, जाति या संस्कृति विशेष के सामाजिक परिवेश, धार्मिक प्रवृत्ति और दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुसार उसमें नाना कृत्यों का समावेश हुआ होगा।

जब हम ऐसी कल्पनाओं तथा सम्भावनाओं से अलग साहित्यिक साक्ष्यों को देखते हैं तो विदित होता है कि ऋग्वैदिक काल के बहुत पहले से ही इस देश में विवाह-संस्था सुप्रतिष्ठित थी तथा विवाह-संस्कार का सम्यक् रूप से विकास हो चुका था। प्राचीन भारतीय साहित्य में विवाह-संस्था को न तो अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था का स्थानापन्न माना गया है और न ही इसे मनुष्य की एक स्त्री के साथ सहवास, मैथुन एवं सन्तान-रक्षा सदृश सहज प्रवृत्तियों के कारण स्वाभाविक रूप से विकसित ही बतलाया गया है। इसमें विवाह-संस्था का प्रादुर्भाव मानवीय-सृष्टि से भी पूर्व दिव्य-सृष्टि में और दिव्य-परिवेश में प्रकल्पित किया गया है। अब हम इस परिपेक्ष्य में प्राप्त साक्ष्यों का स्वतन्त्र विवेचन अगले अध्याय में करेंगे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्वितीय अध्याय

विवाह संस्था की दैवी उत्पत्ति

प्राचीन भारतीय साहित्य में विवाह-संस्था के किसी व्यक्ति के द्वारा प्रवर्तन अथवा कालान्तर में इसके प्रादुर्भाव का कोई उल्लेख नहीं है। इसके अनुसार सर्वशक्तिमान् परमात्मा का स्वेच्छया दम्पती रूप में द्विधा विभक्त होना ही विवाह-संस्था के प्रादुर्भाव का प्रथम सोपान है। इसमें आरम्भिक सृष्टि के देवों, प्रजापतियों और आदि युग के मिथुनों तथा मानसी सृष्टि से मैथुनी-सृष्टि तक एवं अतिमानवीय धरातल से मानव समाज पर्यन्त विवाह-संस्था के अस्तित्व की दिव्य छबि अंकित है तथा प्रत्येक नर-नारी के वैवाहिक-संयोग की ईश्वराधीनता स्वीकार की गई है। प्राचीन साहित्य के विवरणों के आधार पर प्राच्य-विद्या के अनेक विद्वान् यह मानते हैं कि विवाह-संस्था को इसके उच्च आदर्शों एवं आध्यात्मिक उद्देश्यों की स्थापना में सक्षम अतीन्द्रिय अनुभव युक्त एवं अतिमानवीय अन्तर्दृष्टि सम्पन्न दैवी-शक्ति के द्वारा प्रवर्तित किया गया होगा।[1] अस्तु, प्रस्तुत प्रकरण में हम वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य के उन साक्ष्यों का विवेचन करेंगे जिनसे विवाह-संस्था के दैवी आविर्भाव और विकास पर प्रकाश पड़ता है।

यद्यपि ऋग्वैदिक काल तक विवाह-संस्था का स्वरूप इतना विकसित तथा परिमार्जित हो चुका था कि ऋषियों के मन में इसके प्रादुर्भाव के विषय में प्रायः कोई जिज्ञासा नहीं रह गयी थी, तथापि अथर्ववेद में आदि युगल के प्रादुर्भाव[2] तथा विराट् पुरुष के मिथुन-भाव[3] विषयक जिज्ञासा की गयी है। वैदिक संहिताओं के ऋषियों ने द्यावापृथिवी को समस्त भुवनों की वस्तुओं (किं वा समस्त प्राणि-जगत्) की रूप-सम्पदा का निष्पादक बतलाया है।[4] उन्होंने द्यावापृथिवी को माता-पिता कहा है।[5]

---

१. (क) गोस्वामी, कृष्णगोपाल : एन इन्क्वायरी इन टु आइडियलिज्म इन हिन्दू मैरेज, कलकत्ता रिव्यू, ८९ (अप्रैल १९४१) पृ० ४५।
(ख) चटर्जी, हेरम्ब : सोसल बैकग्राउण्ड आफ द फॉर्मस् आफ मैरेज इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० ४-५।

२. कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः·······।—अथर्व० ८।९।१।

३. को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद·······।—अथर्व० ८।९।१०।

४. य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा।
—ऋ० १०।११०।९; वाज० सं २९।३४; अथर्व० ५।१२।९।

५. ऋ० १।१६४।३३; १।१८५।११; १।१९१।६; ५।४३।२; ६।५१।५; ६।७०।६; वाज० सं० २।१०-११, २५।१७; काठक सं० ३७।१५-६; अथर्व० ६।१२०।२; ९।१०।१२; तै० ब्रा० २।८।६।५; ३।७।५।४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस तरह उनमें दाम्पत्य का आरोप करके वैदिक ऋषियों ने विवाह-संस्था के इतिहास को सृष्टि के मूल तत्त्वों (द्यावा-पृथिवी) के साथ जोड़ा है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में स्पष्टतः यह कहा गया है कि द्यावा-पृथिवी पूर्वकाल में परस्पर संयुक्त थे। बाद में वे पृथक् हो गये। उनका पृथक् अस्तित्व अधिक दिन नहीं चल पाया। वे परस्पर विवाह-सूत्र में बँध गये।[1] सृष्टि-प्रक्रिया की प्राकृतिक घटना का संकेत करने वाले इस वर्णन का अभिप्राय दाम्पत्य की प्राकृतिक परिकल्पना को व्यञ्जित करने के साथ ही सुदूर अतीत से ही स्त्री-पुरुष के विवाह-जनित साहचर्य और सहयोग के महत्त्व को इंगित करना भी प्रतीत होता है। यह उल्लेखनीय है कि वैदिक साहित्य में द्यावापृथिवी के विवाह को ऐतिहासिक घटना के रूप में उल्लिखित किया गया है और इसे किसी प्रतीकात्मक घटना का रंग देने की चेष्टा नहीं की गयी है। सम्भवतः द्यावापृथिवी को सृष्टि के इतिहास में प्रथम दम्पती माना जाने के कारण ही अथर्ववेद के विवाह-सूक्त में वर स्वयं को द्यौ और वधू को पृथिवी का रूपक देकर सम्बोधित करता है।[2] द्यावापृथिवी के प्राकृतिक विवाह की इस कल्पना के पश्चात् वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में एक परम पुरुष के दम्पती रूप में द्विधा विभक्त होने की कल्पना द्वारा विवाह-संस्था के प्रादुर्भाव को आरम्भिक सृष्टि से जोड़ा गया है। उपनिषदों के अनुसार सृष्टि के आदि में प्रजापति एकाकी रमण न कर सका।[3] उसने स्वयं को द्विधा विभक्त किया। उसके वे दोनों विभक्त रूप पति-पत्नी बने।[4] परवर्ती साहित्य विशेषतः स्मृतियों, पुराणों और काव्यों में भी एक परमात्मा के पति और पत्नी के रूप में द्विधा विभक्त होने के उल्लेख हैं।[5] इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति में विवाह-संस्था का आविर्भाव सृष्टि के प्रारम्भ से ही माना गया है।

वैदिक और पौराणिक साहित्य के अनुसार देवों की सृष्टि मानव-सृष्टि के पहले की है। देवों में विवाह-संस्था का अस्तित्व आरम्भ से ही बतलाया गया है। इस

१. (क) इमौ वै लोकौ सहास्ताम्, तौ व्यैताम्, नावर्वन्न समपतत्, ते पंचजना न समजानत तौ देवाः समनयंस्तौ संयन्तावेतं देवविवाहं व्यवहेतां रथंतरेणै-वेयममूं जिन्वति, बृहताऽसाविमाम् ॥ ऐ० ब्रा० ४।५।२७।

(ख) इमौ वै लोकौ सहास्तां तौ विन्यस्तावभूतां विवाहं विवहावहै सह नावस्त्विति। पंचविंश ब्राह्मण ७।१०।१।

(ग) द्यावापृथिवी सहास्ताम् ……। तै० ब्रा० १।१।३।२।

२. द्यौरहं पृथिवी त्वम्……अथर्व० १४।२।७१।

३. प्रजापतिर्वा एषोऽग्रातिष्ठत् स नारमतैकः। मैत्रा० उप० २।६।

४. शत० ब्रा० ५।२।१।१०; १४।४।२।४-५; बृह० उप० १।४।१-३।

५. मनु १।३२; ब्रह्म १।५१-२; देवीभाग० ६।२।२७; ब्रह्मवै० २।२।२६; लिङ्ग पू० ७०।२६७; वायु पू० १०।७-८; शिव २।१।१६।१०-११; ५ २९।२४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विषय में सर्व प्रथम हम वैदिक साक्ष्यों का ही विवेचन करेंगे। वेदों में कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ देवों के द्वारा विवाह किये जाने के उल्लेख हैं और कुछ अन्य स्थलों में देवों को सपत्नीक देखा गया है तथा देवियों के नाम उनके पतियों के सन्दर्भ में उल्लिखित हैं। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में सूर्य के साथ त्वष्टा की पुत्री के विवाह का उल्लेख है।[१] ऋग्वेद के विवाह-सूक्त (१०।८५) में सोम के साथ सूर्या के विवाह-संस्कार का वर्णन है। यही वर्णन अथर्ववेद के १४वें काण्ड में विस्तार के साथ पूरे दो सूक्तों में है। ऋग्वेद (१०।८५) के विवाह-सूक्त की समीक्षा में शौनक ने कहा है कि ये मन्त्र मूलतः देवताओं के विवाह-संस्कार विषयक हैं, मनुष्यों के विवाह-संस्कार में भी इन्हीं का विनियोग किया जाता है।[२] अथर्ववेद में कहा गया है कि सर्वप्रथम देवताओं ने ही पत्नी-ग्रहण करके उनके साथ शारीरिक सम्पर्क किया था।[३] गृह्यसूत्रों में ऋग्वेद के विवाह-सूक्त से उद्धृत पाणिग्रहण के मन्त्र (गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्.......) के पूर्व एक उदाहरण वाक्य जोड़ा गया है, जिसमें इन्द्र, सविता, वरुण और भग संज्ञक देवताओं के द्वारा पूर्वकाल में पाणिग्रहण किये जाने का उल्लेख है।[४] इस तरह वैदिक साहित्य के विभिन्न साक्ष्यों से देवों में विवाह-संस्था एवं विवाह-संस्कार का पूर्वकाल से ही प्रचलन सूचित होता है।

ऋग्वेद के प्राचीन माने जाने वाले मण्डलों से ही देवों में विवाह-बन्धन दृष्टिगत होता है। वहाँ सभी देवों को पत्नीयुक्त बतलाया गया है। अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि वह सभी तैंतीस देवों को उनकी पत्नियों सहित यज्ञ में आहूत करके लावे।[५] ऋग्वेद के अष्टम मण्डल में मनु वैवस्वत के द्वारा वरुण, मित्र, अर्यमा एवं अग्नि तथा इन देवों के साथ इनकी पत्नियों को भी वषट् का अर्पण अर्थात् आहुति प्रदान किये जाने का उल्लेख है।[६] अथर्ववेद में समस्त देवों को अपनी पत्नियों के सहित यज्ञ में आकर तृप्त होने के लिए आवाहित किया गया है।[७] वहाँ विश्वेदेवों (सभी देवों) एवं

---

१. ऋ० १०।१७।१-२; अथर्व० १८।१।५३; तु० अथर्व० ३।३१।५।
२. मन्त्रा वैवाहिका ह्येते निगद्यन्ते नृणामपि। बृहद्देवता ७।१३८।
३. देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः। अथर्व० १४।२।३१।
४. यथेन्द्रो हस्तमग्रहीत् सविता वरुणो भगः। मानव गृ० सू० १।१०।१५; वाराह गृ० सू० १४।२९।
५. पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व। ऋ० ३।६।९।
६. वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अग्नयः। पत्नीवन्तो वषट्कृताः॥
—ऋ० ८।२८।२।
७. इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम्।
—अथर्व० १९।५८।६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उनकी सभी पत्नियों से पाप से मुक्ति दिलाने हेतु प्रार्थना की गयी है।[१] विश्वेदेवों की पत्नियों के विषय में बृहद्देवता में भी चर्चा देखी जा सकती है। वहाँ द्वार रूपी देवियों के विषय में कहा गया है कि वे विश्वेदेवों की पत्नियाँ हैं।[२] वाजसनेयि-संहिता (८।१०) में अग्नि का उसकी पत्नी के साथ सोमपान के लिए आवाहन किया गया है। अथर्ववेद में वश (जगन्नियन्ता ईश्वर) की ईश्वरी जाया के द्वारा मानव-शरीर की रचना में रंग भरने का उल्लेख है।[3] वैदिक संहिताओं के ये थोड़े से उदाहरण इस तथ्य को प्रकट करने के लिए पर्याप्त हैं कि वैदिक देवताओं में विवाह-संस्था पूर्णतः सुप्रतिष्ठित थी, कोई भी देवता अकेला नहीं था, अपितु कोई न कोई देवी उसकी जीवन-संगिनी (पत्नी) थी। देवताओं में से अन्यतम—सूर्य की दो पत्नियाँ थीं। उनमें से एक त्वष्टा की पुत्री सरण्यू और दूसरी पत्नी सवर्णा थी।[४] ऋग्वेद में कई स्थलों में उषा को सूर्य की पत्नी के रूप में वर्णित किया गया है।[५] उधर बृहद्देवता के अनुसार सावित्री एवं सूर्या विवस्वान् की भार्या का ही नाम है, उसी को वृषाकपायी एवं उषा भी कहा जाता है। यह उषा अपने पति सूर्य के पास तीन रूपों में पहुँचती है। यह सूर्योदय के पूर्व उषा, मध्याह्न में सूर्या एवं सायंकाल वृषाकपायी कहलाती है।[६] पुराणों में सूर्य की संज्ञा, राज्ञी, प्रभा एवं छाया—इन चार पत्नियों का उल्लेख प्राप्त होता है।[७]

---

१. (क) विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ अथर्व० ११।६।१९।

(ख) सर्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः।
सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ अथर्व० ११।६।२०।

२. द्वारस्तु देव्यो याः प्रोक्ता विश्वेषां तास्तु पत्नयः॥ बृहद्देवता ३।६।

३. ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत्॥ अथर्व०(पा०सं०); ११।८।१७।

४. द्र०—अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामदधुर्विवस्वते।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः॥
ऋ० १०।१७।२; अथर्व० १८।२।३३।

५. ऋ० ३।६१।४; ४।५।१३; ७।६।५; ७।७५।५।

६. (क)—सावित्री चैव सूर्या च सैव पत्नी विवस्वतः॥११९॥
स्तुता वृषाकपायीति उषा इति च योच्यते।
उषा एषा त्रिधात्मानं विभज्य प्रैति गोपतिम्॥१२०॥
उषा। पुरोदयाद् भूत्वा सूर्या मध्यं दिने स्थिते।
भूत्वा वृषाकपायी च दिनान्तेऽत्रवगच्छति॥बृहद्देवता ७।११९-१२१।

(ख)—वृषाकपायी सूर्योषाः सूर्यस्यैव तु पत्नयः॥ बृहद्देवता २।८।

(ग)—पुरोदयात् तामुषसं सूर्यां मध्यं दिने स्थिते॥
बृषाकपायीं सूर्यस्य तामेवाहुस्तु निम्रुचि। बृहद्देवता २।९-१०।

७. मत्स्य ११।३-६; लिङ्ग पु० ६५।२-५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋग्वेद के प्राचीन मण्डलों में से अन्यतम पाँचवे मण्डल में देव-पत्नियों का नाम-निर्देश उनके पतियों के नामानुसार—प्रायः पति के नाम में स्त्रीप्रत्यय जोड़कर किया गया है। यथा—इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी, अग्नि की अग्नायी, अश्विनौ की अश्विनी, रुद्र की पत्नी रोदसी और वरुण की पत्नी वरुणानी कही गयी है।[१] ऋग्वेद के प्राचीन मण्डलों में भी देवियों का स्वतन्त्र निर्देश न होकर देव-पत्नियों के रूप में ही उनका निर्देश प्राप्त होता है, जो कि देव-समाज में सुबद्ध दाम्पत्य-संस्था का परिचायक है। वहाँ देवियों के स्वतन्त्र रूप से नहीं, अपितु देव-पत्नियों के रूप में यज्ञ में आगमन का उल्लेख है (ऋ० ५।४१।६)। देव-पत्नियों की प्रार्थना रक्षा आदि विभिन्न प्रयोजनों के लिए की गयी है।[२] अग्नि से केवल देव-पत्नियों को सोमपान के लिए आहूत करने की भी प्रार्थना की गयी है।[३] इस तरह देवों के लिए उनकी पत्नियों की सापेक्षता तथा देवियों में देवपत्नी की भावना विवाह-संस्था की सुप्रतिष्ठित अवस्था की बोधक है। वेदों में अप्सराओं को भी देवलोक की वेश्या—स्वर्वेश्या के बजाय देवों की पत्नी कहा गया है।[४]

वैदिक साहित्य में देवों में ही नहीं, अष्टदेवयोनियों (Semi-Gods) में गिने जाने वाले गन्धर्वों और अप्सराओं में भी विवाह-संस्था का अस्तित्व ख्यापित होता है। ऋग्वेद में अप्सरा के लिए गन्धर्वी विशेषण का प्रयोग उसके गन्धर्व से सम्बन्धित अथवा गन्धर्व की पत्नी होने का बोध कराता है।[५] गन्धर्वों और अप्सराओं का विवाह-सम्बन्ध अथर्ववेद में स्पष्ट होता है, जहाँ अप्सराओं को जाया तथा गन्धर्वों को उनका पति कहा गया है।[६] वहाँ अप्सराओं को स्पष्टतः गन्धर्व-पत्नी कहा गया

---

१. उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥
ऋ० ५।४६।८; अथर्व० ७।४६।२; तै० ब्रा० ३।५।१२।१; नि० १२।४६ ।
(क)—इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ऋ० २।३२।८ ।
(ख)—इन्द्राणीमुपह्वये वरुणानीं स्वस्तये । अग्नायीं सोमपीतये । ऋ० १।२२।१२
२. देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥
—ऋ० ५।४६।७; अथर्व० ७।४९।१; तै० ब्रा० ३।५।१२।१; नि० १२।४५ ।
३. अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । ऋ० १।२२।९; वाज० सं० २६।२० ।
४. ....देवपत्नी अप्सरसावधीतम् ॥ अथर्व० ६।११८।३ ।
५. गन्धर्वी अप्या योषणा । ऋ० १०।११।२ ।
६. (क)—जाया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम् ॥ अथर्व० ४।३७।१२ ।
(ख)—नमो गन्धर्वस्य नमसे...जाया अप्सरसः परेहि ॥ अथर्व० १४।२।३५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है।[१] तैत्तिरीयसंहिता (३।४।७।१-३) में गन्धर्वों और अप्सराओं के सम्बन्ध को विभिन्न रूपकों से ख्यापित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण (६।४।१।७-१२) में भी गन्धर्व और अप्सरा के मिथुन का उल्लेख है। परवर्ती साहित्य में इनके वैवाहिक जीवन की चर्चा प्रायः नहीं है।[२] इस तरह वैदिक-साहित्य में द्यावापृथिवी के विवाह, प्रजापति के दम्पती रूप में विभक्त होने, देवों के विवाह-संस्कार एवं देव-पत्नियों के उल्लेख आदि से स्पष्ट होता है कि ऋषियों की दृष्टि में मानव-सृष्टि के पूर्व दिव्य-सृष्टि के समय से ही विवाह-संस्था अस्तित्व में आ चुकी थी।

ऋग्वेद एवं इतर वैदिक संहिताओं में उस काल के अनेक सफल दम्पतियों का उल्लेख है, यथा—अगस्त्य-लोपामुद्रा, उशस्ति और उसकी पत्नी आटिकी, कक्षीवान्-वृचया, च्यवन-सुकन्या, तरन्त-शशीयसी, पुरुकुत्स-पुरुकुत्सानी, नार्षद-रुषती (या श्या-वाश्व-रुशती), भावयव्य-रोमशा, विमद-कमद्यू, वसुक्र तथा उसकी पत्नी, याज्ञवल्क्य तथा उनकी पत्नी कात्यायनी और मैत्रेयी इत्यादि। ऋग्वेद में प्राप्त विवाह-संस्कार के मन्त्रों तथा दाम्पत्य जीवन की सुन्दर छवि और अनेक सफल दम्पतियों के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि उस काल के बहुत पहले से ही मानव समाज में विवाह-संस्था सुप्रतिष्ठित थी।

वैदिक साहित्य में मानव ही नहीं, समस्त मूर्त तथा अमूर्त सृष्टि में दाम्पत्य की कल्पना की गयी है। पशुओं के यौन-सम्बन्ध में भी दाम्पत्य का आरोप किया गया है। ऋग्वेद में गायों को वृषभ की पत्नी[३] तथा वृषभ को उनका पति[४] कहा गया है। अथर्ववेद (६।४ २४) एवं तैत्तिरीय संहिता (३।३।१०।१) में गायों के निमित्त वृषभ को प्रदान करने का उल्लेख है। वृषोत्सर्ग के मन्त्रों में वृष को गायों का पति कहा गया है[५] और गायों के साथ नील वृष के विवाह का भी विधान किया गया है।[६] ऋग्वेद (८।६८।१७) में वधूयुक्त छः अश्वों के दान के उल्लेख में अश्व और वडवा में दाम्पत्य भाव की कल्पना है। बृहद्देवता (७।१-४) एवं पुराणों में वडवा रूप में स्थित सरण्यू (संज्ञा) के पास सूर्य के अश्व रूप में गमन के उल्लेख में भी उपर्युक्त तथ्य लक्षित होता है। बृहदारण्यकोपनिषत् (१।४।४) के अनुसार प्रजापति के द्विधा विभक्त अंशों का दाम्पत्य भाव उनके पशु-योनियों को प्राप्त होने पर भी बना रहा।

---

१. ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्यो करं नमः। अथर्व० २।२।५।
२. यह उल्लेखनीय है कि परवर्ती साहित्य में अप्सराओं को विवाह-बन्धन रहित बतलाया गया है (द्र०-पीछे अध्याय १; पृ० ७-८), किन्तु गन्धर्वों में विवाह संस्था का यथावत् प्रचलन बतलाया गया है (द्र०-अनु० पर्व १६९।५)।
३. ऋ० १।४०।६। ४. ऋ० ८।६९।२; १०।१०२।७; अथर्व० ९।४।२, ४, १७।
५. पार० गृ० सू० ३।९।६; शांखा० गृ० सू० ३।२।१४; विष्णुस्मृति ८६।१६।
६. स्कन्द (गुरुमण्डल ग्रन्थमाला) ३।३।२७।६१-२; देवीपुराण ६०।४-५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जब पत्नी गौ बनी तो पति वृषभ बना, उसके वडवा बनने पर अश्व, गर्दभी होने पर गर्दभ, अजा (बकरी) होने पर बस्त (बकरा) एवं अवि (भेड़) होने पर वह मेष (भेड़ा) बना था। इस तरह वैदिक साहित्य में विवाह-संस्था का आविर्भाव दिव्य-सृष्टि में और इसका विस्तार पशुयोनियों पर्यन्त कल्पित किया गया है।

वैदिक ऋषियों ने मानव दम्पती के साधर्म्य के आधार पर प्राकृतिक तत्त्वों में भी दाम्पत्य का आरोप किया है। यथा—साहचर्य के आधार पर लता और वृक्ष में दाम्पत्य का आरोप।[1] ऋग्वेद (८।६३।२२) में सवन किये गये सोम को पत्नियों से युक्त कहा गया है। 'वसतीवर्य' एवं 'एकधना' संज्ञक जल उसकी पत्नी कहे गये हैं।[2] यहाँ दाम्पत्य भाव के आरोप में साहचर्य आदि की अभिव्यक्ति अभीष्ट है। अथर्ववेद (१२।१।४२) में भूमि को पर्जन्य की पत्नी कहा गया है। इसका हेतु प्रजनन-समर्थ बनाने का साधर्म्य माना जा सकता है। अथर्ववेद (६।२४।३) में नदियों को समुद्र की पत्नी और समुद्र को उनका राजा (पति) कहा गया है। पत्नी के पति के समीप गमन एवं तदनन्तर तादात्म्य भाव से स्थिति रूप साधर्म्य-वश नदी और समुद्र में दाम्पत्य-कल्पना की गयी है। वरुण को जलों का अधिपति[3] तथा जलों को वरुण की पत्नी[4] कहने का हेतु स्वस्वामिभाव सम्बन्ध माना जा सकता है। अथर्ववेद (११।८।१-२) में उल्लेख है कि मन्यु (उत्साह ?) संकल्प के घर से जाया को विवाह करके लाया था। यहाँ अमूर्त भावों की प्रतीकार्थ-व्यञ्जकता स्पष्ट झलकती है। वैदिक साहित्य में एकाष्टका रात्रि को संवत्सर की पत्नी[5] तथा संवत्सर को उसका पति[6] कहा गया है। सायण ने तैत्तिरीय संहिता ७।४।८।१ के भाष्य में एकाष्टका (माघकृष्णाष्टमी) की अभिमानिनी देवता को संवत्सर के अभिमानी देव की पत्नी कहा है। ऐसे रूपकात्मक प्रयोगों द्वारा दम्पती का साधर्म्य ध्वनित करके किसी प्रसंग-प्राप्त अर्थ को पुष्ट करने की वैदिक ऋषियों की एक प्रवृत्ति रही है। साथ ही इससे यह भी ध्वनित होता है कि वे दिव्य धरातल से लेकर नाम-रूपात्मक सृष्टि के प्रत्येक स्तर में दाम्पत्य की कल्पना करते थे।

वैदिक साहित्य के अनुसार मानव सभ्यता का तो सूर्योदय ही विवाह-संस्था के साथ होता है। वैदिक ऋषि उत्प्रेक्षा करता है कि भगवान् सूर्य कुमारी कन्या के लिए पति और अविवाहित युवक के लिए जाया की प्राप्ति कराने हेतु उदित हो रहे हैं।[7] त्वष्टा

१. ऋ० १०।१०।१३, १४; अथर्व० ६।८।१; १८।१।१५, १६; द्र० विष्णु १।८।३०
२, द्र०-ऋ० ८।९३।२२ के ग्रिफिथ कृत आंग्ल अनुवाद की पादटिप्पणी।
३. वरुणोऽपामधिपतिः। अथर्व० ५।२४।४।
४. आपः वरुणस्य पत्न्य आसन् इति श्रुत्यन्तरात्। महीधर (वाज सं० १२।३५)
५. अथर्व० ३।१०।२; तै० सं० ७।४।८।१; छा० ब्रा० २।२।१३।
६. अथर्व० ३।१०।८। ७. वही, ६।६०।१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मे पहले से ही पुरुष के लिए जाया और कन्या के लिए पति निश्चित किया है।[1] वैदिक काल के युवक-युवतियों में विवाह के द्वारा ही जीवन साथी प्राप्त करने की इच्छा दिखलायी पड़ती है।[2] विवाह का उद्देश्य मात्र काम-वासना की सन्तुष्टि नहीं, अपितु गृहस्थ धर्म का पालन[3] और पुत्रोत्पादन[4] था। ऋग्वेद (१०।८५ सूक्त) एवं अथर्ववेद (१४।१-२ सूक्तों) में विवाह-संस्कार का सुविकसित रूप दृष्टिगत होता है। पत्नी को पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी माना जाता था।[5] पति-पत्नी का साहचर्य-सम्बन्ध लोक-लोकान्तर व्यापी माना जाता था।[6] वे एक-दूसरे के प्रति पूर्णतः समर्पित और निष्ठावान् थे। वैदिक साहित्य में दाम्पत्य जीवन विषयक जो भी साक्ष्य उपलब्ध हैं उनको समग्र दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि वैदिक संस्कृति के आविर्भाव काल से बहुत पूर्ण सुदूर अतीत में दिव्य सृष्टि के काल से ही विवाह-संस्था सुप्रतिष्ठित थी।

लौकिक संस्कृत साहित्य में भी विवाह-संस्था का आरम्भ दिव्य सृष्टि के साथ ही बतलाया गया है। पुराणों, स्मृतियों एवं महाकाव्यों आदि में जहाँ एक प्रजापति अथवा परमात्मा के किसी विग्रह विशेष के नर और नारी रूपों में द्विधा विभक्त होने का उल्लेख है, वहाँ उनमें स्पष्टतः दाम्पत्य भाव का आरोप किया गया है।[7] व्यास-स्मृति के अनुसार पूर्वकाल में स्वयंभू की द्विधा विभक्त देह के आधे अंश से पति तथा आधे से पत्नियाँ बनीं थी।[8] सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष परम तत्त्व हैं। पुराणों के अनुसार द्विधा विभक्त परमात्मा के दाहिने अङ्ग को पुरुष तथा बाँये अङ्ग को प्रकृति कहते हैं।[9] परमात्मा के द्वारा क्षोभित पुरुष और प्रकृति के संयोग से ही सृष्टि होती है[10]।

---

१. त्वष्टा जायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम्। अथर्व० ६।७८।३।

२. ऋ० ७।९६।४; अथर्व० २।३०।५; १४।२।७४।

३. ऋ० १०।८५।३६; अथर्व० १४।१।५०। ४. अथर्व० १४।२।७?; पार० गृ० सू० १।६।६। ५. तै० सं० ६।१।८।५; शत० ब्रा० ५।२।१।१०।

६. वाज० सं० १५।५०; अथर्व० १२।३।३, १७; शत० ब्रा० ५।२।१।१०।

७. वायु पु० १०।७-८; लिङ्ग पु० ७०।२६७; देवीभाग० ९।२।२७; ब्रह्मवै० २।२।२९; ब्रह्म १।५१-२; शिव २।१।१६।१०-११; ५।२९।२४; मनु १।३२; कुमारसम्भव २।७।

८. पाटितोऽयं द्विजाः पूर्वमेकदेहः स्वयंभुवा।
पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्योऽभूवन्निति श्रुतिः॥-व्यास स्मृति २।१३।

९. योगेनात्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः।
पुमांश्च दक्षिणार्द्धाङ्गो वामार्द्धा प्रकृतिः स्मृता॥
—देवीभाग० ९।१।९; ब्रह्मवै० २।१।९।

१०. क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ।
ताभ्यां संजायते विश्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम्॥—कूर्म उ० ६।८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस तरह प्रकृति और पुरुष में दाम्पत्य भाव का आरोप किया गया है। देवीभागवत-पुराण में वेदान्त के सच्चिदानन्द ब्रह्म को पुरुष तथा माया को प्रकृति से अभिन्न बतला कर उन्हें भी दाम्पत्य की सीमा में रखा गया है।[१] लिङ्गपुराण में प्रकृति को स्पष्टतः पुरुष की पत्नी कहा गया है।[२] इस तरह पौराणिक साहित्य में आदि युगल के प्रादुर्भाव के साथ ही विवाह-संस्था के उदय को ख्यापित किया गया है। स्त्री-पुरुषात्मक सृष्टि के मूल कारण परम पुरुष को चाहे प्रजापति, स्वयम्भू, परमात्मा आदि जिस रूप में भी सम्बोधित किया गया हो, इतना तो स्पष्ट ही है कि उपर्युक्त वचनों में सृष्टि के आदिम विकास की उस अवस्था का संकेत है जब कि नर-नारी दोनों की बीज-स्थिति उभय-कारणभूत एक ही शरीर में रही होगी और कालान्तर में उस मूल शरीर से ही वे दोनों पृथक् अस्तित्व प्राप्त करके जगत्-सृष्टि हेतु प्रथम दम्पती बने होंगे। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में समस्त चराचर जगत् को प्रकृति-पुरुषात्मक कहा गया है। अग्निसोमात्मक जगत् में ये ही दो तत्त्व व्याप्त हैं। इनमें पुरुष को वासुदेव-विष्णु स्वरूप तथा प्रकृति को लक्ष्मी स्वरूप कहा गया है।[3] इस तरह लक्ष्मी-नारायण से सादृश्य बतला कर अग्नि-सोमात्मक जगत् की सृष्टि के मूल तत्त्वों अर्थात् प्रकृति और पुरुष में दाम्पत्य के आरोप से स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति में विवाह-संस्था का मूल उद्गम भी सृष्टि के प्रारम्भ के साथ ही माना गया है। प्रकृति-पुरुष रूप मूल-युगल के अंशज ही समस्त नर-नारी हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में यह स्पष्ट कहा गया है कि जगत् की समस्त स्त्रियाँ प्रकृति की अंशजा हैं और समस्त पुरुष उस परम-पुरुष के ही अंशज हैं।[४] शैव पुराणों के अनुसार शिव की देह से उत्पन्न प्रकृति एवं पुरुष ही क्रमशः निखिल स्त्रीलिङ्ग एवं निखिल पुल्लिङ्ग जीवों के रूप में प्रकट हुए हैं।[५] वैष्णव पुराणों में देव, तिर्यक् (पशु) एवं

---

१. भागद्वयवती यस्मात् सृजामि सकलं जगत्।
तत्रैकभागः संप्रोक्तः सच्चिदानन्दनामकः ॥६५
माया प्रकृतिसंज्ञस्तु द्वितीयो भाग ईरितः।—देवीभाग० १२।८।६५-६।

२. प्रकृतिस्तस्य पत्नी च पुरुषो लिङ्गमुच्यते।—लिङ्ग पु० ७५।६।

३. पुरुषः प्रकृतिश्चोभौ जगत्सर्वं प्रकीर्तितम्।
अग्निसोमात्मकं सर्वं तथा तस्य प्रकीर्तितम्॥१॥
वासुदेवश्च लक्ष्मीश्च तावेव परिकीर्तितौ॥ विष्णुधर्मो० ३।१२९।१-२।

४. योषितः प्रकृतेरंशाः पुमांसः पुरुषस्य च। ब्रह्मवै० ३।४०।८।
तु०—नरस्तु पुरुषः प्रोक्तो नारी प्रकृतिरुच्यते। पद्म २।८।५३।

५. स्त्रीलिङ्गमखिलं देवी प्रकृतिर्मम देहजा॥३
पुल्लिंगं पुरुषो विप्रा मम देहसमुद्भवः।
उभाभ्यामेव वै सृष्टिर्मम विप्रा न संशयः॥
लिङ्ग पु० ३३।३-४; द्र०-लिङ्ग उ० ११।३२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मनुष्य आदि समस्त पुल्लिङ्गों को विष्णु एवं समस्त स्त्रीलिङ्गों को लक्ष्मी स्वरूप कहा गया है।[1] शैव मत के पोषक पुराणों में नाना दिव्यादिव्य दम्पतियों को ही नहीं, सभी पुल्लिङ्ग-वाच्य एवं स्त्रीलिङ्ग-वाच्य प्राणियों को शिव-पार्वती स्वरूप बतलाया गया है।[2] विष्णु-लक्ष्मी और शिव-पार्वती की ही भाँति ब्रह्मा और गायत्री (या सावित्री) का युगल भी पुराण-प्रसिद्ध है। बृहत्पराशर स्मृति में कहा गया है कि एकाकी प्रसन्न न रह पाने पर अक्षर परमात्मा ने गायत्री का चिन्तन किया और वह प्रत्यक्ष हुई। वे दोनों पति-पत्नी बने। उनसे ही जगत् के अन्य दम्पतियों की सृष्टि हुई।[3] इस तरह जगत् के सभी पति-पत्नियों को लक्ष्मी-नारायण, शिव-पार्वती तथा ब्रह्मा-गायत्री का अंशज बतला कर पौराणिक साहित्य में विवाह-संस्था की दैवी उत्पत्ति सूचित की गयी है।

यह उल्लेखनीय है कि वैदिक साहित्य की अपेक्षा पौराणिक साहित्य में (अतिरञ्जना-पूर्ण और काल्पनिक वर्णनों का बाहुल्य होने पर भी) प्राकृतिक सृष्टि से मानुषी-सृष्टि तक और मानव-सभ्यता के आविर्भाव बिन्दु से लेकर इसकी अग्रिम विकासावस्था तक के इतिहास विषयक परम्पराओं की विश्वसनीय चर्चा प्राप्त होती है। पुराणों में मानव सर्ग के पूर्व देवसर्ग की कल्पना है और दैवी-सृष्टि के आविर्भाव के साथ ही विवाह-संस्था का भी आविर्भाव बतलाया गया है। विभिन्न पुराणों में देवताओं के द्वारा भी स्वयं अपने शरीरार्द्ध से अपनी पत्नी का सृजन किये जाने का उल्लेख है। ब्रह्मा को एकाकी तपश्चर्या करना अच्छा नहीं लगा तो उन्होंने अपने शरीरार्द्ध से अपनी भार्या सावित्री को उत्पन्न किया।[4] ब्रह्मा तथा सावित्री का यह मिथुन लोक-सृष्टि का आदि एवं महत्त्वपूर्ण मिथुन होने से इसे भगवान् की विभूतियों में गिनाया गया है।[5] रुद्र (शिव) का प्रादुर्भाव अर्द्धनारीश्वर विग्रह में ही हुआ था। उन्होंने ब्रह्मा के वचनानुसार

---

१. देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नाम्ना भगवान् हरिः।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम्।। विष्णु १।८।३५।

२. लिङ्ग उ० ११।३-२४।

३. गतभीरद्वितीयोऽपि एकाकी स न मोदते।
चिन्तयामास गायत्रीं प्रत्यक्षा साऽभवत् तदा ।।
गायत्री साऽभवत् पत्नी प्रणवोऽभूत् पतिस्तदा।
पुनरन्यौ च दम्पत्याविति ताभ्यामभूज्जगत् ।।—बृहत्पराशरस्मृति ३।८-९।

४. मत्स्य १७१।२१-२; हरिवंश ३।१४।२२-३, द्र०—पद्म १।४२।६९-७०; भाग० ६।१८।३०; मत्स्य ३।३०।३२।

५. मिथुनानामजस्त्वहम्। भाग० ११।१६।२६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपने शरीर को नर और नारी दो रूपों में विभक्त किया था।[१] शैव पुराणों के अनुसार अर्द्ध-नारीनर देह वाले भगवान् शिव स्वेच्छया द्विधा विभक्त होकर स्त्री और पुरुष बने थे।[२] कृष्ण भी स्त्री और पुरुष रूप में द्विधा विभक्त हुए थे।[३] राधा की उत्पत्ति उनके वामार्द्धांग से बतलायी गयी है।[४] ब्रह्मा द्वारा कृष्ण के साथ राधा का विवाह कराये जाने की भी कल्पना की गयी है।[५] जिन अन्य देवों की पत्नियों का प्रादुर्भाव उनके वामार्द्धांग से बतलाया गया है उनमें वायु[६], वरुण[७] और कुबेर[८] प्रभृति प्रमुख हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण की एक कल्पना के अनुसार जो देवी जिस देव के बाँये अर्द्धांग से उत्पन्न हुई थी वह उसी देव को कृष्ण ने पत्नी रूप में दी थी। उन्होंने महालक्ष्मी (एवं सरस्वती) भगवान् विष्णु को, सावित्री ब्रह्मा को, मूर्ति धर्म को, रति काम को, मनोरमा कुबेर को तथा अन्य जो देवी जिस देव के वामाङ्ग से उत्पन्न हुई थी वह उसे पत्नी रूप में दी थी।[९] इस तरह पौराणिक वृत्तान्तों के अनुसार एक परमेश्वर या प्रजापति या किसी भी ईश्वरीय-शक्ति के द्वारा अपनी देह का पति-पत्नी रूप में द्विधा विभाजन अथवा किसी देवता द्वारा अपने वामाङ्ग से अपनी पत्नी का सृजन विवाह-संस्था के आविर्भाव की पहली अवस्था है। अगली अवस्था वह मानी जा सकती है जब एक ही मूल पुरुष प्रजापति या ब्रह्मा के द्वारा अपनी मिथुन सन्तान रूप में दम्पती की सृष्टि की जाती है। प्रश्नोपनिषत् (१।४) के अनुसार प्रजा-कामना से तपस्या करके प्रजापति ने रयि और प्राण के मिथुन को उत्पन्न किया और उनसे आशा की कि वे प्रजा की सृष्टि को बढाएँगे। रयि और प्राण को मिथुन सृष्टि का प्रथम प्रतिनिधि कहा जा सकता है। यह प्रसंग प्रतीक सृष्टि का है। ऐतिहासिक दृष्टि से मिथुन दम्पती के प्रथम दृष्टान्त के रूप में दक्ष प्रजापति एवं उसकी पत्नी को गिनाया जा

---

१. मार्कं० ४७।१०; लिङ्ग पू० ५।२८; वराह २।४६-५०; वायु पू० ९।७०; विष्णु १।७।१२-४; स्कन्द १।२।२२।३६-८।

२. अर्द्धनारीनरवपुस्तेजसा ज्वलनोपमः।
स्वेच्छयाऽसौ द्विधाभूतः पृथक् स्त्री पुरुषः पृथक्॥ लिङ्ग पू० ७०।३२५।
तु०—पृथक् चकार वपुषो भागाद् देवीं शिवां शिवः। शिव ३।३।१३।

३. देवीभाग० ९।२।२६-७; ब्रह्मवै० २।२।२८-९।

४. ब्रह्मवै० १।५।२५-६; देवीभाग० ९।८।६२।

५. कृष्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने वने।
विवाहं कारयामास विधिना जगतां विधिः॥ ब्रह्मवै० २।४९।४२।

६. देवीभाग० ९।२।४२; ब्रह्मवै० २।२।४४।

७. देवीभाग० ९।२।४४; ब्रह्मवै० २।२।४६।

८. ब्रह्मवै० १।५।६२। ९. वही १।६।१-३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सकता है। इतिहास-पुराण में बतलाया गया है कि ब्रह्मा ने अपने दक्षिण अंगुष्ठ से दक्ष और वामांगुष्ठ से उसकी पत्नी की सृष्टि की थी।[१] दक्ष की सृष्टि नौ प्रजापतियों के साथ भी बतलायी गयी है।[२] विष्णुपुराण के अनुसार ब्रह्मा ने भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ संज्ञक नौ प्रजापतियों की मानसी सृष्टि की थी तथा ख्याति, संभूति, क्षमा, प्रीति, सन्नति, ऊर्जा, अनसूया और प्रसूति नामक नौ मानसी कन्याओं की सृष्टि करके इन्हें उन प्रजापतियों को पत्नी रूप में प्रदान किया था।[३] ब्रह्मा की अन्य सृष्टि भी मानसी[४] एवं अयोनिजा[५] थी, जिसका उल्लेख यहाँ अप्रासङ्गिक होने से नहीं किया जा रहा है। ब्रह्मा द्वारा की गयी मानसी सृष्टि के प्रत्येक स्तर में विवाह-संस्था दिखलायी पड़ती है।

भारतीय संस्कृति में स्वायम्भुव मनु एवं उनकी पत्नी शतरूपा को आदि मानव-युगल माना गया है।[६] इतिहास-पुराण में इन्हें ब्रह्मा की द्विधा विभक्त देह के आधे-आधे अंशों से उत्पन्न बतलाया गया है।[७] किन्तु कहीं पर इनको ब्रह्मा की मानसी सृष्टि में भी गिनाया गया है।[८] यह भी कल्पना की गयी है कि शतरूपा ने वर्षों तक दुश्चर तप करके मनु को पति रूप में प्राप्त किया था[९] और मनु ने भी उसे तपश्चर्या से निष्पाप होने पर ही पत्नी रूप में ग्रहण किया था।[१०] शिवपुराण (२।१।१६।१३) के अनुसार मनु ने शतरूपा को विवाह विधि से प्राप्त किया था। मनु-शतरूपा को आदि मानव-दम्पती मान कर ही भगवान् की विभूतियों में गिनाया गया है।[११]

पुराणों में आरम्भिक युग के अनेक मिथुन दम्पतियों का उल्लेख है। रुचि प्रजापति के यज्ञ नामक पुत्र तथा दक्षिणा नामक कन्या को मिथुन-दम्पती बतलाया गया

---

१. आदिपर्व ६६।१०-११; हरिवंशपु० १।२।५२; ३।६६।२०; मार्कं० १०१।९-१०; गरुड पू० ५।५०।

२. दक्ष का एक अन्य जन्म प्राचेतस दक्ष के रूप में हुआ था। आदिपर्व ७५।५; विष्णु १।१५।७४।

३. विष्णु १।७।४-९। ४. ब्रह्माण्ड २।७।१८६-१९१; ब्रह्म ३।३-५; ७०।१९५; लिङ्ग पू० ७०।१८४-८। ५. ब्रह्म १।५५।

६. प्रथमः संप्रयोगः स कल्पादौ समवर्तत। ब्रह्माण्ड २।९।३८; वायु पू० १०।१३।

७. हरिवंशपुराण १।१।५०-५१; ब्रह्माण्ड २।९।३२-६; तु०-वायु पू० १०।७-८; कूर्म पू० ८।६-६; भाग० ३।१२।५२-३; लिङ्ग पू० ७०।२६७-२६९।

८. देवीभाग० १०।१।८-६।

९. हरिवंशपुराण १।२।३; ब्रह्माण्ड २।९।३५-६; कूर्म पू० ८।९-१०; वायु पू० १०।१०-११; लिङ्ग पू० ७०।२७०।

१०. विष्णु १।७।१७; गरुड पू० ५।१९।

११. स्त्रीणां तु शतरूपाहं पुंसां स्वायम्भुवो मनुः॥ भाग० ११।१६।२५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है।[१] यद्यपि यज्ञ और दक्षिणा का सम्बन्ध स्पष्टतः प्रतीकात्मक है, तथापि पुराणों में यज्ञ के द्वारा दक्षिणा के साथ विवाह का उल्लेख है,[२] जिससे विदित होता है कि पुराणकारों की दृष्टि में आदि सृष्टि के मिथुनों में दाम्पत्य भाव सम्भव था। यह दाम्पत्यभाव प्रायः प्रतीकात्मक सृष्टि की मिथुन सन्तानों में अधिक बतलाया गया है। अधर्म से उसकी पत्नी हिंसा में अनृत तथा निकृति संज्ञक मिथुन दम्पती के जन्म की कल्पना प्राप्त होती है। इनकी सन्तानें भी मिथुन दम्पती के रूप में कल्पित की गयी हैं।[३] श्रीमद्भागवत पुराण (४।८।२-४) में अधर्म एवं उसकी पत्नी मृषा की वंश-परम्परा में कई पीढ़ियों तक परस्पर भ्राता-भगिनी मिथुनों के द्वारा दाम्पत्य भाव में आबद्ध होकर मिथुन सन्तानें उत्पन्न किये जाने का उल्लेख है।

ऋग्वेद एवं अन्य वैदिक संहिताओं में विराट् पुरुष के मुख, बाहु, उदर और चरणों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की उत्पत्ति बतलाई गई है।[४] पुराणों में इस कल्पना को कुछ अधिक बढ़ा कर यह कहा गया है कि अपने मानस पुत्रों—दिव्य ऋषियों और प्रजापतियों को सृष्टि कर्म में प्रवृत्त करने पर भी इसकी वृद्धि रुक जाने पर ब्रह्मा ने सत्याभिध्यान (सत्य-संकल्प) के द्वारा पहले अपने मुख से सहस्र मिथुनों की सृष्टि की थी, जो सतोगुण-बहुल थे। तदनन्तर अपने वक्षःस्थल से अन्य सहस्र मिथुन उत्पन्न किये, जो रजोगुण-बहुल थे। तत्पश्चात् सहस्र मिथुन अपने उरुओं से उत्पन्न किये, जो रजोगुण एवं तमोगुण से सम्मिश्रित थे और अन्त में अपने चरणों से भी सहस्र मिथुन उत्पन्न किये, जो तमोगुण-बहुल थे।[५] (यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सहस्र शब्द केवल एक हजार का ही बोधक नहीं, अपितु यह अनन्त-संख्या या असंख्य का भी बोधक है।) ये समस्त युगल हर्षयुक्त एवं अन्योऽन्य के प्रति कामाकृष्ट होकर मैथुन में प्रवृत्त हुए थे और तब से मिथुनों की उत्पत्ति होने लगी थी।[६] पुराणों के अनुसार आद्य कृतयुग में मिथुनों की उत्पत्ति होती थी।[७] तब स्त्रियों को प्रतिमास रजःस्राव नहीं होता था। अतः मैथुन करने पर भी सन्तानोत्पत्ति नहीं होती थी। उनके द्वारा अपने जीवन के अन्तिम दिनों में मन से ध्यान किये जाने पर केवल एक बार एक मिथुन (स्त्री-पुरुष युगल) उत्पन्न होता था।[८] इस तरह की मिथुन सन्तानें उनकी विशुद्ध संकल्प शक्ति

१. मार्कं० ५०।१६-७; ब्रह्माण्ड २।९।२३-४; वायु पू० १०।१९; विष्णु० १।७।२०; भाग० ४।१।३-४। २. तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः।—भाग० ४।१।६। ३. विष्णु० १।७।३२-४; लिङ्ग पू० ७१।२९८-९।
४. ऋ० १०।९०।१२; वाज० सं० ३१।११; अथर्व० १९।६।६।
५. वायु० पू० ८।३५-९; मार्कं० ४९।३-७; तु०—ब्रह्माण्ड २।७।३३-६।
५. वायु० पू० ८।४०-४१; मार्कं० ४९।७-८।
७. कृते तु मिथुनोत्पत्तिः। कूर्म पू० २९।१४; लिङ्ग पू० ३९।१४।
८. मार्कं० ४९।९-११; तु०-वायु० पू० ८।४१-४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के कारण ही उत्पन्न होती थी,[1] अतः उन्हें मानसी सृष्टि के अन्तर्गत रखा जा सकता है। मानसी सृष्टि का जो क्रम प्रजापति (ब्रह्मा) ने प्रवर्तित किया था, वह इन प्रजाओं के समय तक विद्यमान था।[2] इतिहास-पुराण के अनुसार उत्तरकुरु प्रदेश में भी मिथुन-सन्तानों की उत्पत्ति होती थी। वे मिथुन एक साथ जन्म लेते, साथ-साथ बड़े होते तथा चक्रवाक युगल की तरह परस्पर अनुरक्त रहते हुए यावज्जीवन एक साथ रहते थे।[3]

इतिहास-पुराण में प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार एक मूल शरीर के दम्पती रूप में द्विधा विभाजन को विवाह-संस्था के प्रादुर्भाव की प्रथम अवस्था कहा जा सकता है। इसकी अगली अवस्था है एक मूल पुरुष के द्वारा दम्पती की मानसी सृष्टि। इस सृष्टि के मिथुन सन्तानों में परस्पर दाम्पत्य भाव का सम्बन्ध होता था। कुछ मिथुन दम्पतियों से अन्य मिथुनों की उत्पत्ति के भी वर्णन प्राप्त होते हैं। यह स्मरणीय है कि मिथुन सन्तानों में दाम्पत्य भाव के ये पौराणिक वर्णन प्रायः दिव्य, मानसी एवं अतिमानवीय धरातल की सृष्टि-विषयक हैं। इन वर्णनों को ऋग्वैदिक काल से भी सहस्रों वर्ष पूर्व की प्रागैतिहासिक काल की, किं वा सृष्टि के आरम्भ काल की सामाजिक अवस्था विषयक माना जा सकता है। ऋग्वेद-काल में मिथुन सन्तानों में भ्राता-भगिनी भाव का सम्बन्ध होता था, न कि दाम्पत्य भाव का। ऋग्वेद (१०।१०।३) में देवों में भगिनी के साथ यौन-सम्बन्ध का जो संकेत है, उसे पुराणोक्त मिथुन-सृष्टि विषयक माना जा सकता है। ऋग्वैदिक ऋषि की दृष्टि में तो अतीत काल के समाज में भी मिथुन सन्तानों में दाम्पत्य भाव नहीं होता था। ऋग्वेद (१०।१०।४) में यमी के प्रणय-प्रस्ताव को अस्वीकृत करते हुए यम ने स्पष्ट कहा है कि जो आचरण पहले किसी ने नहीं किया, उसे हम कैसे कर सकते हैं ? इस पर यमी ने यम को प्रलोभित करने के ध्येय से कहा था कि त्वष्टा ने हमें गर्भ से ही दम्पती बनाया है (ऋ० १०।१०।५)। इस वचन को कुछ लेखक प्राचीन काल में यमजों में विवाह-सम्बन्ध का द्योतक बतलाते हैं,[4] किन्तु उनका यह मत अनुचित एवं अप्रामाणिक है, क्योंकि ऋग्वैदिक काल में या उससे पूर्ववर्ती काल में भी यदि यमजों में कभी विवाह-सम्बन्ध समाज-सम्मत रहा होता तो यम ने यमी के

---

१. तासां विशुद्धात् संकल्पाज्जायन्ते मिथुनाः प्रजाः। वायु पु० ८।५७।
तु०-(क)—तासां विना तु संकल्पं जायन्ते मिथुनाः प्रजाः। मार्क० ४९।२२।
(ख)—तासां विना तु संकल्पाज्जायन्ते मिथुनात् प्रजाः। ब्रह्माण्ड २।७।५२।

२. इत्येषा मानसी सृष्टिर्या पूर्वं वै प्रजापतेः। मार्क० ४९।१२।

३. महा० भीष्मपर्व ७।८-११; ब्रह्माण्ड २।१५।७७-८०; मार्क० ५९।२१-२; वायु पु० ४५।१७-२०।

४. द्र०—वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० १२६; सम आस्पेक्ट्स् आफ द अर्लियस्ट सोशल हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ७४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रस्ताव का विरोध नहीं किया होता। यमी ने या तो अतिमानवीय या दिव्य सृष्टि के प्रागैतिहासिक मिथुनों के सादृश्यवश या अपने समाज के दम्पतियों के आजीवन साहचर्य से प्रभावित होकर यम के साथ अपने जन्मना साहचर्य को तद्वत् मानते हुए संभवतः कामावेश में ऐसा कहा होगा। आगे यम के वचनों से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि भगिनी के साथ यौन-सम्बन्ध को पहले से ही पापपूर्ण माना जाता था।[1] अथर्ववेद में भी भगिनीगमन को अधःपतन का कारण कहा गया है।[2] पौराणिक काल में भी यमजों में विवाह नहीं होता था। अन्धक-वंशीय आहुक ने अपनी जुड़वाँ बहिन आहुकी का विवाह अवन्ती के राजवंश में किया था।[3] अतः यह कहा जा सकता है कि दिव्य, मानसी एवं अतिमानवीय सृष्टि के मिथुनों के अतिरिक्त शेष मानव समाज में मिथुनों या भ्राता-भगिनी में विवाह का कोई भी सुनिश्चित प्रमाण वैदिक और पौराणिक साहित्य में उपलब्ध नहीं होता। एक पितृशरीर से मिथुन दम्पती के जन्म का एक परवर्ती काल का उदाहरण राजा पृथु एवं उसकी पत्नी—अर्चि का है। श्रीमद्भागवत पुराण (४।१५।१-५) के अनुसार इस युगल का जन्म ऋषियों के शाप से मृत राजा वेन की भुजाओं के मन्थन से हुआ था। किन्तु राजा पृथु का जन्म ही नहीं, उसके पृथिवी-दोहन प्रभृति कर्म भी अलौकिक होने के कारण उसे अतिमानवीय सृष्टि के पुरुषों की ही श्रेणी में रखा जाना चाहिए।

दिव्य एवं अतिमानवीय सृष्टि में भी मिथुन दम्पती के मात्र कुछ ही उदाहरण हैं। पुराणों से विदित होता है कि आरम्भिक सृष्टि में भी नियमतः सभी दम्पतियों से मिथुन सन्तानों का ही जन्म नहीं होता था। पुनश्च आरम्भिक सृष्टि में भी यथासम्भव नितान्त निकट-सम्बन्धियों में विवाह नहीं होता था। उदाहरणार्थ—स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत तथा उत्तानपाद संज्ञक दो पुत्र थे और प्रसूति, आकूति एवं देवहूति संज्ञक तीन कन्याएँ थी। उन्होंने प्रसूति का विवाह दक्ष प्रजापति से तथा आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से किया था[4] और देवहूति का विवाह प्रजापति कर्दम से किया था (भाग० ३।२२।१४-२६)। दक्ष प्रजापति ने प्रसूति से उत्पन्न चौबीस कन्याओं में से तेरह धर्म को दी थी और शेष ग्यारह कन्याओं में से सती भव (रुद्र) को, ख्याति भृगु को, सम्भूति मरीचि को, स्मृति अङ्गिरा को, प्रीति पुलस्त्य को, क्षमा पुलह को, सन्नति क्रतु को, अनसूया अत्रि को, ऊर्जा वसिष्ठ को, स्वाहा अग्नि को तथा स्वधा पितरों को दी थी।[5] श्रीमद्भागवत पुराण (३।२४।२२-४) के अनुसार

१. ऋ० १०।१०।१२। २. अथर्व० ६।१२०।२; २०।१२८।२।

३. ब्रह्माण्ड ३।३७।१२८; मत्स्य ४४।७०; तु० हरिवंश पुराण १।३७।२६।

४. ब्रह्माण्ड २।९।४२-३; मार्क० ४७।१६; विष्णु १।७।१९-२०।

५. ब्रह्माण्ड २।९।४९-५७; मार्क० ४७।२०-२५; वायु पु० १०।२४-३१; विष्णु १।७।२२-७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कर्दम ने देवहूति से उत्पन्न नौ कन्याओं में से कला मरीचि को, अनसूया अत्रि को, श्रद्धा अंगिरा को, हविर्भू पुलस्त्य को, गति पुलह को, क्रिया क्रतु को, ख्याति भृगु को, अरुन्धती वसिष्ठ को तथा शान्ति अथर्वा को प्रदान की थी। पुराणों में प्राचीन ऋषियों तथा उनकी पत्नियों के विषय में प्राप्त ऐसी कथाओं से स्पष्ट होता है कि वे न तो मिथुन दम्पती थे और न एक माता-पिता की सन्तान ही थे।

आरम्भिक सृष्टि के मिथुन सन्तानों तथा अन्य निकट सम्बन्धियों के विवाह-सम्बन्ध को नैतिक मूल्यों की स्थापना करने वाले इतिहास-पुराणादि साहित्य एवं धर्मशास्त्रों में कभी गर्हित नहीं बतलाया गया है। आदि काल में देवों की ही नहीं, मनुष्यों की भी मानसी सृष्टि संभव बतलायी गयी है। संभवतः मानसी सृष्टि के अन्तर्गत होने से ही आदि युगलों के दाम्पत्य भाव को दोष-पूर्ण नहीं माना गया है। पुनश्च निकट सम्बन्धियों में विवाह या यौन-सम्बन्ध में दोष की संभावना तभी होती जब कि उसका कोई मानसिक या शारीरिक दुष्परिणाम व्यक्ति, परिवार या समाज में संलक्षित होता। दिव्य और मानसी सृष्टि में ऐसी कोई बात नहीं हो सकती थी। आरम्भिक अवस्था में ऐसे सम्बन्ध समाज के हित में होने से दोष-पूर्ण नहीं माने जा सकते थे। तथापि मत्स्य-पुराण में ऐसे सम्बन्ध पर दोष की आशङ्का करते हुए कहा गया है कि प्राचीन सृष्टि में सगोत्रों में परस्पर विवाह-सम्बन्ध कैसे हुआ ? इसके उत्तर में भगवान् मत्स्य ने कहा है कि आदि सृष्टि दिव्य, अतीन्द्रिय, दिव्य-तेजोमय एवं दिव्य-ज्ञान से प्रादुर्भूत है। जैसे सर्पों की गति को सर्प ही जानते हैं और पक्षी ही आकाश के विषय में जानते हैं, तद्वत् दिव्य-सृष्टि के विषय में दिव्य पुरुष ही जानते हैं, मनुष्य नहीं। देवों को कार्य और अकार्य का कोई शुभाशुभ फल नहीं मिलता। अतः उनके विषय में कोई विचार करना मनुष्यों के लिए उचित नहीं है (मत्स्य ४।२-६)। पुनश्च आदि सृष्टि में यह व्यवहार प्रायः देवों या दिव्य-सृष्टि के ही प्राणियों में अधिक था। मत्स्यपुराण (६१।१४) में उनके विषय में स्पष्ट कहा गया है कि वे अपने किसी भी आचरण से धर्म या अधर्म को नहीं प्राप्त करते। मनुष्यों में निकट-सम्बन्ध के विवाह अतिमानवीय तथा आरम्भिक सृष्टि के अतिरिक्त इतिहास-पुराण में अन्यत्र कहीं नहीं बतलाये गये हैं। धर्मशास्त्रों में भी निकट सम्बन्ध के विवाहों का कोई विधान नहीं है।[1] प्राचीन प्रजापतियों एवं ऋषियों की सृष्टि अतिमानवीय स्तर की थी। अतः उनके दाम्पत्य के विषय में तो

---

१. दक्षिण में मातुल (मामा) की कन्या तथा क्वचित् बुआ की कन्या के साथ प्रचलित विवाह को लोकाचार के रूप में धर्मशास्त्र में मान्यता मात्र दी गयी है, किन्तु इसका विधान नहीं किया गया है। इस विषय में विस्तृत विवरण हेतु देखिए—हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग २, खन्ड १, पृ० ४५२-५००।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु उनके वंशजों के लिए अपने गोत्रों और प्रवरों के अन्दर भी विवाह-सम्बन्ध निषिद्ध था।[१]

ब्रह्मा की मानसी सृष्टि की चर्चा इतिहास-पुराण में ही नहीं, वैज्ञानिक प्रकृति के ग्रन्थों में भी है। प्रशस्तपादभाष्य (पृ० १३१) में भी दक्ष आदि प्रजापतियों, मनु, देवर्षियों और पितृगणों की सृष्टि को ब्रह्मा की मानसी सृष्टि बतलाया गया है। पौराणिक साहित्य के अनुसार दक्ष प्रजापति ने भी आरम्भ में मानसी सृष्टि की थी।[२] उसकी इस मानसी सृष्टि में जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिद—ये चतुर्विध जीव सम्मिलित थे[३]। अनेक पुराणों का यह स्पष्ट कथन है कि दक्ष ने देव, ऋषि, गन्धर्व, मनुष्य, असुर, यक्ष, राक्षस, नाग, पशु, पक्षी आदि की मानसी सृष्टि की थी।[४] किं बहुना उसकी इस मानसी सृष्टि में नभचर, स्थलचर एवं जलचर सभी तरह के जीव सम्मिलित थे।[५] स्त्री-पुरुष के शारीरिक सम्बन्ध के विना प्रजा की सृष्टि के ये वर्णन अलौकिक-आध्यात्मिक शक्तियों से अपरिचित व्यक्ति को भले ही सन्दिग्ध लगें, किन्तु प्राचीन ऋषि-मुनि, दार्शनिक एवं कविजन इनकी वास्तविकता के विषय में सन्देह नहीं करते थे। कणाद ने (वैशेषिक सूत्र ४।२।६ में) स्वीकार किया है कि शरीर द्विविध होते हैं—योनिज एवं अयोनिज। इस सूत्र के प्रशस्तपाद भाष्य में कहा गया है कि देवों और ऋषियों के शरीर योनिज नहीं, अपितु अयोनिज होते हैं। उनकी उत्पत्ति शुक्र-शोणित के सन्निपात से नहीं, अपितु धर्म विशेष युक्त परमाणुओं से होती है।[६] वैशेषिक दर्शन में वरुणलोक, आदित्यलोक एवं मरुत् लोक के शरीर भी अयोनिज बतलाये गये हैं। पुराणों में योग बल से भी मानसी सृष्टि को सम्भव माना गया है। लिङ्गपुराण (पू०५।१०) के अनुसार ब्रह्मा ने योग-विद्या के बल से मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ की सृष्टि की थी। इन्हीं ऋषियों की उत्पत्ति ब्रह्मा के विभिन्न अङ्गों से बतलाने वाली एक परम्परा ब्रह्माण्ड (२।९।२१-४), वायु (पू० ९।६१-५) तथा लिङ्ग पुराण (पू० ७०।१८४-८) में और दूसरी श्रीमद्भागवत पुराण (३।१२।२३-४) में मिलती है। इन ऋषियों के जन्म के विषय में एक विचित्र वृत्तान्त महाभारत (अनु० पर्व ८५।१०४-८), ब्रह्माण्ड (३।१।३५-४७), वायु (उ० ४।३७-४७) एवं मत्स्यपुराण (१९५।७-११) में उल्लिखित है। जिस सृष्टि के आविर्भाव विषयक

१. द्र०—मत्स्य १९५।३२, ३६, ४०, ४२, ४५; १९६।११, २०, २५, २९, ३२, ३५, ३६, ४०, ४२, ४५, ४७, ४९, ५१, ५४; १९७।६, ८, १०; १९८।७, ६, १२, १४, १६, १७, १९, २१; १९९।११, १५, १९; २००।१४, १८, १९; २०१।३६; २०२।४, ५।

२. वायु उ० २।३९। ३. गरुड पू० १६।३।

४. ब्रह्माण्ड ३।२।२-३; वायु उ० ४।१२५-६; हरिवंश १।३।३; कूर्म पू० १६।१; ब्रह्म ३।३। ५. भाग० ६।४।१६। ६. प्रशस्तपादभाष्य पृ० ८२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वृत्तान्त ही विलक्षण हों उसे अतिमानवीय तो कहना ही पड़ेगा। इस सृष्टि की प्रतीकात्मकता भी कहीं व्यञ्जित की गयी है। यथा— दक्ष को प्राण तथा मनु को संकल्प कहा गया है।[1] प्रतीक सृष्टि के कुछ मिथुनों का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। इस सृष्टि के कुछ मिथुनों की उत्पत्ति ब्रह्मा से भी बतलायी गयी है। यथा—ब्रह्मा के तमस से अधर्म एवं शोक से उस (अधर्म) की पत्नी हिंसा का जन्म बतलाया गया है।[2]

मानसी सृष्टि के दम्पती-विषयक कल्पना को प्राचीन साहित्य के परिप्रेक्ष्य में देखने पर नितान्त मिथ्या नहीं कहा जा सकता। पुराणों में कहा गया है कि पूर्वकाल के स्त्री-पुरुषों को मैथुन सम्बन्ध के विना केवल संकल्प से, परस्पर दर्शन अथवा स्पर्श से सन्तान-प्राप्ति होती थी।[3] प्राचेतस (प्रचेताओं के पुत्र रूप में उत्पन्न) दक्ष के समय से ही मैथुनी सृष्टि प्रारम्भ हुई थी।[4] महाभारत शान्तिपर्व (२०७।३८-४०) में कहा गया है कि आदि युगों की प्रजाओं में मैथुन की प्रवृत्ति नहीं थी। आदि कृतयुग में संकल्प शक्ति से तथा आदि त्रेता में दम्पती के परस्पर अङ्ग-स्पर्श से सन्तान उत्पन्न होती थी। आदि द्वापर (एवं कलियुग) से मैथुन से सन्तानोत्पादन होने लगा था। पुराणों में भी आदि कृतयुग की सृष्टि को मानसी बतलाया गया है।[5] मानसी सृष्टि की क्षमता देवों के अतिरिक्त तपस्वी मुनियों में भी थी। रामायण (१।३३।१७-८) में उल्लेख है कि सन्तान-कामना से आयी हुई सोमदा नामक गन्धर्वी को चूली नामक मुनि ने अपने ब्रह्मतेज के बल पर ब्रह्मदत्त नामक मानस पुत्र प्रदान किया था। महाभारत (शल्यपर्व ५२।३-४) में उल्लेख है कि कुणि-गर्ग नामक तपस्वी मुनि ने अपनी मनः शक्ति के बल पर एक मानसी कन्या को उत्पन्न किया था। हरिवंशपुराण (१।४५।४६) में ऊर्व नामक मुनि ने कहा है कि वह दारग्रहण किये विना अपनी मनःशक्ति से आत्मज पुत्र को उत्पन्न कर सकते हैं। यद्यपि ब्रह्मा एवं दक्ष प्रजापति द्वारा की गयी मानसी सृष्टि में नारी की विशेष भूमिका या सहयोग का उल्लेख नहीं है, तथापि क्वचित् मानसी सृष्टि में नारी का मनसा ध्यान किये जाने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। शिव ने सती का ध्यान करके अपने सदृश सहस्रों मानस पुत्रों की सृष्टि की थी—वे सभी रुद्र कहे गये हैं।[6] मानसी सृष्टि का तात्पर्य मन की संकल्प शक्ति से उत्पन्न प्रजाओं से ही

---

१. प्राणो दक्षस्तु विज्ञेयः संकल्पो मनुरुच्यते।
वायु पू० १०।१८; तु लिङ्ग पू० ७०।२७७।

२. अधर्मस्तमसो जज्ञे हिंसा शोकादजायत। लिङ्ग पू० ७०।२६५।

३. विष्णु १।१५।८०।

४. हरिवंश १।२।५०; मत्स्य ५।२; ब्रह्माण्ड २।३७।४८; ब्रह्म २।५०; लिङ्ग पू० ६३।२; वायु उ० २।४५।

५. स्कन्द १।२।४०।१७५। ६. ब्रह्माण्ड २।९।६८-९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है।[१] संकल्प शक्ति से सन्तानोत्पादन के अतिरिक्त दर्शन एवं स्पर्श से सन्तानोत्पादन की बात भी पौराणिक साहित्य में कही गयी है। संभवतः देवताओं एवं ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न सिद्ध पुरुषों, तपस्वियों एवं योगियों में दर्शन और स्पर्श से सन्तानोत्पादन की क्षमता रही हो, किन्तु इसके कोई उल्लेखनीय दृष्टान्त नहीं मिलते। रामायण (७।२।८-१७) में पुलस्त्य के दृष्टिपात से राजा तृणविन्दु की कन्या के गर्भवती होने का उल्लेख है। राजा स्वराष्ट्र के स्पर्श से एक मृगी (जो पूर्वजन्म में उन्हीं की अग्रमहिषी थी) ने गर्भ धारण करके तामस मनु को जन्म दिया था।[२] महाभारत वनपर्व (३०७।२३) में सूर्य के द्वारा कुन्ती की नाभि का स्पर्श किये जाने मात्र से कर्ण के जन्म का उल्लेख है। जैसा कि डॉ० वनमाला भवालकर ने (महाभारत में नारी, पृ० ८६ में) कहा है महाभारत (पूना सं०) आदिपर्व (९८।३१) के अनुसार सुदेष्णा को दीर्घतमा के स्पर्श मात्र से पुत्र की प्राप्ति हुई थी। बृहद्देवता (७।३-६) के अनुसार वडवा रूप-धारिणी संज्ञा के द्वारा अश्वरूप-धारी सूर्य के स्खलित वीर्य को सूँघे जाने पर उसके गर्भ से अश्विनौ का जन्म हुआ था। महाभारत (वनपर्व १२७।१९-२०; १२८।२-७) के अनुसार वपा (चर्बी) के होम की गन्ध को सूँघने से राजा सोमक की रानियों ने गर्भ धारण करके एक सौ पुत्रों को जन्म दिया था। इस तरह के दृष्टान्त अतिमानवीय स्तर के ही कहे जा सकते हैं। महाभारत (वनपर्व ९६।१९-२१) में अगस्त्य मुनि के द्वारा नारी के अङ्ग-प्रत्यङ्गों के उपमानभूत प्राकृतिक उपादानों के संयोजन से की गयी लोपामुद्रा की सृष्टि का वर्णन भी अतिमानवीय स्तर का है। मैथुन के विना प्रजा-सृष्टि को अति प्राचीन काल में असंभव नहीं माना जाता था।

इतिहास-पुराण में मानसी-सृष्टि के पश्चात् मैथुनी-सृष्टि का क्रम वर्णित है। शिव-पुराण (७।१।१५।१, तु०-वही, ३।३।२-३) में उल्लेख है कि ब्रह्मा ने भी मानसी सृष्टि में वृद्धि न होने पर मैथुनी सृष्टि का निश्चय किया था। पुराणों में मानव-सृष्टि के आदि मिथुन मनु-शतरूपा द्वारा मैथुन धर्म से सृष्टि किये जाने का भी उल्लेख है।[3] दक्ष प्रजापति ने आरम्भ में मानसी और तत्पश्चात् मैथुनी सृष्टि की थी।[४] उसकी मानसी सृष्टि रुद्रकृत अपध्यान से नहीं बढ़ पायी,[५] अतः उसने मैथुनी सृष्टि का निश्चय किया था।[६]

---

१. द्र०—मानसान् = मनः संकल्पप्रभवान्।—प्रशस्तपादभाष्य, पृ० १३१ में श्रीधर कृत टीका न्यायकन्दली।

२. मार्क ७४।४२; स्कन्द (मोर सं०) ३।४।१९।६६।

३. शिव २।१।१६।१३; तु०-भाग० ३।१२।५४-६।

४. असृजन्मानसानादौ प्रजा दक्षोऽथ मैथुनात्।—वायु० उ० २।९।

५. गरुड पू० ६।१४; ब्रह्माण्ड ३।२।४; वायु उ० ४।१२७; हरिवंश १।३।४।

६. कूर्म पू० १६।२; शिव ७।१।१५।१; तु०—शिव० ५।३१।२-३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसके लिए उसने वीरण प्रजापति की पुत्री असिक्नी के साथ विवाह किया था।[1] दक्ष की यह मैथुनी सृष्टि ही नहीं, इसके विवाह-सम्बन्ध भी अतिमानवीय स्तर के थे।

प्राचीन साहित्य विशेषतः इतिहास-पुराण आदि में तथा क्वचित् वैदिक साहित्य में भी विवाह-संस्था के इतिहास की आरम्भिक अवस्था विषयक प्रसंगों में मनुष्य ही नहीं, देव, दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, गन्धर्व प्रभृति दिव्य और दिव्यादिव्य योनियों के प्राणियों, पशु-पक्षियों, नदी-पर्वत आदि प्राकृतिक जगत् की वस्तुओं एवं अमूर्त भावों में भी दाम्पत्य-कल्पना प्राप्त होती है। इनके विवाह अपने-अपने वर्गों के अन्तर्गत ही नहीं, अपने वर्ग के बाहर दूसरे ऐसे वर्गों में भी कल्पित किये गये हैं, जिनको आज का मनुष्य कभी संभव नहीं मान सकता। ये विवाह वस्तुतः अतिमानवीय स्तर के हैं। आरम्भिक सृष्टि के अतिमानवीय स्तर के विवाहों के दृष्टान्तों में हम सर्व प्रथम कश्यप के साथ दक्ष की अदिति, दिति, दनु प्रभृति तेरह कन्याओं के विवाह का उल्लेख करेंगे।[2] कश्यप की इन पत्नियों से देव, दैत्य, दानव, राक्षस, नाग, पशु-पक्षी, वृक्ष-लता आदि अनेक प्रकार के स्थावर तथा जङ्गम जीव उत्पन्न हुए थे। इसका कारण यही माना जा सकता है कि संभवतः कश्यप की तत्तत् पत्नियों का शरीर और शील-स्वभाव उन सन्तानों को जन्म देने योग्य रहा होगा। पुराणों में स्पष्ट कहा गया है कि कश्यप की वे पत्नियाँ विभिन्न प्रकार के शील-स्वभाव और गुणों वाली थी। अतः उनसे उन्हीं के सदृश स्वभाव वाली सन्तानें उत्पन्न हुई थी।[3] पुनश्च प्राचीन साहित्य में देव, दानव, दैत्य, गन्धर्व, मनुष्य आदि के द्वारा अपने वर्ग के बाहर किये गये विवाहों का स्वाभाविक वर्णन किया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि प्राचीन लेखक ऐसे विवाहों को असंभाव्य नहीं मानते थे। इस तरह के विवाहों के दृष्टान्त प्राचीन साहित्य में पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं। यथा—देवराज इन्द्र की पत्नी शची दानव पुलोमा की पुत्री थी।[4] बृहद्देवता (७।४९) में प्रजापति की पुत्री विकुण्ठा की आसुरी संज्ञा से उसके असुर की पत्नी होने का संकेत मिलता है। इन्द्र के सारथी मातलि की कन्या गुणकेशी का विवाह सुमुख नामक नाग से हुआ था।[5] विश्वभुक् नामक अग्नि की पत्नी गोमती नदी थी।[6] शतपथ ब्राह्मण (६।५।४।४) में ओषधियों को देवों की पत्नी कहा गया है। ब्रह्मा ने रावण के साथ युद्ध हेतु राम की सेना तैयार करने के उद्देश्य से देवों

१. गरुड पु० ६।१४-५; ब्रह्म ३।५; ब्रह्माण्ड ३।२।५; वायु उ० ४।१२८; हरिवंश १।३।५-६; द्र०—भाग० ६।४।५१।
२. द्र०—आदिपर्व ६५।१२-३; बृहद्देवता ५।१४४-५; कूर्म पु० १६।१७-८; गरुड पु० ६।३७-५७; ब्रह्माण्ड ३।३।५६-७; मत्स्य ६।१-२; विष्णु १।१५।२७।
३. द्र०—ब्रह्माण्ड ३।७।४६५-४७२; वायु उ० ८।३३६-३४१।
४. रामा० ७।२८।१६-२०; उद्योगपर्व ११।२०-२३; ब्रह्माण्ड ३।६।२३।
५. उद्योगपर्व १०४।१-३०।
६. वनपर्व २१९।१६।

४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से कहा था कि वे देवियों, अप्सराओं तथा गन्धर्व, यक्ष, नाग, ऋक्ष, विद्याधर, किन्नर एवं वानर जाति की नारियों में पुत्रोत्पादन करें[१] और देवों ने वैसा ही किया था।[२] इस तरह देवों का देवियों से ही नहीं, अपितु अन्य योनियों के प्राणियों के साथ भी यौन-सम्बन्ध होता था। इतर देवयोनियों में भी यही प्रवृत्ति लक्षित होती है। वैदिक साहित्य में अप्सराओं को देवों एवं गन्धर्वों की भी पत्नी कहा गया है।[३] पुराणों में अप्सराओं के साथ गन्धर्व और गुह्यक आदि के भी यौन सम्बन्धों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। वामनपुराण (६५।३०, ४१ में) में पर्जन्य नामक गन्धर्व का घृताची नामक अप्सरा के साथ तथा (वामनपुराण ६४।४१ में) गुह्यकराज अञ्जन का प्रम्लोचा नामक अप्सरा के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित होता है। कथासरित्सागर (लम्बक १७) में मुक्ताफल नामक विद्याधर के साथ गन्धर्वराज पद्मशेखर की पुत्री पद्मावती के विवाह के उल्लेख से स्पष्ट है कि गन्धर्वों एवं विद्याधरों में भी विवाह-सम्बन्ध होता था। दनु के पुत्र विप्रचित्ति की पत्नी दिति की पुत्री सिंहिका थी।[४]

देवों एवं देवयोनियों के इतर (दिव्यादिव्य) प्राणियों के साथ मनुष्यों के विवाह-सम्बन्ध के भी अनेक दृष्टान्त प्राचीन साहित्य में हैं। मनुष्य के साथ देवकन्या के विवाह के उदाहरण के रूप में राजा प्रियव्रत के साथ प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती,[५] ऋषभदेव के साथ इन्द्र की पुत्री जयन्ती,[६] राजा संवरण के साथ सूर्य की पुत्री तपती[७] और राजा हविर्धान के साथ अग्नि की पुत्री धिषणा[८] के विवाह का उल्लेख किया जा सकता है। नारदपुराण (उ० २१।१७-८) में राजकुमार धर्माङ्गद के साथ वरुण की कन्या के विवाह का उल्लेख है। कुछ मानव-कन्याओं के साथ देवों के यौन-सम्बन्धों के वृत्तान्त भी प्राप्त होते हैं। मनु की पुत्री इला ने बुध के साथ समागम से पुरूरवा को जन्म दिया था।[९] माहिष्मती नरेश नील ने विप्रवेशधारी अग्निदेव को अपनी कन्या दी थी।[१०] वायु (मातरिश्वा) द्वारा

१. रामा० १।१७।१-६; तु०—वनपर्व २७६।६-७।
२. रामा० १।१७।८-२४; तु०—वनपर्व २७६।११।
३. द्र०—पीछे, पृ० ३४-५।
४. ब्रह्माण्ड ३।५।१२-३; वायु उ० ६।३०।
५. भाग० ५।१।२४; (प्रियव्रत की अन्य पत्नी कर्दम की पुत्री थी, द्र०—विष्णु २।१।५)।
६. भाग० ५।४।८।
७. आदिपर्व १७२।३३।
८. विष्णु १।१४।२; मत्स्य ४।४५
९. रामा० ७।८९।४-७; आदिपर्व ७५।१६-९।
१०. सभापर्व ३१।३३; अनु० पर्व २।३४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मानुषी सुकन्या में मङ्कणक मुनि का जन्म भी देवों के साथ मानव कन्या के सम्बन्ध को प्रकट करता है।[1]

मानवेतर नारियों के साथ मनुष्यों के विवाहों को भी अतिमानवीय कोटि का माना जा सकता है। दानव स्वर्भानु की पुत्री प्रभा पुरूरवा के पुत्र आयु की पत्नी थी।[2] राजा त्र्यरुण की पत्नी पिशाची थी,[3] जो संभवतः पिशाच जाति की रही होगी। राक्षसी हिडिम्बा भीम की पत्नी बनी थी।[4] गन्धर्वों की मानसी कन्या आनकदुन्दुभि के पुत्र सुभुज की पत्नी बनी थी।[5] ऋतध्वज (कुवलयाश्व) ने विश्वावसु गन्धर्व की पुत्री मदालसा के साथ विवाह किया था।[6] बाणभट्ट ने कादम्बरी [तथा दण्डी ने अवन्तिसुन्दरी] में गन्धर्व-कन्या कादम्बरी तथा महाश्वेता के साथ चन्द्रापीड तथा वैशम्पायन के प्रणय और विवाह की कथा उपनिबद्ध की है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार स्वरोचि ने मनोरमा (मार्क० ६०.५१-६१) तथा विभावरी (मार्क० ६१।२-४) नामक विद्याधर-कन्याओं के साथ विवाह किया था। राजकुमार नरवाहनदत्त ने गन्धर्वदत्ता[7] तथा अन्य अनेक विद्याधर-कन्याओं के साथ विवाह किया था।[8] विभिन्न पितृगणों (दिव्य-पितरों) की मानसी कन्याओं के साथ कुछ मनुष्यों के दाम्पत्य-सम्बन्ध को भी अतिमानवीय कोटि का माना जायेगा। पितरों की मानसी कन्या गौ शुक्र की,[9] यशोदा अंशुमान् की,[10] विरजा नहुष की,[11] नर्मदा पुरुकुत्स की[12] और पीवरी व्यास के पुत्र शुक की[13] पत्नी थी। अप्सराओं के साथ अनेक मनुष्यों के यौन-सम्बन्धों को भी अतिमानवीय स्तर का मानना चाहिए। पुरूरवा तथा उर्वशी का सम्बन्ध ऋग्वेद (१०।९५); शतपथ ब्राह्मण (११।५।१।१) के अतिरिक्त परवर्ती

---

१. शल्यपर्व ३८।५९।
२. आदिपर्व ७५।३६।
३. षड्० ब्रा० १३।३।१२; जै० ब्रा० १८।२०; बृहद्देवता ५।१६।
४. आदिपर्व १५४।४-३१।
५. कूर्म पु० २४।५५-७। ६. मार्क० १९।६०-६४।
७. कथा० १४।२।३०-३२।
८. वही ६।८।२१४-२६५; ७।१।१५२-७; ७।९।२११-८; ९।१।२११-२२७; १०।१०।१९०-१९२: १२।१।६६-७२; १४।४।१८१-९; १५।२।३०-४१।
९. मत्स्य १५।१५; वायु उ० ११।८०; तु० ब्रह्माण्ड ३।१०।८६-७।
१०. ब्रह्माण्ड ३।१०।९०; मत्स्य १५।१६-८; तु०—वायु उ० ११।८३-४।
११. ब्रह्माण्ड ३।१०।९५; मत्स्य १५।२०-३; वायु उ० ११।८८; ब्रह्म १२।१।
१२. ब्रह्माण्ड ३।१०।९७-८; वायु उ० ११।९०-९१।
१३. ब्रह्माण्ड ३।१०।७७-८०; मत्स्य १५।५-८; वायु उ० ११।७०-७४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साहित्य में बहुचर्चित रहा है।[१] उर्वशी से पुरूरवा के छः[२] तथा कहीं पर आठ[3] पुत्रों के उत्पन्न होने का उल्लेख मिलता है। श्रीमद्भागवत (५।२।१६) में प्रियव्रत के पुत्र अग्नीध्र के पूर्वचित्ति नामक अप्सरा से नौ पुत्रों के जन्म का उल्लेख है। महाभारत (आदिपर्व ९४।८) में राजा रौद्राश्व के मिश्रकेशी नामक अप्सरा से दश पुत्रों के जन्म का उल्लेख है। पुराणों में घृताची नामक अप्सरा से राजा भद्राश्व के दश पुत्रों के जन्म का भी उल्लेख है।[४] कण्डु मुनि के साथ समागम के फलस्वरूप प्रम्लोचा नामक अप्सरा से वार्क्षी-मारिषा का जन्म हुआ था।[५] महाभारत के अनुसार मेनका के विश्वामित्र के साथ समागम से शकुन्तला[६], घृताची के प्रमति के साथ संसर्ग से रुरु,[७] तथा प्रमद्वरा के रुरु के साथ संसर्ग से शुनक[८] का जन्म हुआ था। राजा ययाति ने विश्वाची[९] तथा दुर्जय ने उर्वशी[१०] के साथ रमण किया था, किन्तु अप्सराओं के साथ मनुष्यों के विधिवत् विवाह अथवा यावज्जीवन साहचर्य का कोई दृष्टान्त साहित्य में नहीं प्राप्त होता।

प्राचीन साहित्य में नागकन्याओं के साथ मनुष्यों के विवाह के अनेक उदाहरण हैं। महाभारत के अनुसार ऋषि जरत्कारु ने वासुकि नाग की भगिनी के साथ विवाह किया था[११]। अर्जुन की एक पत्नी नागकन्या उलूपी थी।[१२] राजा भद्राश्व के पुत्र औचेयु की पत्नी तक्षक नाग की पुत्री ज्वलना थी।[१३] राजकुमार धर्माङ्गद भोगवती को विजित करके जिन नागकन्याओं को लाया था[१४], उन का विवाह उसी के साथ हुआ था।[१५] नागराज अश्वतर ने कुवलयाश्व की दिवंगत पत्नी मदालसा शिव की आराधना से पुत्री रूप में प्राप्त करके पुनः उसे प्रदान की थी।[१६] रघुवंश (१६।७८-८८) के अनुसार राजा कुश की पत्नी नागराज कुमुद की भगिनी कुमुद्वती थी। पद्मगुप्त के ऐतिहासिक

१. विष्णु ४।६।३५-९४; वायु उ० २९।१-४७; मत्स्य २४।२२-३४ (=तु० विक्रमोर्वशीयम्); भाग० ९।१४।१५-४९।
२. आदिपर्व ७५।२४-५; विष्णु ४।७।१; वायु उ० २९।४८-९; भाग ९।१५।१।
३. मत्स्य २४।३३-४।
४. मत्स्य ४९।४; लिङ्ग पू० ६३।६९।
५. विष्णु १।१५।११-४८।
६. आदिपर्व ७२।९।
७. वही ५।९; ८।२।
८. वही ५।१०; ८।२।
९. वही ७५।४८; ८५।९।
१०. कूर्म पू० २३।६-१२, ३१-४।
११. आदिपर्व १४।६-७; ४६।२०-२३।
१२. आदिपर्व २१३।२९-३४।
१३. मत्स्य ४९।६।
१४. नारद उ० २०।१३-४।
१५. नारद उ० २१।१७-८।
१६. मार्क० २१।७१-७३; २२।३५-४४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

काव्य नवसाहसाङ्कचरितम् (७।७६; ९।६१; १८।४४-७) में सिन्धुराज नवसाहसाङ्क के साथ नागराज शङ्खपाल की पुत्री शशिप्रभा के विवाह का वर्णन है। सोड्ढल ने भी उदयसुन्दरीकथा-चम्पू में प्रतिष्ठान नगर के राजा मलयवाहन के साथ नागराज शिखण्डतिलक की कन्या के विवाह का वर्णन किया है। ब्रह्मपुराण (गौ० ४१।१-४६) के अनुसार प्रतिष्ठानपुर के राजा शूरसेन के वृद्ध अमात्य उसके सर्प रूप में उत्पन्न पुत्र के लिए राजा विजय की भोगवती नामक कन्या को शस्त्र से विवाह करके लाये थे। इस कथा के अतिरिक्त मानव कन्याओं के नागों से विवाह के उदाहरण प्रायः नहीं हैं। प्राचीन साहित्य में नागों को मनुष्य देहधारी जाति विशेष या मानव जाति के वंश विशेष से सम्बद्ध नहीं, अपितु अवसर विशेष में मनुष्य देह धारण करने में समर्थ सरीसृप जाति के रूप में ही माना गया है और नागकन्याओं, जो प्रायः मानवाकृति की होती थीं, के साथ मनुष्य के विवाह को असंभव, अविश्वसनीय या कपोलकल्पित भी नहीं माना गया है। मत्स्यपुराण में कहा गया है कि मनुष्य से सर्पिणी में उत्पन्न सन्तान मनुष्य ही होती है।[1] नागकन्याओं के साथ विवाह हेतु मनुष्यों को प्रायः गङ्गा, सरयू, नर्मदा प्रभृति नदियों से खींच कर नागलोक में ले जाया जाता था। कुश को सरयू नदी से, अर्जुन को हरद्वार में गङ्गा से तथा कुवलयाश्व को गोमती नदी (मार्क० २१।६४) के अन्दर से खींच कर ले जाया गया था। वस्तुस्थिति जो भी हो, नागकन्याओं के साथ विवाह को अतिमानवीय विवाहों की कोटि में ही रखा जायेगा।

प्राचीन साहित्य में वर्णित अतिमानवीय कोटि के विवाहों में समुद्र की कन्या सवर्णा-सामुद्री के साथ प्राचीनबर्हि[2] और कण्डु मुनि की (अप्सरा प्रम्लोचा से उत्पन्न) पुत्री वार्क्षी-मारिषा के साथ दश प्रचेताओं[3] के विवाह का भी उल्लेख किया जा सकता है। कुछ नदियों की अधिष्ठात्री देवियाँ मानवी का रूप धारण करके मनुष्यों की पत्नी बनी थीं। इनमें शान्तनु की पत्नी गंगा,[4] राजा मतिनार की पत्नी सरस्वती[5], माहिष्मती-नरेश दुर्योधन (नील) की पत्नी नर्मदा,[6] एक अन्य कथा के अनुसार पुरुकुत्स की पत्नी नर्मदा[7] तथा देवावृध की पत्नी पर्णाशा[8] का उल्लेख किया जा सकता है। कोलाहल पर्वत की पत्नी नदी शुक्तिमती से उत्पन्न कन्या गिरिका के साथ राजा उपरिचर का विवाह भी अतिमानवीय कोटि का ही कहा जा सकता है।[9] प्राचीन-

१. मानुषाच्च सरीसृप्यां मनुष्यत्वेन जायते। मत्स्य १५४।१५१।
२. ब्रह्माण्ड २।१३।३८-९; विष्णु १।१४।४-५; ब्रह्म २।३१-२; गरुड पू० ६।९-१०।
३. आदिपर्व १९५।१५; विष्णु १।१५।८-६८; ब्रह्म २।४१-५।
४. आदिपर्व ९८।१-४।
५. वही ९५।२६-७।
६. अनु० पर्व २।१८-९।
७. आश्रमवासिक पर्व २०।१३।
८. ब्रह्माण्ड ३।७१।६-१२; मत्स्य ४४।५१-५।
९. आदिपर्व ६३।३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समाज में मृग आदि पशुओं के साथ मनुष्यों के यौन-सम्बन्ध का संकेत मृगी के साथ रमण हेतु मृग का रूप धारण करने वाले मुनि किंदम[1] एवं सुतपा[2] की कथा तथा राजा स्वराष्ट्र के कर-स्पर्श से एक मृगी (जो अपने पूर्वजन्म में उनकी अग्रमहिषी थी) के गर्भधारण से तामस मनु के जन्म की कथा से मिलता है।[3] महाभारत (वनपर्व १६२।३२-४) में राजा परीक्षित् का मण्डूकराज आयु की पुत्री, जो मानुषी का रूप धारण कर सकती थी, के साथ विवाह भी अतिमानवीय कोटि का ही है।

कुछ प्राकृतिक तत्त्वों का दिव्य सृष्टि के साथ समायोजन करके एवं अन्य कुछ में चैतन्य का आरोप या उनका मानवीकरण करके उनमें विवाह-संस्था की उद्भावना करना प्राचीन साहित्यकारों की एक विशेषता है। शिवपुराण (२।३।१।१५) में हिमवान् के स्थावर और जंगम दो स्वरूप बतलाये गये हैं। उसके जंगम स्वरूप के साथ अग्निष्वात्ता संज्ञक पितृगणों की मानसी कन्या मेना का विवाह हुआ था।[4] बर्हिषद् संज्ञक पितृगणों की मानसी कन्या धारिणी मेरु पर्वत की पत्नी थी।[5] हिमवान् की पत्नी मेना से उत्पन्न पुत्री गंगा समुद्र की पत्नी[6] तथा मेरु से धारिणी में उत्पन्न कन्या वेला सागर की पत्नी बनी थी।[7] पर्वत से निकल कर समुद्र में मिलने वाली नदी में जनक (पिता) के घर से पति गृह जाने वाली वधू के साधर्म्य के आधार पर यहाँ नदी और समुद्र में दाम्पत्य-भाव को दिव्य-सृष्टि के साथ भौगोलिक वातारण के समायोजन पूर्वक दिखलाया गया है। महाभारत में कोलाहल पर्वत का शुक्तिमती नदी से काम-सम्बन्ध बतलाया गया है।[8] इस तरह के प्राकृतिक जगत् के दम्पती को भी अतिमानवीय ही कहा जा सकता है। श्रीमद्भागवत पुराण (३।१३।४२) में पृथिवी तथा यज्ञवाराह का और स्कन्द-पुराण (२।१।३।२१) में (द्यावापृथिवी के समान) धरती और आकाश का दाम्पत्य-भाव भी अतिमानवीय प्रकृति का है। इतिहास-पुराण में नक्षत्र नामवती दक्ष की २७ कन्याओं का सोम की पत्नी के रूप में उल्लेख है,[9] जो खगोलीय तत्त्वों एवं दिव्य सृष्टि के समन्वयन एवं उनमें दाम्पत्य कल्पना की प्रवृत्ति का परिचायक है। वराहपुराण (२९।३-१४) में दश दिक्पालों के साथ दश दिशाओं के विवाह-वर्णन में दिव्य-सृष्टि के साथ अमूर्त तत्त्वों के सम्बन्ध की कल्पना है। मानव-समाज में मर्यादित दाम्पत्य जीवन

---

१. आदिपर्व ११७।२८-६। २. मार्क० ७१।२७।
३. वही ७१।२१-४२; तु० स्कन्द ३।४।१९।६६।
४. ब्रह्माण्ड २।१३।३३-४; मत्स्य १३।७; शिव २।३।१।२१।
५. ब्रह्माण्ड २।१३।३२-३।
६. वही, २।१३।३५; तु०—रामा० २।५२।८६; द्र०—ब्रह्मवै० २।२१।५६।
७. ब्रह्माण्ड २।१३।३६-९। ८. आदिपर्व ६३।३५-७
९. आदिपर्व ६६।१६-७; ब्रह्माण्ड ३।६५।२१; मत्स्य १७१।३१-२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की सुन्दर छवि से प्रभावित प्राचीन कवियों ने पशु-पक्षियों[1] और वृक्ष-लतादि प्राकृतिक तत्त्वों पर ही नहीं, अमूर्त भावों पर भी दाम्पत्य का आरोप किया है। वृद्धहारीतस्मृति (७।४१-३) में मन्त्र को पुरुष और क्रिया को स्त्री बतलाते हुए इन दोनों में मिथुन-कल्पना की गई है। इतिहास-पुराण में अमूर्त भावों की प्रतीकात्मक सृष्टि का आरम्भिक दिव्य सृष्टि से तादात्म्य दिखलाते हुए उसमें विवाह-संस्था को सुष्ठु परिकल्पना की गई है। महाभारत (आदिपर्व ६६।१४-५) में कहा गया है कि दक्ष की कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा और मति संज्ञक दश कन्यायें धर्म की पत्नी थी। पुराणों में दक्ष की श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, मेधा, पुष्टि, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु शान्ति, सिद्धि, और कोर्ति संज्ञक तेरह कन्यायें धर्म की पत्नी कही गई हैं।[2] महाभारत (आदिपर्व ६६।५३-५) में अधर्म की पत्नी का नाम निर्ऋति है और पुराणों में उसकी पत्नी का नाम हिंसा है। इनकी मिथुन सन्तानों की अमूर्त-भावात्मक सृष्टि में भी दाम्पत्य कल्पना प्राप्त होती है।[3]

वैदिक साहित्य तथा इतिहास-पुराणादि में आरम्भिक सृष्टि के तथा अतिमानवीय प्रकृति के दिव्य, दिव्यादिव्य एवं मानव दम्पतियों विषयक वर्णनों को समग्रतः भौतिक यथार्थ के रूप में न भी स्वीकार करें, तो भी उनमें निहित तथ्यों को नकारा नहीं जा सकता। वैदिक युग के क्रान्तदर्शी ऋषियों के द्वारा दिव्य चक्षुओं से देखे गये तथ्यों या वृत्तान्तों को मिथ्या नहीं मानना चाहिए। हमें ऐसे वर्णनों के आवरणों में अन्तर्निहित तात्पर्य को ग्रहण करना चाहिए, न कि आपाततः बोधित अर्थ को। ऋग्वेद काल से लेकर अद्यावधि वेदराशि के प्रत्येक स्वर, मात्रा और वर्ण तक को यथावत् सुरक्षित रखने वाली वैदिक विद्वानों की श्रुति-परम्परा द्वारा ऋषियों ने अपने वंशजों के लिए जो कुछ भी ज्ञान जिस रूप में भी संप्रेषित किया है उसे कोई भी भारतीय मनीषी तथ्यहीन नहीं समझता। इसी तरह पौराणिक युग के तपोनिष्ठ, धार्मिक एवं सत्यान्वेषी मुनियों के द्वारा सात्विक मनोवृत्ति में अवस्थित और स्वार्थ-निरपेक्ष होकर केवल अपनी भावी पीढ़ियों के हित को ध्यान में रखकर विरचित इतिहास-पुराणादि सत्साहित्य में भले ही लोकशिक्षात्मक और मनोरञ्जन-प्रधान कथाएं काल्पनिक हों, किन्तु उनके पुरावृत्तात्मक

---

१. महाभारत शान्तिपर्व अध्याय १४३-८ तथा श्रीमद्भागवत (११।७,५४) में कपोत-कपोती तथा मत्स्यपुराण (२०।२८-३७) में पिपीलिका युगल के आदर्श दाम्पत्य का चित्रण है। मत्स्यपुराण (२०६।१०-३१) में भ्रमरों और पशु-पक्षियों के युगलों की प्रणय-चेष्टाओं का वर्णन है। पशु-पक्षियों तथा प्राकृतिक तत्त्वों में दाम्पत्य का आरोप प्रायः साहचर्य के आधार पर किया गया है।

२. विष्णु १।७।२२-३; लिङ्ग पू० ७१।२९८-९।

३. द्र०—पीछे, पृ० ४२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वृत्तान्त काल्पनिक नहीं कहे जा सकते। इनमें संकलित इतिहास आर्ष परम्परा से प्राप्त है एवं स्मरण शक्ति के धनी पौराणिक सूतों के द्वारा बड़ी सावधानी से सुरक्षित रखे जाने के कारण यथार्थ एवं तथ्यपूर्ण है। इसीलिए उसकी 'इतिहास' संज्ञा अन्वर्थ है। प्राचीन परम्पराओं के विषय में इतिहासज्ञ पुरुषों के वचनों को यास्काचार्य ने भी प्रमाण माना है।[1] अतः हम कह सकते हैं कि वैदिक साहित्य एवं इतिहास-पुराण में वर्णित विवाह संस्था के इतिहास विषयक तथ्य असंगत और मिथ्या नहीं हो सकते। हमें उनकी यथार्थता के आकलन हेतु उनकी रचना के समय की मान्यताएं, वातावरण और धरातल तथा वर्णन शैली का ध्यान रखकर चलना चाहिए। रूपकात्मक, प्रतीकात्मक तथा कविकल्पनाप्रसूत वर्णनों एवं कथाओं के उद्देश्य को समझने की चेष्टा करने पर हमें कहीं कोई असंगति नहीं दिखाई देगी।

इस दृष्टि से हम संक्षेप में यही कह सकते हैं कि प्राचीन भारतीय वाङ्मय में एक मूल आत्मा (या शरीर) से नर और नारी रूपों के आविर्भाव के दिव्य सृष्टि के प्रकरण से जुड़ी विवाह संस्था आरम्भिक मिथुनों एवं मानसी सृष्टि से मैथुनी सृष्टि तक सर्वत्र दिव्य परिवेश में लक्षित होती है। देव, दानव, मनुष्य, नाग आदि नाना योनियों के प्राणियों के साथ दाम्पत्य भाव योग-बल एवं आध्यात्मिक शक्तियों से युक्त प्राचीन समाज के मनुष्यों के लिए असंभव नहीं रहा होगा। संभवतः जनसंख्या वृद्धि के ध्येय से भी ऐसे विवाह होते रहे हों। अतिमानवीय स्तर के विवाहों या यौन-सम्बन्धों के विविध दृष्टान्तों की गवेषणा से सूचित होता है कि प्राचीन समाज में आदि युग के ऐसे सम्बन्धों को असंभव नहीं माना जाता था। परवर्ती कवियों ने भी ऐसे अतिमानवीय स्तर के विवाहों के कुछ अतिरञ्जनापूर्ण तथा काल्पनिक वर्णनों में रुचि ली है, अतः ऐसे काल्पनिक अंशों को गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए।

वैदिक एवं पौराणिक साहित्य के प्राचीन सृष्टि विषयक अंशों के अध्ययन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि सर्वप्रथम देवों की सृष्टि में ही विवाह संस्था का आविर्भाव हुआ। इतिहास-पुराण में आदि काल के मानव दम्पतियों—मनु-शतरूपा, विभिन्न प्रजापतियों और ऋषियों तथा उनकी पत्नियों एवं चारों वर्णों के सहस्र-सहस्र मिथुन-दम्पतियों को ब्रह्मा की मानसी सृष्टि बतलाकर विवाह-संस्था की दैवी उत्पत्ति को ख्यापित किया गया है। विवाह-संस्था विषयक प्राचीन साहित्य के अधिकांश उदाहरण दिव्य एवं अतिमानवीय सृष्टि विषयक हैं, जिनसे इसके दैवी-परिवेश में प्रादुर्भूत और विकसित होने की सूचना मिलती है। विवाह-संस्था की दैवी उत्पत्ति की कल्पना के दो आधार हो सकते हैं। एक तो यह कि विवाह-संस्था का आविर्भाव एक दिव्य धरातल में और एक असीमित चैतन्य युक्त परम दिव्य (ईश्वरीय) शक्ति के द्वारा हुआ है। दूसरे, इस संस्था के

१. द्र०—निरुक्त, २।१६; १२।१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किसी मनुष्य के द्वारा प्रवर्तन का कोई प्रमाण न होने तथा अनादि काल से ही इसके प्रचलित होने के कारण भी इसे ईश्वरीय प्रेरणा से प्रवर्तित माना जा सकता है। प्राचीन साहित्य में ईश्वरीय शक्ति के द्वारा विवाह-संस्था के प्रवर्तन की ही नहीं, इसके संरक्षण और संवर्धन की भी कल्पना की गई है। वैदिककाल से ही यह विश्वास किया जाता रहा है कि कोई दैवी शक्ति, जिसे त्वष्टा, धाता आदि नाम दिये गये हैं, प्रत्येक नर-नारी के लिए जीवन-साथी को पूर्वतः निश्चित कर देती है।[1] नर-नारी के विवाह सम्बन्ध की संघटना में दैवी-शक्ति की प्रमुख भूमिका लौकिक संस्कृत साहित्य में भी स्वीकार की गई है। मनु ने कहा है कि पुरुष स्वेच्छया नहीं, अपितु ईश्वर-प्रदत्त नारी को ही भार्या रूप में प्राप्त करता है।[2] इसी ईश्वरीय शक्ति को पुराणों में विधि या दैव संज्ञा दी गई है। नारदपुराण में यह स्वीकार किया गया है कि दैवयोग से ही कोई पुरुष किसी नारी का पति और कोई नारी किसी विशेष पुरुष की पत्नी बनती है।[3] विधि ही किसी नारी और किसी पुरुष को पृथक्-पृथक् स्थानों और परिस्थितियों से लाकर उनका मिलन कराकर विवाह-सूत्र में बाँधता है, यह तथ्य मार्कण्डेयपुराण (१२४।५) में कहा गया है और इस विधि से अनेक नायक-नायिकाओं के परिणय की कथाएं संस्कृत साहित्य के कई नाटकों, काव्यों एवं कथा-ग्रन्थों और पुराण आदि में उपनिबद्ध की गई हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण (४।१७।१३१-३) में भी विवाह-सम्बन्ध को विधि के आधीन बतलाते हुए कहा गया है कि योगकर्ता प्रजापति ही यह निश्चित करता है कि कौन किसका पति तथा कौन किसकी पत्नी बनेगी। पद्मपुराण में भी विवाह आदि में दैव की कारणता बतलाई गई है।[4] नवसाहसांकचरितम् (७।७५) में कहा गया है कि राजा दिलीप के लिए सुदक्षिणा, भरत के लिए सुनन्दा, श्रीराम के लिए सीता को जैसे विधाता ने पत्नी रूप में बनाया था, तद्वत् सिन्धुराज नवसाहसांक के लिए नागराज शंखपाल की पुत्री शशिप्रभा को बनाया है। ये विचार अदृष्ट, नियति या भाग्य पर विश्वास करने वाली भारतीय संस्कृति के अनुरूप हैं। इस तरह अथर्ववेद में धाता या त्वष्टा को तथा मनुस्मृति में ईश्वर को विवाह-सम्बन्ध का घटक माना गया है, तो पुराणों और काव्यग्रन्थों में विधि या दैव को इसका घटक माना गया है। वैदिक साहित्य में

---

१. द्र०-त्वष्टा जायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम्। अथर्व० ६।७८।३; तु०-अथर्व० ६।६०।३; १४।१।५६; (तै० सं० २।१।८।३, ४ एवं ६।१।८।५ में त्वष्टा को पशुओं के मिथुनों का रचयिता कहा गया है)।

२. देवदत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः। मनु ६।६५; द्र०-कुल्लूक, सर्वज्ञ-नारायण, राघवानन्द की मनु ६।६५ पर टीका।

३. विधियोगाद् भवेद् भर्ता विधियोगाद् भवेत् प्रिया। नारद उ० २७।१४२।

४. पद्म २।८१।४०; ६।१२८।१२६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

देवों को विवाह-संस्था का संरक्षण-संवर्धन करते हुए दिखलाया गया है। सूर्य को कन्या के लिए पति और अविवाहित पुरुष के लिए पत्नी प्राप्त कराने वाला कहा गया है।[१] कुमारी कन्या के लिए पति प्राप्ति में धाता के सहयोग की प्रार्थना की गई है[२] जिससे दाम्पत्य-संघटना में धाता (विधाता) की इच्छा की कारणता पर विश्वास की व्यञ्जना होती है। परस्पर अनुरक्त युवक-युवतियों को दम्पती रूप में संयोजित करने में अश्विनौ की भूमिका भी उल्लेखनीय रही है।[३] परवर्ती साहित्य में देवताओं के द्वारा युवक-युवतियों को स्वप्न आदि के द्वारा एक-दूसरे से परिचित कराकर उन्हें विवाह-सूत्र में बँधने की प्रेरणा देने की प्रवृत्ति देखी जाती है। इसका एक उदाहरण पार्वती के द्वारा उषा को स्वप्न में दिया गया अनिरुद्ध विषयक परिचय है।[४] इस तरह दिव्य परिवेश में प्रादुर्भूत तथा दैवी शक्तियों के द्वारा पोषित और प्रवर्धित विवाह-संस्था मानवी सृष्टि में भी आदि काल से चली आ रही है। प्राचीन काल में विवाह को एक सामाजिक संस्था की अपेक्षा धार्मिक-संस्था के रूप में अधिक देखा जाता था और इसीलिए इसे एक धार्मिक कर्तव्य और संस्कार के रूप में अनिवार्य भी माना जाता था।

---

१. अथर्व० ६।६०।१।

२. वही, ६।६०।३; १४।१।५९।

३. वही २।३०।२।

४. विष्णु ५।३२।१४; तु० भाग० १०।६२।१२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तृतीय अध्याय

विवाह की आवश्यकता, उद्देश्य एवं वैवाहिक कर्तव्य

प्राचीन भारतीय साहित्य के विवेचन से यह सुतरां स्पष्ट हो जाता है कि इस देश में अनादि काल से ही विवाह-संस्था सुप्रतिष्ठित रही है। इसके मूल में अनेक कारण रहे हैं, यथा—(१) प्रत्येक नर-नारी के मन में विवाह की स्वाभाविक आकांक्षा, (२) प्रत्येक व्यक्ति के लिए विवाह की अनिवार्यता, (३) विवाह के निश्चित उद्देश्य तथा (४) विवाह की एक कर्तव्य के रूप में मान्यता। अब हम विवाह-संस्था की पृष्ठ-भूमि में निहित इन तथ्यों का उपलब्ध साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर विवेचन करेंगे।

(१) विवाह की नैसर्गिक आकांक्षा—

सुदूर अतीत से ही विवाह किसी व्यक्ति पर समाज द्वारा थोपा गया बन्धन कभी नहीं माना गया है। मनुष्यों में स्वयं ही विवाह-सूत्र में बँधने की नैसर्गिक आकांक्षा रहती थी। वैदिक संहिताओं में प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार युवक-युवतियों के मन में विवाह के द्वारा ही जीवन-साथी की प्राप्ति की कामना रहती थी। अविवाहित पुरुष विवाह के द्वारा ही जाया प्राप्ति की कामना करते थे।[1] ऋग्वेद में 'वर' के लिए 'वधूयु' शब्द का प्रयोग है,[2] जिसका तात्पर्य है 'वधू' की कामना करने वाला।[3] वैदिक काल के युवकों में विवाह की कितनी उत्कट अभिलाषा रहती थी, इसका आभास उनके द्वारा जाया प्राप्ति हेतु किये जाने वाले विविध उपायों से भी होता है। अथर्ववेद (६।८२।१-३) में जाया की कामना वाले पुरुष द्वारा जाया-प्राप्ति हेतु इन्द्र से प्रार्थना की गई है।[4] कौशिक सूत्र में भी अथर्ववेद (६।८२।१-३) के इन तीनों मन्त्रों का विनियोग जाया कामना वाले पुरुष के द्वारा जायाप्राप्त्यर्थ बतलाया गया है।[5] सायण के अनुसार भी इन तीनों मन्त्रों से जाया की कामना वाला पुरुष इन्द्र का यजन

---

१. (क)—जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः। ऋ० ७।९६।४।
   (ख)—जनियन्ति नावग्रवः···। अथर्व० १४।२।७२।

२. ऋ० ६।६९।३; १०।२७।१२; १०।८५।९।

३. वधूयुः वधूकामो भवति।—सायण।

४. यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः।
   तेन जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते॥ अथर्व० ६।८२।३।

५. 'आगच्छतः' (अथर्व० ६।८२) इति जायाकामः। कौ० सू० ५९।११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

या उपासना करता है।[१] ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में अग्नि से याजकों (यजमानों) को पत्नी युक्त बनाने की प्रार्थना की गई है।[२] ऋग्वेद एवं अथर्ववेद के विवाहसूक्त में अग्नि से जाया और सन्तान देने की प्रार्थना की गई है।[३] इस तरह हम पाते हैं कि पुरुष पत्नी की प्राप्ति के लिए ऋग्वैदिक काल से ही देवों से प्रार्थना करते आया है। ऋग्वेद (२।१५।७) के वेंकटमाधव एवं सायण के भाष्यों से विदित होता है कि विवाह का योग्य पात्र बनने के लिए एक पंगु एवं अन्धे व्यक्ति ने इन्द्र की स्तुति करके नेत्र और पैर प्राप्त किये थे। अथर्ववेद में कन्याओं के चित्त का आकर्षण करने के लिए मन्त्रौषध विधान का उल्लेख है।[४] इससे विदित होता है कि जिन पुरुषों का विवाह कन्याओं को न रुचने के कारण अथवा अभीष्ट कन्या की स्वीकृति न मिलने के कारण रुक जाता था, वे मन्त्रौषध का प्रयोग करके कन्या प्राप्त करने की चेष्टा करते थे। मन्त्रद्रष्टा न होने के कारण श्यावाश्व राजा रथवीति की कन्या को नहीं प्राप्त कर सका, जिससे वह अत्यन्त खिन्न हुआ था, किन्तु बाद में ईश्वर की कृपा से मन्त्रद्रष्टा बन जाने पर वह उसे पत्नी रूप में पाकर प्रसन्न हो उठा था।[५] यह सम्भव है कि वैदिक काल में शारीरिक अक्षमता या अन्य किसी विशेष परिस्थिति में अथवा विद्याभ्यास या तपश्चर्या आदि में यौवन बीत जाने पर कुछ पुरुष अविवाहित रह जाते हों,[६] किन्तु सामान्यतः वैदिक काल के युवकों में विवाह के प्रति अनास्था का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। वैदिक पुरुष अपने जीवन-पथ का अकेला पथिक नहीं बनना चाहता था। वह तो इहलोक में ही नहीं, स्वर्गलोक में भी स्वयं को पत्नी और पुत्रों सहित देखना चाहता था। उसकी कामना यही रहती थी कि पत्नी सदा उसकी अनुवर्तिनी बनी रहे।[७] ऋग्वेद (६।१५।१९) में अग्नि से समृद्ध गार्हपत्य (गार्हस्थ्य) हेतु प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद के प्राचीनतम माने जाने वाले चतुर्थ मण्डल में द्यावापृथ्वी से पत्नीयुक्त 'बृहद्वरूथ' (विशाल गृह) की याचना की गई है।[८] यजमान द्वारा वाजसनेयि-संहिता (२।२७) में अग्नि से तथा अथर्ववेद (१९।३१।१३) में अभिमन्त्रित औदुम्बर मणि से अपने को गृहपति बनाने हेतु प्रार्थना की जाती है। वाजसनेयी संहिता (२।३२, जिसमें

---

१. आगच्छतः इति तृचेन विवाहकामः इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा।
सायण (अथर्व० ६।८१।१ के पूर्व)।

२. तान् यजत्रां ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि। ऋ० १।१४।७।

३. (क)—पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह। ऋ० १०।८५।३८।
(ख)—स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह। अथर्व० १४।२।१।

४. कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे।—अथर्व० १।३०।४।

५. बृहद्देवता ५।५५-८०।

६. द्र०—वही, ६।६९-१०८।

७. अथर्व० १२।३।१७।

८. ऋ० ४।५६।४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पितरों से गृहों की याचना की गई है) में प्रयुक्त गृह शब्द की व्याख्या में उवट एवं महीधर ने कहा है कि भार्या, पुत्र, पौत्र आदि ही गृह कहलाते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि वेदों में गृहपति या गार्हपत्य की कामना पत्नी निरपेक्ष नहीं, अपितु पत्नी, सापेक्ष रही है अर्थात् गृहपति या गार्हपत्य की कामना में पत्नी की आकांक्षा भी समवेत थी। इसका फलितार्थ निष्कर्ष यह है कि वैवाहिक जीवन तथा गृहस्थाश्रम के प्रति वैदिक समाज में उत्कट आकांक्षा थी।

यद्यपि उपनिषदों की मोक्षवादी विचारधारा तथा बौद्ध धर्म के प्रभाव से विवाह के प्रति कुछ युवकों में अनिच्छा जागृत होना स्वाभाविक था, किन्तु इतिहास-पुराण में प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार आदि काल से ही कुछ पुरुष विरक्त प्रकृति के होते थे। ब्रह्मा के सनक, सनन्दन प्रभृति मानस पुत्रों ने विवाह नहीं किया था।[1] प्रियव्रत के दश पुत्रों में से तीन पुत्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहने के अनन्तर संन्यासी हो गये थे।[2] ध्रुव का पुत्र उत्कल जन्म से ही विरक्त प्रकृति का था।[3] मार्कण्डेय पुराण (२३।९-२७) की एक कथा के अनुसार ऋतध्वज (कुवलयाश्व) की पत्नी रानी मदालसा ने अपने तीन पुत्रों को बाल्यावस्था में ही वैराग्य का बोध करा कर निवृत्तिमार्गी बना दिया था। अभिज्ञानशाकुन्तलम् अंक १ में राजा दुष्यन्त ने कण्व मुनि को नैष्ठिक ब्रह्मचारी बतलाया है। विरक्त रुचि प्रजापति,[4] ऋषि अगस्त्य[5] तथा मुनि जरत्कारु[6] ने गर्त में तृण के सहारे लटके हुए अपने पितरों की प्रेरणा से विवाह किया था, किन्तु कक्षीवान् के पुत्र पृथुश्रवा ने अपने पितरों के द्वारा प्रेरित किये जाने पर भी विवाह नहीं किया था।[7] राजकुमार अवीक्षित्[8] तथा शुक[9] (व्यास जी के पुत्र) ने अपने पिता के आग्रह को मान कर विवाह किया था। तीव्र वैराग्य की भावना के अतिरिक्त विकलाङ्गता या अति दारिद्र्य आदि किसी विषम परिस्थिति में कुछ पुरुष अविवाहित रह सकते थे। भीष्म ने दाशकन्या सत्यवती के साथ अपने पिता के विवाह को सम्भव बनाने के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन किया था।[10] किन्तु ऐसे अपवादों को छोड़ कर जनसामान्य में विवाह के प्रति पूर्ण अभिरुचि थी। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि सामान्यतः मनुष्य अपनी पूर्व-वासनाओं (पूर्व जन्मों के संस्कारों) से प्रभावित होकर स्वभावतः विवाहादि सम्बन्ध करता है।[11]

---

१. ऋषयः सनकाद्याश्च नोद्वाहं चक्रुरीप्सितम्। ब्रह्मवै० ४।६१।४०।
२. भाग० ५।१।२५-६; तु० विष्णु २।१।८-१०।
३. भाग० ४।१३।६-७। ४. मार्क० अध्याय ९२; गरुड पू० ८८।१-२४।
५. वनपर्व ९६।१४-८। ६. आदिपर्व १३।१५-२७; देवीभाग० २।१२।७-३७।
७. द्र०—ब्रह्म गौ० अध्याय ३०। ८. मार्क० १२२।१-३२।
९. देवीभाग० १।१४।२८। १०. आदिपर्व १००।८७-९६; देवीभाग० २।५।५९-७।
११. पूर्ववासनया मिथ उद्वहत्यथापवहति। भाग० ५।१४।३७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कन्याएं भी विवाह की उत्कट इच्छा रखती थी। ऋग्वेद के विवाह सूक्त में सविता के द्वारा पति की कामना करने वाली पुत्री सूर्या का विवाह सोम के साथ किये जाने का उल्लेख है।[१] अथर्ववेद के विवाह-सूक्त में जीवन साथी की कामना करने वाली कन्याओं के पितृगृह से पतिगृह को प्रस्थान का उल्लेख है।[२] कन्याओं की विवाह के प्रति अभिरुचि प्रकट करने वाले अनेक संकेत वेदों में देखे जा सकते हैं।[३] अथर्ववेद में पति की कामना करने वाली नारी एवं जाया की कामना वाले पुरुष के संयोग का उल्लेख है।[४] आजीवन कुमारी रहने की कोई प्रवृत्ति कन्याओं में नहीं थी। जिस कन्या के विवाह में विलम्ब होता था, उसकी मनोवेदना को व्यक्त करते हुए वैदिक ऋषि कहता है कि वह अन्य कन्याओं के विवाहोत्सव में सम्मिलित होते रहने (किन्तु स्वयं कुमारी रह जाने) से श्रान्त—खिन्न हो चुकी है।[५] दुर्भाग्यवश पति सुलभ न होने पर ही कोई कन्या पितृ-गृह में वृद्ध (अमाजू) होती थी।[६] काक्षीवती घोषा पापरोग से दुर्भगा हो जाने के कारण साठ वर्षों तक पिता के घर में अविवाहिता रह गई थी। उसे पति-पुत्र को पाये विना जरावस्था को प्राप्त होने से चिन्ता होने लगी। तब उसने अश्विनौ की स्तुति की, जिन्होंने उसके भगान्तर में प्रविष्ट होकर उसे नीरोग एवं सुभगा बना कर उसको पति-प्रदान किया था।[७] कन्या को वर सुलभ कराने के लिए उसके अभिभावक भी देवों से प्रार्थना करते थे। अथर्ववेद में कन्या-पक्ष के लोगों द्वारा धाता से पति कामना वाली कन्या को अभीष्ट वर सुलभ बनाने के लिए प्रार्थना की गई है।[८] कन्या को अभीष्ट वर सुलभ कराने के लिए मन्त्रौषध के प्रयोग भी किये जाते थे।[९]

वैवाहिक जीवन के प्रति कन्याओं का आकर्षण सदैव रहा है। लौकिक संस्कृत साहित्य में अविवाहित रहने वाली नारियों के गिने-चुने उल्लेख अपवादमात्र हैं। रामायण (४।५०।४०; ४।५१।१६-७) में वर्णित तपस्विनी स्वयंप्रभा कोई अतिमानवीय एवं अलौकिक चरित्र की नारी प्रतीत होती है। महाभारत में वर्णित कुणि-गर्ग की

---

१. सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात्। ऋ० १०।८५।८; अथर्व० १४।१।९।

२. उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः। अथर्व० १४।२।५२।

३. द्र०—(क)—कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभिचाकशीमि। ऋ० ४।५८।९; वाज० सं० १७।९७।

(ख)—वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति....। ऋ० ५।३७।३।

४. एयमागन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम्। अथर्व० २।३०।५।

५. अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती। अथर्व० ६।६०।२।

६. ऋ० २।१७।७।

७. बृहद्देवता ७।४२-७।

८. धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम्। अथर्व० ६।६०।३।

९ आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्यः॥ अथर्व० २।३६।८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कन्या अपनी अभिरुचि का वर न मिलने के कारण ही वृद्धावस्था पर्यन्त तपस्विनी रही थी।[१] सुलभा भी सदृश वर न मिलने के कारण ही योगिनी बनी थी।[२] संभवतः ऐसे ही किसी कारणवश शाण्डिल्य की पुत्री भी कौमार ब्रह्मचारिणी रही होगी।[३] अन्यथा प्रायः विधवा स्त्रियाँ ही परिव्राजिका बनती थी।[४] उत्तररामचरितम् (२।३) में वर्णित ब्रह्मवादिनी आत्रेयी एक काल्पनिक पात्र प्रतीत होती है। बौद्ध साहित्य में भी कुछ कन्याओं के विशेष परिस्थिति में ही प्रव्रज्या-ग्रहण का उल्लेख है। उप्पलवन्ना को अनेक लिच्छवि युवकों द्वारा माँगे जाने से उत्पन्न संघर्षपूर्ण स्थिति को बचाने के लिए ही उसके पिता द्वारा उसे भिक्षुणी बनवाया गया था।[५] अभया नामक कन्या अभय-माता (गणिका पद्मावती) से अतिशय लगाव के कारण उसके भिक्षुणी बनने पर स्वयं भी भिक्षुणी बन गई थी।[६] ऐसी विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त समाज की अन्य सभी कन्याएं विवाह की उत्कट अभिलाषा रखती थी। अभीष्ट पति की प्राप्ति हेतु पार्वती के तप का वृत्तान्त सर्वविदित है। रामायण (७।१७।१६-८) में वेदवती के द्वारा नारायण के साथ विवाह हेतु तप किये जाने का उल्लेख है। कोई युवती विवाह के लिए कितनी उत्कण्ठित रहती थी, इसका आभास गंगा, हिडिम्बा, उलूपी, देवयानी आदि के द्वारा स्वयं ही विवाह का प्रस्ताव किये जाने के उल्लेखों से भी मिलता है। कथासरित्सागर (१८।३।५२-४) में कन्याओं के द्वारा बाल्यावस्था के क्रीडा-विनोदों में विवाह रचाने के उल्लेख में उनकी विवाह के प्रति स्वाभाविक रुचि ख्यापित होती है। विवाह की इच्छा से प्रभावित अन्तःकरण वाले युवक-युवतियों को इसके स्वप्न भी दिखलाई पड़ते रहे हैं।[७] उषा ने स्वप्न में ही अनिरुद्ध के साथ समागम-सुख का प्रथम अनुभव किया था।[८] कथासरित्सागर (१८।३।८०-१०७) की एक कथा के अनुसार पुरुषद्वेषिणी राजकुमारी मलयवती ने स्वप्न में विक्रमादित्य के साथ प्राप्त वैवाहिक जीवन के सुख के अनुभव से प्रभावित होकर उसी के साथ बाद में अपना विवाह करवाया था।

वैवाहिक जीवन का सुख, इसके आदर्श तथा उद्देश्य इतने आकर्षक थे कि प्रायः सभी युवक और युवितियों के मन में विवाह की इच्छा रहती थी। मृच्छकटिक नाटक

---

१. शल्यपर्व ५२।४-९। २. शान्तिपर्व ३२०।१८६। ३. शल्यपर्व ५४।६-८।
४. मालविकाग्निमित्रम् अङ्क ५ (कालिदासग्रन्थावली, पृ० ४२१)।
५. विनयपिटका ३।२०४।
६. द्र०—बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन, पृ० १५४।
७. यह उल्लेखनीय है कि स्वप्न में विवाह देखना या स्वयं विवाह करना अप-शकुन माना गया है। द्र०—अग्नि २२९।३, ८।
८. विष्णु ५।३२।१४; भाग० १०।६२।१२; कथा० ६।५।११-३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में गणिका वसन्तसेना 'वधू' बनने पर अपने को धन्य मानती है। दशकुमारचरितम् की एक कथा के अनुसार एक वेश्या की पुत्री रागमञ्जरी ने यह प्रण किया था कि उसके साथ विवाह करके ही कोई युवक उसके यौवन का भोग कर सकता है।[1] फलतः उस पर अनुरक्त एक युवक ने उसके साथ विवाह किया था।[2] इस तरह हम पाते हैं कि प्रायः सभी स्त्री-पुरुष स्वभावतः विवाह-सूत्र में बँधना चाहते थे। प्राचीन भारत में वैदिक संहिताओं से लेकर परवर्ती काल तक के समूचे साहित्य में [कुछ विशेष दृष्टान्तों को छोड़ कर] सामान्य युवक-युवतियों के विषय में ऐसे विवरण नहीं हैं जिनमें कि उनके मन में विवाह के प्रति अरुचि का भाव दिखलाया गया हो। प्रत्येक युवक-युवती के मन में विवाह के द्वारा जीवन-साथी की प्राप्ति की स्वाभाविक लालसा सदैव रही है।

२—विवाह की आवश्यकता—

प्राचीन भारतीय संस्कृति में विवाह केवल ऐच्छिक काम-सम्बन्ध मात्र नहीं था, अपितु यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनेक सामाजिक तथा धार्मिक कारणों से अनिवार्य बन गया था। ऐसे कुछ कारणों का अन्वीक्षण यहाँ प्रस्तुत है। यथा—

(१) गृहस्थाश्रम में प्रवेश— ऋग्वेद एवं परवर्ती साहित्य में मनुष्य को शतायु माना गया है।[3] शतायु पुरुष के जीवन की चार क्रमिक अवस्थाओं के लिए चार आश्रमों की व्यवस्था ब्राह्मणग्रन्थों तथा आगे के समस्त साहित्य में प्राप्त होती है।[4] ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रमों में क्रमशः प्रवेश विहित था[5] और इनमें प्रवेश का प्रतिलोम क्रम (संन्यास या वानप्रस्थ से किसी पूर्ववर्ती आश्रम में प्रवेश, गृहस्थाश्रम से ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश) वर्जित था।[6] क्रमशः प्रत्येक अग्रिम आश्रम में प्रवेश को समुच्चयवाद कहा गया है। किन्तु व्यक्ति की विशेष मनोवृत्ति अथवा परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए वैकल्पिक व्यवस्था भी दी गई थी।[7] ब्रह्मचर्याश्रम

---

१. गुणशुल्काऽहं न च धनशुल्का। न च पाणिग्रहणादृतेऽन्यभोग्यं यौवनम्। दशकु० उ० पी०, द्वि० उ०, पृ० ४६।
२. सोऽहं ···मद्गुणोन्मादितया रागमञ्जर्याः करकिसलयमग्रहीषम्। -दशकु०, उ०, पी०, द्वि० उ० पृ० ५१।
३. ऋ० १०।१६१।४; अथर्व० ३।११।४; वाज० सं० ३५।१५; ३६।२४; कामसूत्र १।२।१।
४. ऐ० ब्रा० ७।११, १३; छा० उ० २।२३।१; बौ० ध० सू० २।६।११।१४; आप० ध० सू० २।६।२१।१; गौ० ध० सू० १।३।२।
५. आप० ध० सू० २।६।२१।२; बौ० ध० सू० २।१०।१७।१५।
६. दक्षस्मृति १।९-१२; कूर्म पु० ३।८।
७. गौ० ध० सू० १।३।१; वसिष्ठ ध० सू० ७।३; कूर्म पु० ३।२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के पश्चात् कोई व्यक्ति विकल्प रूप में नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन[1] अथवा गृहस्थाश्रम या वानप्रस्थ या संन्यासाश्रम में अपनी रुचि और परिस्थिति के अनुसार प्रवेश कर सकता था।[2] संभवतः इस विकल्पवादी व्यवस्था की आड़ में कुछ पुरुष यथेष्ट वैराग्य के बिना ही संन्यास ग्रहण करके तदनन्तर इन्द्रिय-संयम न रख पाने पर समाज में दुराचार फैला सकते थे। अत एव ऐसे व्यक्तियों के लिए विकल्प व्यवस्था को बाधित करते हुए बौधायन और गौतम जैसे धर्मसूत्रकारों ने यह व्यवस्था दी थी कि प्राचीन आचार्यों ने केवल गृहस्थाश्रम का ही विधान किया है, क्योंकि अन्य आश्रमों में प्रजनन नहीं होता ,[3] वस्तुतः वैदिक संहिताओं के काल से ही गृहस्थाश्रम ही प्रमुख आश्रम रहा था। शतपथ ब्राह्मण[4] एवं तैत्तिरीय आरण्यक[5] में सद्गृहस्थ द्वारा किये जाने वाले अग्निहोत्र को जीवन व्यापी सत्र बतलाया गया है। गृह्यसूत्रों में गृहस्थ के लिए गृह्य-अग्नि में यावज्जीवन व्रीहि या यवों की आहुति देते रहने का विधान है।[6] इससे स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में यावज्जीवन गृहस्थाश्रम में रहने की सामान्य प्रवृत्ति थी और समुच्चयवादी मत का विशेष आदर नहीं था। वेद का उपबृंहण करने वाले पुराणों में भी गृहस्थ धर्म के पालन की ही विशेष संस्तुति की गई है।[7] गौतम धर्मसूत्र के व्याख्याकार हरदत्त ने यह ठीक ही कहा है कि सभी वेद, शास्त्र, इतिहास और पुराणों में बाहुल्येन गृहस्थाश्रम के ही धर्मों का विधान है। अतएव सभी आचार्य गृहस्थाश्रम को ही प्रधान मानते हैं। इसके निर्वाह में असमर्थ पुरुष के लिए ही इतर आश्रम हैं।[8] प्राचीन साहित्य में जहाँ गृहस्थ की अपेक्षा ब्रह्मचर्य[9] या संन्यास[10] की प्रशंसा की गई है, उसका उद्देश्य इनकी महिमा ख्यापित करना ही है, न कि गृहस्थाश्रम की निन्दा करना। जहाँ गृहस्थाश्रम के प्रपञ्चों की निन्दा की गई है वहाँ

१. वसिष्ठ ध० सू० ७।४; विष्णु ३।१०।४; वामन १४।६।
२. भाग० ७।१२।१४; ११।१७।३७-८; वामन १४।७-८; विष्णु ३।१०।१४-५।
३. बौ० ध० सू० २।६।११।२६; गौ० ध० सू० १।३।३५।
४. एतद् वै जरामर्यं सत्रं यदग्निहोत्रम्। —शत० ब्रा० १२।४।१।१।
५. एतद् वै जरामर्यमग्निहोत्रं सत्रं ....। तै० आ० १०।६४।
६. यावज्जीवमेतमग्निं व्रीहिभिर्यवैर्वा सायं प्रातः परिचरति। आप० गृ० सू० २।५।१५-६; द्र०—हिरण्यकेशि गृ० सू० १।२२।२-३; भार० गृ० सू० १।१८।
७. ऐकाश्रम्यं गृहस्थस्य चतुर्णां श्रुतिदर्शनात्। कूर्म पू० २।५२।
८. सर्वेषु वेदशास्त्रेतिहासपुराणेषु गृहस्थधर्मा एवाग्निहोत्रादयः प्राचुर्येण विधीयन्ते। ततः सर्व एवाचार्या गार्हस्थस्यैकाश्रम्यं प्राधान्यं मन्यन्ते। तत्राशक्तानामितराश्रमधर्मा विधीयन्ते ,- मिता० (गौ० ध० सू० १।३।३५)।
९. अथर्व० ११।७(५)।१-२६; मनु ५।१५६।
१०. आप० ध० सू० २।६।२३।४-५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उसका आशय जन सामान्य को गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों से पराङ्मुख बनाना नहीं, अपितु संन्यासियों के मन में वैराग्यभाव तथा भगवद्भक्तों की भक्ति-भावना को अधिक उद्दीप्त करना मात्र है। पूर्णतः वैराग्य-बोध के बिना मात्र तात्कालिक विरक्ति की भावना से संन्यास ग्रहण करने के बाद पुनः विषय-वासना की लालसा की कटु निन्दा इतिहास-पुराण में की गई है।[1] अश्वघोष[2] और आर्यशूर[3] प्रभृति बौद्धधर्म के विद्वानों ने भी चित्त में विरक्ति के बिना प्रव्रज्या-ग्रहण के दोषों को उजागर किया है। बौद्ध धर्म में विवाह को अनिवार्य धार्मिक कर्त्तव्य न मानने और प्रव्रज्या को आवश्यकता से अधिक प्रश्रय देने से युवक-युवतियों में विवाह न करके सीधे भिक्षु-भिक्षुणी बनने की प्रवृत्ति अधिक बढ़ गई थी।[4] फलतः बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों में व्यभिचार भी पराकाष्ठा तक बढ़ गया था।[5] किन्तु सनातन धर्म की परम्परा के दूरदर्शी शास्त्रकारों ने कलियुग के लिए नैष्ठिक ब्रह्मचर्य,[6] वानप्रस्थ[7] एवं संन्यासाश्रम[8] में प्रवेश वर्जित करके तथा अनाश्रमित्व (किसी आश्रम में न रहने) को वर्जित[9] और उपपातक[10] बतला कर तथा इसके लिए प्रायश्चित्त[11] विहित करके प्रत्येक पुरुष के लिए गृहस्थाश्रम में प्रवेश अनिवार्य बना दिया था। यही नहीं, आपस्तम्ब स्मृति (९।७-८) के अनुसार यदि कोई भिक्षु भी पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश का इच्छुक हो तो तीन-कृच्छ्र एवं तीन चान्द्रायण करके वह इसका अधिकारी बन सकता था।

वैदिक काल की समाज-व्यवस्था में प्रायः प्रत्येक युवक विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। कालान्तर में इस प्रवृत्ति में शैथिल्य आते देखकर शास्त्रकारों ने नियम बना कर प्रत्येक पुरुष के लिए गृहस्थाश्रम में प्रवेश हेतु विवाह को अनिवार्य बना

---

१. शान्तिपर्व १०।२०; ११।१६; १२।३२; १८।२३, २९; कूर्मपू० ३।११; २९।२६ नारद पू० २७।९१-२; देवीभाग० १।१८।२४-७; भाग० ७।१५।३६; स्कन्द ४।४०।१०७; द्र०-मृच्छ० ५।१४।

२. सौन्दरनन्द ४।४२; ५।१४; ७।१,१२-३, ४७, ४९; ८।१२।

३. जातकमाला १९।७। ४. द्र०-बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन पृ० ४४।

५. द्र० प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० २३२, टि० २११।

६. नारद पू० २४।१५। ७. वही, २४।१४।

८. वही, २४।१३; ब्रह्मवै० ४।११५।११२-३; परा० मा०, आ० का०, पू०, पृ० १२३-४; निर्णयसिन्धु पृ० २६२-४।

९. (क) अनाश्रमी क्षणमपि न तिष्ठेदिति गौतमः। लौगाक्षि, स्मृ० सं०, पृ० २४५।
(ख) अनाश्रमी न तिष्ठेत् तु दिनमेकमपि द्विजः। आश्रमन्तु विना तिष्ठन् प्रायश्चित्तीयते हि सः॥ दक्षस्मृति १।१०; स्कन्द ४।३६।३५।

१०. याज्ञ० ३।२४१।

११. द्र०—परा० मा०, प्रा० का०, पृ० ४४० में हारीत के वचन।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दिया था। उत्तरवैदिक काल में विद्याध्ययन कर चुकने पर दीक्षान्त प्रवचन में गुरु शिष्य को सन्तान-परम्परा का उच्छेद न करने के लिए भी उद्बोधित करता था।[1] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में विद्याध्ययन के पश्चात् स्नातक के लिए दार-ग्रहण करके अग्न्याधान तथा गृहस्थोचित कर्तव्यों का सम्पादन विहित किया गया है।[2] नारदपुराण (पू० ४३।१०८) में भृगु नामक आचार्य ने समावर्तन के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश का विधान किया है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र (१।५।९-१०) में राजकुमार के लिए सोलह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन के पश्चात् गोदान (समावर्तन) और तब विवाह का विधान किया है। स्मृतियों और पुराणों में द्विजाति के लिए वेदाध्ययन के पश्चात् ब्रह्मचर्य को अखण्डित (अविप्लुत) रखते हुए गृहस्थाश्रम में प्रवेश[3] और इसके लिए विवाह[4] का विधान किया गया है। यद्यपि व्यास स्मृति (२।१) में समुचित कन्या मिलने तक विवाह की प्रतीक्षा करने को कहा गया है, किन्तु लौगाक्षि ने अपनी स्मृति में समावर्तन के पश्चात् सद्यः (शीघ्रमेव) सुलक्षणा कन्या के साथ विवाह का विधान किया है और इसका कारण निर्देश करते हुए कहा है कि गौतम के मतानुसार क्षण भर के लिए भी अनाश्रमी नहीं रहना चाहिए।[5] विवाह करके ही पुरुष गृहस्थाश्रमी कहला सकता था।[6] पत्नी-रहित पुरुष को गृहस्थाश्रम का अधिकारी नहीं माना जाता था।[7] पत्नी के विना गृहस्थाश्रम की कल्पना में भी सम्भव नहीं माना जाता था।[8] पराशर ने स्पष्टतः कहा

---

१. प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। तै० आ० ७।११; तै० उ० १।११।१।

२. विद्यां समाप्य दारं कृत्वाऽग्नीनाधाय कर्माण्यारभते। आप०ध०सू० २।९।२२।७

३. मनु ३।२; याज्ञ० १।५१-२; गरुड पू० ९५।१-२; भविष्य १।१८२।१६; विष्णु ३।१६।७।

४. (क)—द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत्॥ मनु ४।१; तु०वही ५।१६९
(ख)—समावृत्तस्तु गार्हस्थ्ये सदारो नियतो वसेत्। नारद पू० ५९।१४; देवीभाग० १।१८।१६।
(ग)—मार्क० २५।१७-८; द्र०-अयि वत्स! उषितं त्वया पूर्वस्मिन्नाश्रमे द्वितीयमध्यासितुं तव समयः। विक्रमोर्व० (कालिदासग्रन्था०, पृ०५१८)।

५. स्नानमेतद् विधानेन कृत्वा तत्परमेव वै॥
सद्य एव विधानेन लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनाश्रमी क्षणमपि न तिष्ठेदिति गौतमः। लौगाक्षि (स्मृतिसन्दर्भ पृ. २४५)।

६. (क)—पुण्यभार्याप्रयोगेण गार्हस्थ्यं सम्प्रजायते॥ पद्म २।५६।१६।
(ख)—किमन्यदस्याः कृतपाणिपीडनः पदं निधत्से गृहमेधिनां धुरि॥
—नवसाहसांकचरितम् ७।७६।

७. अभार्यस्याधिकारो हि न द्वितीयाश्रमे यथा। भविष्य १।६।४, द्र-वही, १।६।३०

८. गृहाश्रमस्तथा नास्ति विना स्त्रीभिः कथञ्चन। विष्णुधर्मो० ३।२२४।२४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है कि पुरुष गृह का स्वामी होने से गृहस्थ नहीं होता, अपितु भार्यायुक्त होने पर ही गृहस्थ कहलाता है।[१] ऋग्वेद के प्राचीन मण्डलों की रचना के समय से ही जाया (पत्नी) को ही गृह माना जाता था[२] और इतिहास-पुराण में सर्वत्र गृहिणी को ही गृह कहा गया है।[३] अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिए गृहस्थ जीवन में पदार्पण हेतु विवाह अत्यावश्यक था।

(२) व्यक्तित्व की पूर्णता—भारत भूमि में वैदिक काल से ही प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए विवाह आवश्यक माना जाता रहा है। ऋग्वेद (५।६१।८) में पुरुष के लिए 'नेमः' (आधा) विशेषण उसकी पत्नी-सापेक्षता के सन्दर्भ में प्रयुक्त है। तैत्तिरीय संहिता में पत्नी को पुरुष का आधा भाग कहा गया है।[४] ऐसे उद्धरणों से सूचित होता है कि संहिताओं के काल से ही विवाह करके पत्नी प्राप्त करने पर ही पुरुष को पूर्ण माना जाता था। इन विचारों को स्पष्ट करते हुए शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि पुरुष का आधा शरीर उसकी जाया है। अतः जब तक वह जाया को नहीं प्राप्त कर लेता तब तक पूर्ण नहीं होता—अधूरा ही रहता है। जब वह विवाह करके पत्नी को प्राप्त कर लेता है तब पूर्ण व्यक्ति बन जाता है।[५] ऐतरेय आरण्यक में कहा गया है कि पुरुष पत्नी को प्राप्त करके स्वयं को पूर्ण मानने लगता है।[६] वैदिक युग की ये मान्यताएं परवर्ती काल में भी समादृत रही हैं। इतिहास-पुराण, काव्य और शास्त्र में भी पत्नी को मनुष्य का आधा शरीर (अर्द्धाङ्गिनी) कहा गया है।[७] बृहस्पति ने कहा है कि श्रुति, स्मृति एवं लोकाचार में भी पत्नी को पुरुष का आधा शरीर कहा

---

१. न गृहेण गृहस्थः स्याद् भार्यया कथ्यते गृही। बृहत्पराशरस्मृति ६।७१।

२. जायेदस्तं।—ऋ० ३।५३।४।

३. (क)—न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते। शान्तिपर्व १४४।६।
(ख)—गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहं गृहमुच्यते। ब्रह्मवै० २।५९।१४।

४. अर्द्धो वा एष आत्मनो यत् पत्नी....। तै० सं० ६।१।८।५; तु०-तै० ब्रा० ३।३।३।६।

५. अर्द्धो ह वा एषा आत्मनो यज्जाया, तस्माद् यावज्जायां न विन्दते नैव तावत् प्रजायते असर्वो हि तावद् भवति। अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि सर्वो भवति। शत० ब्रा० ५।२।१।१०; द्र०—यदा वै सह मिथुनेनाथ सर्वोऽथ कृत्स्नः। शत० ब्रा० ८।७।२।३।

६. तस्मात् पुरुषो जायां वित्त्वा कृत्स्नतरमिवात्मानं मन्यते। ऐ० आ० १।२।५।

७. (क) अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य....।-आदिपर्व ७४।४०।
(ख) जाया त्वर्द्धं शरीरस्य....।-भविष्य १।८।३७।
(ग) द्र०-शरीरार्द्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया॥ प्रतिमानाटकम् १।१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गया है।[1] ऐसी मान्यताओं के कारण ही पत्नी रहित पुरुष को आधा शरीर वाला कहा गया है।[2] पुरुष जब तक विवाह करके पत्नी को नहीं प्राप्त कर लेता तब तक आधा ही रहता है।[3] अतः उसे यथासमय विवाह कर लेना चाहिए।[4] इस तरह विवाह को मनुष्य के व्यक्तित्व को पूर्ण करने वाला माना गया है। मनु ने तो मनुष्य की पत्नी और सन्तान को मिलाकर ही उसे पूर्ण पुरुष माना है।[5] इस तरह ऋग्वैदिक-काल से ही व्यक्तित्व की पूर्णता की भावना का प्रत्येक व्यक्ति के लिए विवाह को आवश्यक बनाने में उल्लेखनीय योगदान रहा है।

३—ऋण-परिशोधन—प्रत्येक व्यक्ति पर जन्मतः ऋणत्रय[6] या ऋणचतुष्टय[7] की वैदिककाल से ही चली आ रही मान्यता ने भी विवाह को अनिवार्य बना दिया था। इन ऋणों में से केवल ऋषिऋण को ब्रह्मचर्याश्रम में वेदाध्ययन (विद्याध्ययन) करके चुकाया जा सकता था, किन्तु शेष ऋणों का अपनोदन विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर ही संभव था। प्राचीनकाल के कुछ वीतराग प्रकृति के पुरुषों को इन्हीं ऋणों को चुकाने के लिए विवाह करने की प्रेरणा दी जाती थी। मार्कण्डेयपुराण ९२ ३-७ के अनुसार मुक्त-सङ्ग रुचि प्रजापति को, तिनके के सहारे लटके हुए पितरों ने, विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश हेतु प्रेरित करते हुए कहा था कि ऐसा न करने पर वह प्रतिदिन देवों, पितरों, मनुष्यों तथा इतर प्राणियों के ऋणों से मुक्त न होने के कारण बन्धन-ग्रस्त होता रहेगा। श्रीमद्भागवतपुराण (६।५।३६-७) में शबलाश्वों को ऋणत्रय से मुक्त होने के पूर्व ही निवृत्तिमार्गी बना देने वाले नारद पर दक्ष के कुपित होने का वर्णन भी विवाह की अनिवार्यता का बोधक है। बाणभट्ट की कादम्बरी में चन्द्रापीड इसलिए चिन्तित है कि वैशम्पायन गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट न होने से अभी देवों, पितरों और

१. आम्नाये स्मृतितन्त्रे च लोकाचारे च सूरिभिः।
शरीरार्द्धं स्मृता भार्या पुण्यापुण्यफले समा॥-बृ० स्मृ० २६।९२।

२. नरो हि गृहिणीहीनो अर्द्धदेह इति स्मृतः।-स्कन्द १।२।३।९२।

३. यावन्न विन्दते जायां तावदर्धो भवेत् पुमान्।-व्यासस्मृति २।१४।

४. पुमानर्द्धंपुमांस्तावत् यावद् भार्यां न विन्दति।
-तस्माद् यथाक्रमं काले कुर्याद् दारपरिग्रहम्। भविष्य १।६।२९।

५. एतावानेव पुरुषो याज्जायात्मा प्रजेति ह।-मनु ९।४५।

६. अथर्व० ६।११७।३; १२।४।३२; तै० सं० ६।३।१०।५; बौ० ध० सू० २।६।११।३६; २।९।१६।४-७; मीमांसा सूत्र ६।२।३१; शिव ६।१२।२६-७; द्र०—शिवदत्त ज्ञानी : वेदकालीन समाज, पृ० ११०-११३; डा० जयशंकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० २१५-६।

७. शत० ब्रा० १।७।२।१-५; आदिपर्व ११९।१७-२०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मनुष्यों के ऋणों से बँधा हुआ है।[१] उपनिषद् कालीन निवृत्तिमार्गी विचारों के प्रभाव के साथ ही जैन और विशेषतः बौद्ध धर्म के द्वारा श्रमण-संस्कृति को अधिक प्रोत्साहन दिये जाने से गृहस्थाश्रम से पलायन की प्रवृत्ति में वृद्धि स्वाभाविक थी।[२] अतः इसे नियन्त्रित करने के लिए स्मृतियों और पुराणों में यह कहा गया कि ऋणत्रय का अपाकरण किये विना मोक्ष चाहने वाले का अधःपतन होता है।[३] इस तरह इन ऋणों के अपनोदन की भावना ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए विवाह को अनिवार्य बना दिया था। अतः कालान्तर में इन ऋणों का अपनोदन ही विवाह का फल माना जाने लगा था[४]।

ऋग्वेदकाल से ही पुत्र को पितृ ऋण से मुक्ति दिलाने वाला[५] तथा अमृतत्व की प्राप्ति का हेतु[६] माना जाता था। ऐतरेय ब्राह्मण तथा धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि पिता अपने नवजात पुत्र का मुख देख कर अपना पितृऋण उसके ऊपर संक्रान्त कर देता है तथा स्वयं अमरत्व का भागी बनता है।[७] महाभारत (आदिपर्व २२८।५-१७) में उल्लेख है कि पितृऋण से मुक्त न होने के कारण तपस्वी मन्दपाल को देहान्त के पश्चात् अपने सत्कर्मों का फल नहीं मिला। अतः उन्होंने शार्ङिगक पक्षी के रूप में जन्म ग्रहण करके शार्ङ्गी से चार पुत्र उत्पन्न किये थे। बिल्हण ने अपने विक्रमाङ्कदेवचरितम् काव्य (२।३४) में भारतीय संस्कृति की इस मान्यता को अभिव्यक्त किया है कि पुत्रहीन पुरुष पितृऋण का अपनोदन करने में असमर्थ रहता है। देवीभागवत (१।१४। २८-६) में वेदव्यास अपने वीतराग पुत्र शुक से कहते हैं कि वह उन्हें पितृ-ऋण से मुक्त कराने तथा स्वयं अपनी सद्गति और स्वर्ग-लाभ हेतु विवाह करे। विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।२५६।६) में विवाह और पुत्रोत्पादन न करने से वंशोच्छेदन करने वाले को नरक का भागी कहा गया है। ब्रह्मपुराण (३४।६९) के अनुसार एक द्विज से उसके पितरों ने कहा था कि जब वह विवाह करके पुत्रोत्पादन करेगा, तभी वे नारकीय दुःख से मुक्त हो पावेंगे। बौधायन (ध० सू० २।९।१६।८-६) के अनुसार पुत्र उत्पन्न करके पुरुष स्वयं अपने और अपने सात पीढ़ी पूर्व के तथा सात भावी पीढ़ियों के पुरुषों को भी तार देता है। शास्त्रों के अनुसार पुत्र ही पिता को पुत् नामक नरक में

१. कादम्बरी, उ० भा०, पृ० ६८-६६।
२. द्र०—पाण्डेय, विमलचन्द्र : भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, पृ० २०१-२
३. मनु ६।३५-७; विष्णुधर्मो० २।१३१।४-५; भाग० १०।८४।३९; देवीभाग० ११।२३।१७-८; शिव २।२।१३।३६।
४. देवपितृऋणापगमो विवाहस्य फलम्।-संस्काररत्नमाला।
५. ऋ० ६।६१।१; द्र०—अथर्व० ६।१२२।२; तु०—शत० ब्रा० १।७।२।४।
६. प्रजाभिरग्नेरमृतत्वमश्याम। ऋ० ५।४।१०; द्र०—तै० ब्रा० १।५।५।६; आप० ध० सू० २।६।२४।१।
७. ऐ० ब्रा० ३३।१; वसिष्ठ ध० सू० १७।१; विष्णुस्मृति १५।४५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गिरने से बचाता है।[1] पुरुष अपने पुत्र से ही अभीष्ट लोकों को जीतता है।[2] वह पिता के लिए दोनों लोकों में कल्याणकर होता है।[3] पुत्रहीन व्यक्ति के यज्ञ, दान, तप आदि पुण्यकर्म भी निरर्थक होते हैं[4] और उसे सद्गति तथा स्वर्गलाभ से भी वञ्चित रहना पड़ता है।[5] इस प्रकार ऋग्वैदिक काल से ही पितृ-ऋण के अपनोदन, तथा इहलोक एवं परलोक को सुधारने आदि की भावना ने पुत्र-प्राप्ति हेतु विवाह को आवश्यक बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

४—एक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण संस्कार—इण्डो-यूरोपीय भाषा परिवार से सम्बद्ध प्राचीन भारतीय तथा इतर संस्कृतियों में विवाह-संस्कार के कुछ प्रमुख कृत्यों में समानता पाई गई है।[6] अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि इन संस्कृतियों के समान पूर्वजों के काल से ही विवाह को एक आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण संस्कार का स्तर प्राप्त हो चुका था। वैदिक संहिताओं में अन्य संस्कारों की अपेक्षा विवाह संस्कार से सम्बन्धित मन्त्रों की अधिकता तथा व्यापकता से स्पष्ट होता है कि इसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक संस्कार माना जाता था। इसके सर्वातिशायी महत्त्व के कारण ही अधिकांश गृह्यसूत्रों (जिनका मौलिक और मौखिक रूप संहिता काल में भी विद्यमान रहा होगा[7]) का आरम्भ ही इसके प्रति-पादन से होता है।[8] उत्तरवैदिक तथा पौराणिक काल में विवाह को परम आवश्यक संस्कार माना जाता था और यह विश्वास किया जाता था कि अविवाहित व्यक्ति को सत्कर्मों के फल, सद्गति एवं स्वर्गलोक की प्राप्ति से वञ्चित रहना पड़ता है। अत एव वैखानस गृह्यसूत्र (५।६) में अविवाहित या विधुर पुरुष की मृत्यु होने पर किसी सजातीय कन्या के साथ उसके दाम्पत्य की प्रकल्पना करने पर ही उसका दाह-संस्कार विहित किया गया है और प्राप्त यौवना कन्या की मृत्यु पर भी किसी सजातीय पुरुष के साथ उसके गार्हस्थ्य की प्रकल्पना के पश्चात् ही उसका दाह-संस्कार करने को कहा गया है। वैखानस गृह्यसूत्र कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध है, जिसका प्रचलन दक्षिण भारत में अधिक है। अतः यह कल्पना की जा सकती है कि इस विधि का प्रचलन दक्षिण भारत में ही अधिक रहा होगा। ट्रावनकोर के नम्बूदरी-

---

१. आदिपर्व २२८।१४; विष्णुधर्मो० ३।२५६।४; विष्णुस्मृति १५।४४।
२. बौ० ध० सू० २।६।१६।१६; वसिष्ठ ध० सू० १७।५; विष्णुस्मृति १५।४६; विष्णुधर्मो० ३।२५९।२; शिव ३।१४।३१।
३. रघु० १।६६। ४. आदिपर्व ११६।२९; सभापर्व ४१।२७-८।
५. गरुड पू० ३।१०; देवीभाग० १।४।१५, १९; द्र०—विष्णु ३।२५६।१।
६. द्र०—इवोल्यूशन आफ हिन्दू मैरेज, पृ० २७।
७. डाँगे, एस० ए० : कल्चरल सोर्सेज् फ्रौम द वेद, पृ० ५८।
८. द्र०-हिन्दू संस्कार, पृ० २१-२ में प्रदत्त तालिका।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पाद परिवारों में आधुनिक युग में भी इस विधि का प्रचलन पाया गया है।[१] भारत के बाहर भी कुछ देशों में इस प्रथा का प्रचलन रहा है।[२] पारलौकिक दृष्टि से विवाह को एक संस्कार रूप में संपादित करने की जो विचारधारा वैखानस गृह्यसूत्र में है वह महाभारत में भी प्रतिध्वनित होती है। महाभारत (शान्तिपर्व ५२।३-२३) के अनुसार कुणिगर्ग की तपस्विनी कन्या जब वृद्धावस्था में देहत्याग को उद्यत हुई तो नारद ने उसे बतलाया कि असंस्कृता (अविवाहिता) होने से उसके लिए मृत्यु के बाद कोई लोक सुलभ नहीं है। तब उसने अपना आधा पुण्य देकर एक रात्रि के सहवास के 'समय' (शर्त) पर शृङ्गवान् के साथ विवाह किया था। मन्दपाल नामक मुनि को भी अविवाहित और फलतः पितृऋण से मुक्त न होने के कारण शार्ङ्गिक पक्षी बनकर शार्ङ्गी से सन्तानोत्पादन के बाद ही अभीष्ट लोक की प्राप्ति हुई थी।[३]

रामायण (२।७५।३५) में विवाह न होना और सन्तान न होना मनुष्य के लिए अभिशाप माना गया है। पुराणों के अनुसार जिस व्यक्ति का विवाह नहीं होता तथा जिसे पुत्र नहीं होता वह ब्रह्महत्या[४] और यमालय[५] (नरक) को प्राप्त करता है। विवाह न करने वाला द्विज पुनर्जन्म में राजहंस की योनि को प्राप्त होता है।[६] ऐसी धार्मिक मान्यताओं ने विवाह को अनिवार्य संस्कार बना दिया था। फलतः अयोग्य व्यक्तियों का भी एक संस्कार के रूप में विवाह कर दिया जाता था। धर्मशास्त्रों में नपुंसक, पतित, उन्मत्त, जड़, अन्धे और अचिकित्स्य रोगी की औरस और क्षेत्रज सन्तानों को दाय का अंश देने के विधान से स्पष्ट होता है कि संभवतः ऐसे (नपुंसक पंगु अन्धे आदि) व्यक्तियों का विवाह एक अनिवार्य संस्कार मानकर ही किया जाता था।[७] ब्रह्मपुराण (गौ० ४१।३-४९) में प्रतिष्ठानपुर के राजा शूरसेन द्वारा अपनी रानी के गर्भ से उत्पन्न सर्प का विवाह कराने में संस्कार की उपर्युक्त भावना भी एक हेतु थी। विवाह संस्कार की अनिवार्यता सभी वर्णों के लिए समान रूप से थी। शूद्रों को यद्यपि मनु ने संस्कार के अयोग्य कहा है,[८] किन्तु व्यास और यम ने उनके लिए अमन्त्रक संस्कार विहित किये है,[९] और निबन्ध ग्रन्थों में विवाह ही शूद्र के लिए एकमात्र

१. द्र०—इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्राज्, पृ० ३७६-७।
२. वही, पृ० ३७६। ३. आदिपर्व २२८।६-१७।
४. ब्रह्मवै० २।३०।१६६; देवीभाग० ९।३४।५०।
५. वराह १९५।१८-९।
६. अनुद्वाही द्विजश्चैव राजहंसो भवेद् ध्रुवम्। ब्रह्मवै० ४।८५।१५५।
७. मनु ९।२०१-३; याज्ञ० २।१४०-१४२; अग्नि २५६।२७-९; देवल (कृत्यकल्पतरु, व्यवहारकाण्ड, पृ० ६६८ में उद्धृत)। ८. मनु १०।१२६।
९. व्यासस्मृति १।१६; यम (याज्ञ० १।१० की मिता० में उद्धृत)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संस्कार के रूप में विहित है।[1] स्त्रियों के अन्य संस्कार अमन्त्रक होते थे, किन्तु विवाह-संस्कार वैदिक मन्त्रों से हो सकता था।[2] इस तरह वैदिक काल से ही विवाह के संस्कार पक्ष को प्रधानता दिये जाने से तथा इतिहास-पुराण में इसकी अनिवार्यता के पक्ष में अनेक धार्मिक भावनाएँ व्यक्त किए जाने से विदित होता है कि यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य संस्कार माना जाता था।

(५) धार्मिक कृत्यों के सम्पादन की क्षमता—प्राचीन भारत के धर्म-प्रधान समाज में धार्मिक कृत्यों के सम्पादन की क्षमता पाने के लिए भी विवाह को एक आवश्यक संस्कार माना जाता था। वैदिक संहिताओं के काल में यज्ञ ही प्रमुख धर्म बन गया था और वैदिक युग में यज्ञीय क्रिया-कलापों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई थी। पुरुष को यज्ञ-सम्पादन हेतु विवाहित होना आवश्यक था, क्योंकि यज्ञ में पत्नी की स्थिति अपरिहार्य थी और उसे विभिन्न कृत्यों में सम्मिलित होकर उनका निष्पादन करना पड़ता था।[3] इसीलिए शतपथब्राह्मण में स्त्री (पत्नी) को यज्ञ का जघनार्ध कहा गया है।[4] पत्नीरहित पुरुष यज्ञ करने में असमर्थ था। अतः ब्राह्मणों में उसे 'अयज्ञिय' घोषित किया गया था।[5] यज्ञधर्मी समाज में यज्ञाधिकार से वञ्चित व्यक्ति प्रतिष्ठित नहीं माना जा सकता था। डा० राजबली पाण्डेय के विचार से 'अयज्ञिय' शब्द अत्यन्त निन्दा सूचक था।[6] डा० जोगिराज बसु ने भी यही निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि उत्तरवैदिक युग में यज्ञ करने की क्षमता प्राप्त करने के लिए विवाह एक आवश्यक संस्कार माना जाता था।[7] पौराणिक युग में भी पुरुष पत्नी के साथ ही यज्ञ[8] तथा अन्य धार्मिक कृत्य[9] करता था। पत्नी के स्थान में उसकी प्रतिमा रख कर यज्ञ करने का दृष्टान्त श्रीराम ने प्रस्तुत किया था।[10] किन्तु यह परवर्ती काल के लिए कोई निदर्शन

---

१. (क) द्र०—स्मृतिचन्द्रिका १, पृ० २४।
(ख) विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोऽपि लभतां सदा। हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग २, खण्ड १, पृ० १९८ के अनुसार निर्णयसिन्धु में ब्रह्मपुराण से उद्धृत।
२. मनु २।६६-७; याज्ञ० १।१३।
३. चौधरी, जे०बी० : द पोजीशन आफ वूमेन इन वैदिक रिच्युअल, पृ. ६१-१२७
४. जघनार्धो वा एष यज्ञस्य यत्पत्नी।—शत० ब्रा० २।२।१।८।
५. अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः। तै० ब्रा० ११।२।२।६; शत० ब्रा० ५।१।६।१०
६. हिन्दूसंस्कार, पृ० १९५।
७. बसु, जोगिराज : इण्डिया आफ द एज आफ द ब्राह्मणाज़्, पृ० ३४।
८. द्र०—पौराणिक धर्म और समाज, पृ० २७३, टि० ७५-९।
९. वही, पृ० २७४, टि० ८०-८२।
१०. रामा० ७।९१।२४; रघु० १५।६१; उत्तररामचरितम् अङ्क ३, श्लोक ४५-६ के मध्य; कात्यायन स्मृति २०।१०; पद्म ५।१०।६; स्कन्द ६।९६।११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नहीं बन सका था। पुराणों में स्पष्टतः कहा गया है कि पत्नी के विना पुरुष यज्ञ-कर्म के योग्य नहीं होता।[१] पत्नी के विना यज्ञ सम्पन्न (सिद्ध) ही नहीं हो सकता।[२] गृहिणी (पत्नी) का साहचर्य होने पर ही यज्ञ सिद्ध हो सकता है।[३] पत्नी के सहयोग से यज्ञ की सिद्धि के लिए ही परमात्मा ने स्वयं को द्विधा विभक्त किया था।[४] पुराणों में ब्रह्मा द्वारा किये जाने वाले यज्ञ में उनकी पत्नी सावित्री के आगमन में विलम्ब होने पर गोप कन्या गायत्री के साथ उनके विवाह की कथा के द्वारा यज्ञ में पत्नी की अपरिहार्यता ख्यापित की गई है।[५] भविष्यपुराण (२।२।५५-६) के अनुसार अठचालीस वर्ष की उम्र के पूर्व जो पुरुष पत्नी रहित हो वह रण्डाश्रमी कहलाता है। वह यज्ञ-सम्पादन का अधिकारी नहीं होता।

रामायण (२।७५।३५) से भी यह सूचित होता है कि अविवाहित पुरुष को धार्मिक कृत्यों के सम्पादन के अयोग्य माना जाता था। महाभारत में पत्नी को धर्मकृत्यों में सर्वाधिक सहायक बतलाया गया है।[६] कालिदास ने पत्नी को ही धार्मिक क्रियाओं का मूल कारण कहा है।[७] पुराणों के अनुसार सपत्नीक पुरुष ही श्रौत-स्मार्त कर्म और वषट्कार कर सकते हैं।[८] पत्नी रहित पुरुष के द्वारा किये गये यज्ञ, दान, व्रत तथा अन्य धर्मकार्य सिद्ध नहीं होते।[९] पत्नी रहित पुरुष देवता, पितृ एवं अतिथियों के पूजन तथा यज्ञादि करने के योग्य नहीं होता[१०] और वह इन्हें करने में समर्थ भी नहीं होता।[११] उसे सभी शुभ कर्मों के लिए अप्रशस्त,[१२] अयोग्य,[१३] दैवकर्म एवं पितृकर्म में अशुचि[१४] और श्राद्ध[१५] तथा गृह-वास्तु-प्रतिष्ठा सम्बन्धी होम[१६] में वर्जित कहा गया

१. पत्न्या विना पुमानिज्याकर्मयोग्यो न जायते। मार्क० ६७।२३।
२. विना पत्न्या न सिद्धचेत यज्ञः श्रुतिनिदर्शनात्। ब्रह्म गौ० ९१।३३।
३. यज्ञाः सिद्धि तदा यान्ति यदा स्याद् गृहिणी गृहे। पद्म २।६०।६।
४. ब्रह्म गौ० ९१।३४-५।
५. पद्म १।१६।१२७-१६०; स्कन्द ६।१८१।५४-७३; ७।१।१६५।२०-२८।
६. नास्तिभार्यासमो लोके सहायो धर्मसंग्रहे। शान्तिपर्व १४४।१६।
७. क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम्। कुमारसंभव ६।१३।
तु०—पत्नीयं सर्वधर्माणां सारभूता सनातनी। भविष्य ३।४।२४।३४।
८. सदारेण क्रियाः कार्याः श्रौताः स्मार्ताः वषट्क्रियाः। मार्क० ७२।१५।
९. पद्म २।५९।२०-२१।
१०. देवपित्रातिथीज्यादि नाभार्यः कर्म चार्हति। शिव २।३।५४।६६।
११. मार्क० २१।७४। १२. स्कन्द १।२।३।६२-३। १३. भविष्य १।६।३०।
१४. अशुचिः स्त्रीविहीनश्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि। ब्रह्मवै० २।५९।१५।
१५. ब्रह्म ११२।६४; द्र०—भविष्य २।२।७।५३।
१६. भविष्य २।२।२१।१४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन समाज में यज्ञ-याग, देव-पूजन, पितृश्राद्ध तथा अन्य धार्मिक कृत्यों के सम्पादन की योग्यता की प्राप्ति हेतु पुरुष के लिए विवाह करना परम आवश्यक था।

(६) अर्थ-साधन—धर्म-साधन की ही भाँति पुरुष के लिए अर्थ-साधन हेतु भी विवाह आवश्यक था। वैदिक काल से ही पत्नी पति के खान-पान की व्यवस्था करती रही है।[१] नाना पारिवारिक कृत्यों के सम्पादन के अतिरिक्त वह ऊन कातने, वस्त्र बुनने[२] तथा पुरुष द्वारा अर्जित धन की रक्षा[३] आदि करती रही है। इतिहास, पुराण और स्मृति साहित्य में पुरुष की अर्थार्जन की सफलता पत्नी पर ही निर्भर बतलाई गई है।[४] अतः प्राचीनकाल में आर्थिक दृष्टि से भी पुरुष के लिए विवाह करना आवश्यक था।

(७) सामाजिक प्रतिष्ठा—समाज में प्रतिष्ठित रहने के लिए भी विवाह आवश्यक था। महाभारत के अनुसार पत्नीयुक्त पुरुष ही समाज में विश्वसनीय माना जाता था।[५] पत्नी पुरुष को कल्मष (=दुष्कर्म या पाप) से बचाने वाली मानी जाती थी[६] अर्थात् पत्नीयुक्त व्यक्ति के मर्यादित रहने की कल्पना की जाती थी। स्कन्दपुराण (१।२।३।६२-४) में पत्नी रहित पुरुष को अर्द्ध शरीर वाला और अस्पृश्य कहा गया है।[७] गरुडपुराण (पू० १०९.४८) में युवावस्था में पत्नीरहित पुरुष को मनुष्य रूप में विचरण करने वाला पशु कहा गया है। धर्मशास्त्रों के अनुसार अविवाहित या पत्नीरहित पुरुष दत्तक पुत्र को भी ग्रहण नहीं कर सकता था।[८] इस तरह सामाजिक प्रतिष्ठा और सुख-सुविधा की भावना ने भी विवाह को प्रत्येक पुरुष के लिए आवश्यक बनाने में पर्याप्त योगदान दिया है।

(८) सुखी जीवन— सुखमय जीवन के लिए भी विवाह आवश्यक था। वैदिक समाज ऐश्वर्योपासक, भोगवादी एवं आनन्दप्रधान था। युवकों को लौकिक सुखों से निवृत्त करने की प्रवृत्ति वैदिक ऋषियों में नहीं थी। अतः वैदिक साहित्य में स्त्री-

---

१. अथर्व० २०।१२७।९।

२. ऋ० ५।४७।६; अथर्व० १४।१।४५

३. अथर्व० १।१४।४।

४. आदिपर्व ७४।४२; शान्तिपर्व १४४।१४; ब्रह्मवै० २।५९।१३; मार्क० १९।७५; स्कन्द ३।३।१४।३०; बृहत्पराशरस्मृति ४।६८।

५. यः सदारः स विश्वास्यस्तस्माद् दाराः परा गतिः। आदिपर्व ७४।४४।

६. संसारकल्मषात् त्रात्री कलत्रमिति सा ततः। स्कन्द १।२।१५।१९।

७. अर्द्धदेही च मनुजस्त्वसंस्पृश्यः सतां मतः। स्कन्द १।२।३।६४।

८. लोहितस्मृति, श्लोक १८७-८; द्र०—आंगिरसस्मृति (२), पू०, श्लोक ३८३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संसर्ग में आनन्द की कल्पना प्राप्त होती है।[१] वैदिक ऋषि नव दम्पती के प्रति यह शुभाशंशा करता है कि वे अपने घर में प्रसन्न और सुखी रहेंगे।[२] इतिहास,[३] पुराण,[४] स्मृति,[५] काव्य[६] एवं नीति-ग्रन्थों[७] में भी यह स्वीकार किया गया है कि गृहस्थ का सुख पत्नी पर ही निर्भर है। पत्नी रहित पुरुष सुखी नहीं रह सकता।[८] वह नियत समय में भोजन भी नहीं पा सकता।[९] पत्नी ही पुरुष की लोकयात्रा[१०] एवं गृहकृत्यों[११] में सहायक होती है। मानसिक दुःखों से सन्तप्त तथा व्याधिग्रस्त पुरुष को उसकी पत्नी ही आह्लादित करती है।[१२] रोगग्रस्त एवं संकटापन्न पुरुष के लिए उसकी पत्नी भेषज तुल्य होती है।[१३] ऐसी धारणाओं से विवाह का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

(९) कामसेवन—अथर्ववेद के एक मन्त्र से सूचित होता है कि काम को वैदिककाल से ही हृदय की एक सहज वृत्ति माना जाता रहा है।[१४] परवर्ती साहित्य में यह स्वीकार किया गया है कि आहार, निद्रा और भय के समान ही काम भी एक सहज वृत्ति है।[१५] मल-मूत्र, क्षुधा और निद्रा के वेगों की भाँति ही काम भी प्रत्येक मनुष्य को पीडित करता है।[१६] इस तरह काम की दुर्निवार्यता तथा इसके सेवन की अनिवार्यता ख्यापित की गई है। काम-भावना युवावस्था में ही स्त्री-पुरुषों को विशेषतः

---

१. द्र०—ऋ० १०।३२।५; वाज० सं० ३०।६; बृह० उ० ४ ३।१३।
२. ऋ० १०।८५।४२; तु०—अथर्व० १४।१।२२; १४।२।४३।
३. आदिपर्व ७४।४२, ५०; शान्तिपर्व १४४।१५।
४. देवीभाग० ५।१६।५४; ६।६।१२; पद्म ६।२२३।३६; ब्रह्मवै० १।२४।२५; स्कन्द ४।१०।६८; ४।३६।८४; ६।१४७।५६; द्र०—न सुखं भार्यया समम्।—नारद उ० २२।१६।
५. बृहत्पराशरस्मृति ४।६८; दक्षस्मृति ४।७; अरुणस्मृति १।६४।
६. नाट्यशास्त्र २०।६३; कथा० ४।३।२८।
७. चाणक्यनीति ४।१०; शुक्रनीति १।११४; ३।२६३-४।
८. (क)—नास्त्यदाराणामननुगुणदाराणां वा सुखं नाम। दशकु०, उ० पी०, उ० ६, पृ० २२० (ख)—शुक्रनीति ४।११८४-५।
(ग)—स्त्रियं विना सुखं नास्ति गृहस्थाश्रमके नृप। भविष्य ३।२।११।८।
९. सावकाशस्तु वै भुङ्क्ते यस्तु दारैर्न सङ्गतः। गरुड पू० ११५।६६।
१०. शान्तिपर्व १४४।१४। ११. शुक्रनीति १।१३३।
१२. आदिपर्व ७४।५०। १३. शान्तिपर्व १४४।१५।
१४. कामेन मा काम आगन् हृदयाद् हृदयं परि। अथर्व० १६।५२।४।
१५. द्र०—ब्रह्माण्ड ४।८।२३-४; विष्णुधर्मो० २।६२।१४; कुलार्णवतन्त्र १।६६; हितोपदेश, कथामुख, २५। १६. कुलार्णवतन्त्र १।७०; भविष्य ४।४।२०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पीडित करती है।[1] ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वैदिक ऋषि ने युवावस्था में ही काम-सेवन की प्रवृत्ति देखी है।[2] महाकवि कालिदास भी युवावस्था में ही विषय-भोग के पक्षपाती हैं।[3] भरतमुनि (द्र०—नाट्यशास्त्र २३।४१-३) ने नारी के नवयौवन को ही कामोपभोग के योग्य बतलाया है। पद्म-पुराण (२।९३।४४-६) में विषय-भोग के लिए युवावस्था को ही उचित बतलाया गया है। वात्स्यायन ने चार पुरुषार्थों में से अन्यतम काम का सेवन युवावस्था में ही विहित किया है।[4] किन्तु विना विवाह किये युवक-युवतियों को कामोपभोग की तनिक भी छूट नहीं थी। विवाह के पूर्व ब्रह्मचर्यावस्था में स्त्री-समागम वर्जित था।[5] इससे ब्रह्मचारी अवकीर्णी हो जाता था।[6] महाभारत (अनु० पर्व १०४।४७-८) में कहा गया है कि बुद्धिमान् पुरुष विवाह के पूर्व स्त्री-समागम न करे, अन्यथा वह अवकीर्णी हो जायेगा और उसे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। अवकीर्णी को गर्दभालभन (गर्दभ-स्पर्श) करके या गर्दभ के चर्म को ओढ़ करके निर्ऋति का यजन करना पड़ता था।[7] ऐसी स्थिति में युवक-युवतियों को केवल विवाह-सम्बन्ध में आबद्ध होने पर ही सहवास की अनुमति प्राप्त होती थी।[8] नवविवाहित युगल त्रिरात्र व्रत के पश्चात् चतुर्थी-कर्म की रात्रि में ही प्रथम समागम के अधिकारी होते थे। प्राचीन साहित्य में काम के धर्म-विरुद्ध सेवन को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया है और सदैव धर्मसम्मत काम के सेवन की ही संस्तुति की गई है।[9] कामशास्त्र के आचार्य वात्स्यायन ने भी यही कहा

---

१. द्र०—पद्म २।९३।१०६।

२. युवा ह यद् युवत्याः क्षेति योनिषु। ऋ० १०।४०।११; द्र० वही, ११६७।६; २।३५।४; १०।३१।१४। ३. यौवने विषयैषिणाम्। रघु० १।८।

४. कामं च यौवने। कामसूत्र १।२।३।

५. पार० गृ० सू० २।५।१२; आप० ध० सू० १।१।२।२६; द्र०—गौ० ध० सू० १।२।२२—जहाँ मैथुन की शङ्का रहने पर युवा ब्रह्मचारी के लिए स्त्री का दर्शन और स्पर्श तक वर्जित है)।

६. बौ० ध० सू० २।१।१।२९; याज्ञ० ३।२८०; गरुड पु० १०५। ३६।

७. पार० गृ० सू० ३।१२।१-१०; बौ० ध० सू० २।१।१।३०; आप० ध० सू० १।८।२६।८; गौ० ध० सू० ३।५।१७; वसिष्ठ ध० सू० (स्मृति) २३।१।

८. द्र०—अथर्व० १४।२।१४, ३७, ३९ इत्यादि। नारदस्मृति (१२।२) में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के पूर्व उनका परस्पर वरण और पाणिग्रहण संस्कार आवश्यक बतलाया है। बृहत्पराशर स्मृति (१२।१४) में राजा के लिए यौन-सम्बन्ध हेतु विवाह आवश्यक बतलाया गया है।

९. शान्तिपर्व १९३।१७; विष्णुधर्मो० २।६२।२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है कि चारों वर्णों के पुरुषों के लिए शास्त्रानुसार (विवाहिता), सवर्णा एवं अनन्यपूर्वा के साथ किया गया काम का सेवन ही पुत्रप्रद, यशस्कर तथा लोक-प्राप्ति कारक होता है।[१]

प्राचीन भारतीय साहित्य में यह धारणा व्यक्त की गई है कि काम का नितान्त त्याग या अतिसेवन रोगजनक[२] और विनाशकर[३] होता है। इसका अतिशय सेवन अनेक दोषों,[४] रोगों,[५] विशेषतः क्षयरोग[६] और परिणामतः मृत्यु[७] का भी कारण हो सकता है। कामुक स्त्री-पुरुषों के लिए काम का नितान्त सेवन न करना भी हानिकर हो सकता है। काम की दश अवस्थाएँ बतलाई गई हैं।[८] पहली नौ अवस्थाओं तक भी कामुक स्त्री-पुरुषों को यदि काम-सेवन का अवसर नहीं मिला तो दशवीं अवस्था मृत्यु-जनक हो सकती है। कादम्बरी कथा के अनुसार पुण्डरीक की मृत्यु कामवेग जनित असह्य ज्वर के कारण ही हुई थी।[९] संभवतः कामुक व्यक्ति की मनोदशा तथा स्वास्थ्य की रक्षा को ध्यान में रख कर ही आचार्य वात्स्यायन ने शरीर की स्थिति को बनाये रखने हेतु काम का सेवन आहार के समान आवश्यक बतलाया है।[१०]

आयुर्वेद के अनुसार कामोत्तेजना को ब्रह्मचर्य के बल पर दबाना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से पुरुष में एक प्रकार की नपुंसकता आ सकती है।[११] शुक्र का वेग रोकने से शुक्रवाही स्रोत दूषित हो सकते हैं[१२] तथा शुक्राश्मरी[१३] और मूत्रकृच्छ्र[१४] जैसे

---

१. कामसूत्र १।५।१; तु० वही ३।१।१। २. विष्णुधर्मो० २।६२।१४-५।

३. अग्नि २८१।१८। ४. दोषग्रामोऽतिसेवनात्। विष्णुधर्मो० २।६२।१३।

५. सुश्रुतसंहिता, चिकित्सास्थानम्, २४।११९-२।

६. अथर्व० ७।७६।३-५; १६।४४।२ तथा तै० सं० २।३।५।२; २।५।६।५ में उल्लिखित 'जायान्य' या 'जेयान्य' संज्ञक क्षयरोग पत्नी के साथ अतिशय कामसेवन का ही परिणाम प्रतीत होता है। चरकसंहिता, चिकित्सास्थानम् ८।४ के अनुसार अपनी पत्नी रोहिणी में अत्यासक्ति के कारण स्नेह (शुक्र) का क्षय हो जाने से ही चन्द्रमा को राजयक्ष्मा हो गया था।

७. महाभारत (आदिपर्व १२०।१८-६) में राजा व्युषिताश्व तथा (आदिपर्व १०२।७०-७१ में) राजा विचित्रवीर्य की मृत्यु असंयमित कामसेवन के कारण ही बतलाई गई है। ८. द्र०—नाट्यशास्त्र २२।१६१-३।

९. मरणं च मदनवेगसंज्वरासहिष्णोस्तथोपनतम्। कादम्बरी, उ०भा०, पृ० २५०।

१०. शरीरस्थितिहेतुत्वादाहारसधर्माणो हि कामाः। कामसूत्र १।२।४६।

११. सुश्रुतसंहिता, चिकित्सास्थानम् २६।१४।

१२. द्र०—चरकसंहिता, विमानस्थानम् ५।१६।

१३. सुश्रुतसंहिता, चिकित्सास्थानम् २४।१२८-६; वही, उत्तरतन्त्रम् ५५।१५।

१४. चरकसंहिता, चिकित्सास्थानम् २६।४०-४४; द्र०—सुश्रुतसं० उत्तर० ५५।१५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रोग हो सकते हैं। अतः आयुर्वेद में शुक्र के वेग को रोकना भी वर्जित बतलाया गया है।[1] इसके अतिरिक्त कामोत्तेजना की शान्ति हेतु किसी भी प्रकार का अप्राकृतिक मैथुन (अयोनिगमन, वियोनिगमन) ध्वजभंग जैसे रोगों का कारण बन सकता है।[2] अतः इसे वर्जित बतलाया गया है।[3] ऐसा आचरण पाप-पूर्ण माना जाता था।[4] अतएव धर्मशास्त्रों में इसके लिए प्रायश्चित्त विहित किया गया है।[5] वेदों में योनि में ही रेतः स्थापन देखा गया है।[6] अयोनि में रेतः स्थापन को बिना जोती गयी भूमि में बीज-वपन के समान माना गया है।[7] बृहदारण्यकोपनिषत् (६।४।१-२) में पुरुष के शुक्र की प्रतिष्ठा हेतु ही नारी की सृष्टि बतलाई गई है और योनि में शुक्र-स्थापन को यज्ञकुण्ड में आहुति-प्रदान का रूपक देकर वाजपेय के तुल्य बतलाया गया है।[8]

प्राचीन साहित्य में काम की दुर्दम्यता को सूचित करने वाले अनेक उल्लेख हैं।[9] भर्तृहरि (द्र०—शृङ्गारशतकम्, १५) ने स्पष्ट कहा है कि मनुष्य के शरीर में कामाग्नि प्रदीप्त होने पर उसकी महत्ता, पाण्डित्य, कुलीनता और विवेक समाप्त हो जाता है। स्कन्दपुराण (६।१९२।४८-५०) में कहा गया है कि कामान्ध पुरुष लज्जा, कृत्याकृत्य तथा शुभाशुभ का विवेक खो देता है। वह अकृत्य को कृत्य, मित्र को शत्रु और शत्रु को मित्र समझता है। वह नितान्त निर्लज्ज हो जाता है। अग्निपुराण (३७२।११-२) तथा भर्तृहरि के शृङ्गारशतक (५९) में कहा गया है कि काम-भावना को नियन्त्रित करने में तपोरत, वीतराग, वयोवृद्ध तथा कन्द-मूल-फलों पर किं वा वायु, जल तथा पत्तों पर निर्भर रहने वाले ऋषि-मुनि भी असफल रहे हैं। प्राचीन साहित्य में ऐसे भी अनेक मुनियों के उल्लेख हैं जो किसी अप्सरा को देखने मात्र से कामार्त होकर स्खलित हो

---

१. सुश्रुतसंहिता, चिकित्सास्थानम् २४।११९, १३०।
२. चरकसंहिता, चिकित्सास्थानम् ३०।१९४-६।
३. (क)—दुष्टयोनावयोनौ च प्राप्तशुक्रविधारणम्।
दुष्टयोनौ विसर्गं तु बलवानपि वर्जयेत्॥ सुश्रुतसं० चिकि० २४।११९।
(ख)—अयोनिं च वियोनिं च न गच्छेत विचक्षणः। अनु० पर्व १०४।१३२।
४. मनु ११।६७-८; विष्णुस्मृति ३८।३-४; अग्नि १६८।३८।
५. द्र०—बौ० ध० सू० ३।७।७।४-१६; परा० स्मृति १२।५७; परा० मा०, प्रा० का०, पृ० ३९४।
६. योनावेव रेतो दधाति। तै० सं० ५।२।१०।१।
७. शत० ब्रा० ७।१।४।५।
८. बृ० उ० ६।२।१२-३; ६।४।३; तु०-गुप्तसाधनतन्त्र, चतुर्थपटल।
९. (क)—इषुः कामस्य या भीमा…। अथर्व० ३।२५।१।
(ख) दुस्तरो मदनस्तस्मात् सर्वेषां प्राणिनामपि। ब्रह्माण्ड ४।८।२५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गये थे[1] तथा अन्य कुछ मुनियों ने अपनी तपश्चर्या खण्डित करके अप्सराओं के साथ रमण किया था।[2] ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, बृहस्पति आदि देवों, रावण आदि राक्षसों, विश्वामित्र आदि मुनियों तथा दण्डक प्रभृति राजाओं की कामुकता विषयक कथाओं[3] से स्पष्ट होता है कि प्रबल कामावेग को नियन्त्रित कर पाने में असमर्थ होने पर ही उन्होंने मर्यादा और औचित्य का त्याग किया था। अतः भारतीय सांस्कृतिक विचार-धारा के समन्वित उपदेश को मुखरित करते हुए श्रीमद्भागवत पुराण (११।५।११) में यह कहा गया है कि मैथुन की स्वाभाविक एवं दुर्दम्य प्रवृत्ति को मर्यादा के अन्तर्गत सन्तुष्ट करने के लिए ही विवाह-संस्था की प्रकल्पना की गई है। देवीभागवत पुराण (१।१४।६४-५) में कहा गया है कि पत्नी रहित पुरुष के लिए मन तथा पाँचों इन्द्रियों को वश में रखना सम्भव नहीं है। अतः उन्हें वश में रखने के लिए विवाह अवश्य करना चाहिए।

भारतीय संस्कृति में काम को न तो नितान्त हेय और गर्हणीय दृष्टि से देखा गया है और न इसके अतिशय या अमर्यादित सेवन की ही अनुमति दी गई है। काम के महत्त्व को स्वीकार करते हुए वैदिक काल से ही इसे सृष्टि के मूल तत्त्व रूप में देखा गया है।[4] परवर्ती साहित्य में इसे समस्त लोक-व्यवहार का हेतु[5] स्त्री-पुरुषों को जगत्सृष्टि में प्रेरित करने वाला,[6] मानव मात्र द्वारा साध्य चार पुरुषार्थों[7] तथा गृहस्थ द्वारा साध्य त्रिवर्ग[8] में से अन्यतम, त्रिवर्ग रूपी वृक्ष का फल,[9] या धर्म और अर्थ का

१. उदाहरणार्थ—घृताची को देखकर मुनि भरद्वाज (आदिपर्व १२९।३५-८; वनपर्व ३४।२९; शल्यपर्व ४८।६४-६) तथा व्यास (शान्तिपर्व ३२४।२-९), जानपदी को देखकर शरद्वान् (आदिपर्व १२९।६-१३), उर्वशी को देखकर विभाण्डक मुनि (वनपर्व ११०।३५-९) तथा मित्रावरुण (बृहद्देवता ५।१४९-१५२) स्खलित हो गये थे।

२. द्र०—पीछे, अध्याय २, पृ० ५२, टि० ५-८।

३. द्र०—सौन्दरानन्द ७।२५-४६; शिव ५।४।१७-३८।

४. द्र०—ऋ० १०।१२९।४; अथर्व० ९।२।१९; १९।५२।१; तै०ब्रा० २।४।१।१०; तै० आ० १।२३।१।

५. द्र०—अथर्व० १९।५२।५; मनु २।४; नाट्यशास्त्र २२।८९; स्कन्द १।२।२४।२२।

६. ब्रह्माण्ड ४।८।२५-६; भाग० ४।११।१५।

७. आदिपर्व ११७।२०; द्र०—विष्णु १।१४।१६।

८. गौ० ध० सू० १।९।४६; शान्तिपर्व १२।१८; कामसूत्र १।४।४९; भाग० ८।१६।५,११; मार्क० ३४।१०; ब्रह्म ११३।१०।

९. विष्णुधर्मो० २।६२।२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

फल[1] बतलाया गया है। काम का सेवन न करने वाले के जीवन को वृथा[2] तथा उसके धर्म और अर्थ को निष्फल[3] बतलाया गया है। प्राचीन साहित्य में जहाँ कहीं काम की निन्दा की गई है उसका उद्‌देश्य गृहस्थेतर आश्रमियों में ब्रह्मचर्य या वैराग्य की भावना को उद्दीप्त करना[4] या गृहस्थ को इसके अत्यासक्ति-जन्य दोष तथा विनाशक दुष्प्रभाव से सचेष्ट करना था,[5] न कि इसके सेवन से नितान्त विमुख करना। महाभारत (उद्योगपर्व३९।४४) तथा श्रीमद्‌भागवत (३।२२।२) में स्पष्ट कहा गया है कि स्वतः प्राप्त काम का त्याग कामरक्त पुरुष को ही नहीं, विरक्त पुरुष को भी नहीं करना चाहिए।

काम को केवल वासना के रूप में ही नहीं, अपितु इसे संसार का हेतु[6] तथा एक सर्वोच्च लौकिक सुख भी माना गया था। इस रूप में इसे सभी प्राणियों के लिए स्पृहणीय माना जाता था।[7] स्त्री-समागम जनित सुख को उपनिषदों के समय से ही ब्रह्मानन्दसहोदर माना जाता रहा है।[8] प्रबोधचन्द्रोदय नाटक (३।१६) में कापालिक ने स्त्री-समागम जनित आनन्द को ही मुक्ति-तुल्य बतलाया है। यास्काचार्य ने स्वीकार किया है कि स्त्रियाँ अपने आह्लादक शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के कारण पुरुषों को विशेष मनोहर लगती हैं।[9] आयुर्वेद में यह तथ्य स्वीकार किया गया है कि मनुष्य की पाँचों इन्द्रियों को सुख देने वाले पाँचों विषयों का एकत्र सन्निवेश नारी के शरीर में रहता है। इसीलिए वह पुरुष को विशेष आनन्दप्रद लगती है।[10] स्त्री के साथ कामोपभोग की सुखदता का प्रतिपादन नाट्यशास्त्र में भी किया गया है।[11] कामशास्त्र के आचार्य तो रतिक्रिया को सुखद बतलाते ही हैं।[12] श्रीमद्‌भागवत में भी स्त्रीसमागम को ही गृहस्थ का सुख बतलाया गया है।[13] पद्‌मपुराण में अन्य सुखों की अपेक्षा रति-सुख

---

१. फलभूताश्च धर्मार्थयोः। कामसूत्र १।२।४७।
२. असेवनात् वृथा जन्म। विष्णुधर्मो० २।६२।१३।
३. कामसेवाविहीनस्य धर्मार्थावपि निष्फलौ। वही, २।६२।४।
४. नारदपरिव्राजकोप० ४।२८-९; जातकमाला १८।१८; भाग० ७।६।४५; पद्‌म ५।६१।३०, ३६; शिव ५।२३।५५-८।
५. कामानुसारी पुरुषः कामाननु विनश्यति। शान्तिपर्व १७४।४५।
६. वनपर्व ३१३।९८। ७. आदिपर्व ११७।१६। ८. बृ० उ० ४।३।२१।
९. स्त्रिय एवैताः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धहारिण्यः। निरुक्त १४।२०।
१०. चरकसंहिता, चिकित्सास्थानम् २।१।५-६।
११. नाट्यशास्त्र २२।९२; भूयिष्ठं दृश्यते कामः सुखदो दुःखदेष्वपि।
१२. द्र०—कामसूत्र २।१।३१, ४०, ४८।
१३. …गृहेषु मैथुन्यसुखेषु। भाग० १०।५१।५२।

६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को सौ गुना अधिक आनन्दप्रद बतलाया गया है ।[१] चार्वाकदर्शन में नारी के आलिङ्गन आदि से प्राप्त सुख को ही पुरुषार्थ कहा गया है ।[२] आचार्य दण्डी ने उत्तम स्त्री के सेवन में धर्म और अर्थ की सफलता, पुरुष होने की गौरवानुभूति आदि सहित पुत्रोत्पादन द्वारा इहलोक एवं परलोक की श्रेयस्करता प्रभृति अनेक गुणों को गिनाया है ।[३] वैदिक तथा पौराणिक साक्ष्यों से विदित होता है कि भारतीय संस्कृति में पुत्रोत्पादन ही स्त्री-समागम का प्रमुख उद्देश्य रहा है ।[४] केवल वासना की शान्ति के लिए मैथुन को शोचनीय[५] तथा ऐसा करने वाले के जीवन को निष्फल[६] बतलाया गया है ।

यह उल्लेखनीय है कि भारतीय संस्कृति में काम के सेवन को वासना के स्तर से उठा कर इसे आध्यात्मिक स्तर प्रदान करने की भावना प्राप्त होती है । श्रीमद्भागवत पुराण (१०।२२।२६) के अनुसार ईश्वरार्पण बुद्धि से काम का सेवन करने से मनुष्य भवबन्धन में नहीं पड़ता । इस तरह काम का सेवन मोक्ष-प्राप्ति में भी सहायक माना गया है । मनुष्य विगतकाम या वितृष्ण होने पर ही ब्रह्म-साक्षात्कार या मोक्ष प्राप्त करता है ।[७] किन्तु जब तक काम-सुख (ग्राम्य-सुख) का अनुभव नहीं करता, तब तक उसके प्रति उसकी आसक्ति या उत्कण्ठा बनी रहती है, वह उससे वितृष्ण (विरक्त) नहीं हो पाता ।[८] काम का सेवन करने पर ही वह उससे वितृष्ण (विरक्त) हो पाता है ।[९] इस तरह प्राचीन भारतीय साहित्य में जन-सामान्य के लिए कामोपभोग की अपरिहार्यता तथा इसके समुचित सेवन में अनेकानेक गुणों को स्थापित करके विवाह की आवश्यकता को सुष्ठु व्यञ्जित किया गया है । भारतीय समाज सुदूर अतीत से ही सदैव उच्च नैतिक आदर्शों का पक्षपाती एवं सदाचार-निष्ठ रहा है । प्राचीन काल में अनैतिक काम-सम्बन्धों में पाप, नरक-यातना, कठोर प्रायश्चित्त, राजदण्ड तथा सामाजिक बहिष्कार का भय होने के कारण मर्यादित तथा धर्मसम्मत विधि से काम-सेवन हेतु विवाह आवश्यक था ।

(१०) **मोक्ष-लाभ**—वैदिक काल में तपश्चर्या या मोक्ष-प्राप्ति में वैवाहिक जीवन को बाधक नहीं माना जाता था । पराशर और वसिष्ठ सदृश ऋषि गृहस्थाश्रमी ही

---

१. पद्म, पातालखण्ड (आ० सं०) १०८।१०५-८ ।

२. अङ्गनाद्यालिङ्गनादिजन्यं सुखमेव पुरुषार्थः । चार्वाकदर्शनम् ३; (सर्वदर्शन संग्रह, पृ० ५ ।

३. दशकु० उ० पी० उच्छ्वास ८, पृ० २५७-८ ।

४. द्र०—ऋ० ७।३४।२०; अथर्व० १४।२।१४,३७,३६; पार० गृ० सू० (क्षेपक कण्डिका) १।१०; रामा० १।३६।२१; शान्तिपर्व ११०।२३; विष्णुधर्मो० २।१२२।२४; वराह १४२।३३-४; भाग० ११।५।१३ ।

५. उद्योगपर्व ३६-७६ ।

६. कूर्म उ० १६।१८ ।

७. बृ० उ० ४।४।७; भाग० ७।१५।३५ ।

८. भाग० ६।१८।४० ।

९. वही, ७।११।३४ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

थे।[1] ऋषि अगस्त्य ने काम का सेवन और तपश्चर्या दोनों का निर्वाह एक साथ ही किया था।[2] बौद्ध और जैन धर्मों में विवाह अनिवार्य नहीं माना गया। बौद्ध धर्म में तो वैवाहिक-जीवन को निर्वाण प्राप्ति में बाधक समझा जाता था।[3] बौद्धों तथा वेदान्ती संन्यासियों के निवृत्तिमार्गी विचारों के प्रभाव के कारण कहीं-कहीं पौराणिक साहित्य में भी स्त्रियों को मोक्षमार्ग में बाधक बतलाते हुए दारग्रहण के प्रति अरुचि व्यक्त की गई है[4] तथा विवाह को भवबन्धन का कारण और इसीलिए अनुचित भी बतलाया गया है।[5] किन्तु इस तरह के विचारों का दृढ शब्दों में खण्डन भी प्राप्त होता है। जाबाल नामक मुनि से स्वयं उसी की पुत्री ने कहा था कि वह योगमार्ग का अवलम्बन करके स्त्रियों की निन्दा न करे, क्योंकि इस चराचर विश्व को स्त्रियाँ ही धारण करती हैं। यह निखिल विश्व जिस पृथिवी में स्थित है उसे धारण करने वाले शेष और कूर्म को भी स्त्री जाति ने ही उत्पन्न किया है।[6] वराहमिहिर ने वैराग्य मार्ग में स्थित होकर स्त्रियों के दोषों की चर्चा करने वालों को दुर्जन बतलाते हुए कहा है कि उनके वचन सद्भावना पूर्ण नहीं हैं।[7] विष्णुधर्मोत्तरपुराण (२।३५।९) के अनुसार प्रवृत्तिमार्ग को बनाये रखने के लिए और मनुष्य को कर्म में प्रेरित करने के लिए भी स्त्री ही कारण बनती है, अतः एतदर्थ भी विवाह आवश्यक है।

हम पीछे यह कह चुके हैं कि प्राचीन साहित्य में मोक्ष प्राप्ति हेतु विरक्ति की भावना परम आवश्यक बतलाई गई है और यह विरक्ति वैवाहिक जीवन में काल-क्रमानुसार स्वयं आ जाती है। श्रीमद्भागवत पुराण (६।५।४१) के अनुसार विषयों का अनुभव कर लेने पर उनकी दुःख-परिणामिता का बोध होने से मनुष्य को जैसी विरक्ति स्वयं होती है वैसी किसी अन्य के द्वारा समझाये जाने पर नहीं होती। स्कन्दपुराण (१।२।४२।६५) के अनुसार नर-नारी को एक दूसरे के रूप और यौवन का जो आकर्षण पहले रहता है वह वृद्धावस्था में समाप्त हो जाता है। अतः सच्ची विरक्ति के लिए वैवाहिक जीवन आवश्यक है। नारदपुराण (उ० २८।५३-४) में स्पष्टतः कहा गया है कि जो लोग पत्नी को मोक्ष में बाधक मान कर दाम्पत्य जीवन से दूर रहते हैं वे तत्त्वदर्शी नहीं हैं। पत्नी मोक्ष में बाधक नहीं होती। वह पुरुष को पाप करने तथा नरक में गिरने से बचाती है। श्रीमद्भागवत (४।३०।१९) के अनुसार अनासक्त भाव से कर्म करने वाले तथा ईश्वर-कथानुकीर्तन करने वाले व्यक्ति के लिए गृहस्थाश्रम बन्धन-कारक नहीं होता। मोक्षप्राप्ति हेतु गृहस्थाश्रमी अपने कर्तव्यों का ईश्वरार्पण

---

१. ऋ० ७।१८।२१। २. वही, १।१७९।६।

३. द्र०—पाण्डेय, विमलचन्द्र : भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, पृ० १२४।

४. ब्रह्मवै० १।६।६-९। ५. शिव २।३।२४।६०।

६. स्कन्द ६।१४४।११६-७। ७. बृहत्संहिता ७४।५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बुद्धि से सम्पादन करे और भगवान् के अवतारों की कथा सुनने तथा समत्व में अवस्थित सन्तों के सङ्ग में काल-यापन से वह पत्नी-पुत्रादि के प्रति आसक्ति रहित होकर, हृदय से विरक्त होने पर भी देह-गेह आदि के प्रति लोकव्यवहार का निर्वाह रागी पुरुषों के समान ही करता रहे (भाग० ७।१४।१-५)। पुराणों में अनेकत्र यह प्रतिपादित है कि स्वधर्म का पालन करने वाला गृहस्थ भी मोक्ष प्राप्त करता है।[१] इस प्रकार पौराणिक साहित्य में मोक्ष-प्राप्ति हेतु भी विवाह करके गार्हस्थ्य पालन प्रशस्त बतलाया गया है।

इस तरह गृहस्थाश्रम में प्रवेश, व्यक्तित्व की पूर्णता और संस्कार, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हेतु भी विवाह आवश्यक था। यदि विवाह सबके लिए आवश्यक न होता तो अनेक युवक-युवतियों में गृहस्थ जीवन के दायित्वों से पलायन तथा कामाचार की सर्वनाशकरी प्रवृत्ति उभर कर समस्त समाज के लिए घातक हो जाती। अतः प्राचीन आचार्यों ने व्यक्ति तथा समाज के व्यापक हित में उपर्युक्त अनेक कारणों के आधार पर विवाह को सभी के लिए अनिवार्य बनाया था।

३—नारी के लिए विवाह की आवश्यकता—

वैदिक काल में शारीरिक अक्षमता आदि की परिस्थितियों के अतिरिक्त नारियों के अविवाहित रहने की कोई आशङ्का नहीं थी। अतः उनके विवाह की अनिवार्यता का कोई विधान भी वैदिक साहित्य में नहीं है। महाभारत (शल्यपर्व ५४।६-८) में शाण्डिल्य की पुत्री के कौमार ब्रह्मचारिणी रहने का उल्लेख है। सम्भवतः वह प्राचीन काल की कुछ अन्य कन्याओं की भाँति सदृश वर न मिलने से अविवाहित रही हो।[२] कन्याओं के लिए विवाह की अनिवार्यता की भावना की उपेक्षा करके प्रव्रज्या दिलाने की प्रवृत्ति बौद्ध धर्म में प्रारम्भ हुई थी। उप्पलवन्ना तथा अभया नामक कन्याएँ विशेष परिस्थितियों में भिक्षुणी बनी थी।[३] जैनधर्म में भी कन्याएँ भिक्षुणी बनती थी। 'भगवतीसूत्र' में जयन्ती नामक कन्या के भिक्षुणी बन जाने का उल्लेख है।[४] किन्तु बौद्ध और जैन धर्म की इस प्रवृत्ति का अनुकरण सनातन धर्म में नहीं हुआ। इतिहास-पुराण तथा संस्कृत काव्यों में विवाह न करके प्रव्रज्या ग्रहण करने वाली कन्याओं का कोई उल्लेखनीय और प्रसिद्ध दृष्टान्त नहीं है। बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव से महिलाओं में भिक्षुणी बनने की प्रवृत्ति समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकती थी। अतः ऐसी दुष्प्रवृत्ति को नियन्त्रित करने के लिए धर्मशास्त्रकारों ने नारी के लिए प्रव्रज्या को

१. अग्नि ३७६।४४; गरुड पू० १०९।४३; विष्णु ३।९।१७।

२. द्र०—पीछे, पृ० ६३, टि० १-२। ३. द्र०—पीछे, पृ० ६३, टि० ५-६।

४. द्र०—पाण्डेय, विमलचन्द्र : भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, पृ० १२४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

निषिद्ध करके विवाह अनिवार्य बना दिया था।[१] पुराणों में यह प्रतिपादित किया गया है कि स्त्रियों का जन्म ही विवाह करके दोनों कुलों को इहलोक तथा परलोक में सुख-प्रदान करने के लिए होता है।[२]

प्राचीन साहित्य में पुरुष के लिए जिन कारणों से विवाह आवश्यक बतलाया गया है प्रायः उन्हीं कारणों से नारी के लिए भी इसे अनिवार्य बतलाया गया है। मनु-स्मृति की रचना के समय तक विवाह को ही नारी के उपनयन का स्थानापन्न तथा वैदिक मन्त्रों से सम्पाद्य एकमात्र संस्कार मान लिया गया था।[३] विष्णुस्मृति[४] तथा बृहत्पराशरस्मृति[५] में स्त्रियों के लिए विवाह ही एकमात्र ऐसा संस्कार बतलाया गया है जो वैदिक मन्त्रों से हो सकता था। उनके जातकर्मादि अन्य सब संस्कार अमन्त्रक ही होते थे। केवल उनका विवाह ही समन्त्रक होता था।[६] विवाहोपरान्त यज्ञ में पति की सहयोगिनी बनने पर ही नारी की पत्नी संज्ञा होती थी,[७] जिससे यह स्पष्ट होता है कि विवाह के पूर्व नारी भी अविवाहित पुरुषों की भाँति अयज्ञिय मानी जाती थी। प्राचीन साहित्य में अविवाहित पुरुषों की भाँति कन्या को भी कुछ धार्मिक कृत्यों के लिए अयोग्य या अपवित्र माना जाता था। यथा—वह अग्निहोत्र की अग्नि की सपर्या नहीं कर सकती थी।[८] पितरों के श्राद्ध के लिए भोजन भी वह नहीं बना सकती थी।[९] अन्य कुछ शुभ कर्मों के लिए भी कन्याओं को अयोग्य माना जाता था।[१०] गौतम धर्म-सूत्र (२।५।३२-४) से सूचित होता है कि अविवाहित कन्या (पुत्री) मृत्यु के उपरान्त उदकदान की भी पात्र नहीं होती थी। हरदत्त ने भी अविवाहित कन्या के दिवंगत होने पर उसके लिए उदकदान का नितान्त निषेध किया है।[११] असंस्कृता स्त्री की मृत्यु पर केवल तीन दिन तक ही अशौच विहित किया गया है।[१२] शंख के मतानुसार

---

१. द्र०—वही, पृ० १२४। २. मत्स्य १५४।१६३; पद्म १।४५।१६२।

३. वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः। मनु २।६७।

४. स्त्रीणां विवाहः संस्कारः। विष्णुस्मृति २२।३२।

५. स्त्रीणामुद्वाह एको वै वेदोक्तः पावनो विधिः। बृहत्पराशरस्मृति ६।१७८।

६. विष्णुस्मृति २७।१३-४; याज्ञ० १।१३; व्यासस्मृति १।१६; गरुड पु० ९३।१३; अग्नि १५३।१२।

७. अष्टाध्यायी ४।१।३३; द्र०-पतञ्जलिकालीन भारत, पृ० १७०-१७१।

८. द्र०—शान्तिपर्व १६५।२१-२।

९. व्याघ्रपादस्मृति २२५-६ (स्मृतिसन्दर्भ, पृ० २५१२)

१०. द्र०-कन्यकानुपनीतानां न कर्मार्हत्वमूचिरे। लोहितस्मृति, श्लोक ४२६।

११. एके मन्यन्ते प्रत्तानामेव स्त्रीणामुदकदानम्। अप्रत्तानां तु नैवेति।—मिता० (गौ० ध० सू० २।५।३४)। १२. बृहत्पराशरस्मृति ८।२२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पितृगृह में रजोदर्शन करने वाली असंस्कृता कन्या की मृत्यु हो जाने पर लगा हुआ अशौच कभी भी दूर नहीं होता।[१] पीछे यह कहा जा चुका है कि वैखानस गृह्यसूत्र में विवाहोचित वय की कन्या की मृत्यु होने पर किसी युवक के साथ उसके दाम्पत्य भाव की कल्पना करने के पश्चात् ही उसका दाह करने को कहा गया है। नारी को अपने सत्कर्मों से प्राप्य लोकों से वञ्चित न होना पड़े—इसके लिए विवाह करना आवश्यक माना जाता था।[२] इस तरह नारी के लिए विवाह मात्र एक संस्कार के रूप में ही नहीं, अपितु अनेक धार्मिक एवं आध्यात्मिक कारणों से भी अनिवार्य माना जाता था।

धर्म के बाद दूसरे पुरुषार्थ—अर्थ की सिद्धि हेतु भी नारी के लिए विवाह आवश्यक था। यद्यपि यह सही है कि वैदिक काल से ही नारी गृहस्थी के नाना दायित्वों के निर्वाह के अतिरिक्त कुछ व्यावसायिक कार्य भी करती रही है[३], तथापि अर्थार्जन का प्रमुख दायित्व पुरुष का ही रहा है और नारी आर्थिक दृष्टि से बहुधा पुरुष पर ही निर्भर रही है। आपत्तिकाल में अथवा अत्यन्त निर्धनता की स्थिति में कुछ स्त्रियाँ अपने तथा परिवार की उदर-पूर्ति हेतु स्वतः अर्थार्जन करती थीं, अन्यथा सामान्य स्थिति में यह कार्य पुरुष ही करता था। जैसा कि याज्ञवल्क्यस्मृति (२।४९) तथा नारदस्मृति (ऋणादान संज्ञक व्यवहारपद, श्लोक १६) से सूचित होता है, केवल शैलूष (नट), रजक (वस्त्र रँगने वाले अथवा धोबी) तथा व्याध जैसे कुछ निम्न वर्गों के पुरुष ही वृत्ति के लिए अपनी स्त्रियों पर निर्भर रहते थे। आपत्कालिक अपवादपूर्ण स्थिति को छोड़ सामान्य स्थिति में तीनों द्विजाति वर्णों की स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से पुरुषाश्रित रहती थीं। नारी को अपने पिता, भ्राता तथा पुत्र से वह सब अर्थ-साध्य सुख नहीं मिल सकते थे जो कि उसे पति-सान्निध्य में सुलभ हो सकते थे। अतः इतिहास-पुराण में कहा गया है कि नारी को उसका पिता, भ्राता तथा पुत्र एक सीमा तक ही कुछ दे सकता है, किन्तु पति ही उसे इतना कुछ देता है जिसकी कि कोई इयत्ता ही नहीं—उसे अपरिमित देने वाला पति ही है।[४] महाभारत (वनपर्व २३४।३) में कहा गया है कि नारी पति से ही विविध भोग-सामग्री, शय्या, आसन, उत्तम दर्शन(?), वस्त्र, माल्य, गन्ध आदि प्राप्त करती है। वस्तुतः प्राचीन समाज में नारी विवाह द्वारा पति को

---

१. पितृवेश्मनि या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता।
तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति॥ शंखस्मृति १५।८।

२. द्र०-पीछे, पृ० ७१-२। ३. द्र०-पीछे, पृ० ७५, टि० १-३।

४. मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न पूजयेत्॥ रामायण २।२९।३०; शान्तिपर्व १४८।६-७; मत्स्य २१०।१८।

तु०—मितं ददाति"""""पूजयेत् सदा॥ स्कन्द ४।४।४७; शिव २।३।५४।५०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राप्त करके एक सौभाग्यवती स्त्री के रूप में ही समस्त शृङ्गार-प्रसाधन और भोग-विलास कर सकती थी। विवाहिता स्त्री को प्राप्त होने वाले सुखों का अनुभव कुमारी को नहीं हो सकता था।[१] अतः आर्थिक सुख-सुविधाओं की दृष्टि से भी नारी के लिए विवाह करना आवश्यक था।

कामोपभोग की सहज और दुर्दम्य प्रवृत्ति की मर्यादा के अन्तर्गत सन्तुष्टि हेतु पुरुष की ही तरह नारी के लिए भी विवाह आवश्यक था। लौकिक साहित्य में नारी में काम की भावना पुरुष की अपेक्षा आठ गुना अधिक बतलाई गई है।[२] काम की दुर्दम्य भावना पर विजय पाना नारी के लिए भी कठिन था। स्कन्दपुराण (६।८१।३२-४) में स्पष्ट कहा गया है कि युवावस्था में नारी के ब्रह्मचर्य-पालन पर विश्वास नहीं किया जा सकता, युवावस्था में काम-विकार का प्रभाव होता ही है। पुनश्च कामोपभोग के सुख की स्पृहा नारी को भी सदैव रही है। ऋग्वेद में वधू के अपने पति के संसर्ग में आमोदित रहने का संकेत है।[३] जैसा कि ऋग्वेद (८।१।३४) तथा इस पर वेंकटमाधव और सायण के भाष्य से विदित होता है—देव-शाप से नपुंसक हुए राजा आसङ्ग को उसकी पत्नी शश्वती ने अपने तपो-बल से पुंस्त्व प्राप्त कराने के पश्चात् उसकी पुष्ट जननेन्द्रिय को देख कर कहा था कि अब तुम उत्तम भोजन (भोग-सामग्री) से युक्त हो गये हो (सुभद्रमर्य भोजनं बिभर्षि)। संहिताओं में पुरुष की जननेन्द्रिय को नारी का भोजन (भोग साधन) कहा गया है।[४] ये वचन वैदिक युग की मानसिकता के परिचायक हैं। पौराणिक युग में सम्भोग सुख की अप्राप्ति को ही स्त्रियों की जरा का कारण माना जाता था।[५] महाभारत (अनु० पर्व ६०।१४) में कहा गया है कि स्त्रियाँ कामोपभोग से ही सर्वाधिक सन्तुष्ट होती हैं। उनके लिए पुरुष से प्राप्य इससे अधिक सुख अन्य कुछ नहीं होता।[६] भङ्गास्वन ने अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर यह कहा था कि पुरुष के साथ संसर्ग में स्त्री को ही अपेक्षाकृत अधिक आनन्दानुभूति होती है।[७] सुरत-कर्म में पुरुष की अपेक्षा स्त्री को अधिक सुख प्राप्त होने की कल्पना कामसूत्र में भी है।[८] कोक्काक ने (रतिरहस्य ३।८-९ में) नारी के लिए सुरत-

---

१. असंवेद्यं हि तद् ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा। अग्नि १६५।१५; स्कन्द ४।४१।५५
२. गरुड पू० १०९।३३; ब्रह्मवै० १।२३।३२-३; चाणक्यनीति १।१७; अनङ्गरङ्ग ४।२६; हितोपदेश (सुहृद्भेद ११७, सन्धि ८)।
३. उप प्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ। ऋ० ५।४७।६।
४. यः स्त्रीणां जीवभोजनः।—वाज० सं० ३२।२१; तै० सं० ७।४।१९।१-२।
५. असंभोगो जरा स्त्रीणां····। उद्योगपर्व ३९।७७; तु० गरुड पू० ११५।१०।
६. द्र०—अनु० पर्व १९।८०, ८९-७; हरिवंशपु० २।९२।१६।
७. स्त्रियाः पुरुषसंयोगे प्रीतिरभ्यधिका सदा। अनु० पर्व १२।५२। वही, १२।५४।
८. सुरतान्ते सुखं पुंसां स्त्रीणान्तु सततं सुखम्। कामसूत्र २।२।४०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सुख के जैविकीय महत्त्व का भी निरूपण किया है। किसी नारी के युवावस्था पर्यन्त अविवाहित रह जाने पर चारित्रिक पतन की आशंका तो रहती ही थी, साथ ही जैसा कि कथासरित्सागर (५।१।२०४-५) में कहा गया है कि उस पर मिथ्या कलंक लगने का भी भय बना रहता था। अतः काम-सुख और सामाजिक मान-मर्यादा तथा प्रतिष्ठा को दृष्टि में रखते भी हुए नारी के लिए विवाह आवश्यक था।

वैदिक युग से ही कन्याओं के लिए विवाह के पूर्व ब्रह्मचर्य-पालन आवश्यक रहा है। कन्या ब्रह्मचर्य के बल से युवा पति प्राप्त कर सकती थी।[१] अनन्यपूर्विका[२] तथा अस्पृष्टमैथुना[३] कन्या ही विवाह की पात्र मानी जाती थी। भारतवर्ष की सनातन मान्यताओं के अनुसार विवाह के पूर्व यौन-सम्बन्ध करने पर कन्या दूषित[४], वैवाहिक मन्त्रों की अपात्र,[५] अन्य पुरुष (वर) को अदेय (कन्यादान के अयोग्य) तथा किसी अन्य पुरुष द्वारा पत्नी रूप में अग्राह्य[६] हो जाती थी। अतः युवावस्था में कामोपभोग तथा सन्तान-लाभ आदि की दृष्टि से भी कन्या के लिए विवाह आवश्यक था।

वस्तुतः पुरुष की ही भाँति नारी के लिए भी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि हेतु विवाह आवश्यक था। पुराणों में कहा गया है कि पुरुष की ही भाँति नारी भी पति को प्राप्त किये विना धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति नहीं कर सकती। अतः उसके लिए भी त्रिवर्ग की प्राप्ति हेतु विवाह अनिवार्य है।[७] पुनश्च नारी के लिए वैवाहिक बन्धन की अनिवार्यता को देखते हुए ही कुछ विशेष परिस्थितियों में उसके पुनर्विवाह को भी धर्मशास्त्र के कुछ आचार्यों ने पुनर्भू या परपूर्वा के रूप में मान्यता दी है[८]। यद्यपि

१. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अथर्व० ११।७(५)।१८।
२. गौ० ध० सू० १।४।१; याज्ञ० १.५२; कामसूत्र १।५।१।
३. वसिष्ठ ८।१; द्र०-नारदस्मृति १२।३६।
४. द्र०—आदिपर्व ६३।७६।
५. पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः।
नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः॥ मनु ८।२२६।
६. द्र०—हरिवंशपर्व २।११६।१८४।
७. मार्क० १६।७७-८; द्र०—मत्स्य १५४।१६५; पद्म १।४५।१६४।
तु०—स्त्रीणां तु पुरुषाधीना त्रिवर्गसेवा। जयमङ्गला (कामसूत्र १।२।१)
८. याज्ञवल्क्य स्मृति १।६७ में पुनः संस्कृता (पुनः विवाह करने वाली) नारी को पुनर्भू कहा गया है। वसिष्ठधर्मसूत्र १७।१९-२० में पुनर्भू नारियों के दो प्रकारों तथा नारद स्मृति १२।४५-५२ में पुनर्भू के तीन तथा स्वैरिणी के चार प्रकारों को मिला कर कुल सात प्रकार की परपूर्वा स्त्रियों को दाम्पत्य मर्यादा के अन्तर्गत रखा गया है। द्र०-महाभारत में नारी, पृ० १९६-८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुनर्विवाहिता स्त्री को धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से धार्मिक ग्रन्थों में कभी भी प्रशस्त नहीं बतलाया गया है, किन्तु समाज को दाम्पत्य मर्यादा में आबद्ध रखने के लिए कुछ स्थितियों में नारी का पुनर्विवाह भी आवश्यक था। सामान्यतः गृहस्थाश्रम में प्रवेश, व्यक्तित्व की पूर्णता, त्रिवर्ग-सिद्धि आदि विभिन्न उद्देश्यों की दृष्टि से स्त्री और पुरुष दोनों के लिए विवाह आवश्यक था।

४—विवाह के उद्देश्य—

यद्यपि अति प्राचीन काल से ही काम की सहज प्रवृत्ति को दाम्पत्य-मर्यादा के अन्तर्गत सन्तुष्ट करना भी विवाह का अन्यतम उद्देश्य रहा है, किन्तु इसका साहित्यिक साक्ष्य बहुत काल के बाद श्रीमद्भागवत (११।५।११) में मिलता है। वैदिककाल में विवाह का मुख्य उद्देश्य पुत्र-प्राप्ति ही था।[१] गृह्यसूत्रों में चतुर्थीकर्म एवं गर्भाधान के मन्त्रों से भी विवाह के इसी उद्देश्य की पुष्टि होती है।[२] रामायण काल में भी विवाह का प्रमुख उद्देश्य पुत्र-प्राप्ति ही था।[३] विवाह न होने के फलस्वरूप पुत्र न होना एक अभिशाप माना जाता था।[४] महाभारत आदि पर्व (१००।६६-७) में सत्यवती के साथ विवाह के इच्छुक भीष्म ने एक पुत्र का होना अनपत्य (पुत्रहीन) होने के समान बतलाया है। इस तरह यह ध्वनित किया है कि वह दूसरा विवाह पुत्र-प्राप्ति के लिए ही करना चाहते हैं। पुराणों में दक्ष द्वारा वीरण प्रजापति की पुत्री के साथ विवाह[५] तथा मनु के शतरूपा के साथ विवाह[६] को प्रजावृद्धि के निमित्त बतलाया गया है, जिससे सूचित होता है कि आदिकाल से ही विवाह का उद्देश्य सन्तानोत्पादन माना जाता था। महाकवि कालिदास,[७] भवभूति[८] और बिल्हण[९] ने भी पुत्र-प्राप्ति ही विवाह का प्रयोजन बतलाया है। कुमारसम्भव महाकाव्य[१०] तथा शिवपुराण (२।३।२४।७५) में कहा गया है कि शिव ने पुत्रोत्पादन हेतु ही पार्वती के साथ विवाह किया था। विष्णुपुराण (५।३८।३८) में विवाहेच्छु पुरुष के लिए 'सान्तानिक' (सन्तान प्राप्ति हेतु विवाह करने वाला) विशेषण का प्रयोग भी विवाह के उक्त उद्देश्य को सूचित करता है। पुराणों में पुत्र-प्राप्ति ही पत्नी ग्रहण करने का फल या प्रयोजन बतलाया गया है।[११]

---

१. द्र०—ऋ० १०।८५।३७; अथर्व० १४।२।१४,३१,३७,३८,३९,७१।
२. द्र०—हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० १७१।
३. रामा० ७।३।४,५-६; द्र०—वही, १।१८।५१। ४. द्र०—वही, २।७५।३५।
५. विष्णु १।१५।९०; गरुड पु० ६।१३।१५।
६. शिव २।१।१६।१२-३। ७. प्रजायै गृहमेधिनाम्।—रघु० १।७।
८. दारानपत्याय—। मालतीमाधव १।५। ९. विक्रमाङ्कदेवचरितम् २।२६।
१०. अत आहर्तुमिच्छामि पार्वतीमात्मजन्मने। कुमारसम्भवम् ६।२८।
११. (क)—पुंसां पुत्रफला स्त्रियः।—देवीभाग० ७।२०।३५।
(ख)—पुत्रप्रयोजना कान्ता।—ब्रह्मवै० १।२४।२८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बाणभट्ट के अनुसार भी विवाह का उद्देश्य ऋणत्रय से मुक्ति तथा पुत्र-पौत्रादि द्वारा वंश की प्रतिष्ठा बनाये रखना था।[१] इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में पुत्र-प्राप्ति को विवाह का प्रमुख उद्देश्य माना जाता था। काम-सन्तुष्टि को गौण मानते हुए भी उसकी गणना विवाह के अन्यतम उद्देश्य रूप में की जा सकती थी। गृह्यसूत्रों के वैवाहिक मन्त्रों में रति और इसके परिणामतः पुत्र-सम्प्राप्ति ही विवाह के उद्देश्य माने गये हैं।[२] स्मृतियों[३] एवं पुराणों[४] में भी दारसंग्रह के यही दो फल—रति और पुत्र की प्राप्ति बतलाये गये हैं। इसके अतिरिक्त धर्म-सम्पादन को भी अति प्राचीन काल से ही विवाह का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य माना जाता रहा है। वैदिककाल में यज्ञ-सम्पादन में पत्नी का सहयोग अनिवार्य था। उसके विना पुरुष यज्ञ करने में अक्षम रहता था। अतः वैदिककाल से ही यज्ञादि धर्म-सम्पादन हेतु विवाह आवश्यक था। दूसरे शब्दों में यज्ञादि धर्मों का सम्पादन विवाह का अन्यतम उद्देश्य था। गौतम ने अपने धर्मसूत्र (१।८।१६) में विवाह के लिए 'सहधर्मचारिणीसंयोग' का अभिधान प्रयुक्त करके इसके धार्मिक उद्देश्य की ही प्रधानता व्यक्त की है। महाकवि कालिदास ने अच्छी पत्नी को धार्मिक कृत्यों का मूल कारण बतला कर विवाह के धार्मिक उद्देश्य को ही प्रधानता दी है।[५] पुराणों में भी विवाह के धार्मिक उद्देश्य की चर्चा है। बृहद्धर्म पुराण के अनुसार धर्म-सम्पादन हेतु ही विवाह किया जाता है।[६] पुराणों में दारग्रहण करके अग्निहोत्र तथा यज्ञ-सम्पादन ही श्रौतधर्म का लक्षण कहा गया है।[७] लिङ्गपुराण (पू० १०३।४१) के अनुसार पार्वती के साथ शिव के विवाह का उद्देश्य श्रौत-स्मार्त धर्म की प्रवृत्ति को बनाये रखना ही था। इस तरह भारतीय संस्कृति में रति-सुख या अन्य किसी भौतिक लाभ को नहीं, अपितु धर्म-सम्पादन को ही विवाह के उद्देश्यों में प्रमुखता दी गई है।[८] आपस्तम्ब के अनुसार विवाह के दो

१. द्र०—अगत्वा चानृण्यमृणत्रयेण बद्धः क्व गतः। न तेन पुत्रपौत्रसन्तत्या वंशः प्रतिष्ठां नीतः। कादम्बरी, उ० भा०, पृ० ६६।

२. सह रेतो दधावहै प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून्। पार० गृ० सू० १।६।३। ३. रतिपुत्रफला नारी। वृद्धगौतमस्मृति १५।४५।

४. रतिपुत्रफला दाराः। गरुडपू० ११०।४। ५. क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम्।-कुमार० ६।१३। ६. धर्मार्थे क्रियते भार्या।-बृहद्धर्मपु०१।३८।

७. दाराग्निहोत्रसम्बन्धमिज्या श्रौतस्य लक्षणम्। मत्स्य १४५।३०। द्र०—दाराग्निहोत्रसम्बन्धं वितत्य यजतेति च। ब्रह्माण्ड ३।४।३।

८. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय (हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास, पृ० ३१ में) जब यह कहते हैं कि "विवाह के आध्यात्मिक तथा धार्मिक उद्देश्य की कल्पना बहुत पीछे हुई" तब वे ऐतिहासिक युग के सारे उपलब्ध साहित्यिक प्रमाणों को छोड़कर बहुत पीछे किसी काल्पनिक युग की ही बात करते हैं। साहित्यिक स्रोतों से उनके मत की पुष्टि संभव नहीं है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रमुख उद्देश्य हैं—धर्म-सम्पादन तथा सन्तानोत्पादन। इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हो जाने पर दूसरा विवाह करने की आवश्यकता नहीं है।[1] वस्तुतः धर्म और पुत्रोत्पत्ति के समक्ष रति-सुख की कोई तुलना नहीं है। रतिसुख हेतु द्विज शूद्रा के साथ भी रमण कर सकता था, किन्तु उसके साथ वह धर्म-सम्पादन नहीं कर सकता था।[2] पुराणों में ब्रह्मा की सृष्टि के दो प्रयोजन—(१) सन्तानोत्पादन तथा (२) यज्ञसम्पादन स्वीकार किए गए हैं[3] तथा ये दोनों ही विवाह के सर्वप्रमुख उद्देश्य माने गये हैं। शिवपुराण (२।३।१।२१) में जंगम देह वाले देवात्मा हिमालय के विवाह के यही दो उद्देश्य बतलाये गये हैं—संतानोत्पादन द्वारा कुल-परम्परा को अक्षुण्ण रखना तथा पितरों तथा देवों के हित में धर्मसम्पादन। दिङ्नाग ने भी विवाह के स्पष्टतः दो फल बतलाये हैं—पुत्रोत्पादन तथा यज्ञादि धर्मसम्पादन।[4] याज्ञवल्क्यस्मृति (१।७८) में इन्हीं दो उद्देश्यों को लक्ष्य कर स्त्री-सेवन के फलस्वरूप (१) सन्तान-परम्परा की अविच्छिन्नता तथा (२) अग्निहोत्रादि धर्म के माध्यम से स्वर्ग की प्राप्ति संभव बतलाई गई है। विवाह के इससे भी अधिक उद्देश्यों की कल्पना गृह्यसूत्रों, स्मृतियों एवं पुराणों में मिलती है। वैखानस गृह्यसूत्र में ब्राह्म विवाह में कन्यादान के लिए बोले जाने वाले संकल्प में धर्मसम्पादन, पुत्रोत्पादन, यज्ञ-निष्पादन, ब्रह्म-देव-ऋषितर्पण प्रभृति विवाह के प्रमुख उद्देश्य बतलाये गये हैं।[5] मनुस्मृति (९।२८) में दारसंग्रह के ये लाभ बतलाये गये हैं—पुत्रप्राप्ति, धर्माचरण, सेवा-शुश्रूषा, रतिसुख, पितरों की स्वर्ग-स्थिति तथा अन्ततः स्वयं अपनी स्वर्ग-प्राप्ति। मनु की दृष्टि में यही विवाह के उद्देश्य थे। विवाह के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए पद्मपुराण (१।५४।३२-३) में कहा गया है कि पुरुष की स्वर्ग-प्राप्ति, कुल की प्रतिष्ठा, यश-अपयश, पुत्र-पुत्री एवं मित्र की प्राप्ति पत्नी पर ही निर्भर करती है। अतः वह दारग्रहण करे। इसमें उसका उद्देश्य सन्तान-प्राप्ति ही हो। उसे केवल कामवासना की शान्ति के लिए विवाह नहीं करना चाहिए। व्यक्तिगत एवं सामाजिक हित में अन्य जिन कारणों से विवाह आवश्यक था, उनको भी विवाह के उद्देश्यों में समाविष्ट किया जा सकता है।

विवाह के ये उद्देश्य विवाहोपरान्त प्राप्तव्य होने के कारण वस्तुतः वैवाहिक जीवन के ही उद्देश्य थे। विवाह को संघटित कराने के पीछे भी अनेक उद्देश्य होते थे, जिनका

---

१. धर्मप्रजासम्पन्ने दारे नान्यां कुर्वीत। आप० ध० सू० २।५।११।१२।
२. कृष्णवर्णा या रामा रमणायैव न धर्माय न धर्मायेति। वसिष्ठ ध सू० १८।१८।
३. द्र०—प्रसूयध्वं यजध्वं चेत्युक्तवानस्मि वः पुरा। ब्रह्माण्ड ३।४।१०।
४. अपत्यमिष्टं च वदन्ति देवाः फलद्वयं दारपरिग्रहस्य। कुन्दमालानाटकम् ६।३८।
५. धर्मप्रजासंपत्यर्थं यज्ञापत्यर्थं ब्रह्मदेवर्षिपितृतृप्त्यर्थं प्रजासहत्वकर्मभ्यो ददामि। वैखा० गृ० सू० ३।२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विचार कन्याचयन तथा वरान्वेषण में किया जाता था। कभी-कभी राजाओं तथा राजकन्याओं के विवाह के पीछे विशुद्ध राजनीतिक उद्देश्य या स्वार्थ निहित रहते थे। पराजित राजा विजयी राजा को अपनी कन्या देकर सन्धि कर सकता था। संस्कृत नाटकों में पाया जाता है कि मन्त्रियों के द्वारा राजा का विवाह किसी ऐसे राजा की कन्या के साथ कराया जाता था जो कि उसके राज्यलाभ, राज्यविस्तार अथवा चक्रवर्ती सम्राट् होने में सहायक सिद्ध हो। राजा उदयन का विवाह भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् नाटक में वासवदत्ता के साथ, स्वप्नवासवदत्तम् में पद्मावती के साथ तथा श्रीहर्षकृत रत्नावली नाटिका में रत्नावली के साथ और राजशेखरकृत विद्धशालभञ्जिका नाटिका (अंक ३) में राजा विद्याधरमल्ल का विवाह मृगाङ्कावली के साथ उपर्युक्त उद्देश्य से ही कल्पित किया गया है।

५—वैवाहिक कर्तव्य—

प्राचीन काल में एक संस्कार के रूप में विवाह की अनिवार्यता तथा इसके उद्देश्यों में धर्म-सम्पादन की प्रमुखता के कारण कन्याओं और युवकों के द्वारा इसे एक अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य के रूप में स्वीकार किया जाता था और वैवाहिक जीवन के सुखोपभोग की लालसा के कारण उन्हें इस कर्तव्य की अनिवार्यता भी अभीष्ट लगती रही होगी। यद्यपि आरम्भिक काल से ही कुछ युवक और युवतियाँ अपना विवाह स्वयं भी कर सकते थे, तथापि पिता आदि अभिभावक अपने पुत्र-पुत्रियों तथा आश्रितों का विवाह कराना अपना कर्तव्य समझते थे। वैदिक काल में युवक-युवतियों को समनों में मिलने की छूट के कारण तथा युवावस्था में विवाह होने की स्थिति में कुछ युवक अपना जीवन-साथी स्वयं चुन सकते थे। रामायण (७।४।१५-६), महाभारत[१] तथा पुराणों[२] में भी कुछ पुरुषों के द्वारा अपना विवाह स्वयं किये जाने के उल्लेख हैं। गान्धर्व विवाह तो युवक-युवतियों के द्वारा स्वयं किया ही जाता था। कुछ कन्याएँ भी अपने विवाह का प्रयास स्वयं करती थी।[३] किन्तु सामान्यतः पुत्र-पुत्रियों के विवाह कराने का दायित्व पिता तथा उसके अभाव में अन्य अभिभावकों का होता था। वैदिक संहिताओं तथा ब्राह्मणों में सूर्या के साथ सोम के विवाह के वर्णन से स्पष्ट होता है कि विवाह को निश्चित करने में कोई अन्य व्यक्ति सहायक होता था।[४] अथर्ववेद से भी यह विदित होता है कि पुरुष के लिए जाया प्राप्ति में अर्थात् उसका विवाह कराने में उसके अभिभावकों का ही योगदान रहता था।[५]

---

१. द्र०—महाभारत कालीन समाज, पृ० २२, टि० १-५; महाभारत में नारी, पृ० १६३, टि० १२-७। २. द्र०—भाग० ५।२।२७; विष्णु ४।२।७७।

३. द्र०—महाभारत में नारी, पृ० १६४, टि० ४-८।

४. ऋ० १०।८५।९; अथर्व० १४।१।९; ऐ० ब्रा० ४।७; कौ० ब्रा० १८।१।

५. जायां यामस्मा आवाक्षु""। अथर्व ६।७८।१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि पिता-माता आदि अभिभावक अपनी सन्तान के लिए उपयुक्त जीवन-साथी के चयन का प्रयत्न अवश्य करते रहे होंगे। बृहद्देवता (५।४९ तथा आगे) के अनुसार श्यावाश्व के विवाह का प्रस्ताव उसके पिता ने ही किया था। रामायण (१।१८।३७-८) के अनुसार राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के गुरुकुल से लौटते ही पिता दशरथ ने उनके विवाह के विषय में अपने उपाध्याय तथा बान्धवों के साथ परामर्श प्रारम्भ कर दिया था। हेति नामक राक्षस ने अपने पुत्र विद्युत्केश का विवाह सन्ध्या के साथ करवाया था (रामा० ७।४।१९-२०)। महाभारत में पिता के कर्तव्यों में बतलाया गया है कि उसे कुलीन कन्या के साथ अपने पुत्रों का विवाह करवाना चाहिये।[1] कालिदास (रघुवंश १७।३) के अनुसार कुश ने अपने पुत्र अतिथि का विभिन्न राजकन्याओं के साथ विवाह करवाया था। विक्रमोर्वशीयम् नाटक में पुरूरवा को अपने पुत्र आयु के च्यवनाश्रम से लौटने पर उसके गृहस्थाश्रम में प्रवेश हेतु विवाह कराने का उपक्रम करते हुये दिखलाया गया है।[2] श्रीमद्भागवत पुराण (४।२७।८) में पुरञ्जन द्वारा अपने पुत्रों तथा पुत्रियों का विवाह कराये जाने का उल्लेख है। बौद्ध एवं जैन आगमों में भी पुत्र एवं पुत्री का विवाह कराने में उनके माता-पिता की ही प्रमुख भूमिका दिखलाई गई है।[3] ग्यारहवीं शताब्दी के विदेशी पर्यटक अलबरूनी ने भी यह लिखा है कि इस देश में माता-पिता ही अपनी सन्तानों के विवाह की व्यवस्था करते हैं।[4] विवाह के अनिच्छुक विरक्त प्रकृति के पुत्र का विवाह करने के लिए माता-पिता हर सम्भव उपाय करते थे। मार्कण्डेयपुराण (१२२।१-३२) में यह वर्णन है कि विवाह के अनिच्छुक राजकुमार अवीक्षित् के सहयोग से उसकी माता ने 'किमिच्छक' नामक व्रत किया, जिसके अन्त में अवीक्षित् ने याचकों से कहा 'तुम क्या चाहते हो ? मैं देने को तत्पर हूँ।' इसी अवसर पर उसके पिता राजा करन्धम ने पौत्र का दर्शन चाहा और पिता के निर्बन्ध (हठ) पर उसने विवाह करना स्वीकार किया। देवीभागवत पुराण (१।१४।२८) के अनुसार विरक्त प्रकृति के पुत्र शुक को उनके पिता व्यास ने विवाह हेतु विभिन्न कारण बतला कर सहमत किया था। पीछे कहा जा चुका है कि कुछ वीतराग पुरुषों ने पितरों के आग्रह पर ही विवाह किया था।[5] धर्मशास्त्रों में पंगु, अन्धे और नपुंसकों के औरस और क्षेत्रज सन्तानों के

१. पुत्रा निवेश्याश्च कुलात्। अनु० पर्व १०४।१२५।

२. विक्रमोर्वशीयम् (कालिदासग्रन्था० पृ० ५१८)। द्र०—पीछे, पृ० ६७, टि० ४-ग।

३. नायाधम्मकहाओ १।१।२४; १।५।५८; १।८।६६; १।१४।१०१; १।१६।११५; विवागसुयं १।६।१७८; विशेष विवरण हेतु देखिए—'बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन', पृ० ४५।

४. द्र०—मिश्र, जयशंकर : ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ० १३९।

५. द्र०—पीछे पृ० ६१, टि० ४-६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लिए अंशदान के विधान[1] तथा ब्रह्मपुराण (गौ० ४१।३-४९) में एक राजा द्वारा अपनी रानी के गर्भ से उत्पन्न सर्प का एक राजकन्या के साथ विवाह कराने के वर्णन से विदित होता है कि कभी-कभी पिता अपने अयोग्य पुत्र का भी विवाह करवा देता था।

पुराणों में पिता को पुत्र के विवाह हेतु उद्‌बोधित करने वाले अनेक वचन हैं। ब्रह्मपुराण (गौ० ९९।१४-५) के अनुसार पिता का ही दूसरा रूप पुत्र है। जो पिता है वही पुत्र है। अतः कौन पिता ऐसा होगा जो अपने पुत्र को सुखी नहीं बनाना चाहेगा। नारद पुराण (उ० २१।१२-३) में कहा गया है कि पुत्र चाहे गुणी हो या गुणहीन, धर्म की कामना वाले पिता को उसका विवाह अवश्य कराना चाहिए। पुत्र का विवाह कराने से उसे सारे यज्ञों के सम्पादन का फल मिल जाता है।[2] जो पिता अपने पुत्रों का विवाह नहीं कराता उसे मनुष्य नहीं मानना चाहिए। वह इहलोक एवं परलोक में भी निन्दनीय है। अतः पिता को चाहिए कि वह अपने पुत्रों के लिए वृत्ति की व्यवस्था के साथ ही उनका विवाह भी करावे, जिससे कि वे सुखी जीवन बिता सकें। (नारद उ० २१।१३-५)। जो पिता अपने पुत्र का विवाह नहीं कराता वह घोर अप्रतिष्ठ नरक में अयुत (दश सहस्र) युगों तक यातना पाता है।[3] अतः धर्म का आचरण करने वाला पिता पुत्र का विवाह अवश्य करावे। वह पुत्र को सुखी और गृहस्थ बनाकर स्वयं अपने को ही प्रतिष्ठापित करता है (नारद उ० २१।११)। सोमेश्वर ने भी (मानसोल्लास ३।१२।१३०६–७ में) राजा के लिए यह कर्तव्य निर्दिष्ट किया है कि वह अपने कुमारों का विधिपूर्वक विवाह करे।

पिता के अभाव में अनुज का विवाह कराने का उत्तरदायित्व उसके अग्रज का होता था। रावण ने अपने दोनों अनुजों कुम्भकर्ण एवं विभीषण का विवाह करवाया था।[4] भीष्म ने अपने अनुज विचित्रवीर्य का विवाह अम्बिका एवं अम्बालिका से करवाया था।[5] कालिदास ने बतलाया है कि रघुवंशी राजकुमार सुदर्शन का विवाह (उसके पिता के दिवंगत होने पर) अमात्यों ने करवाया था।[6] संस्कृत नाटकों में अमात्यों द्वारा राजा का विवाह कराये जाने के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं।[7] कभी-कभी पुत्र भी अपने पिता के पुनर्विवाह के लिए प्रयत्न करता था। भीष्म ने अपने पिता शान्तनु के साथ सत्यवती का विवाह स्वयं आजीवन ब्रह्मचारी रहने एवं राज्याधिकारी न बनने की शर्त मान कर करवाने में सहयोग दिया था (आदिपर्व १००।७५-९६)।

---

१. द्र०—पीछे, पृ० ७२, टि० ७।

२. सर्वक्रतुफलं तस्य पुत्रोद्वाहे कृते भवेत् ॥ नारद उ० २१।१२।

३. वही, २१।१०; तु०—ब्रह्म गौ० ४१।११।

४. रामा० ७।१२।२३। ५. आदिपर्व १०२।५-६६।

६. रघु १८।५३। ७. द्र०—पीछे, पृ० ६२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अनाथों, ब्राह्मणों एवं कन्याओं का विवाह एक मानवीय कर्तव्य, धर्म और पुण्य तथा स्वर्ग की प्राप्ति का साधन माना जाता था।[1] गरुडपुराण (उ० १२।६३) में बतलाया गया है कि कुमारी (कन्या) तथा ब्राह्मणों का विवाह कराने वाला प्रेत योनि को नहीं प्राप्त होता। लगभग प्रथम शताब्दी ई० पू० के राजा उषवदत के कार्ले एवं नासिक अभिलेखों से विदित होता है कि उसने प्रभासतीर्थ में आठ ब्राह्मणों का विवाह करवाया था।[2] राजा आदित्यसेन के अफसद शिलालेख से विदित होता है कि राजा दामोदरगुप्त ने ब्राह्मणों की एक सौ कन्याओं को अलंकृत करके उनका विवाह करवाया था तथा यौतक रूप में उन्हें अग्रहार दिये थे।[3] शिलाहार नरेश गण्डरादित्य के १०३२ शक संवत् के एक ताम्रपत्र के अनुसार उसने १६ ब्राह्मणों का विवाह करवा कर प्रत्येक को तीन निवर्तन भूमि प्रदान की थी।[4] कश्मीर में राजा जयसिंह सदा धर्म-कन्याओं का विवाह करवाता था।[5]

कन्याचयन—प्राचीन युग में वर के लिए कन्या चयन में उसके वर्ण, जाति, गोत्र, प्रवर और कुल के विचार के साथ ही उसके गुणों तथा शारीरिक लक्षणों पर भी पर्याप्त विचार किया जाता था। प्राचीन साहित्य में असवर्ण या अन्तर्जातीय विवाहों के प्रचलन के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। वैदिक काल से ही चारों वर्णों को नारियों के साथ विवाह की प्रवृत्ति को विधि-सम्मत बतलाने के ध्येय से धर्मशास्त्रों में विप्र के लिए चारों वर्णों की, क्षत्रिय के लिए ब्राह्मणेतर तीन वर्णों की, वैश्य के लिए अपने वर्ण की तथा शूद्र वर्ण की और शूद्र के लिए केवल अपने वर्ण की स्त्री के साथ विवाह की व्यवस्था दी गई थी।[6] त्रैवर्णिकों के लिए अवर (निम्न) वर्ण की स्त्री के साथ विवाह के पूर्व सवर्णा के साथ विवाह आवश्यक था (मनु ३।१२)। अनुलोम विवाहों के अनेक दृष्टान्त प्राचीन साहित्य में देखे जा सकते हैं।[7] शूद्रा के साथ विवाह के दोषों के परिप्रेक्ष्य में

---

१. (क) ज्ञात्वा स्ववित्तसामर्थ्यमेकं चोद्वाहयेद् द्विजम्।
तेनाप्याप्नोति तत्स्थानं शिवभक्तो नरो ध्रुवम्॥ निर्णयसिन्धु पृ० २२६
(ख) द्र०—वृद्धगौतम स्मृति १०।१०२-३, दक्षस्मृति ३।३०-३१; कूर्म उ० ४१।८१-३; गरुड उ० २८।३३; देवीभाग० ७।१६।१६-२०; भविष्य ४।१२१।१६१; लिङ्ग पू० ८४।४२-६; लिङ्ग उ० ४०।१-७; वामन ३४।४३; स्कन्द ४।४०।३१-३; ५।३।१२७।१-४; ५।३।२०६।४-५।

२. एपि० ई० ७, पृ० ५७; वही, ८, पृ० ७८।

३. कौर्पस इन्स० इण्डिकेरम, ३, सं० ४२, पृ० २०३, २०६।

४. जे० बी० आर० ए० एस०, १३, पृ० १। ५. राज० ८।२४०५।

६. बौ० ध० सू० १।८।२-५; मनु ३।१३; विष्णु २४।१-४; वसिष्ठ १।२५।

७. विस्तृत विवरण हेतु द्र०—प्राचीन भारत का सामा० इति०, पृ० ३१६-३२१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आचार्यों ने इसे वर्जित बतलाया था।[१] कुछ दृष्टान्त प्रतिलोम विवाहों के भी मिलते हैं।[२] किन्तु ऐसे विवाहों को कभी भी प्रशस्त नहीं माना जाता था और ऐसे विवाहों से उत्पन्न सन्तान को निकृष्ट, हीन जाति का और वर्णसंकर माना जाता था।[३] सामान्य प्रचलन सवर्ण या सजातीय विवाह-सम्बन्ध का ही था। नारद ने सजातीय विवाह-सम्बन्ध को ही श्रेयस्कर बतलाया है।[४]

सामाजिक आदर्शों के परिप्रेक्ष्य में कल्पसूत्रों के काल से ही आचार्यों ने समान गोत्र और प्रवर में उत्पन्न तथा पितृपक्ष से सात एवं मातृपक्ष से पाँच पीढ़ियों के सम्बन्ध के अन्तर्गत आने वाली कन्या के साथ विवाह का निषेध किया था। परवर्ती काल के धर्मशास्त्रीय साहित्य में भी इस तरह के विधानों को उद्धृत करने की परिपाटी प्रचलित रही थी।[५] सामान्यतः असगोत्रा और असमानप्रवरा तथा पितृपक्ष से सात और मातृपक्ष से पाँच पीढ़ियों के सम्बन्ध के बाहर की सजातीय कन्या के साथ विवाह का विधान किया गया है। इसके पश्चात् कुल के विचार पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। यद्यपि एक सूक्ति में दुष्कुल से भी स्त्रीरत्न ग्रहण करने की बात कही गई है,[६] किन्तु इसके प्रतिवाद रूप में भी अनेक वचन प्राप्त होते हैं। महाभारत वनपर्व (२०३।२६) के अनुसार दुष्कुल की नारी अपनी सहज मूर्खतावश दाम्पत्य जीवन बिगाड़ देती हैं। क्षेमेन्द्र (नीतिकल्पतरु २७।१-२) के अनुसार केवल सुन्दरता को देख कर नीच कुल की नारी के साथ किया हुआ विवाह परिहास की वस्तु बन जाता है। गरुडपुराण (पू० ११०।५) के अनुसार कुलीन कन्या के साथ ही विवाह करना चाहिए, नीच कुल की स्त्री के सुन्दर होने पर भी उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिए। मनु ने कुल को उत्कर्ष प्राप्त कराने की दृष्टि से उत्तम कुल से ही विवाह-सम्बन्ध की संस्तुति की है (द्र०-मनु ४।२४४)। स्कन्दपुराण (३।२।५।२८) के अनुसार भी अधम और हीन कुलों को छोड़ कर उत्तम कुलों के साथ सम्बन्ध करके अपने कुल का उत्कर्ष करना चाहिए। ब्रह्मवैवर्त पुराण (१।२४।१०-११,१४) में कहा गया है कि सद्वंश की स्त्री दुर्विनीत नहीं होती। असद्वंश की स्त्री अपने माता-पिता के (आनुवंशिक) दोष से दुर्विनीत और दुष्ट होती है।......अतः सद्वंश में उत्पन्न

१. द्र०-मनु ३।१४-९; याज्ञ० १।५६; वसिष्ठ १।२५-७; शंख ४।८।
२. द्र०-प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० ३२२।
३. द्र०-वही, पृ० १६०-१६६।
४. स्वजात्या श्रेयसी भार्या स्वजात्यश्च पतिः स्त्रियाः। नारदस्मृति १२।४।
५. विशेष विवरण हेतु—द्र०—हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग २, खण्ड १, पृ० ४५२-५००; प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० ३०२-८।
६. शान्तिपर्व १६५।३२; मनु २।२३८; ब्रह्मवै० २।५९।२४; चाणक्य १।१६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कन्या के साथ ही विवाह करना चाहिए। मनुस्मृति (३।६-७) में हीनकर्म वाले, पुरुष-विहीन, वेदाध्ययनरहित, रोमश (सारे शरीर में घने और स्थूल बालों वाले) तथा बवासीर, क्षय, मन्दाग्नि, अपस्मार, श्वेतकुष्ठ एवं गलत्कुष्ठ जैसे रोगों वाले दश कुलों को विवाह सम्बन्ध के लिए वर्जित बतलाया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति (१।५४) में संक्रामक रोगों से ग्रस्त तथा [हीनकर्म आदि] दोषों से युक्त कुलों को विवाह के लिए वर्जित बतलाया गया है। यम (द्र०-परा० मा०, आचारकाण्ड, पृ० ४७७-८) ने विविध दोषों तथा रोगों से युक्त चौदह प्रकार के कुलों को विवाह के लिए वर्जित बतलाया है। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि जाति और कुल के विषय में इस तरह की व्यवस्था देने वाले आचार्य स्वयं भी विशुद्ध कुल और चरित्र वाले होते थे। उनका आग्रह एक सदाशयतापूर्ण, विशुद्ध, सदाचारनिष्ठ और स्वस्थ समाज की संरचना करना था। अतः वे किसी के साथ भी विना विचारे विवाह सम्बन्ध की खुली छूट देकर निर्दोष या स्वस्थ वंश परम्परा को दूषित और रोगाक्रान्त नहीं करना चाहते थे। सदाचार तथा स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन करने के फलस्वरूप दोषयुक्त और रोगाक्रान्त परिवारों या कुलों के लिए धर्मशास्त्रों के ये विधान एक चुनौती थे और उन्हें ऐसे दोषों और रोगों से अपने उद्धार हेतु सचेष्ट रहने की प्रेरणा देते थे। इस तरह के विधानों का उद्देश्य ऐसे रोगों या दोषों से युक्त कुलों के युवक-युवतियों को विवाह करने के मौलिक अधिकार से वञ्चित करना नहीं था, अपितु एक स्वस्थ और निर्दोष कुल की सन्तान परम्परा को ऐसे दोषों और रोगों से मुक्त रखना था।

वैवाहिक सम्बन्धों में या वर-वधू के भावी दाम्पत्य जीवन में उद्वेगजनक स्थिति न आये, इसके लिए यथासम्भव समान स्तर के कुलों के साथ विवाह को प्रोत्साहन दिया जाता था।[१] महाभारत का उपदेश है कि समान धन तथा समान कुल वालों में मैत्री और विवाह-सम्बन्ध प्रशस्त रहता है, असमान धन और कुल वालों में नहीं।[२] कामसूत्र (३।१।२२-५) तथा भविष्यपुराण (१।६।३२-४४) में अपने से उच्च या निम्न स्तर के कुलों के साथ सम्बन्ध में सम्भावित दोषों को बतलाते हुए समान स्तर के कुलों के साथ विवाह-सम्बन्ध विहित किया गया है। श्रीमद्भागवत (१०।६०।१५) के अनुसार समान धन, कुल, ऐश्वर्य, रूप और आयति वाले कुलों में विवाह सम्बन्ध उत्तम होता है। ब्रह्मपुराण (गौतमीखण्ड ६५।१६-२०) में कुल, रूप, वय, वित्त विद्या और वृत्त (चरित्र) को विवाह में विचारणीय बतलाया गया है।

संभवतः कन्याचयन के विषय में वैदिक काल से ही विशेष ध्यान दिया जाता था।

---

१. समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः ···। उद्योगपर्व ३३।११७।

२. ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम्।
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥ आदिपर्व १३१।१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋग्वेद से सम्बद्ध आश्वलायन गृह्यसूत्र में बुद्धि, रूप, शील एवं शुभलक्षणों से युक्त नीरोग कन्या के साथ विवाह विहित किया गया है।[1] आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (१।३।१९) में बन्धु-बान्धववती, सुलक्षणा और नीरोग कन्या से विवाह को संस्तुति की गई है। शांखायन गृह्यसूत्र (१।५।६) में कन्या के लक्षणों को देखकर विवाह करने का उल्लेख है। मनुस्मृति (३।१०) में ऐसी कन्या के साथ विवाह विहित किया गया है जो न्यूनाङ्गी, अधिकाङ्गी या विकृत अङ्गों वाली न हो, जो सौम्य नाम वाली हो, हंस या गज के समान गति वाली हो, जिसके लोम, केश तथा दाँत पतले हों और जो कोमल अङ्गों वाली हो। बृहत्पराशरस्मृति (६।३३-६) में कहा गया है कि शुभेच्छु पुरुष सजातीय, सुन्दर, सुलक्षणा, नीरोग, सुशील, भ्रातृमती, सभी अवयवों से युक्त, असगोत्रा, कुलीन, हंस अथवा गज की सी गति वाली, सुकोमल, शोभन नेत्रों वाली, लज्जालु, शुभ नासिका वाली, पति से प्रेम रखने वाली, सास-ससुर आदि गुरुजनों की सेवा-शुश्रूषा करने वाली, अविकृत अङ्गों वाली, अभिशाप-रहित वंश में उत्पन्न तथा शुभ गन्ध वाली कन्या के साथ विवाह करे। धर्मशास्त्रों में यवीयसी (पुरुष से उम्र में छोटी) कन्या के साथ विवाह विहित किया गया है। पद्मपुराण (२।१०३।२४) में कहा गया है कि स्त्री का कनिष्ठ होना ही प्रशस्त माना जाता है, पुरुष का कनिष्ठ होना प्रशस्त नहीं होता। कन्यावरण के लिए मुख्य रूप से प्रायः इन्हीं बातों पर ध्यान दिया जाता था। इस विषय में प्राचीन साहित्य में बहुत विचार किया गया है,[2] जिसकी समीक्षा यहाँ संभव नहीं है। कन्या के शारीरिक लक्षणों के विषय में विचार की परिपाटी महाभारत काल तक निश्चित हो चुकी थी।[3] किसी कन्या में सभी अभीष्ट गुण और सारे लक्षण घटित हो जाना संभव नहीं है। अतः सूत्रकाल से ही आचार्यों ने यह निर्देश दिया था कि जिस कन्या को देखकर मन और नेत्र प्रफुल्लित हो उठें उसी के साथ विवाह करने में कल्याण होता है। अतः इस विषय में अधिक विचार नहीं करना चाहिए।[4]

इस तरह की मान्यताओं के साथ ही प्राचीन आचार्यों ने कुछ कन्याओं के विवाह में बाधा उपस्थित करने वाली बातें भी कही हैं। विष्णुस्मृति (२४।११-६) में अकुलीना, रोगिणी, अधिकाङ्गी, हीनाङ्गी और अतिकपिला कन्या के साथ विवाह वर्जित किया गया है। मनुस्मृति (३।८-९) में ऐसी कन्या के साथ विवाह वर्जित बतलाया गया है जो कपिला, अधिकाङ्गी, रोगिणी, लोम-रहित, अधिक लोमों वाली, वाचाल

---

१. बुद्धिरूपशीललक्षणसम्पन्नामरोगामुपयच्छेत्। आश्व० गृ० सू० १।५।३।

२. द्र०—पाण्डेय, विमलचन्द्र : भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, पृ० १२८-१३१।

३. द्र०—विराटपर्व ९।१०-१३; उद्योगपर्व ११६।२-३।

४. आप० गृ० सू० १।३।२१; भार० गृ० सू० १।२२; कामसूत्र ३।१।१४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

या पिङ्गल वर्ण की हो, जिसका नाम नक्षत्र, वृक्ष, नदी, अन्त्यज, पर्वत, पक्षी, सर्प या दास का बोधक हो या जो भीषण नाम वाली हो। ऐसी वर्जित कन्याओं का विवरण आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (१।३।११-४); कामसूत्र (३।१।११-३); नारदस्मृति (स्त्रीपुंस-योग १२।३६); बृहत्पराशरस्मृति (६।२८, ३१-२); विष्णुपुराण (३।१०।१६-२२); नारदपुराण (पू० २६।५-१२) आदि में देखा जा सकता है। दोषवती कन्या का अभिभावक उसके दोषों को बतलाये विना धोखे से किसी वर के साथ उसका विवाह करने पर ९६ पण[१] या पूर्वसाहस[२] (प्रथम साहस) अथवा उत्तमसाहस[३] अर्थदण्ड का भागी होता था। इन विधानों का उद्देश्य ऐसी कन्याओं के विवाह को प्रतिबन्धित करना नहीं, अपितु किसी निर्दोष पुरुष के दाम्पत्य जीवन को कष्टमय अथवा विघटित होने से बचाना था। इन कन्याओं का विवाह अपनी तरह के दोष वाले युवकों से तो हो ही सकता था।

कन्या के विवाह का दायित्व—ऋग्वेद में त्वष्टा के द्वारा अपनी पुत्री के विवाह के आयोजन[४] तथा सविता के द्वारा अपनी पुत्री सूर्या का विवाह सोम के साथ कराये जाने का वर्णन है।[५] इसके आधार पर कहा जा सकता है कि ऋग्वेद काल से ही पिता अपनी पुत्री के विवाह की व्यवस्था स्वयं करता था। ऋग्वेद (१०।२७।१२) में स्वयं पति का वरण करने वाली कन्या की प्रशंसा है, किन्तु इसका कोई दृष्टान्त नहीं मिलता। अतः इसके आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि कदाचित् कोई कन्या अपने मनो-भिलषित वर का स्वयं चयन करके पिता आदि अभिभावकों को इस दायित्व और चिन्ता से मुक्त कर देती थी। सामान्यतः पिता ही कन्या के लिए वर निश्चित करता था। डा० शिवराज शास्त्री ने भी यह माना है कि ऋग्वेद के दशम मण्डल की रचना-काल में पुत्री के विवाह का प्रमुख दायित्व पिता का ही था।[६] अभ्रातृमती पुत्री के पुत्रिकाधर्मानुसार विवाह की सूचना भी ऋग्वेद (३।३१।१) में प्राप्त होती है। ऋग्वेद में अश्विनी कुमारों के द्वारा वृद्ध च्यवन ऋषि को युवा एवं कन्याओं का पति बनाये जाने का उल्लेख है।[७] इन्हीं च्यवन के कोप को शान्त करने के लिए शर्यात द्वारा अपनी पुत्री सुकन्या को इन्हें प्रदान किये जाने का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण (४।१।५।६-७) तथा परवर्ती साहित्य में

१. मनु ८।२२४; मत्स्य २२७।१४; भविष्य १।१८२।६४।
२. नारदस्मृति (स्त्रीपुंसयोग) १२।३३। ३. याज्ञ० १।६६।
४. त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदम्...। ऋ० १०।१७।१; अथर्व० १८।१।५३। द्र०—त्वष्टा दुहितुर्वहनं करोतीति। नि० १२।११ (वहनं का सायण ने 'विवाह' अर्थ किया है। ५. ऋ० १०।८५।९। द्र०-पीछे पृ० ९२, टि० ४।
६. ऋग्वेदकाल में पारिवारिक सम्बन्ध, पृ० २३८-२४०।
७. ऋ० १।११६।१०, इत्यादि, द्र०—वैदिककोश, पृ० १५१ में 'च्यवन'।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राप्त होता है, जो इस तथ्य का सूचक है कि विवाह के विषय में कन्या अपने पिता के निर्णय का स्वागत करती थी। उत्तरवैदिक काल से युवावस्था की प्राप्ति के पूर्व ही कन्या के विवाह को निष्पन्न करने की प्रथा के उदय के साथ ही पिता द्वारा कन्या के विवाह का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ गया था, क्योंकि उस अवस्था की कन्या अपने विवेक से अपने लिए योग्य वर को स्वयं नहीं चुन सकती थी। लौकिक संस्कृत के आदिकाव्य रामायण में अधिकांश कन्याओं के विवाह पिता द्वारा निश्चित किये जाने के उल्लेख हैं।[१] कैकसी ने पिता के आदेश से ही स्वयं पति का वरण किया था।[२] सीता का विवाह जनक ने धनुर्भङ्ग करने वाले के साथ प्रतिश्रुत किया था।[३] महाभारत में अनेक कन्याओं के विवाह पिता द्वारा पुण्य प्राप्ति हेतु किये जाने के उल्लेख हैं[४] वरपक्ष द्वारा अनेक कन्याओं को उनके पिता से माँगे जाने के भी उल्लेख हैं।[५] सावित्री को पिता अश्वपति ने ही वर खोजने के लिए भेजा था (वनपर्व २९३।३२-८)। संस्कृत काव्यों और नाटकों में भी पिता को कन्या के विवाह के लिए प्रयत्नशील पाया जाता है। महाभारत का संदेश है कि पिता को अपनी कन्या का विवाह कुलीन वर के साथ करना चाहिए।[६] यथासमय कन्या का विवाह न करने वाला पिता निन्दनीय कहा गया है।[७] श्रीमद्भागवतपुराण (३।२३।५२) में देवहूति ने कर्दम को प्रव्रजित होने से रोकते हुए कहा है कि अभी तो आपको कन्याओं के लिए वर खोजने हैं। ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहिता (८।१७६-१८०) के अनुसार अपनी अथवा परायी कन्या का भी विवाह कराना आत्महितकर होता है। वामनपुराण (६३।३६-७५) में राजा सुरथ को आत्मदान करने वाली अपनी पुत्री को शाप देकर उसके विवाह को प्रतिबन्धित करनेवाले विश्वकर्मा को ऋषि ऋतध्वज ने वानर होने का शाप दिया है।[८] धर्मशास्त्रों के अनुसार यथासमय कन्या का विवाह न करने वाले पिता आदि को उसके प्रत्येक ऋतुकाल में भ्रूणहत्या लगती है।[९] महाभारत (अनु० पर्व २४।९) के अनुसार पुत्री का विवाह अनुरूप वर से न करने वाला पिता

---

१. रामा० १।३३।२१; १।६६।१५-६; ७।२।२५; ७।१२।१८-९।

२. वही, ७।९।१५। ३. वही, १।६६।१५-२६।

४. द्र०—वनपर्व ११५।२८; उद्योगपर्व ९७।२०-२१; १०३।२५-६; शान्तिपर्व ४६।७; २३४।२८, ३५; अनु० पर्व १३७।११,१६,२४,२६।

५. द्र०—महाभारत में नारी, पृ० १६३, टि० ७-१७।

६. कन्या चोत्पाद्य दातव्या कुलपुत्राय धीमते। अनु० पर्व १०४।१२४।

७. अप्रदाता पिता वाच्यो। वनपर्व २९३।३५।

८. यस्मात् स्वतनुजातेयं परदेयापि पापिना।
योजिता नैव पतिना तस्माच्छाखामृगोऽस्तु सः॥ वामन ६३।७५।

९. याज्ञ० १।६४; आङ्गिरस् स्मृति, श्लोक १२६; स्कन्द ४।४०।५१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साहचर्य अथवा दाम्पत्य के अर्थ में भी प्राप्त होता है। विवाह शब्द मूलतः वैवाहिक कृत्य विशेष का बोधक होने पर भी इसमें समग्र विवाह-संस्कार एवं दाम्पत्य जीवन के व्यापक अर्थ के सन्निवेश का कारण यह था कि अति प्राचीन काल से ही विवाह के संस्कार-पक्ष को प्रमुखता स्वीकृत हो चुकी थी, जिसका उद्देश्य दम्पती की हृदय-ग्रन्थियों को एकीकृत करके उन्हें अच्छे जीवन-साथी बनाते हुए उनके लोक-लोकान्तर व्यापी साहचर्य को दृढ़ करना तथा उन्हें सहधर्माचरण की शिक्षा देना था। स्त्री-पुरुषों के यौन-सम्बन्धों की वैधता प्राचीन भारत में राज्य—प्रशासन या विधि की स्वीकृति पर नहीं, अपितु विवाह-संस्कार पर निर्भर करती थी।

विवाह शब्द की तथाकथित आधुनिक पाश्चात्य परिभाषाएँ वैवाहिक जीवन को दृष्टि में रखती हैं। उनमें इसके संस्कार पक्ष का कोई संकेत नहीं है। यथा—वेस्टरमार्क के अनुसार विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ आचार एवं विधि द्वारा स्वीकृत सम्बन्ध है, जिसमें संयुक्त दोनों पक्षों पति और पत्नी के एक दूसरे के प्रति तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तानों के प्रति कुछ अधिकार तथा कर्तव्य होते हैं।[१] उसके अनुसार विवाह में पति-पत्नी को परस्पर मैथुन का अधिकार सदैव मिलता है।[२] किन्तु नियमित मैथुन सम्बन्ध के अतिरिक्त भी कुछ बातें विवाह की सीमा के अन्तर्गत आती हैं।[३] यथा विवाह केवल सामाजिक संस्था ही नहीं, आर्थिक संस्था भी है, जो पति-पत्नी के साम्पत्तिक अधिकारों को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है।[४] इसमें पति का कर्तव्य होता है कि वह अपनी पत्नी तथा बच्चों का भरण-पोषण करे और उनका भी यह कर्तव्य है कि वे उसके निमित्त कार्य करें।[५] इसी प्रकार विलिस्टाइन गुडसेल के अनुसार 'विवाह' शब्द का तात्पर्य स्त्री-पुरुष के उस सम्बन्ध से है, जो मैथुन के साथ ही समाप्त नहीं होता, अपितु उसके पश्चात् भी तब तक रहता है जब तक कि उनके सम्बन्ध से उत्पन्न शिशु स्वयं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने योग्य नहीं हो जाते।[६] वेस्टरमार्क प्रभृति विद्वानों की विवाह की परिभाषाएँ मुख्यतः यौन-सम्बन्धों की वैधता एवं पति-पत्नी के कर्तव्यों के निर्देश तक सीमित हैं, इनमें विवाह-संस्कार एवं तज्जनित सम्बन्ध तथा दम्पती के सहधर्माचरण या पारस्परिक कर्तव्यों की ओर कोई संकेत नहीं किया गया है। सम्भवतः पाश्चात्य

---

१. फ्यूचर आफ मैरेज इन वेस्टर्न सिविलाइजेशन, पृ० ३; हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज, भाग १, पृ० २६।
२. फ्यूचर आफ मैरेज इन वेस्टर्न सिविलाइजेशन, पृ० ३।
३. हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज, भाग १, पृ० २६।
४. वही, पृ० २६। ५. वही, पृ० २६।
६. गुडसेल, विलिस्टाइन : ए हिस्ट्री आफ द फेमिली एँज ए सोसल एण्ड एजूकेशनल इन्स्टीट्यूशन पृ० ६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(अर्थशास्त्र ३।५।२१) ने भी यह विधान किया है कि भाई अपनी बहिनों के विवाह के लिए अपेक्षित व्यय एवं यौतक देगें।

संस्कृत नाटकों में कुछ कन्याओं के विवाह को अन्य व्यक्तियों द्वारा कराये जाने के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। मालतीमाधव नाटक में यह वर्णन है कि पद्मावती के राजा ने अपने अमात्य भूरिवसु की कन्या मालती अपने नर्म-सचिव नन्दन को दी थी,[1] तथा अपने नर्म-सचिव नन्दन की बहिन मदयन्तिका को उसके प्रेमी मकरन्द को विवाहार्थ दिया था।[2] यद्यपि इस नाटक में कामन्दकी ने यह भी कहा है कि धर्मशास्त्र एवं सदाचार से यह सिद्ध नहीं होता कि राजा को ऐसा करने का अधिकार है,[3] किन्तु राजा ने मित्र भाव से यह दायित्व निभाया था। भासकृत चारुदत्तम् नाटक (अङ्क ४) तथा शूद्रक के मृच्छकटिकम् (अङ्क ४) में गणिका वसन्तसेना के द्वारा अपनी चेटी मदनिका उसके प्रेमी को समर्पित की गई है। मालविकाग्निमित्रम् (अङ्क ५) में रानी धारिणी के द्वारा मालविका अग्निमित्रको दी जाती है। श्रीहर्षकृत प्रियदर्शिका नाटिका (अंक ४) में रानी वासवदत्ता ने प्रियदर्शिका का हाथ अपने पति राजा उदयन को समर्पित करके उसका विवाह करवाया है। इस तरह प्राचीन काल की नारियाँ पति के पुर्नविवाह में सहयोग देती थी।[4]

वरान्वेषण - कन्या के हित के लिए वर के अन्वेषण में उसके अभिभावकों को अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ता था। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (१।३।२०) में बन्धु-बान्धव युक्त, सच्चरित्र, शुभलक्षणयुक्त, वेदाध्ययन सम्पन्न तथा नीरोग वर को प्रशस्त बतलाया गया है। भारद्वाज गृह्यसूत्र (१।११) में कहा गया है कि वर के चयन में वित्त, रूप, प्रज्ञा तथा बान्धव—इन चार हेतुओं का विचार करे। ये सभी गुण एकत्र न मिलें, तो वित्त का विचार छोड़ दे, तब भी काम न बने तो रूप का भी विचार छोड़ दे और तब भी बात न बने, तो बान्धवों का भी विचार न करे, किन्तु प्रज्ञा का विचार अवश्य करे, क्योंकि प्रज्ञारहित पुरुष के साथ भला कन्या कैसे रह सकती है? मानवगृह्यसूत्र (१।७।६-७) तथा वाराहगृह्यसूत्र (१०।५-७) में वित्त, रूप, विद्या, प्रज्ञा और बान्धव—ये पाँच विवाह के कारण बतलाये गये हैं और इनके हानोपादान सम्बन्धी विचार भी उपर्युक्त की भाँति ही किया गया है। यम के अनुसार वर के कुल, शील, शरीर (स्वास्थ्य), अवस्था (युवावस्था), विद्या, वित्त तथा सनाथता (पिता-भ्राता आदि का संरक्षण)—इन सात गुणों की परीक्षा करके ही कन्या देनी चाहिए। इनके अतिरिक्त और कुछ भी विचारने की आवश्यकता नहीं है।[5]

---

१. मालतीमाधवम्, अङ्क ४, पृ० १७८। २. वही, १०।२३।
३. वही, अंक ४, पृ० १८७। ४. द्र०—मालविकाग्निमित्रम् ५।१९।
१. यम, पराशरमाधव, आचारकाण्ड, पृ० ४७९ में उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बृहत्पराशरस्मृति (६।१८-२१) के अनुसार वर की जाति, विद्या, अवस्था, शक्ति, आरोग्य, बहुपक्षता (भाई-बन्धुओं की बहुलता), अर्थित्व (वर के द्वारा कन्या की याचना अथवा कन्या को वधू रूप में ग्रहण करने की उसकी आकांक्षा) तथा धन-सम्पत्ति—ये आठ गुण वर के विषय में विचारणीय हैं। इसमें वर की जाति, विद्या, रूप, शील, नव-यौवन एवं आरोग्य के साथ ही उसके पुंस्त्व, आचार-निष्ठता तथा स्त्रीजन को सन्तुष्ट रखने की क्षमता पर भी विशेष ध्यान देने को कहा गया है। मत्स्यपुराण (१५४।४१५) में कहा गया है कि कुल, जन्म, अवस्था (नवयौवन) रूप, भूति (ऐश्वर्य) और समृद्धि युक्त वर के द्वारा याचना न किये जाने पर भी उसे घर में बुला कर कन्या देनी चाहिए। ब्रह्मपुराण (गौतमीखण्ड ६५।८-६) के अनुसार धनी, विद्वान्, युवा, कुलीन, यशस्वी, उदार और पिता आदि अभिभावकों से युक्त वर को ही कन्या देनी चाहिए। ऐसा न करने वाला पिता नरक में गिरता है। भास (प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् २।४) के अनुसार वर श्लाघ्य कुल वाला, दयालु, मृदु स्वभाव वाला, सुरूप तथा बल-पराक्रमयुक्त होना चाहिए। इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में कन्या के लिए ऐसे वर को प्रशस्त माना जाता था जो कि कुलीन, धनी, बुद्धिमान्, युवा, सच्चरित्र, सुन्दर, सुलक्षणयुक्त, पिता आदि संरक्षकों और भाई बन्धुओं से युक्त, मृदुस्वभाव तथा बल-पराक्रम युक्त हो। याज्ञवल्क्यस्मृति (१।५५) में ऐसे वर को कन्या देने का विधान किया गया है जिसके पुंस्त्व (प्रजनन क्षमता) की यत्नतः परीक्षा की जा चुकी हो। नारदस्मृति (स्त्रीपुंसयोग १२।८-१९) में पुंस्त्व की परीक्षा की विधि बतलाने के साथ ही चौदह प्रकार के नपुंसकों को गिनाते हुए पुंस्त्वयुक्त पुरुष को ही कन्या देने का निर्देश किया गया है। कन्या के लिए वर के चयन में उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखे जाने पर दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है।

वर में उपर्युक्त गुणों का अभाव होने पर उसे निर्दोष कन्या मिलना कठिन था। मनुस्मृति (९।८९) में स्पष्ट कहा गया है कि भले ही कन्या ऋतुमती होकर आजीवन पितृगृह में रह जाय, किन्तु उसे गुणहीन वर को नहीं देना चाहिए। यह वचन नितान्त निर्दोष कन्या के विषय में मानना चाहिए। सदोष कन्या का विवाह तो दोषयुक्त वर के साथ हो ही सकता था। कात्यायन ने उन्मत्त (पागल), पतित, कुष्ठी, नपुंसक, सगोत्रज, अन्धे काने, बहरे या अपस्मार (मृगी) जैसे रोग से युक्त वर को दोषयुक्त बतलाया है।[1] बृहत्पराशरस्मृति (६।२६-७) में कहा गया है कि दूर-देशस्थ, विद्याहीन, मोक्षधर्मानुयायी, शूर और निर्धन को कन्या नहीं देनी चाहिए। अतिदूर या अतिनिकट रहने वाले, अति धनाढ्य, अतिदुर्बल, वृत्तिहीन और मूर्ख—इन छः प्रकार

---

१. कात्यायन, स्मृतिचन्द्रिका १, पृ० ५९ में उद्धृत; तु०-नारदस्मृति १२।३७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के पुरुषों को कन्या नहीं देनी चाहिए।[१] यदि कोई वर अपना दोष बतलाये विना कन्या का वरण कर लेता था तो उसे कन्या दी जाने पर भी न दिये गये के समान मानी जाती थी और उसे राजा द्वारा अर्थदण्ड से दण्डित किया जाता था।[२] अयोग्य वर को सुयोग्य कन्या देने वाले अभिभावक को पापी[३] तथा नरकगामी[४] बतलाया गया है। इस तरह प्राचीन आचार्यों ने कन्या के सुखमय दाम्पत्य जीवन हेतु ही उसे यथायोग्य वर को देने और अयोग्य वर को वर्जित करने के विधान प्रस्तुत किये थे।

कन्या के द्वारा वर का चयन—कुछ कन्याओं के समक्ष वर का चयन स्वयं करने की परिस्थिति भी यदा-कदा आती रही है। यद्यपि ऋग्वेद (१०।२७।१२) में स्वयं पति का वरण करने वाली कन्या की प्रशंसा है,[५] किन्तु सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में इसका कोई उदाहरण न होने के कारण इस विषय में यही कहा जा सकता है कि कदाचित् कोई कन्या पिता, भ्राता आदि की अनुमति से अथवा उनके अभाव में स्वयं पति का वरण कर सकती थी। रामायण (७।९।७-२०) में कैकसी ने विश्रवा को अपने पिता के कथनानुसार ही पति चुना था। महाभारत (वनपर्व १।२७-३३) के अनुसार सावित्री को भी पिता के आदेशानुसार ही स्वयं वर के अन्वेषण हेतु जाना पड़ा था। स्वयंवर तथा प्रेम-विवाह के उदाहरणों के अतिरिक्त पति का वरण स्वयं करने वाली कन्याओं की संख्या नगण्य थी। स्वयं पति का वरण करने वाली कन्याओं में गंगा, हिडिम्बा, उलूपी, देवयानी आदि को भी गिनाया गया है।[६] सामान्यतः कन्याएँ अपने को पति का वरण करने की अनधिकारिणी मानती थीं। इतिहास-पुराण तथा काव्यों में ऐसी अनेक कन्याओं के उदाहरण हैं जिन्होंने कामुक पुरुष अथवा भावी पति द्वारा प्रलोभित किये जाने पर स्वयं को आत्मदान में असमर्थ तथा अपने पिता को ही अपना दाता बतलाया है।[७]

प्राचीन भारतीय समाज में पुरुष अपने लिए स्वयं कन्या खोजने तथा उसके साथ विवाह का प्रयास स्वयं करने पर निन्दनीय नहीं, अपितु श्लाघनीय होता था, किन्तु अपने विवाह हेतु स्वयं वर के पास जाने वाली कन्या को श्लाघनीय नहीं माना जाता था, अपितु कभी-कभी उसे हेय भी माना जाता था। पं० सुखमय भट्टाचार्य के विचार से सावित्री, दमयन्ती आदि साध्वियों के स्वयंवर के सम्बन्ध में भी समाज की

---

१. द्र०—पद्म १।५४।६७ तथा स्कन्द ३।१ २३ ७-८।
२. मत्स्य २२७।१८।   ३. पद्म २।६७।६३-४।
४. पद्म १।५४।६१, ६६; ब्रह्म गौ० ९५।८; ब्रह्मवै० ४।४१।५०।
५. द्र०—पीछे, पृ० ६६।   ६. द्र०—महाभारत में नारी, पृ० १६४, टि० ४-८।
७. द्र०—रामा० १।३२।१६-२२; ७।८०।९-१२; महाभारत में नारी, पृ० १६३-४; शिव २।३।२९।९; वामन ६३।३६; कुमारसम्भवम् ६।१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

धारणा कोई बहुत अच्छी नहीं थी।[1] भवभूति ने मालतीमाधवनाटकम् (अंक २, पृ० १११-२) में पिता को ही कन्या के विवाह का अधिकारी बतलाते हुए कहा है कि शकुन्तला ने दुष्यन्त को, उर्वशी ने पुरूरवा को और वासवदत्ता ने पिता द्वारा संजय को देने का निश्चय किये जाने पर भी राजा उदयन को स्वयं आत्मदान करके साहस कर्म किया था। वामनपुराण (६३।३९-४४) में विश्वकर्मा की चित्राङ्गदा नामक कन्या द्वारा राजा सुरथ को आत्मदान किए जाने पर उसकी सखियों ने उससे कहा है कि पिता के होते हुए तुम्हें ऐसा करने की स्वतन्त्रता नहीं है। उसके इस अनैतिक व्यवहार से क्रुद्ध पिता ने यह शाप दिया था कि उसका विवाह नहीं होगा।[2] इससे प्रकट होता है कि कन्या द्वारा आत्मदान किए जाने के कारण पिता उसके लिए समुचित वर खोजने के दायित्व तथा कन्यादान के पुण्य से वञ्चित रह जाने पर क्रुद्ध भी हो सकता था, किन्तु पिता का यह व्यवहार उचित नहीं माना जाता था।[3]

धर्मशास्त्रों में कन्यादान के पूर्वोक्त सभी अधिकारियों के अभाव में कन्या को स्वयं वर चुनने का अधिकार दिया गया है। किन्तु तब भी वह गम्य (अपनी जाति और कुल के अनुसार विवाह योग्य) पुरुष का ही वरण कर सकती थी।[4] पुनश्च कन्या के ऋतुमती होने के पश्चात भी पिता आदि अभिभावकों द्वारा उसका विवाह न किये जाने पर वह स्वयं पति का वरण कर सकती थी। धर्मसूत्रों के समय से ही यह विधान पाया जाता है कि ऋतुमती हो जाने पर कन्या तीन वर्ष तक पिता आदि के द्वारा अपना विवाह कराये जाने की प्रतीक्षा करे। तत्पश्चात् चौथे वर्ष वह अपने तुल्य (गुण-जाति वाले) वर के साथ स्वयं विवाह कर सकती है।[5] सदृश वर न मिलने पर गुणहीन पुरुष को भी वह पति बना सकती थी।[6] कौटिल्य ने भी ऐसा ही विधान किया है।[7] मनु

---

१. महाभारत कालीन समाज, पृ० १७ २. वामन ६३।५२-३

३. द्र०-पीछे, पृ० १०० टि० ८।

४. गम्यं त्वभावे दातॄणां कन्या कुर्यात् स्वयं वरम्। याज्ञ० १।६४

५. त्रीणि वर्षाण्यृतुमती काङ्क्षेत पितृशासनम्। ततश्चतुर्थे वर्षे तु विन्देत सदृशं पतिम् ॥-बौ० ध० सू० ४।१।१।१५; तु० मनु ९।९०।

६. अविद्यमाने सदृशे गुणहीनमपि श्रयेत्।- बौ० ध० सू० ४।१।१।१६। ऐसा प्रतीत होता है कि मनु (८।३६५) को कन्या का उत्कृष्ट पुरुष का सेवन और परिणामतः उसके साथ विवाह तो अभिमत था, किन्तु हीन पुरुष का सेवन करने पर उसे घर में नियन्त्रित रखने का विधान करके उन्होंने उसके साथ विवाह के विषय में अपनी असहमति का संकेत दिया है।

७. त्रिवर्षप्रजातार्तवायास्तुल्यो गन्तुमदोषः, ततः परमतुल्योऽप्यनलंकृतायाः। अर्थ० ४।१२।११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और कौटिल्य के अनुसार स्वयं पति को वरने वाली कन्या पितृ-प्रदत्त अलंकारों को अपने साथ न ले जाय, अन्यथा वह चोर के तुल्य होती है।[1] कन्या के ऋतुमती हो जाने के पश्चात् उस पर पिता का स्वामित्व समाप्त माना जाता था।[2] अतः पिता उसे स्वेच्छया विवाह करने से नहीं रोक सकता था। विवाह करना एक धार्मिक कर्त्तव्य था। अतः मनु ने कहा है कि पिता आदि के द्वारा विवाह न कराये जाने पर स्वयं पति का वरण करने वाली कन्या तथा उसे विवाहने वाले पुरुष को कोई पाप नहीं लगता (मनु ९।९१)। नारी जाति की स्वतन्त्रता का विरोध करने पर भी मनु प्रभृति धर्मशास्त्र-कारों ने इतने उदारतापूर्ण विधान इसलिए दिए थे कि कदाचित् कोई कन्या अविवाहित न रहे। इनका तात्पर्य सभी कन्याओं को स्वेच्छया वर चुनने के लिए प्रोत्साहित करना कदापि नहीं था।

अन्त में हम कह सकते हैं कि पारस्परिक अथवा विपरीत लिङ्ग के प्रति स्वाभाविक आकर्षण के कारण तथा विवाह के पश्चात् सुखोपभोग की लालसा से युवकों तथा कन्याओं के मन में विवाह की इच्छा सदैव रही है। उनके अभिभावक भी उनकी मनोकामना पूर्ति हेतु यथासंभव सहायता करते थे। गृहस्थ जीवन में प्रवेश के लिए तो विवाह ही एकमात्र द्वार था। एक संस्कार के रूप में भी विवाह परम आवश्यक था। व्यक्तित्व की पूर्णता, ऋणत्रय का परिशोधन, त्रिवर्ग की प्राप्ति आदि कई दृष्टियों से विवाह पुरुषों तथा स्त्रियों के लिए नितान्त आवश्यक था। पुत्र-प्राप्ति तथा धर्म-सम्पादन जैसे उद्देश्यों की प्रमुखता के कारण विवाह एक उपयोगी और पवित्र सम्बन्ध माना जाता था। पिता आदि का कर्तव्य था कि वे पुत्र आदि आश्रितों का विवाह करावें। पिता आदि के अभाव में अथवा ऋतुमती हो जाने के पश्चात् भी उनके द्वारा विवाह न कराये जाने पर कन्या को स्वयं पति चुनने की छूट थी। इस तरह प्राचीन मनीषियों ने हर संभव उपाय तथा विधान के द्वारा विवाह-संस्था को प्रोत्साहित करके समाज को मर्यादित रखने का महनीय प्रयास किया था।

---

१. मनु ९।९२; अर्थ० ४।१२।११।

२. (क)-स हि स्वाम्यादतिक्रामेद् ऋतूनां प्रतिरोधनात्। मनु ९।९३।
(ख)-ऋतुप्रतिरोधिभिः स्वाम्यादपक्रामति। अर्थ० ४।१२।९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चतुर्थ अध्याय

विवाह संस्कार एवं दाम्पत्य-निष्ठा

विवाह शब्द का प्रयोग यद्यपि विवाह-संस्कार तथा वैवाहिक जीवन दोनों ही अर्थों में किया गया है, किन्तु वैवाहिक जीवन तथा पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध का बोध कराने के लिए संस्कृत साहित्य में 'दाम्पत्य' शब्द का समीचीन प्रयोग होता है। 'विवाह' तथा इसके पर्यायवाची शब्द मूलतः विवाह संस्कार या इसके किसी अंगभूत कृत्यविशेष के बोधक हैं। वैदिक संहिताओं में 'वहतु' तथा धर्मशास्त्रों में 'वेदन' शब्द का विवाह के अर्थ में प्रयोग है। अमरसिंह (लगभग ५०० ई०) ने विवाह के पर्यायवाची शब्दों में उपयम, परिणय उद्वाह, उपयाम तथा पाणिपीडन (पाणिग्रहण) को गिनाया है।[1] प्रस्तुत प्रसंग में हम विवाह तथा इसके पर्यायवाची शब्दों और 'दाम्पत्य' शब्द के अर्थ की समीक्षा के पश्चात् विवाह-संस्कार तथा इसके अंगभूत प्रमुख कृत्यों की दाम्पत्य-पर्यवसायिता पर विचार करेंगे।

१–विवाह एवं इसके पर्यायवाची शब्द—

विवाह – वैयाकरणिक प्रक्रिया के अनुसार विवाह शब्द एक स्थान से अन्यत्र ले जाने का अर्थ-बोध कराने वाले 'वह्' धातु में भावबोधक 'घञ्' प्रत्यय एवं विशेष प्रक्रियार्थक 'वि' उपसर्ग के योग से निष्पन्न होता है।[2] मेधातिथि ने 'दारकरण' अर्थात् ब्राह्म आदि विवाह विधियों से प्राप्त कन्या को पत्नी का स्तर प्रदान कराने वाले कृत्य-समुदाय को विवाह संज्ञा दी है।[3] उनके अनुसार ब्राह्म आदि विवाहों में से अन्यतम विधि से प्राप्त कन्या को पत्नी का स्तर प्रदान कराने के लिए वाग्दान-प्रभृति सप्तर्षि-दर्शन-पर्यन्त जो संस्कार किया जाता है उसे विवाह कहते हैं, उसी को पाणिग्रहण भी कहा जाता है।[4] मित्रमिश्र (संस्कारप्रकाश) के विचार से ब्राह्मादि आठ प्रकारों में से अन्यतम द्वारा प्राप्त कन्या का होमादि सप्तपदी पर्यन्त कृत्यों से संस्कार कराना ही

---

१. विवाहोपयमौ समौ तथा परिणयोद्वाहोपयामाः पाणिपीडनम्। अमर०२।७।५६।

२. विवाहशब्दो वह् प्रापणे इत्यस्माद् धातोर्भावे घञि कृते वहनं वाहः विशिष्टो वाहो विवाह इति व्युत्पत्या निष्पद्यते। संस्कारप्रकाश, पृ० ५८३।

३. दारकरणं विवाह इति स्मर्यते। मेधा० (मनु ५।१५१)।

४. कः पुनरयं विवाहो नाम ? उपायतः प्राप्तायाः कन्याया दारकरणार्थः संस्कारः सेतिकर्तव्यताङ्गः सप्तर्षिदर्शनपर्यन्तः पाणिग्रहणलक्षणः। मेधातिथि (मनु ३।२०)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह है।[१] अपरार्क के अनुसार विवाह शब्द का मुख्य या मूल अर्थ यद्यपि कन्या से सप्तपदी कराना है, तथापि ऋत्विङ्न्याय से इसका प्रयोग भार्यात्व-सम्पादक समस्त वैवाहिक कृत्यों के समुदाय के लिए किया गया है।[२] कात्यायन स्मृति (५।५) के एक वचन से भी यह प्रकट होता है कि विवाह-संस्कार सम्बन्धी प्रारम्भिक कृत्य (वर-वरण, कन्या वरण) से लेकर गर्भाधान के पूर्व—चतुर्थी कर्म तक के समस्त कृत्यों को सम्मिलित रूप से विवाह संज्ञा दी जाती थी।[३] किन्तु बौद्धसाहित्य में विवाह शब्द का प्रयोग इससे भिन्न अर्थ में हुआ है। बौद्ध आगमों में विवाह शब्द का किसी शुभ नक्षत्र में अपनी कन्या को वर को दे आने के अर्थ में प्रयोग है। वहां लड़के के लिए अच्छे कुल से शुभ नक्षत्र में वधू ले आने को 'आवाह' संज्ञा दी गई है।[४] डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने विवाह शब्द के निर्वचन प्रसंग में कहा है कि संभवतः यह शब्द मानव समाज के विकास की उस प्रारम्भिक अवस्था की सूचना देता है जब कन्याएं युद्ध की सामग्री या उपहार समझ कर हरण की जाती थीं और बाद में उनसे विवाह कर लिया जाता था।[५] यहां उल्लेखनीय है कि कुछ इतिहासकारों द्वारा उपस्थापित ये धारणायें कल्पना पर अधिक निर्भर करती हैं। साहित्यिक स्रोतों से इन्हें प्रमाणित नहीं किया जा सकता। निष्कर्ष यह है कि विवाह शब्द व्युत्पत्ति, व्याख्या एवं सम्यक् प्रयोग में संस्कार संवलित अर्थ का ही बोधक है, वैवाहिक जीवन के अर्थ में इसका प्रयोग शुद्ध नहीं कहा जा सकता।

वहतु—ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग यौतक,[६] वर-वधू का (वैवाहिक अग्नि सहित) अपने गृह को प्रस्थान[७] आदि अर्थों के साथ ही विवाह[८] संस्कार के अर्थ में भी

---

१. वैशिष्ट्यं च प्रतिग्रहाद्यष्टविधोपायान्यतमोपायेन स्वीकृतायां होमादिसप्तमपदनयनान्तकर्मभिः संस्कृतत्वम्। संस्कारप्रकाश, पृ० ५८३। द्र०—फौर्म्स् आफ मैरेज इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० १७-२६।

२. विवाहशब्दो यद्यपि कन्यायाः सप्तपदातिक्रमणे मुख्यस्तथापि ऋत्विङ्न्यायात् तत्तद् गृह्यादिशास्त्रविहिते भार्यात्वसाधके कर्मसमुदाये वर्त्तते। अपरार्क० (याज्ञ० १।६१)

३. विवाहादिः कर्मगणो य उक्तो गर्भाधानं शुश्रुम यस्य चान्ते। कात्या० ५।५।

४. दीघनिकाय १।१२; १।८६-७; ३।१४२; सुमंगलविलासिनी १।६६; समन्तपासादिका भाग १, पृष्ठ ५५१; द्र०—बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन पृ० ४२–३। ५. हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास, पृ० ३२।

६. ऋ० १०।८५।१३, ३१; अथर्व० १४।२।१, १२ ६६ एवं इसका सायणभाष्य।

७. ऋ० १०।८५।२०; अथर्व० १४।१।६१; तु०—ऋ० १।१८४।३।

८. ऋग्वेद ४।५८।६ के भाष्य में सायण ने 'वहतु' का उद्वाह अर्थ किया है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुआ है। ऋग्वेद (१०।१७।१—त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं····) की व्याख्या में सायण ने 'वहतु' का स्पष्टतः विवाह अर्थ किया है ।[१]

उद्वाह—यह शब्द 'उत्' पूर्वक 'वह्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। 'विवाह' शब्द के मूल अर्थ की भांति 'उद्वाह' का भी मूल अर्थ कन्या को विवाह-संस्कार के पश्चात् पतिगृह को ले जाना है, किन्तु व्यापक अर्थ में इसका प्रयोग विवाह के पर्यायवाचक के रूप में ही होता है।[२]

पाणिग्रहण—यह शब्द मूलतः विवाह-संस्कार के एक कृत्य विशेष का वाचक है, जिसमें वर वधू का हाथ सौभाग्य एवं यावज्जीवन सहवास के लिए ग्रहण करता है।[३] इस कृत्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण यह विवाह तथा विवाह-संस्कार के पर्याय रूप में व्यवहृत होने लगा था। अमरकोश में इसी को 'पाणिपीडन' संज्ञा दी गई है।[४] पाणिग्रहण केवल अपने वर्ण की नारी के साथ विवाह में विहित है।[५] अतः शास्त्रीय दृष्टि से इसे असवर्णा के साथ किये गये विवाह के पर्याय रूप में व्यवहृत नहीं किया जा सकता।

परिणय—'परि' उपसर्ग पूर्वक 'नी' धातु में 'अच्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न। विवाह-संस्कार में वर के द्वारा वधू को अग्नि के चारों ओर प्रदक्षिणा करवाना 'परिण-यन' या 'परिणय' कहलाता है। कौशिकसूत्र (७६।२०) के अनुसार इस कृत्य का संकेत अथर्ववेद (१४।१।३९) में हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र में भी इसका निर्देश किया गया है।[६] इस कृत्य में वर-वधू के द्वारा एक मन और एक भाव होने की शपथ ली जाती है। इस प्रकार 'परिणय' शब्द वैवाहिक-सम्बन्ध की स्थिरता एवं सहधर्माचरण का सूचक होने के कारण विवाह के एक पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा होगा।

वेदन—विवाह, पति-प्राप्त कराने वाला कृत्य।[७]

उपयमन—यास्क[८], पाणिनि[९] आदि आचार्यों द्वारा विवाह के अर्थ में प्रयुक्त।

१. वहतुं वहनं विवाहं···· । सायण (ऋ० १०।१७।१)।
२. द्र०-मनु ३।४३; बृहत्पराशरस्मृति ६।१७८; द्र०-मनु ३।८, १०; याज्ञ० १।५२; विष्णु २६।६।
३. ऋ० १०।८५।३६; ऋ० १०।१८।८ में 'हस्तग्राभ' का तात्पर्य सायण ने पाणिग्रहणकर्ता बतलाया है।
४. द्र०-पीछे, पृ० १०७। ५. पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते। मनु० ३।४३
६. त्रिः परिणयन् जपति। आश्व० गृ० सू० १।७।६।
७. मनु ३।४४; ६।६५; याज्ञ० १।६२।
८. निरुक्त ३।५। ९. विभाषोपयमने। अष्टाध्यायी १।२।१६; द्र०-मनु ३।११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पाणिनि के अनुसार 'उप' उपसर्गपूर्वक 'यम्' धातु का स्वायत्तीकरण या स्वीकरण (स्वीकार) अर्थात् अपने अधिकार या स्वामित्व में ग्रहण करना अर्थ होता है।[1] इस शब्द से विवाह संस्कार में वर द्वारा वधू (पत्नी) का स्वामित्व-ग्रहण सूचित होता है।

विवाह एवं इसके पर्यायवाची शब्दों के शाब्दिक अर्थ पर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये शब्द मूलतः विवाह-संस्कार के किसी एक कृत्य के वाचक रहे हैं, किन्तु कालान्तर में इन्हें निर्विशेष भाव से विवाह-संस्कार के समस्त कृत्यों का वाचक मान लिया गया। भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से ही विवाह के संस्कार-पक्ष की प्रधानता रही है। अतः विवाह की परिभाषाएँ भी इसी पक्ष को उजागर करती हैं। प्रो० काणे के अनुसार भी विवाह एक संस्कार था, जो सन्तान-परम्परा को बनाये रखने तथा आत्मसंयम, आत्मोत्सर्ग तथा पारस्परिक सहयोग के द्वारा जीवन में अभ्युदय प्राप्ति हेतु स्त्री-पुरुष के मिथुन को एक सूत्र में बाँधता था।[2] वैवाहिक जीवन के उद्देश्यों एवं कर्तव्यों का दिग्दर्शन तथा दाम्पत्य-निष्ठा का सूत्रपात विवाह-संस्कार के द्वारा ही होता है। अतः धर्मशास्त्रों में विवाह तथा इसके विभिन्न पर्यायवाची शब्दों की परिभाषाएँ इसके संस्कार पक्ष को ध्यान में रख कर ही की गई हैं। पुराणों के अनुसार (१) कन्यादान, (२) शचीयाग जैसे पूर्वकृत्य और (३) पाणिग्रहण आदि प्रधान वैवाहिक कृत्य तथा इनके पश्चात् (४) चतुर्थी कर्म—इन चार प्रमुख कृत्यों का समुच्चय ही विवाह है।[3] इस परिभाषा में चार कृत्यों की गणना से विवाह-संस्कार के कृत्यों की संख्या की न्यूनता का अनुमान नहीं कर लेना चाहिए, क्योंकि गृह्यसूत्रों के समय में ही वैवाहिक कृत्यों की संख्या ३० के लगभग हो चुकी थी।[4] उक्त परिभाषा में प्राधान्य की दृष्टि से तथा उपलक्षण रूप में इन चार कृत्यों की गणना की गई है। वस्तुतः विवाह शब्द इसके संस्कारपक्ष के समस्त कृत्यों का संयुक्त अभिधान था, जैसा कि पीछे उद्धृत कात्यायनस्मृति के वचन से भी स्पष्ट हो जाता है।[5] इस तरह हम देखते हैं कि प्राचीन साहित्य में विवाह शब्द का प्रयोग प्रसङ्गानुसार (१) विवाह-संस्कार के कृत्य-विशेष, (२) वाग्दान से चतुर्थीकर्म पर्यन्त समस्त वैवाहिक कृत्यों के समन्वित रूप या सम्पूर्ण विवाह-संस्कार तथा (३) विवाहोपरान्त दम्पती के जीवन-व्यापी

---

१. उपाद्यमः स्वकरणे। अष्टाध्यायी १।३।५६।

२. हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग २, खण्ड १, पृ० १९३।

३. कन्यादानं शचीयागो विवाहोऽथ चतुर्थिका।
विवाहमेतत् कथितं राम कर्मचतुष्टयम्॥
—विष्णुधर्मो० २।८७।९-१०; अग्नि १५४।४-५।

४. द्र०—हिन्दूसंस्कार, पृ० २५९-२६०। ५. द्र०—पीछे, पृ० १०८, टि० ३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साहचर्य अथवा दाम्पत्य के अर्थ में भी प्राप्त होता है। विवाह शब्द मूलतः वैवाहिक कृत्य विशेष का बोधक होने पर भी इसमें समग्र विवाह-संस्कार एवं दाम्पत्य जीवन के व्यापक अर्थ के सन्निवेश का कारण यह था कि अति प्राचीन काल से ही विवाह के संस्कार-पक्ष को प्रमुखता स्वीकृत हो चुकी थी, जिसका उद्देश्य दम्पती की हृदय-ग्रन्थियों को एकीकृत करके उन्हें अच्छे जीवन-साथी बनाते हुए उनके लोक-लोकान्तर व्यापी साहचर्य को दृढ़ करना तथा उन्हें सहधर्माचरण की शिक्षा देना था। स्त्री-पुरुषों के यौन-सम्बन्धों की वैधता प्राचीन भारत में राज्य—प्रशासन या विधि की स्वीकृति पर नहीं, अपितु विवाह-संस्कार पर निर्भर करती थी।

विवाह शब्द की तथाकथित आधुनिक पाश्चात्य परिभाषाएँ वैवाहिक जीवन को दृष्टि में रखती हैं। उनमें इसके संस्कार पक्ष का कोई संकेत नहीं है। यथा—वेस्टरमार्क के अनुसार विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ आचार एवं विधि द्वारा स्वीकृत सम्बन्ध है, जिसमें संयुक्त दोनों पक्षों पति और पत्नी के एक दूसरे के प्रति तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तानों के प्रति कुछ अधिकार तथा कर्तव्य होते हैं।[1] उसके अनुसार विवाह में पति-पत्नी को परस्पर मैथुन का अधिकार सदैव मिलता है।[2] किन्तु नियमित मैथुन सम्बन्ध के अतिरिक्त भी कुछ बातें विवाह की सीमा के अन्तर्गत आती हैं।[3] यथा विवाह केवल सामाजिक संस्था ही नहीं, आर्थिक संस्था भी है, जो पति-पत्नी के साम्पत्तिक अधिकारों को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है।[4] इसमें पति का कर्तव्य होता है कि वह अपनी पत्नी तथा बच्चों का भरण-पोषण करे और उनका भी यह कर्तव्य है कि वे उसके निमित्त कार्य करें।[5] इसी प्रकार विलिस्टाइन गुडसेल के अनुसार 'विवाह' शब्द का तात्पर्य स्त्री-पुरुष के उस सम्बन्ध से है, जो मैथुन के साथ ही समाप्त नहीं होता, अपितु उसके पश्चात् भी तब तक रहता है जब तक कि उनके सम्बन्ध से उत्पन्न शिशु स्वयं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने योग्य नहीं हो जाते।[6] वेस्टरमार्क प्रभृति विद्वानों की विवाह की परिभाषाएँ मुख्यतः यौन-सम्बन्धों की वैधता एवं पति-पत्नी के कर्तव्यों के निर्देश तक सीमित हैं, इनमें विवाह-संस्कार एवं तज्जनित सम्बन्ध तथा दम्पती के सहधर्माचरण या पारस्परिक कर्तव्यों की ओर कोई संकेत नहीं किया गया है। सम्भवतः पाश्चात्य

---

१. फ्यूचर आफ मैरेज इन वेस्टर्न सिविलाइजेशन, पृ० ३; हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज, भाग १, पृ० २६।

२. फ्यूचर आफ मैरेज इन वेस्टर्न सिविलाइजेशन, पृ० ३।

३. हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज, भाग १, पृ० २६।

४. वही, पृ० २६। ५. वही, पृ० २६।

६. गुडसेल, विलिस्टाइन : ए हिस्ट्री आफ द फेमिली एँज ए सोसल एण्ड एजूकेशनल इन्स्टीट्यूशन पृ० ६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जगत् के आधुनिक विवाहों में भारतीय विवाह की अपेक्षा संस्कार-पक्ष की न्यूनता इसका हेतु रही है। वस्तुतः पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई ये परिभाषाएँ दाम्पत्य जीवन का बोध कराती हैं। किन्तु भारतीय संस्कृति में 'विवाह' तथा 'दाम्पत्य' दोनों मूलतः पृथक् अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। अतः 'दाम्पत्य' की परिभाषा विवाह की परिभाषा से भिन्न दी गई है।

२—दाम्पत्य का तात्पर्य—

दाम्पत्य शब्द के तात्पर्यावगम हेतु इसके घटक दम्पती शब्द के अर्थ पर भी विचार अपेक्षित है। ऋग्वेद में 'दम'[1] शब्द का प्रयोग गृह के अर्थ में, 'दम्पति'[2] का गृहस्वामी के अर्थ में तथा इसके द्विवचन 'दम्पती'[3] का प्रयोग गृह के स्वामी एवं स्वामिनी (पति एवं पत्नी) दोनों के अर्थ में हुआ है। इस प्रकार वैदिक संहिताओं के काल में दम्पती शब्द घर में पति-पत्नी के समान स्वामित्व का सूचक रहा है; किन्तु कल्पसूत्रों, महाकाव्यों तथा बाद के साहित्य में इसका अर्थ सीमित होकर मात्र पति-पत्नी रह गया था। इसीलिए काशिका (अष्टाध्यायी सूत्र २।२।३१) में 'दम्पती' शब्द को जाया और पति के द्वन्द्व के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अमरकोश (२।६।३८) में इसे जम्पती, जाया-पती या भार्यापती के पर्याय रूप में गिनाया गया है। पाणिनि व्याकरण के अनुसार 'दम्पती' शब्द में तद्धित प्रत्यय 'ष्यञ्'[4] या 'यक्'[5] के योग से दाम्पत्य शब्द निष्पन्न होता है और यह दम्पती के कर्म या भाव का बोध कराता है। वस्तुतः दाम्पत्य शब्द दम्पती के जीवनव्यापी साहचर्य सम्बन्ध को ख्यापित करता है। यह उनकी परस्पर सापेक्ष स्थिति का बोधक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है विवाह शब्द अपने आप में कई अर्थ समेटे हुए है, जिनमें से वैवाहिक जीवन भी एक है, किन्तु दाम्पत्य शब्द केवल वैवाहिक जीवन और विशेषतः पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध का ही द्योतक है। विवाह एवं दाम्पत्य का अन्तर नारदपुराण में दी गई दाम्पत्य की परिभाषा से भी स्पष्ट हो जाता है। इसके अनुसार कुश, ब्राह्मण, जल, अग्नि, वेद, भूमि, काल, दिशाओं और देवताओं के साक्षित्व में निष्पन्न विवाह वाले वर-वधू के वैवाहिक जीवन को दाम्पत्य संज्ञा से अभिहित किया जाता है।[6] इस तरह पुराणकार के अनुसार जिस

१. ऋ० १।१।८; १।६१।९; १।७५।५; १।१४३।४; २।१।२; वाज०सं० ८।२४।
२. ऋ० १।१२७।८; २।३९।२; ५।२२।४; ८।६९।१६; ८।८४।७।
३. ऋ० २।३९।२; ५।३।२; ८।३१।५; १०।१०।५; १०।६८।२; १०।८५।३२; १०।९५।१२; वाज० सं० ८।५; अथर्व० ६।१२३।३; १२।३।७, १४; १४।२।९,११। ४. गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। अष्टाध्यायी ५।१।१२४।
५. पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्। वही, ५।१।१२८।
६. कुशा द्विजा जलं वह्निर्वेदा भूकालदिक्सुराः।
साक्ष्ये यत्र विवाहेषु दाम्पत्यं तदुदीरितम्॥ नारद उ० २८।६१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह में इतने साक्षी रहे हों उसी को दाम्पत्य संज्ञा दी जायेगी। इससे स्पष्ट है कि पुराणकार की दृष्टि में विवाह-संस्कार ही दाम्पत्य का निष्पादक है। वस्तुतः भारतवर्ष में आरम्भिक काल से ही विवाह-संस्कार को दाम्पत्य का घटक या निष्पादक माना गया है। विवाह-संस्कार एवं दाम्पत्य में पौर्वापर्य तथा कारण-कार्य भाव का सम्बन्ध है। विवाह शब्द के अर्थ की सीमा व्यापक होने पर भी दाम्पत्य शब्द जिस विशेष अर्थ—दम्पती के भाव या कर्म को प्रकट करता है, उस अर्थ में विवाह शब्द के रूढ न होने से दोनों को एक दूसरे का पर्याय नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः विवाह दाम्पत्य का घटक मात्र ही है। अतः दम्पती के वैवाहिक जीवन के लिए दाम्पत्य संज्ञा का प्रयोग ही युक्तिसंगत एवं समुचित है।

३—दाम्पत्य परिनिष्ठा हेतु विवाह-संस्कार की आवश्यकता—

किसी पुरुष और कन्या के बीच मात्र यौन-सम्बन्ध उन्हें दम्पती का स्तर नहीं प्रदान करता, अपितु इसके लिए उनका विवाह आवश्यक है। किसी कन्या (या नारी) और पुरुष के कामेच्छापूर्ण संयोग को प्राचीन भारत में विवाह नहीं माना जाता था।[१] इसी तरह किसी कन्या का बलात् अथवा छल से अपहरण करके उसके साथ यौन-सम्बन्ध कर लेने पर भी उसे विवाह संज्ञा नहीं दी जा सकती थी। बौधायन एवं वसिष्ठ ने अपने धर्मसूत्रों में यह व्यवस्था दी है कि बलात् अपहृत की गई कन्या का यदि वैवाहिक मन्त्रों से संस्कार न किया गया हो तो उसका विवाह किसी अन्य वर के साथ किया जा सकता है, क्योंकि मन्त्रों से संस्कृत न होने की स्थिति में उसे क्षतयोनि हो चुकने पर भी कन्या ही माना जायेगा।[२] इसका स्पष्ट आशय यह है कि राक्षस, पैशाच आदि विधियों से किये गये विवाहों को वैध बनाने के लिए भी विवाह-संस्कार आवश्यक था। इसी तरह जैसा कि मेधातिथि ने कहा है, कोई पुरुष यदि किसी नष्ट या अपहृत कन्या को पाकर उस पर अपना स्वामित्व स्थापित कर ले, तो भी विना विवाह-संस्कार के वह उसकी पत्नी नहीं बन सकती।[३] बौधायन ने कश्यप के वचनों को उद्धृत करते हुए यह स्पष्ट कहा है कि क्रयक्रीता नारी भी दासी ही कही जायेगी न कि पत्नी।[४] इसीलिए महाभारत में स्पष्ट कहा गया है कि भार्या को खरीदना या

---

१. द्र०—न चेच्छासंयोगमात्रं विवाहः। मेधा० (मनु० ८।३६६)।

२. बलाच्चेत् प्रहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता।
अन्यस्मै विधिवद् देया यथा कन्या तथैव सा॥
बौ० ध० सू० ४।१।१।१७; वसिष्ठ ध० सू० १७.७३; बौ० स्मृति० ४।१।१६।

३. सत्यपि स्वाम्ये नैवान्तरेण विवाहं भार्या भवति। मेधा० (मनु ५।१५२)।

४. क्रीता द्रव्येण या नारी सा न पत्नी विधीयते।
सा न दैवे न सा पित्र्ये दासीं तां कश्यपोऽब्रवीत्॥ बौ०ध०सू० १।११।२०।४।

तु०—क्रयक्रीता तु सा दासी न सा पत्नी विधीयते। काश्यपस्मृति, श्लोक १४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बेचना नहीं चाहिए।[१] पतञ्जलि ने स्वीकार किया है कि विवाह-संस्कार के बिना किसी पुरुष से यौन-सम्बन्ध कर लेने पर भी कन्या की वही संज्ञा रहती है।[२] कैयट ने भी यह कहा है कि शास्त्रोक्त विवाह-संस्कार के बिना किसी पुरुष के साथ यौन-सम्बन्ध कर लेने पर भी कन्या का कन्यात्व बना ही रहता है।[३] इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि विवाह-पूर्व के यौन-सम्बन्ध से कन्या अदूषित रहती है, वह दूषित तो होती ही है,[४] किन्तु विवाह-संस्कार के बिना पत्नी का स्तर न पा सकने के कारण वह कन्या कहलाती है। इसीलिए देवल प्रभृति आचार्यों ने गान्धर्वादि पैशाच पर्यन्त सभी विवाह भेदों में यौन-सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर भी तीनों द्विजाति वर्णों के लिए विवाह संस्कार—विशेषतः अग्नि-साक्षित्व को अनिवार्य बना दिया था, ताकि ऐसे यौन-सम्बन्ध को वैध विवाह की संज्ञा दी जा सके।[५] इस नियम का समाज में पालन भी होता था। उदाहरणार्थ—भीष्म द्वारा विचित्रवीर्य के लिए राक्षस विधि से अपहरण करके लाई गई अम्बिका एवं अम्बालिका का उसके साथ विधिपूर्वक विवाह हुआ था (आदिपर्व १०२।११-६५)। विष्णुपुराण (५।३१।१७) के अनुसार कृष्ण ने नरकासुर वध के पश्चात् मुक्त करके लाई गई १६ हजार कन्याओं में से प्रत्येक के साथ विधिवत् विवाह किया था। द्रौपदी के स्वयम्वर के प्रकरण से भी यह स्पष्ट होता है कि स्वयंवर के पश्चात् विवाह संस्कार अनिवार्यतः किया जाता था।[६] द्रौपदी के साथ पाँच पाण्डवों के विवाह संस्कार में होम, अग्नि-प्रदक्षिणा एवं पाणि-ग्रहण जैसे कृत्यों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है (आदिपर्व १९७।१-३)। कालिदास ने इन्दुमती के स्वयम्वर के बाद अज के साथ उसके विवाह में मधुपर्क, होम, अग्नि-प्रदक्षिणा एवं पाणिग्रहण जैसे प्रमुख

---

१. न ह्येव भार्या क्रेतव्या न विक्रेय्या कथञ्चन। अनु० पर्व ४४।४६।

२. या चेदानीं प्रागभिसम्बन्धात् पुंसा सह सम्प्रयोगं गच्छति तस्यां कन्याशब्दो वर्तत एव। महाभाष्य (अष्टाध्यायी ४।१।११६)।

३. या तु शास्त्रोक्तेन विवाहसंस्कारेण विना पुरुषं युनक्ति सा कन्यात्वं न जहाति। कैयट कृत महाभाष्यप्रदीप (अष्टाध्यायी, ४।१।११६ पर)।

४. द्र०—आदिपर्व ६३।७६; शान्तिपर्व १६५।४२-३।

५. (क)—गान्धर्वादि विवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः।
कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिकः॥
देवल (वीरमित्रोदय, २, पृ० ८८६; उद्वाहतत्त्व, पृ० २५)।

(ख)—गान्धर्वासुरपैशाचविवाहा राक्षसश्च यः।
पूर्वं परिणयस्तेषां पश्चाद्धोमो विधीयते॥ परिणयः स्वीकारः।
(स्मृतिचन्द्रिका १, पृ० ८७ में गृह्यपरिशिष्ट से उद्धृत)।

६. ध्रुवं विवाहकरणमास्यास्यामि विधानतः। आदिपर्व १९४।७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कृत्यों के सम्पादन का वर्णन किया है (रघु० ७।१८-२८)। नारद ने पाणिग्रहण मन्त्रों से संस्कृता कन्या के साथ विवाह को ही परिनिष्ठित माना है।[1] सुदूर अतीत से ही यह मान्यता चली आ रही थी कि यदि कन्या का समन्त्रक विवाह न हुआ हो तो वाग्दान जैसे पूर्वकृत्यों के हो चुकने पर भी वह कन्या ही बनी रहेगी। स्कन्दपुराण (६।८२।१५-६) में स्पष्ट कहा गया है कि कन्या की याचना चाहे सहस्र व्यक्ति करें, किन्तु उसके साथ विवाह तो केवल एक ही व्यक्ति करता है। अतः उसे माँगने (वरण) या देने (वाग्दान) की बात मात्र से वह किसी की पत्नी तब तक नहीं बन सकती जब तक कि अग्नि, द्विजातियों तथा गुरुजनों के समक्ष पिता या अन्य बान्धव जनों के द्वारा गृह्यसूत्रोक्त विधि से संकल्पपूर्वक उसका दान स्वयं नहीं किया जाता। वसिष्ठ ने कहा है कि जलोत्सर्गपूर्वक वाग्दान हो जाने पर भी यदि वैवाहिक मन्त्रों से कन्या का संस्कार नहीं किया गया हो तो वरण किये गये वर की मृत्यु हो जाने पर भी वह कुमारी ही कहलायेगी।[2] विष्णुधर्मोत्तरपुराण में यह विधि दी गई है कि वाग्दत्ता कन्या का यदि समन्त्रक संस्कार न किया गया हो तो वरण किये गये पति के दोषी होने पर उस कन्या का विधिवत् विवाह अन्य पुरुष के साथ किया जा सकता है।[3] वसिष्ठ ने तो यहाँ तक कहा है कि वैवाहिक मन्त्रों से संस्कृता कन्या यदि अक्षता हो और उसके पति की मृत्यु हो जाय तो उसका पुनः विवाह संस्कार हो सकता है।[4] मनु ने भी यह विधान किया है कि संस्कृता किन्तु अक्षता नारी यदि विधवा हो जाय या पति द्वारा त्याग दी जाय तो उसका पुनः विवाह संस्कार हो सकता है (मनुस्मृति ९।१७६)। किन्तु इस मत का अन्य परवर्ती आचार्यों ने यह कह कर प्रतिषेध किया था कि एक बार विवाह-संस्कार में सप्तपदी से विवाह के परिनिष्ठित हो जाने पर कन्या पुनः अन्य वर के साथ विवाह योग्य नहीं रह जाती।[5] तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि वसिष्ठ और मनु जैसे आचार्यों ने विवाह की उपयोगिता और महत्त्व को ध्यान में रखते हुए अपनी विधियों में थोड़ी शिथिलता करके अक्षता के लिए इसका

---

१. तयोरनियतं प्रोक्तं वरणं दोषदर्शनात्।
पाणिग्रहणमन्त्राभ्यां नियतं दारलक्षणम् ॥ नारदस्मृति (स्त्रीपुंस०) १२।३।

२. अद्भिर्वाचा च दत्तायां म्रियेतोर्ध्वं वरो यदि।
न च मन्त्रोपनीता स्यात् कुमारी पितुरेव सा ॥ वसिष्ठ ध० सू० १७।७२।

३. वाचा दत्ता तु या कन्या मन्त्रैश्चैव न संस्कृता।
अन्यस्मै सा भवेद् देया सति भर्तरि दोषिणि ॥ विष्णुधर्मो० ३।३२९।१३।

४. पाणिग्राहे मृते बाला केवलं मन्त्रसंस्कृता।
सा चेदक्षतयोनिः स्यात् पुनः संस्कारमर्हतीति ॥ वसिष्ठ ध० सू० १७।७४।

५. विष्णुधर्मो० ३।३२९।११-२; द्र०—इसी अध्याय में आगे 'सप्तपदी'।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विधान किया होगा। प्राचीन समाज में कन्या और वर के द्वारा स्वेच्छया स्थापित यौन-सम्बन्ध के पश्चात् भी उनके अभिभावक लोकव्यवहारानुरूप वैवाहिक कृत्यों को सम्पादित करवाते थे। बाणभट्ट की कादम्बरी में चित्ररथ नामक गन्धर्व (कादम्बरी के पिता) ने चन्द्रापीड के पिता तारापीड से कहा है कि यद्यपि हम लोग परस्पर अभिरुचि से सम्पन्न गान्धर्व विवाह को ही धर्म्य मानते हैं, तथापि हमें लोक-व्यवहार का अनुवर्तन करते हुए चन्द्रापीड और कादम्बरी के वैवाहिक कृत्यों का सम्पादन करना चाहिए।[१] भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् नाटक (अंक ४) के अनुसार वत्सराज उदयन द्वारा वासवदत्ता के हरण के पश्चात् उज्जयिनी के सम्राट् महासेन प्रद्योत ने उन दोनों के चित्रफलक को मँगाकर उनके चित्रों का ही विवाह करवाया था। उधर कथासरित्सागर के अनुसार राजा विक्रमादित्य की रानी कलिङ्गसेना को यह दुःख था कि उसका विवाह विधिपूर्वक नहीं हुआ।[२] शिवपुराण (२।३।२६।१२-३, १५) के अनुसार पार्वती ने शिव से कहा था कि मेरे पूर्वजन्म में आपने मुझसे यथाविधि विवाह नहीं किया था तथा मेरे पिता दक्ष ने भी ग्रहों का पूजन नहीं किया था, अतः इस बार यथाविधि विवाह करें। इस सबका यही तात्पर्य है कि विवाह को वैध तथा दाम्पत्य जीवन को सुखी और स्थिर बनाने के लिए विवाह संस्कार परम आवश्यक माना जाता था।

४—विवाह-संस्कार और इसका उद्देश्य : दाम्पत्य की परिनिष्ठा—

भारतीय संस्कृति में संस्कारों का प्रवर्तन वैज्ञानिक आधार पर इनके दृष्ट तथा अदृष्ट उपयोग एवं विशिष्ट उद्देश्य को दृष्टि में रखकर किया गया है। अतः संस्कार का सम्पादन एक रूढि या अन्ध-परम्परा का निर्वाह मात्र नहीं है। महाकवि वाल्मीकि संस्कार को शोधक रूप में [गुणाधायक] मानते हैं,[३] तो पाणिनि[४] और कालिदास[५] भी परोक्षतः इसे गुण या योग्यता का वर्धक मानते हैं। जैमिनिसूत्र ३।१।३ के भाष्य में शबरस्वामी ने संस्कार को स्पष्टतः योग्यताधायक बतलाया है।[६] कुमारिल[७] तथा

१. अपि च यद्यप्यस्माकमयमेव परस्पराभिरुचिसम्पन्नो धर्म्यो विवाहस्तथापि लोकसंव्यवहारोऽनुवर्तनीय एव। कादम्बरी, उ० भा०, पृ० २६१-२।

२. परिणीतास्म्यविधिना कथं राज्ञेति दुःखिताम्। कथा० १८।४।५।

३. पुनः संस्कारमापन्नां जातामिव च दुष्कुले। रामा० ५।१६।१०।

४. संपरिभ्यां करोतौ भूषणे। अष्टाध्यायी ६।१।१३७।

५. प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ। रघु० ३।१८।

६. संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य। शबर (जैमिनिसूत्र ३।१।३)।

७. (क) योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्ते। तन्त्रवार्तिक, पृ० १०७८।
(ख) योग्यता च सर्वत्र द्विप्रकारा दोषापनयनेन गुणान्तरोपजननेन च भवति। तन्त्रवार्तिक, पृ० ११५ (जैमिनिसूत्र ३।८।६)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शंकराचार्य[1] ने भी संस्कार को दोषापनयन और गुणाधान करने वाला माना है। खादिरगृह्यसूत्र के टीकाकार रुद्रस्कन्द के अनुसार संस्कार शरीर को संस्कृत करते हुए अदृष्ट योग्यता के जनक होते हैं।[2] विवाह-संस्कार के विविध कृत्य दृष्ट और अदृष्ट दोनों उद्देश्यों से किए जाते थे। इनमें से कुछ कृत्य वाग्दान से चतुर्थी कर्म पर्यन्त विवाह-संस्कार में तथा तत्पश्चात् वर-वधू के जीवन में आने वाले विघ्नों तथा अमंगलकारी तत्त्वों के निवारण रूप में दोषापनयन और अन्य कृत्य उनकी एकमन-प्राणता तथा उनके दाम्पत्य की अविच्छेद्यता के रूप में गुणाधान भी करते हैं। कुछ कृत्यों का उद्देश्य विवाह-संस्कार तथा वैवाहिक जीवन को सफल बनाने वाले देवों को प्रसन्न करना था तो अन्य कृत्य जनमत से वर-वधू के सम्बन्ध के अनुमोदन हेतु किए जाते थे। कुछ कृत्य प्रतीकात्मक थे, यथा-रक्तवर्ण के वृषभ-चर्म पर वधू को उसकी प्रजनन शक्ति की वृद्धि के निमित्त बैठाया जाता था। अश्मारोहण दाम्पत्य जीवन में स्थिरता के हेतु किया जाता था। पाणिग्रहण और हृदय-स्पर्श प्रभृति कृत्य दाम्पत्य जीवन की अविच्छेद्यता तथा सौमनस्य और सौहार्द हेतु किए जाते थे।[3] विवाह को परिनिष्ठित करके सुदृढ दाम्पत्य सम्बन्ध को घटित करने वाले विविध कृत्यों में से कुछ तो कन्यादाता द्वारा प्रदत्त कन्या को स्वीकार करके उसमें वर का स्वामित्व स्थापन हेतु किए जाते थे, कुछ का उद्देश्य था उस कन्या में भार्यात्व-संपादन। अन्य कुछ कृत्यों का उद्देश्य था कन्या और वर के विवाह-सम्बन्ध को परिनिष्ठित करते हुए उनके दाम्पत्य का स्थिरीकरण, कुछ कृत्यों का उद्देश्य दम्पती की हृदय-ग्रन्थियों का एकीकरण एवं उनमें सौमनस्य-संपादन, कुछ का उद्देश्य उनके जीवन-व्यापी साहचर्य एवं लोक-लोकान्तर व्यापी सम्बन्ध की रचना तथा कुछ का उद्देश्य उन्हें दाम्पत्य के आदर्शों के पालन एवं एक दूसरे के प्रति कर्तव्य-निर्वाह की शिक्षा देना था। इसके अतिरिक्त वर-वधू के सफल दाम्पत्य, दीर्घायुष्य तथा धन-सन्तान आदि की प्राप्ति के लिए आशीर्वचनों का प्रयोग भी इन कृत्यों में होता था। कुछ कृत्य वर-वधू के जीवन में सुख-शान्ति के लिए किये जाते थे, तो कुछ ऐसे भी कृत्य थे जिनसे दम्पती के भावी अमंगल की शान्ति की जा सकती थी, यथा-कुम्भ-विवाह या अश्वत्थविवाह। लोकसंग्रह की दृष्टि से भी विवाह-संस्कार की अद्भुत उपादेयता थी। इसके प्रभाव से समाज को कामुकता तथा नैतिक शिथिलता के स्तर से उठा कर एक सभ्य, सुसंस्कृत परिवेश में स्थापित किया जाता था। विवाह संस्कार के विभिन्न कृत्यों का संपादन जन-समक्ष होने से वर-वधू का सम्बन्ध

---

१. संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वा स्याद् दोषापनयनेन वा। शांकरभाष्य (ब्रह्मसूत्र १।१।४)।

२. एते गर्भाधानादयः संस्काराः शरीरं संस्कुर्वन्तः सर्वेषु अदृष्टार्थेषु कर्मसु योग्यतातिशयं कुर्वन्ति। रुद्रस्कन्द (खादिर गृ० सू० २।३।३३)।

३. द्र०—हिन्दूसंस्कार, पृ० २५५; इवोल्यूशन आफ हिन्दू मैरेज, पृ० ३२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जन प्रख्यात हो जाने के कारण उसकी वैधता तथा स्थायित्व बढ जाता था। जब कि विवाह-संस्कार के विना केवल यौन-सम्बन्ध पर आधारित गान्धर्वादि विवाह वर-वधू द्वारा एकान्त में किये जाने के कारण प्रख्यात नहीं हो पाते थे। उनकी अप्रसिद्धता के कारण वैधता एवं चिरस्थायित्व भी संदिग्ध हो सकता था। एकान्त में किये गये गान्धर्व विवाह के कारण ही शकुन्तला को दुष्यन्त द्वारा निराकृत होकर कई वर्षों तक अभिशप्त जीवन बिताना पड़ा था। स्कन्दपुराण में आत्मदान करने वाली मौर्वी नामक राक्षसी से घटोत्कच ने स्पष्ट कहा है कि जिस युवक के माता-पिता तथा भाई-बान्धव विद्यमान हों उसके द्वारा प्रच्छन्न रूप से किया गया विवाह घटित (वैध) नहीं होता।[1] इस तरह दाम्पत्य-निष्ठा में विवाह-संस्कार का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। विवाह-संस्कार के विभिन्न कृत्यों का वर्णनात्मक अध्ययन कई विद्वान् कर चुके हैं।[2] अतः उन सब के विषय में विस्तृत विवरण न देकर हम यहाँ कुछ ऐसे कृत्यों पर प्रकाश डालेंगे जो वर-वधू के दाम्पत्य जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा उद्देश्यपूर्ण हैं। यथा—

(क) समञ्जन—इसमें वधू का पिता वर-वधू का समञ्जन (मूर्द्धाभिषेक) करता है तथा वर-वधू के द्वारा इस आशय का मन्त्र पढ़ा जाता है कि विश्वेदेव तथा जल हमारे हृदयों को एक सूत्र में बाँध दें और मातरिश्वा, धाता एवं देष्ट्री देवता हमें संयुक्त कर दें।[3] डा० राजबली पाण्डेय के शब्दों में 'समञ्जन स्नेह या प्रेम और परिणाम-स्वरूप भावी दम्पती के सम्बन्ध का प्रतीक है' (हिन्दू संस्कार, पृ० २७१)। वस्तुतः यह कृत्य दम्पती की हृदय-ग्रन्थियों के एकीकरण और उनकी जीवन-डोर को एक में बांधने के उपक्रम की पहली कड़ी है।

(ख) कन्यादान—यह विवाह-संस्कार का आधारभूत एवं प्रमुख कृत्य था। ब्राह्मादि-प्राजापत्य पर्यन्त विवाहों में पिता कन्यादान का पुण्य अर्जित कर सकता था। अतः इन्हें धर्म्य विवाहों में गिनाया गया है। गान्धर्वादि पैशाच पर्यन्त विवाह विधियों में पिता कन्यादानजन्य पुण्य के लाभ से वञ्चित रह जाता था, इसीलिए उन्हें अधर्म्य

---

१. प्रच्छन्नस्तस्य घटते न विवाहः कथञ्चन ॥५०
मौर्वि यस्य हि वर्तन्ते पितरौ बान्धवास्तथा ॥ स्कन्द १।२।६०।५०-५१।

२. द्र०—पाण्डेय, राजबली : हिन्दू संस्कार, पृ० २६३-२८५; काणे : हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग २, खण्ड १, पृ० ५२६-५४१; चटर्जी, चञ्चलकुमार : स्टडीज् इन द राइट्स् एण्ड रिच्युअल्स् आफ हिन्दू मैरेज इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० ४६-३२४; राम गोपाल : इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्राज्, पृ० २०८-२६०; वेद मित्र : हैप्पी मैरीड लाइफ इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० ७८-९५।

३. ऋ० १०।८५।४७; पार० गृ० सू० १।४।१४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह कहा गया है। कुछ अपवादों को छोड़कर प्राचीन समाज में कन्याएं अपने पिता के इस अधिकार का अतिक्रमण नहीं करना चाहती थी। कन्यादान के इस कृत्य में विवाह के उद्देश्य तथा पति के कर्तव्य का भी निर्देश किया जाता था। वैखानस-स्मार्तसूत्र से स्पष्ट होता है कि पिता कन्या को वर की सहधर्मचारिणी बनाने तथा धर्मार्जन, सन्तानोत्पादन, यज्ञ-संपादन और ब्रह्म-देव-ऋषि एवं पितरों की तृप्ति हेतु वर को कन्या प्रदान करने का संकल्प करता है।[1] इसी प्रसंग में वर से यह प्रतिज्ञा भी करवा ली जाती है कि वह धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति उसके साथ मिलकर करेगा, उसे छोड़कर नहीं।[2] यह उल्लेखनीय है कि प्राजापत्य विवाह में वर को आजीवन उसी वधू के साथ धर्माचरण की विशेष प्रतिज्ञा कराई जाती थी,[3] जिसके फलस्वरूप वह न तो गृहस्थाश्रम छोड़कर इतर आश्रम में प्रवेश कर सकता था और न अन्य नारी के साथ विवाह कर सकता था (द्र०—गौतम ध० सू० १।४।५ पर मिता०)। माता-पिता द्वारा जलोत्सर्ग पूर्वक कन्यादान को वर-वधू के लोक-लोकान्तर व्यापी साहचर्य का हेतु मान लिया गया था। रामायण (२।२६।१८) में कहा गया है कि इह लोक में माता-पिता द्वारा जलोत्सर्ग पूर्वक जो कन्या जिस वर को प्रदान की जाती है वह मृत्यु के बाद भी उसी की रहती है। स्कन्दपुराण में भी दम्पती के लोक-लोकान्तर-व्यापी साहचर्य का कारण कन्यादान को ही मानते हुए कहा गया है कि कन्या के विवाह के समय कन्यादाता बन्धु-बान्धव, ब्राह्मण आदि यह आशंसा करें कि वह पति के जीवन पर्यन्त तथा मरणोत्तर जीवन में भी उसकी सहधर्मचारिणी बनी रहे।[4] मनु[5] जैसे स्मृतिकारों तथा मेधातिथि[6] और कुल्लूक[7] जैसे उनके टीकाकारों के अनुसार इस

---

१. कन्याप्रदो वरगोत्रनामशर्मान्तं तथैतामस्य सहधर्मचारिणी भवतीति ब्राह्मे विवाहे धर्मप्रजासंपत्यर्थं ब्रह्मदेवर्षिपितृतृप्त्यर्थं प्रजासहत्वकर्मभ्यो ददामीत्युदकेन तां दद्यात्। वैखानसस्मार्तसूत्र ३।२।

२. (क) एवं दानकाले संवादः क्रियते-धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्येति। जैमिनिसूत्र ६।१।१४ पर शबरभाष्य; द्र०—आपस्तम्ब (मनु ६।१०१ के मेधातिथिभाष्य में उद्धृत)।

(ख) एषा धर्मार्थकामेषु न त्याज्या स्वीकृता ह्यतः। लघ्वाश्व० स्मृति १५।२७

३. संयोगमन्त्रः प्राजापत्ये सहधर्मश्चर्यतामिति। गौ० ध० सू० १।४।५।

४. कन्याविवाहसमये वाचयेयुरिति द्विजाः।
भर्तुः सहचरी भूयाज्जीवतोऽजीवतोऽपि वा॥ स्कन्द ४।४।५२।

५. प्रदानं स्वाम्यकारणम्। मनु ५।१५२।

६. प्रदानादेवासत्यपि विवाहे स्वाम्यमुत्पद्यत इत्येतदप्यत्र ज्ञाप्यते। मेधातिथि।

७. यत्पुनः प्रथमं प्रदानं वाग्दानात्मकं, तदेव भर्तुः स्वाम्यजनकं, ततश्च वाग्दानादारभ्य स्त्री भर्तृपरतन्त्रा। कुल्लूक (मनु ५।१५२)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कृत्य से कन्या पर वर का स्वामित्व स्थापित हो जाता है। यद्यपि विवाह की परिनिष्ठा हेतु इसके आगे के कृत्य पाणिग्रहण एवं सप्तपदी भी आवश्यक थे, किन्तु वर को वधू का स्वामित्व दिलाने में प्रमुख भूमिका इसी कृत्य की मानी जाती थी।[1]

(ग) समीक्षण—वर-वधू द्वारा एक दूसरे के मुख-निरीक्षण के समय वर यह आशंसा करता है कि वधू के नेत्र सौम्य हों, वह पति के लिए घातक न हो, पशुओं के लिए भी कल्याणमयी बने, अच्छे मन वाली तथा कान्तिमती बने। वह वीर पुत्रों की जननी, देवरों के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार वाली तथा सुन्दर बने। वह पति के परिवार के सभी मनुष्यों एवं पशुओं के लिए कल्याणकारक बने।[2] इस मन्त्र में वधू के कर्तव्यों के निर्देश के साथ ही परिवार के लिए उसके सर्वथा मंगलमयी होने की आशंसा की गई है। इस कृत्य का उद्देश्य भी वर-वधू में पारस्परिक अनुराग के उद्रेक के साथ ही वधू के हृदय में कर्तव्यनिष्ठता की भावना का संचार करना तथा परिवार के प्रति उसके मंगलमयी होने की कामना करना था।

(घ) निष्क्रमण—इसका तात्पर्य है कन्यादान के स्थल से बाहर निकलना। इस अवसर पर वर 'यदेषि मनसा दूरं ...।' इत्यादि मन्त्र पढ़ता है।[3] इसका उद्देश्य माता-पिता को छोड़कर वर के साथ जाते समय प्रथम बार जागृत अलगाव बोध से अथवा भावी जीवन के विषय में नाना संकल्प-विकल्पों से व्याकुल तथा विचलित वधू के मन को वर के द्वारा अपनी ओर आकृष्ट करके उज्ज्वल दाम्पत्य जीवन के प्रति उसे आश्वस्त करना है।

(ङ) होम—इसका उद्देश्य वर के पिता से कन्यादान में ग्रहण की गयी कन्या को पत्नी का स्तर प्रदान करना है, जैसा कि इसमें प्रयुक्त संकल्प से भी सूचित होता है।[4] महाभारत में भी यह बतलाया गया है कि स्त्री विवाह में अग्नि के समीप ही पति की

---

१. द्र०—पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे।
पाणिग्राहस्य भार्या स्याद् यस्य चाद्भिः प्रदीयते॥
अनु० पर्व ४४।४५।

२. अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥ ऋ० १०।८५।४४।

३. यदेषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा।
हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां कृणोतु॥
पार० गृ० सू० १।४।१५।

४. परिगृहीतायामस्यां वध्वां भार्यात्वसिद्धये विवाहहोममहं करिष्ये। सुबोधिनी-पद्धति, पृ० १८५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सहधर्मचारिणी बनती है।[१] वैवाहिक होम में वर के द्वारा विभिन्न देवताओं की सन्तुष्टि हेतु क्रमशः राष्ट्रभृत्, जय तथा अभ्यातान संज्ञक होम किये जाते हैं। इनमें से राष्ट्रभृत् में बारह, जयहोम में तेरह तथा अभ्यातान संज्ञक होम में अठारह आहुतियाँ दी जाती हैं। इन तीनों होमों का उद्देश्य विभिन्न देवों एवं पितरों से वर की रक्षा हेतु प्रार्थना करना है। डा० राजबली पाण्डेय के अनुसार भी इनका उद्देश्य ज्ञात या अज्ञात अनिष्टकारी शक्तियों से वर की रक्षा करना एवं इन पर उसे विजय दिलाना था (हिन्दूसंस्कार, पृ० २७६)। इसके पश्चात् नववधू के सुखी जीवन एवं उसके भावी सन्तानों के दीर्घायुष्य के लिए छान्दोग्य ब्राह्मण (१।१।१०-१५) में कथित छः मन्त्रों से आज्य होम का विधान खादिर तथा गोभिल आदि गृह्यसूत्रों में प्राप्त होता है।[२] इतर गृह्यसूत्रों में यह संख्या पांच मन्त्रों की है।[३] छान्दोग्य ब्राह्मण में प्रदत्त ये मन्त्र अपने आशय की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। संभवतः प्राचीनकाल में नवजात शिशुओं की मृत्यु अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण ही विवाह-संस्कार में नववधू की भावी सन्तानों की अपमृत्यु से रक्षा एवं उनके दीर्घायुष्य हेतु प्रार्थना की जाती थी। इसके पश्चात् वधू द्वारा लाजाहोम किया जाता है। ऋग्वेद १०।८५।३९ में पति के दीर्घायुष्य तथा शत-जीवी होने की कामना वाला जो मन्त्र (दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम्) है, वह संभवतः उस काल में भी लाजाहोम में प्रयुक्त होता था। अथर्ववेद के लाजाहोम के मन्त्र में कन्या द्वारा पति के दीर्घायुष्य की कामना की जाती है।[४] कहीं कहीं इस आशय के मन्त्र के अन्त में ज्ञातियों की समृद्धि की कामना के वचन (एधन्तां ज्ञातयो मम) भी जोड़ दिये गये हैं।[५] इस कृत्य की एक विशेषता यह मानी गयी है कि इसके द्वारा कन्या को पितृकुल से पृथक् करके पतिकुल से सम्बद्ध किया जाता है।[६] इसके अतिरिक्त स्वयं कन्या भी लाजाहोम को पति के लिए समृद्धिकारक बतलाती है,[७] जिसके आधार पर इसे उर्वरता तथा समृद्धि का प्रतीक माना गया है।[८]

---

१. स्त्रीधर्मः पूर्व एवायं विवाहे बन्धुभिः कृतः।
सहधर्मचरी भर्तुर्भवत्यग्निसमीपतः॥ अनु० पर्व १४६।३४।

२. खादिर गृ० सू० १।३।११; गोभिल गृ० सू० २।१।२४; द्र०-अग्निवेश्य गृ० सू० १।५।२।३। ३. द्र०-पार० गृ० सू० १।५।११-२।

४. इयं नार्युपब्रूते पूल्यानावपन्तिका।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम्॥ अथर्व० १४।२।६३।

५. छान्दोग्यब्राह्मण १।२।२; पार० गृ० सू० १।६।२।

६. अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत।
स इमां देवो अर्यमा प्रेतो मुञ्चातु माऽमुतः स्वाहा॥ छान्दोग्यब्राह्मण १।२।३

७. इमाँल्लाजानावपामग्न्यौ समृद्धिकरणं तव। पार० गृ० सू० १।६।२।

८. हिन्दूसंस्कार, पृ० २७६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(च) अग्निसाक्षित्व—यद्यपि गृह्यसूत्रों, स्मृतियों, निबन्ध-ग्रन्थों अथवा पद्धतियों में अग्नि-साक्षित्व का उल्लेख एक स्वतन्त्र कृत्य के रूप में नहीं है, किन्तु वैदिक काल से ही वैवाहिक अग्नि की स्थापना करके उसके समक्ष ही समस्त वैवाहिक कृत्यों का सम्पादन होता था। अतः यह कल्पना की जा सकती है कि संभवतः तभी से वैवाहिक अग्नि को साक्षी माना जाता रहा होगा। अथर्ववेद (१४।१।४९) में अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह वधू को सुभगा (सौभाग्यवती) तथा वृद्धावस्था पर्यन्त पति का साथ निभाने वाली बनावे। संभवतः ऐसे वचन उस काल में अग्नि को साक्षी मानकर विवाह को अटल एवं अविच्छेद्य बनाने के लिए ही कहे जाते थे। यद्यपि नारदपुराण (द्र० पीछे, पृ० ११२, टि० ६) में अग्नि को विवाह के साक्षियों में से एक कहा गया है, किन्तु अति प्राचीन काल से ही अग्नि को विवाह का एकमात्र साक्षी माना जाता था। कुमार-सम्भवम् (७।८३) में शिव के साथ विवाह के समय नववधू पार्वती से पुरोहित ने कहा है कि यह अग्नि तुम्हारे विवाह-कर्म का साक्षी है। रघुवंश (७।२०) में अज-इन्दुमती के विवाह में आज्यादि होम करके पुरोहित ने उसी अग्नि को उनके विवाह का साक्षी बतलाया है। दण्डी ने प्रेम विवाह के एक प्रसंग में अनुराग रूपी अग्नि को ही विवाह का साक्षी बतलाया है।[1] कामसूत्र में वात्स्यायन ने प्राचीन आचार्यों की यह मान्यता एक प्रमाण रूप में उद्धृत की है कि अग्निसाक्षित्व में सम्पन्न विवाह अटूट होते हैं।[2] इस प्रकार अग्निसाक्षित्व को दम्पती के कर्तव्यबोध को सतत जागृत रखने तथा दाम्पत्य-सम्बन्ध को अविच्छेद्य बनाने में सहायक माना जा सकता है।

(छ) अग्नि-प्रदक्षिणा—इस कृत्य में प्रयुक्त मन्त्रों से इसका उद्देश्य स्पष्ट नहीं हो पाता। स्कन्दपुराण में नारी-निन्दक जाबाल मुनि से नारी का महत्त्व बतलाते हुए उसकी कन्या ने कहा है कि नारी अपने पति के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की साधक होती है—इस तथ्य की सूचना अग्नि-प्रदक्षिणा के बहाने विवाह-संस्कार में ही वह दे देती है।[3] कथासरित्सागर (१४।२।८४-५) में विद्याधरी प्रभावती के द्वारा नरवाहनदत्त का हाथ पकड़ कर वन में जलती हुई अग्नि की प्रदक्षिणामात्र से ही उनके विवाह को परिनिष्ठित मान लिया गया है। अग्निप्रदक्षिणा का सामान्य उद्देश्य वर-वधू के द्वारा विनीत भाव से अग्नि के प्रति श्रद्धा तथा सम्मान का प्रदर्शन तो है ही, साथ ही इससे उनके पूर्वसञ्चित पापों अथवा दोषों का प्रशमन और दाम्पत्य जीवन में सुख-समृद्धि

---

१. दत्ता चेयं चित्तजेन गरीयसा साक्षीकृत्य रागानलम्। दश० कु०, उ० पी०, उ० ७, पृ० २२०।

२. अग्निसाक्षिका हि विवाहा न निवर्तन्ते इत्याचार्यसमयः। कामसूत्र ३।५।१४।

३. धर्मार्थकाममोक्षान् स्त्री चतुरोऽपि चतसृभिः।
वह्निप्रदक्षिणाभिस्तान् विवाहेऽपि प्रदर्शयेत्॥ स्कन्द ६।१४४।१३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की भी आशा की जा सकती थी। यह कृत्य दम्पती की सामञ्जस्यपूर्ण जीवन-यात्रा का प्रतीक भी माना जा सकता है। पत्नी के मन में विवाह-सम्बन्ध के प्रति आस्था, पति के प्रति श्रद्धा तथा प्रेम को उद्दीप्त करना और परिणामतः दाम्पत्य-सम्बन्ध में प्रगाढ़ता लाना भी इसका उद्देश्य माना जा सकता है।

(ज) पाणिग्रहण—ऐसा प्रतीत होता है कि दो व्यक्तियों के मध्य किसी संविद, 'समय' (करार), समझौते या प्रतिज्ञा के पालन अथवा मैत्री या साहचर्य के निर्वाह सम्बन्धी आश्वासन को पुष्ट करने के ध्येय से एक दूसरे के साथ हाथ मिलाने या एक दूसरे के हाथ में हाथ रखने की भावना से ही वर के द्वारा वधू के पाणि-ग्रहण के इस कृत्य का उदय हुआ होगा। ऋग्वेद १०।८५।३६ एवं अथर्ववेद १४।१।५० में प्राप्त तथा गृह्यसूत्रों में उद्धृत पाणिग्रहण के मन्त्र (गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं ...) में वधू से वर यह कहता है कि 'मैं सौभाग्य के लिए तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ। तुम मेरे साथ वृद्धावस्था पर्यन्त (यावज्जीवन) रहो। भग, अर्यमा तथा पूरंधि संज्ञक देवताओं ने तुम्हें गार्हस्थ्य पालन हेतु मुझको दिया है।' इससे स्पष्ट है कि इस कृत्य के द्वारा वर अपने हाथ से वधू का हाथ पकड़ कर आजीवन दाम्पत्य-सम्बन्ध के निर्वाह का आश्वासन देने के साथ ही यह भी स्वीकार करता है कि भग, अर्यमा, पुरन्धि जैसे देवों की कृपा से ही वह उसे प्राप्त हुई है। ऐसे वेद-वचन के आधार पर ही मनु ने भी यह बतलाया है कि पुरुष को भार्या उसकी इच्छानुसार नहीं, अपितु देवों की कृपा से ही प्राप्त होती है (मनु ९।९५)। अथर्ववेद (१४।१।४८) में प्रदत्त पाणिग्रहण के एक अन्य मन्त्र में वधू को आश्वस्त करते हुए वर यह कहता है कि 'तुम व्यथित मत होओ। मेरे साथ मिल कर सन्तान तथा धन को प्राप्त करो।' इन वचनों का उद्देश्य वर द्वारा वधू को सुखी जीवन के प्रति आश्वस्त करना तथा उसे वैवाहिक जीवन के कर्तव्यों का बोध कराना भी माना जा सकता है। एक अन्य मन्त्र (अथर्व १४।१।५१) में वह वधू से कहता है कि 'तुम धर्मतः मेरी पत्नी हो। मैं तुम्हारा पति हूँ।' पाणि-ग्रहण में प्रयुक्त ऐसे मन्त्र ही वस्तुतः कन्या को भार्या का स्तर प्राप्त कराने वाले (भार्यात्वोत्पादक) कहे जा सकते हैं। इसी प्रसङ्ग में पढ़े जाने वाले एक अन्य मन्त्र (अमोऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोऽहं सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं।—अथर्व० १४।२।७१; तु०—पार०गृ०सू० १।६।६) में वर वधू के साथ अपने सम्बन्ध को साम और ऋचा तथा द्यौ और पृथिवी के समान अन्योऽन्याश्रित बतलाते हुए विवाह के अन्यतम लक्ष्य सन्तानोत्पादन का स्मरण कराता है। इस प्रकार इस एक कृत्य के अनेक उद्देश्य व्यञ्जित होते हैं।[1] धर्मशास्त्रों के अनुसार यह कृत्य वधू को भार्या का

१. डा० राजबली पाण्डेय के शब्दों में "यह क्रिया कन्या का दायित्व तथा भार सँभालने की प्रतीक है। यह दायित्व अत्यन्त पवित्र है, क्योंकि कन्या केवल+

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्तर प्रदान करता है।[१] इसीलिए अष्टाध्यायी (४।१।५२) के वार्तिक (२४८०) में कात्यायन ने भार्या के लिए 'पाणिगृहीती' संज्ञा का प्रयोग किया है। इसी के लिए बाद के साहित्य में पाणिगृहीता शब्द का प्रयोग मिलता है। पाणिग्रहण के एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष को उजागर करते हुए आपस्तम्ब धर्मसूत्र २।६।१४।१६-२० में कहा गया है कि पाणिग्रहण के द्वारा दम्पती को सहभागिता के आधार पर अपने कर्मों का सम्पादन तथा पुण्य एवं धन का सहभागिता के आधार पर अर्जन एवं भोग का अधिकार प्राप्त होता है। इसीलिए पति के प्रोषित होने पर पत्नी को नैमित्तिक दान आदि में धन व्यय करने पर चोरी का दोष नहीं लगता। इस प्रकार पाणिग्रहण का उद्देश्य भार्यात्व-सम्पादन के साथ ही वर-वधू को एक दूसरे के दुःख-सुख के सच्चे तथा कर्तव्यनिष्ठ जीवन-साथी के रूप में आदर्शपूर्ण तथा आनन्दपूर्ण दाम्पत्य जीवन के निर्वाह की प्रेरणा देना भी रहा है। अत एव, जैसा कि पीछे (पृ० १०६ में) कहा जा चुका है, पाणिग्रहण के महत्त्व के कारण ही इसे विवाह के पर्याय रूप में भी प्रयुक्त किया गया है।

(झ) अश्मारोहण—वधू को अश्मारोहण कराने के लिए विनियुक्त मन्त्र में उसे पतिभक्ति एवं पातिव्रत्य में पत्थर के समान दृढ होने तथा शत्रुओं को अभिभूत एवं बाधित करने के लिए कहा जाता है।[२] पत्थर को दृढता तथा स्थिरता का प्रतीक मान कर पत्नी को दाम्पत्य धर्म में दृढ तथा स्थिर करने के लिये ही उससे अश्मारोहण कराया जाता है।

(ञ) सप्तपदी—वैवाहिक कृत्यों में इसको परम महत्वपूर्ण माना गया है। इसका दृष्ट प्रयोजन वधू को दाम्पत्य जीवन में सुख-शान्ति और समृद्धि हेतु अपेक्षित अन्नादि वस्तुओं की प्राप्ति के लिए सचेष्ट होने का उपदेश देने के साथ ही वर-वधू में

+उसके पिता द्वारा ही नहीं, उपर्युक्त अधिष्ठातृ देवताओं द्वारा भी दी हुई समझी जाती है, जो प्रत्येक गम्भीर अनुबन्ध के साक्षी हैं। अन्तिम प्रार्थना सफल, उन्नतिशील तथा आनन्दपूर्ण वैवाहिक जीवन का प्रतीक है" (हिन्दू-संस्कार, पृ० २७७)।

१. द्र०-(क)—पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम्। मनु ८।२२७।
(ख)—पाणिग्रहणमन्त्राभ्यां नियतं दारलक्षणम्।
नारदस्मृति (स्त्रीपुंस०) १२।२।
(ग)—नोदकेन न वाचा च कन्यायाः पतिरिष्यते।
पाणिग्रहणसंस्कारात् पतित्वं सप्तमे पदे॥ यम (उद्वाहतत्त्व पृ० २६)।

२. आरोहेममश्मानमश्मेव त्वं स्थिरा भव।
अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः।; पार० गृ० सू० १।७।१।
तु०—मानव गृ० सू० १।१०।६; वाराह गृ० सू० १४।३०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सख्यभाव की स्थापना करना भी था।[1] तैत्तिरीय एवं छान्दोग्यब्राह्मण तथा कतिपय-गृह्यसूत्रों में वर के द्वारा वधू से कहा जाता है कि तुम इस सप्तपदी (सात कदम चलने) से मेरी सखा (मित्र) हो जाओ। मैं तुम्हारे सख्य भाव को प्राप्त करूँ। मेरे और तुम्हारे मध्य यह सख्य भाव कभी विच्छिन्न न हो।[2] वैदिक संहिताओं[3] (तथा अष्टाध्यायी)[4] में साप्तपदीन सख्य की कल्पना है। अतः विवाह संस्कार में पति-पत्नी में सख्य भाव के स्थापन हेतु इसका विनियोग यद्यपि छान्दोग्य ब्राह्मण एवं गृह्यसूत्रों में ही प्राप्त होता हैं, तथापि संभवतः इस महत्वपूर्ण कृत्य को वैदिक संहिताओं के काल में भी सम्पादित किया जाता रहा होगा।[5] विवाह-संस्कार के समस्त कृत्यों में सप्तपदी को महत्व और प्रमुखता देने का एक प्रधान कारण यह है कि इसके पूर्व के कृत्यों द्वारा जनित वर-वधू का दाम्पत्य-सम्बन्ध इसके सम्पादन के साथ ही पूर्णतः परिनिष्ठित हो जाता है[6] और इसके बाद वर उस वधू का पति बन जाता है[7] तथा कन्या अपने गोत्र से पृथक् हो जाती है[8] अर्थात् तदुपरान्त वह पतिगोत्र से संयोजित हो जाती है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।३२६।११-२) में यह मत व्यक्त किया गया है कि सप्तपदी के पश्चात् नारी का विवाह अन्य पुरुष से नहीं हो सकता।

(ट) हृदयालभन—इस कृत्य में वधू के हृदय-प्रदेश का स्पर्श करते हुए वर कहता है कि मैं तुम्हारे हृदय को अपने व्रत में लगाता हूँ। तुम्हारा चित्त मेरे चित्त का

---

१. छान्दोग्यब्राह्मण १।२।६-१२; पार० गृ० सू० १।८।१-२।

२. तै० ब्रा० ३।७।७।११-२; छा० ब्रा० १।२।१३; भार० गृ० सू० १।१७; अग्निवेश्य गृ० सू० १।५।४।

३. द्र०—ऋ० १।७२।६; १०।८।४; अथर्व० ५।११।९।

४. साप्तपदीनं सख्यम्। अष्टा० ५।२।२२।

५. द्र०—राइट्स् एण्ड रिच्युअल्स् आफ हिन्दू मैरेज इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० १६२

६. (क)—पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे।
पाणिग्राहस्य भार्या स्याद् यस्य चाद्भिः प्रदीयते॥
अनु० पर्व ४४।४५; तु०—ब्रह्म ८।७; ब्रह्माण्ड ३।६३।६६।

(ख)—पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम्।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे॥ मनु ८।२२७।

७. पाणिग्रहणसंस्कारात् पतित्वं सप्तमे पदे॥ यम (उद्वाहतत्व, पृ० २६)।

८. (क) अनूढा न पृथक् कन्या पिण्डे गोत्रे च सूतके।
पाणिग्रहणमन्त्राभ्यां स्वगोत्राद् भ्रश्यते ततः॥ नारद पू० १४।८१।

(ख) स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी विवाहात् सप्तमे पदे।
लिखित स्मृति २६; नारद पू० १४।७५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अनुगामी बने । तुम मेरी वाणी को एकाग्र मन से सुनो । प्रजापति तुम्हें मेरे लिये नियुक्त करें ।[1] बौधायन (गृ० सू० १।४।१) तथा भारद्वाज गृह्यसूत्र (१।१७) में प्रदत्त मन्त्र भी इसी आशय के हैं । किन्तु वहाँ वर द्वारा वधू से अपनी अनुवर्तनी तथा सहचारिणी होने के लिए भी कहा जाता है ।[2] भारद्वाज गृह्यसूत्र में वर वधू के कान में कहता है कि तुम्हारा चित्त, तुम्हारे नेत्र, तुम्हारा मन, तुम्हारे सभी भूत एवं तुम्हारा ज्ञान मेरे अन्दर प्रवेश कर जाय ।[3] इस कृत्य का उद्देश्य बतलाते हुये डा० राजबली पाण्डेय (हिन्दू संस्कार, पृ० २७६) ने कहा है कि "हृदय भावों का केन्द्र है । इसके स्पर्श द्वारा वर प्रतीक रूप से उन्हें उद्बुद्ध तथा प्रवाहित करना चाहता है, जिससे वे उसके हृदय से मिल जाएं और इस प्रकार स्नेह के संचार में उन्हें संयुक्त करें ।" यह तथ्य सर्वविदित है कि यदि पति-पत्नी का हृदय, मन और मस्तिष्क एक समान रहेगा, उनके सोच-विचार का दृष्टिकोण एक सा रहेगा तो उनके जीवन में सामञ्जस्य, स्नेह और सद्भाव बना रहेगा तथा अन्तर्विरोध की स्थिति कभी नहीं आयेगी । इस कृत्य का उद्देश्य वधू के हृदय, मन तथा समग्र चेतना को वर में केन्द्रित करना तथा उसे सर्वतोभावेन उसकी अनुगामिनी बनाना था । अतः यह कहा जा सकता है कि दाम्पत्य जीवन की सफलता हेतु भावनात्मक एकता और समन्वय तथा सामञ्जस्य की प्रवृत्ति का बीजारोपण ही इस कृत्य का उद्देश्य था ।

(ठ) ध्रुवदर्शन—छान्दोग्य ब्राह्मण (१।३।७; तु०—मानव गृ० सू० १।१४।१०) में वधू को ध्रुव का दर्शन कराने के लिए विहित मन्त्र में कहा गया है कि जिस प्रकार आकाश, पृथिवी, यह समस्त जगत् और ये पर्वत स्थिर हैं, तद्वत् नववधू भी पति गृह में स्थिर होकर रहे ।[4] यहां उद्देश्य और विधेय की शब्दावली से मन्त्रार्थ की गरिमा और भी अधिक बढ जाती है । पारस्कर गृह्यसूत्र में वर वधू को ध्रुव का दर्शन कराते हुए कहता है कि तुम ध्रुव के समान स्थिर रहो, मैं तुम्हारा पोषणकर्ता बना रहूँगा ।

---

१. (क) मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं तेऽस्तु ।
मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥
पार० गृ० सू० १।८।८; मानव गृ० सू० १।१०।१३; आश्व गृ० सू० १।२१।७; द्र०—छान्दोग्य ब्रा० १।२।२१; वाराह गृ० सू० १४।२५-६ ।

२. मम हृदये हृदयं तेऽस्तु मम चित्ते चित्तमस्तु ते ।
मम वाचमेकमना शृणु मामेवानुव्रता सहचर्या मया भव ॥

३. मां ते चित्तं प्रविशतु मां चक्षुमार्मु ते मनः ।
मयि सर्वाणि भूतानि मयि प्रज्ञानमस्तु ते ॥ भार० गृ० सू० १।१७ ।

४. ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम् ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तुम्हें बृहस्पति ने मेरे लिए दिया है। तुम मेरे साथ सन्तानयुक्त होकर सौ वर्षों तक जीवित रहो।[1] अधिकांश गृह्यसूत्रों में वधू को रात्रि में ध्रुवदर्शन कराने का विधान है। नवोढा पत्नी को पति-गृह में ध्रुव की तरह अटल बनाना ही इस कृत्य का प्रमुख उद्देश्य था, ताकि वर-वधू का दाम्पत्य जीवन सुख से बीते।

(ड) प्रेक्षकानुमन्त्रण—ऋग्वैदिककाल से ही नववधू को देखने के लिए आई हुई सुमङ्गली अर्थात् सौभाग्यवती स्त्रियों से उसे सौभाग्यशालिनी होने का आशीर्वाद देने को कहा जाता था।[2] किन्तु परवर्ती काल में प्रेक्षकानुमन्त्रण के इस मन्त्र का प्रयोग सिन्दूरदान में होने लगा था।

(ढ) चतुर्थीकर्म—यह त्रिरात्रव्रत की समाप्ति पर होता था। त्रिरात्रव्रत का उद्देश्य वर-वधू के दाम्पत्य-सम्बन्ध को काम-सम्बन्ध के ऊपर उठाकर उनमें संयम, त्याग एवं परस्पर अनुराग की भावना का उद्रेक करना था (द्र० कामसूत्र ३।२।१-४)। चतुर्थी-कर्म में स्थालीपाक होम के पूर्व क्रमशः अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र एवं गन्धर्व को प्रदीयमान पांच आज्याहुतियों में उन देवों से नववधू की पतिनाशिनी, सन्ततिनाशिनी, पशुनाशिनी, गृहनाशिनी एवं यशनाशिनी शारीरिक स्थितियों अर्थात् कुलक्षणों का नाश करने की प्रार्थना की जाती है[3] और स्थालीपाक होम के पश्चात् वधू के शिर पर अभिषेक इस आशय के मन्त्र से किया जाता है कि वह पति, सन्तति आदि की नाशक होने के बजाय जार की नाशक बने।[4] इस प्रकार इस कृत्य में वधू के अमाङ्गलिक दुर्लक्षणों तथा अनैतिक यौन-सम्बन्ध की संभावना के कारणभूत जार को नष्ट करने की आशंशाओं द्वारा दाम्पत्य-जीवन को सुखमय बनाने का प्रयास किया जाता है।

(ण) समशन—चतुर्थी कर्म के पश्चात् वर-वधू एक साथ बैठकर स्थालीपाक होम का अवशिष्ट भोजन ग्रहण करते हैं।[5] वधू को भोजन करने के लिए प्रेरित करता हुआ

---

१. ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि। मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतम् इति। पार० गृ० सू० १।८।१९।
२. सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथाऽस्तं वि परेतन॥ ऋ० १०।८५।३३; अथर्व० १४।२।२८; पार० गृ० सू० १।८।९; वाराह गृ० सू० १६।२।
३. पार० गृ० सू० १।११।२; तु० अग्निवेश्य गृ० सू० १।५।५; छान्दोग्य ब्रा० १।४।१-५।
४. तत एनां मूर्धन्यभिषिञ्चति या ते पतिघ्नी प्रजाघ्नी पशुघ्नी गृहघ्नी यशोघ्नी निन्दिता तनूर्जारघ्नीं तत एनां करोमि सा जीर्य त्वं मया सहासाविति॥ पार० गृ० सू० १।११।४।
५. द्र०- काठक गृ० सू० २९।१; कौसिक सू० ७८।१४-५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वर कहता है—"मैं अपने प्राणों से तेरे प्राणों को, अपनी अस्थियों से तेरी अस्थियों को, अपने मांस से तेरे मांस को तथा अपनी त्वचा से तेरी त्वचा को संयुक्त करता हूँ"।[१] इस कृत्य का उद्देश्य इन शब्दों से स्वयं स्पष्ट हो जाता है। वस्तुतः यह कृत्य दम्पती के तन-मन को जोड़ने की अन्तिम कड़ी के रूप में काम करता है। गृह्य-सूत्रों में कहा गया है कि यह सब जानने वाला पुरुष श्रोत्रिय की पत्नी के साथ उपहास न करे, अन्यथा वह उस (श्रोत्रिय) का शत्रु होकर नष्ट हो जाता है।[२] इस प्रकार पत्नी में पति की उपस्थिति का बोध जहां पत्नी की प्रतिष्ठा बढ़ाता है वहीं उसे दूसरे पुरुष की कामुक दृष्टि से भी बचाता है।

५—वैवाहिक कृत्यों का दाम्पत्य जीवन में प्रभाव—

विवाह संस्कार के समस्त कृत्यों के आद्योपान्त सम्पादन से विवाह अटूट और अटल हो जाता है। वर-वधू आध्यात्मिक दृष्टि से एक-मन-प्राण हो जाते हैं। उनके पारस्परिक सम्बन्ध को लौकिक एवं पारलौकिक दृष्टि से अटूट और अविच्छेद्य मान लिया जाता है। इस तरह हम पाते हैं कि वैदिक काल से ही विवाह को कदापि एक करार नहीं माना गया, जिसे कि कोई एक पक्ष जब चाहे भङ्ग कर दे, अपितु इसे एक पवित्र आध्यात्मिक बन्धन माना गया है, जिसे बिवाह संस्कार के विभिन्न कृत्य अविच्छेद्य बना देते हैं। इन कृत्यों से वर का व्यक्तित्व वधू के व्यक्तित्व में समाहित होता है तथा वधू का व्यक्तित्व वर के व्यक्तित्व से संपृक्त होता है। वधू अपने पितृगृह के समस्त बन्धनों से छूट जाती है।[३] उसका पितृगोत्र का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है (द्र०-पीछे, पृ० १२५, टि० ४)। विवाह-संस्कार सम्पन्न हो जाने पर चतुर्थीकर्म के दिन रात्रि में वह अपने पति से एकत्व प्राप्त कर लेती है। तदनन्तर वह पति के सापिण्ड्य, गोत्र एवं सूतक से युक्त होती है।[४] जिस वर्ण के पुरुष के साथ भी कन्या का विवाह होता है वह उसी के अनुसार सूतक एवं पिण्डोदक की पात्र होती है।[५]

---

१. प्राणैस्ते प्राणान् सन्दधामि अस्थिभिरस्थीनि मांसैर्मांसानि त्वचा त्वचम्। पार० गृ० सू० १।११।५।

२. तस्मादेवंविच्छ्रोत्रियस्य दारेण नोपहासमिच्छेदुत ह्येवंवित्परो भवति। पार० गृ० सू० १।११।६। ४. मनु ८।२२७; नारदस्मृति (स्त्रीपुंस०) १२।३।

३. द्र०—प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्—। ऋ० १०।८५।२४।

४. विवाहे चैव संवृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु।
एकत्वं सा व्रजेद् भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके॥
लिखितस्मृति, श्लोक २५; नारद पू० १८।२३।

५. येन येन तु वर्णेन या कन्या परिणीयते।
तत्समं सूतकं याति तथा पिण्डोदकेऽपि च॥ नारद पू० १४।८२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विधिपूर्वक सम्पन्न विवाह संस्कार का एक प्रत्यक्ष लाभ मनु (९।२२-४) ने यह बतलाया है कि इसके फलस्वरूप वधू अपने पति के गुणों और स्वभाव को यथाशीघ्र अपना लेती है। वह पति के गुणों और स्वभाव को आत्मसात् कर लेती है। अक्षमाला ने वसिष्ठ एवं सारंगी ने ऋषि मन्दपाल जैसे पति के साहचर्य के फलस्वरूप तथा अन्य भी कई नारियों ने नीच योनि में उत्पन्न होने पर भी अपने उत्कृष्ट पतियों के साहचर्य में उनके गुणों को आत्मसात् करके उत्कर्ष प्राप्त किया था।

भारतीय संस्कृति में विवाह-संस्कार से जनित आध्यात्मिक सम्बन्ध के कारण दम्पती के अखण्ड साहचर्य को लोक-लोकान्तर व्यापी माना जाता था।[1] विवाह-संस्कार के अदृष्ट उपयोग को समझ सकने में असमर्थ दम्पती भी इसके प्रति श्रद्धालु एवं आस्थावान् होने के कारण ही विवाह-सम्बन्ध को पवित्र और अटूट समझते थे। इस तरह विवाह को संस्कार का स्तर प्राप्त होने से दाम्पत्य जीवन के विघटन तथा अतिचार की प्रवृत्ति को नियन्त्रित करने के लिए समाज के ऊपर मनोवैज्ञानिक प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। शूद्रों का विवाह वैदिक मन्त्रों से नहीं होता था।[2] सम्भवतः इस त्रुटि के कारण अथवा आचार और खान-पान सम्बन्धी नियमों में उनके लिए कुछ छूट के दुष्प्रभाव से उनमें दाम्पत्य सम्बन्ध की शिथिलता अपेक्षाकृत अधिक थी। वैदिक कर्मकाण्ड के विरोधवश बौद्धधर्म में भी विवाह को एक आवश्यक संस्कार नहीं माना जाता था।[3] बौद्ध साहित्य में दाम्पत्य जीवन के विघटन तथा अतिचार की प्रवृत्तियों के अपेक्षाकृत अधिक उल्लेख हैं,[4] सम्भवतः विवाह के संस्कार पक्ष की त्रुटि भी इसका एक कारण रही होगी। सनातन धर्म की परम्परा में ब्राह्म आदि धर्म्य विवाहों में संस्कार के सभी कृत्य यथाविधि संपादित होते थे। अतः इनके दृष्ट तथा अदृष्ट प्रभाव-वश दाम्पत्य सम्बन्ध स्थायी और अविच्छेद्य होता था।[5] गान्धर्व, राक्षस एवं पैशाच विधियों में विवाह-संस्कार के कतिपय कृत्य (यथा वाग्दान, वरण आदि पूर्व कृत्यों एवं कन्यादान जैसे महत्त्वपूर्ण कृत्यों से लेकर दम्पती के समागम के पूर्व अपेक्षित त्रिरात्रव्रत और चतुर्थी कर्म जैसे कृत्य भी) संपादित नहीं होते हैं तथा होमादि कृत्य भी प्रायः समागम के बाद किये जाते हैं, जिससे संस्कार जनित दृढता दाम्पत्य सम्बन्ध में नहीं आ पाती। आसुर विवाह में यद्यपि 'कन्यादान' के अतिरिक्त अन्य कृत्य हो सकते

---

१. एतस्मात् कारणाद् राजन् पाणिग्रहणमिष्यते।
यदाप्नोति पतिर्भार्यामिहलोके परत्र च ॥ आदिपर्व ६८।४६।

२. मनु (२।२६), याज्ञ० (१।३९) प्रभृति आचार्यों ने केवल द्विजातिवर्णों के लिए ही वैदिक मन्त्रों से संस्कार विहित किए हैं।

३. द्र०—बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन, पृ० ४३, ६४।

४. द्र०—पाण्डेय, विमलचन्द्र : भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, पृ० १६६-१७०।

५. अमोक्षो धर्मविवाहानाम्। अर्थ० ३।३।१९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हैं, तथापि शास्त्रों में क्रयक्रीता स्त्री के दैव एवं पितृकर्म में अयोग्य होने के कारण उसे पत्नी के बजाय दासी का स्तर दिया गया है।[1] अतः गान्धर्व आदि अधर्म्य विवाहों में संस्कार की न्यूनता से भी दाम्पत्य जीवन में स्थायित्व संदिग्ध हो सकता है।

विवाह-संस्कार का सर्वोपरि उपयोग और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य परस्पर नितान्त अपरिचित वर-वधू को भी एक दूसरे के निकट लाकर उनके मन-प्राण को एक डोर में बाँध कर उनके हृदय में परस्पर स्नेह एवं कर्तव्य की भावना उत्पन्न करके उन्हें दाम्पत्य के आदर्शों के अनुपालन के लिए सन्नद्ध करना तथा उनके दाम्पत्य जीवन में स्थायित्व लाना था। प्रो॰ काणे के अनुसार भी वर-वधू को आत्मनिग्रह, आत्म-त्याग एवं परस्पर सहयोग की भूमि पर लाना ही विवाह-संस्कार का उद्देश्य था।[2] विश्व की कतिपय आधुनिक तथाकथित सभ्य जातियों तथा कई वर्तमान एवं प्राचीन असभ्य, अर्द्धसभ्य तथा असंस्कृत जातियों में भारतीय संस्कृति की तरह विवाह-संस्कार के नाना कृत्यों के न होने पर भी विवाह संस्था और दाम्पत्य-व्यवस्था की विद्यमानता के आधार पर हमारी इस महान् संस्कृति के विवाह-संस्कार के विभिन्न कृत्यों को निरर्थक, अनुपयुक्त एवं आदिम युग की रूढिवादी परिपाटियों तथा अन्धविश्वासों का निर्वाह मात्र कहना मूर्खता होगी, क्योंकि प्राचीन ऋषियों की गवेषणात्मक व्यवस्था के अङ्गभूत ये कृत्य तथा इनकी पृष्ठभूमि में निहित आदर्श तथा उद्देश्य प्राचीन भारतीय आर्यों के सभ्यतम एवं सुसंस्कृत समाज का इतिहास तथा जीवनदर्शन अपने अन्दर समाहित किए हुए हैं। भारत भूमि की सनातन संस्कृति में विना विवाह-संस्कार किए किसी कन्या को पत्नी बनाना प्रशस्त नहीं माना जाता था। स्कन्दपुराण में बतलाया गया है कि जो कन्या अपने बान्धवों द्वारा अग्निसाक्षित्व में एवं ब्राह्मणों के मन्त्रोच्चारण के साथ दी गयी हो उसी के साथ गृहस्थ धर्म का पालन प्रशस्त होता है।[3] विवाह-संस्कार की धार्मिक तथा आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के अभाव में वैवाहिक-जीवन नर-नारी की स्वेच्छा पर निर्भर तुच्छ काम-सम्बन्ध मात्र होने से अस्थिर होता अथवा काम-पिपासा की शान्ति के पश्चात् पारिवारिक दायित्व का बोझिल निर्वाह मात्र रह जाता। विवाह को पवित्र संस्कार का स्तर प्रदान कर प्राचीन मनीषियों ने इसे एक आध्यात्मिक अत एव सुदृढ और अविच्छेद्य सम्बन्ध के रूप में प्रतिष्ठित करके व्यक्ति तथा समाज के हित में दाम्पत्य जीवन को सुव्यवस्थित, आदर्शपूर्ण और मर्यादित बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

---

१. द्र०–पीछे पृ० ११३ टि० ४।

२. हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग २, खण्ड १, पृ० १९३

३. या बान्धवैः प्रदत्ता स्याद् वह्निद्विजसमागमे।
गार्हस्थ्यपालनं धन्यं तया साकं हि सर्वदम्॥ स्कन्द १.२।१।५१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पञ्चम अध्याय

सुखमय दाम्पत्य जीवन

प्राचीन भारत में दाम्पत्य जीवन के सुखी तथा मर्यादित होने के तीन प्रमुख कारण माने जा सकते हैं—(१) दाम्पत्य-सम्बन्ध विषयक विशेष धारणाएं, जिनके कारण यह अटल तथा अविच्छेद्य माना जाता रहा है। (२) सहधर्माचरण या दम्पती के द्वारा धर्म-भावना से अपने कर्तव्यों का निर्वाह, जिसके कारण वे एक-दूसरे को मात्र काम-सम्बन्ध का सहचर ही नहीं, अपितु जीवन के प्रत्येक संघर्ष का सहभागी मान कर कर्म करते हुए पारस्परिक, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन को सुखी और समुन्नत बनाते हैं। तथा (३) दाम्पत्य प्रेम, जो दाम्पत्य जीवन को सरस तथा आनन्दमय बनाता है एवं दाम्पत्य सम्बन्ध को विघटित या बोझिल होने से बचाता है। प्रस्तुत प्रसंग में हम दाम्पत्य जीवन के स्थायित्व में समन्वित प्रभाव डालने वाले इन तीनों तथ्यों पर क्रमशः विचार करेंगे।

१. दाम्पत्य-सम्बन्ध—

भारत वर्ष में दाम्पत्य सम्बन्ध को आध्यात्मिक दृष्टि से अभेदात्मक, अन्योऽन्याश्रित साहचर्यात्मक तथा जन्म-जन्मान्तरीय होने से अविच्छेद्य माना गया है। लोक-व्यवहार की दृष्टि से दम्पती में कदाचित् गुरुशिष्यभाव तथा स्वस्वामिभाव-सम्बन्ध की भी कल्पना की गयी है। यथा—

उत्तर-वैदिक साहित्य से लेकर इतिहास-पुराण, स्मृतियों तथा काव्यों में भी एक परमात्मा के द्वारा स्वयं को पति और पत्नी के रूप में द्विधा विभक्त किये जाने के उल्लेख हैं।[1] पुराणों के अनुसार अर्द्धनारीश्वर शिव ने अपने को नर और नारी (पति-पत्नी) रूप में विभक्त किया था।[2] एक शरीर के पति-पत्नी रूप में द्विधा विभक्त

---

१. (क) स आत्मानं द्वेधा पातयत् पतिश्च पत्नी चाभवताम्। बृ० उ० १।४।३।

(ख) पाटितोऽयं द्विजाः पूर्वमेकदेहः स्वयंभुवा।
पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्योऽभूवन्निति श्रुतिः॥ व्यासस्मृति २।१३।

(ग) स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्द्धं यया पुंसां मतिर्हृता। भाग० ६।१८।३०।

(घ) स्त्रीपुंसावात्मभागौ ते भिन्नमूर्तेः सिसृक्षया।
प्रसूतिभाजः सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ॥ कुमार० २।७।

२. द्र० पीछे अध्याय २, पृ० ४०, टि० १-२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होने की यह कल्पना प्रथम मानव दम्पती मनु-शतरूपा के विषय में भी प्राप्त होती है।[१] सामान्य मानव-दम्पती में अर्द्धाङ्ग-सम्बन्ध की कल्पना का सर्वप्रथम संकेत ऋग्वेद (५।६१।८) में प्राप्त होता है, जहाँ पुरुष के लिए प्रयुक्त 'नेमः' (= आधा) विशेषण से यह सूचित होता है कि अर्द्धाङ्गिनी (पत्नी) के संयोग से ही वह पूर्ण माना जाता था। भारतीय संस्कृति के गौरव-ग्रन्थों में पत्नी को पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी बतलाया गया है।[२] लिङ्गपुराण (पू० ६४।४०) से स्पष्ट होता है कि पत्नी भी स्वयं को पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी मानती थी। पति-पत्नी को सम्मिलित रूप से ही पूर्ण व्यक्ति माना जाता था। पुरुष पत्नी को बामाङ्गी मानता था और नारी पति को दाहिना अङ्ग मानती थी। दम्पती के एकात्म्य बोध की यह भावना पाणिग्रहण-संस्कार के मन्त्र में भी स्फुट होती है, जिसमें वर वधू से कहता है—'जो मैं हूँ, वही तू है और जो तू है, वही मैं हूँ'।[३] यह वचन वस्तुतः दम्पती में अभेद का बोध कराता है। उनके शरीर दो हैं, किन्तु आत्मा एक है। रामायण (४।२४।३८) के अनुसार भी पत्नी पुरुष से भिन्न नहीं, अपितु उसका अपना ही स्वरूप है। रामायण के एक अन्य बचन के अनुसार भी सभी विवाहित पुरुषों की पत्नी उनकी आत्मा स्वरूप होती है।[४] मनु (९ ४५) ने भी यह माना है कि पत्नी और सन्तान को मिलाकर ही पुरुष पूर्ण बनता है, अतः पति पत्नी में कोई भेद नहीं है। मनु पत्नी तथा पुत्र को पुरुष का अपना ही शरीर बतलाते हैं।[५] ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी दम्पती की एकाङ्गता की कल्पना है।[६] ये वचन वस्तुतः दम्पती के एकात्म्य के ही द्योतक हैं।

दम्पती का आध्यात्मिक सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर तक रह सकता है, किन्तु शारीरिक सम्बन्ध तदात्मावच्छिन्न तच्छरीर पर्यन्त ही रहता है। यदि आत्मा और शरीर दोनों ही उसी पति या पत्नी का है तो शारीरिक सम्बन्ध हो सकता है, अन्यथा नहीं। जैसा कि आङ्गिरस स्मृति (श्लोक २२४-७) से प्रकट होता है—यदि कदाचित् पति की आत्मा किसी अन्य पुरुष के शरीर में प्रविष्ट हो जाय तो पत्नी उस शरीर की सेवा शुश्रूषा तो कर सकती है, किन्तु मैथुन सम्बन्ध नहीं कर सकती, क्योंकि वह शरीर पति की आत्मा द्वारा अधिष्ठित होने पर भी वस्तुतः परपुरुष का ही रहा है। इसी प्रकार यदि मृत पति के शरीर में किसी अन्य पुरुष की आत्मा प्रविष्ट हो जाय तो पत्नी उस शरीर की,

---

१. द्र०—पीछे, अध्याय २, पृ०४१, टि०८। २. द्र०—पीछे, अध्याय३, पृ०६८-९।
३. अमोऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोऽहं····। पार० गृ० सू० १।६।६।
४. आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम्। रामा० २।३७।२४।
५. भार्या पुत्रः स्वका तनुः। मनु ४।१८४।
६. दम्पती ध्रुवमेकाङ्गौ। ब्रह्मवै० ३।७।४५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पति की अवशिष्ट देह मानकर, सेवा कर सकती है, किन्तु उस शरीर में परपुरुष अधिष्ठित रहता है, अतः उसके साथ मैथुन सम्बन्ध नहीं कर सकती।

दम्पती में तादात्म्य-बोध का उपक्रम भी दिव्य धरातल से कल्पित किया गया है। पुराणों के अनुसार प्रकृति-पुरुष या पार्वती और शिव के प्रतिमान शक्ति और शक्तिमान् अभिन्न तथा तादात्म्य-वृत्ति वाले हैं।[1] शिवपुराण (७।२।४।९-१२) में अनेक दृष्टान्तों के आधार पर शिवपार्वती के आदर्श युगल में तादात्म्य-बोध कराया गया है। शक्ति-शक्तिमान् या शिव-पार्वती के दिव्य-युगल के तादात्म्य के आधार पर ही मानव दम्पती में भी अभेद या तादात्म्य को सिद्ध किया गया है।[2] निखिल पुल्लिङ्ग जीवों तथा निखिल स्त्रीलिङ्ग जीवों को वैष्णव पुराणों में विष्णु-लक्ष्मी का प्रतिरूप बतलाया गया है[3] तथा उन्हीं को शैव पुराणों में शिव-पार्वती का प्रतिरूप बतलाया गया है।[4] सभी स्त्री-पुरुष शिवपार्वती के अंश रूप कहे गये हैं।[5] इस प्रकार दिव्य-दम्पती तथा उनके अंशज होने के कारण मानव दम्पती में भी तादात्म्य बोध कराया गया है।

दम्पती में आध्यात्मिक दृष्टि से अभेद और तादात्म्य मानते हुए भी व्यावहारिक दृष्टि से उनकी पृथक् सत्ता स्वीकार की गई है। किन्तु उनकी यह पृथक् सत्ता परस्पर निरपेक्ष और तटस्थ नहीं है, क्योंकि वे अनेक कारणों से एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। अतः उनमें अन्योऽन्याश्रय सम्बन्ध रहता है। अथर्ववेद (१४।२।७१) के विवाह-संस्कार के मन्त्र में भी पति-पत्नी में ऋचा और साम एवं पृथ्वी और आकाश की तरह

---

१. (क) यथाग्नौ दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभा प्रभा रवौ।
शश्वद् युक्ता न भिन्ना सा तथा प्रकृतिरात्मनि॥
देवीभाग० ६।२।७; ब्रह्मवै० २।२।७।

(ख) या शक्तिः परमात्माऽसौ सा योऽसौ परमा मता।
अन्तरं नैतयोः कोऽपि सूक्ष्मं वेद च नारद॥ देवीभाग० ३।७।१५।

(ग) न हि शक्तिमतः शक्त्या विप्रयोगोऽस्ति जातुचित्।
तस्माच्छक्तेः शक्तिमतस्तादात्म्यान्निर्वृत्तिर्द्वयोः॥ शिव ७।२।७।२१।

२. (क) अत एव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुंभेदो न मन्यते।
देवीभाग० ६।१।११; ब्रह्मवै० २।१।११।

(ख) नानयोरणुमात्रोऽपि भेदो बोध्यो विजानता॥ नारद उ० २८।६३।

३. देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नाम्ना भगवान् हरिः।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम्॥ विष्णु १।८।३५।

तु०—पुन्नामानि यानि विष्णोः स्त्री नामानि श्रियस्तथा॥ वृद्धहारीतस्मृति ७।५६।

४. लिङ्ग पू० ३३।३-४; वही, उ० ५।३०; ११।१६, ३२।

५. लिङ्ग उ० ११।१८, २०; कुलार्णवतन्त्र ३।६१, १०२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्योऽन्याश्रय सम्बन्ध का संकेत है । शिवपुराण (७।२।४।५५-६४) में आदर्श दम्पती शिव-पार्वती की परस्पर सापेक्षता, परस्पर निर्भरता या अन्योऽन्याश्रयता को व्यञ्जित करने के लिए उनके सम्बन्ध को विषयी-विषय, श्रोता-श्रोतव्य, प्रष्टा-प्रष्टव्य, द्रष्टा-द्रष्टव्य, रसयिता-रसमय, प्रेयान्-प्रेय, मन्ता-मन्तव्य, बोद्धा-बोद्धव्य, प्राण-प्राणस्थिति, क्षेत्रज्ञ-क्षेत्र, दिवस-निशा, आकाश-पृथ्वी, समुद्र-वेला और वृक्ष-लता के समान बतलाया गया है । महाकवि कालिदास की कृतियों तथा पुराणों में शिव-पार्वती को अर्थ और शब्द की तरह संपृक्त बतलाया गया है ।[१] तात्पर्य यह है कि जैसे शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अविच्छेद्य तथा अन्योऽन्याश्रित है, तद्वत् शिव-पार्वती का सम्बन्ध भी है । इसी तरह महाकवि ने रघुवंश (११।५६) में वधू और वर के सम्बन्ध की उपमा प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से देकर भी दाम्पत्य-सम्बन्ध की अन्योऽन्याश्रयता को ही व्यञ्जित किया है ।

दम्पती के अन्योऽन्याश्रय सम्बन्ध के कारण एक के सुख-दुःख, पाप-पुण्य या अच्छे-बुरे कर्म से दूसरा भी प्रभावित होता है । इसके अनेक उदाहरण वैदिक साहित्य से ही मिलने लगते हैं । उदाहरणार्थ—इन्द्र जैसे पति के कारण इन्द्राणी की स्थिति भी गौरवास्पद थी ।[२] वृत्र-वध से इन्द्र के साथ ही उसकी पत्नियाँ भी प्रसन्न हुई थी ।[३] कितव पति से उसकी पत्नी दुःख-सन्तप्त देखी गई है ।[४] इन्द्र ने कुयव नामक असुर के साथ ही उसकी स्त्रियों को भी मार डाला था ।[५] इस तरह पत्नी की नियति पति की नियति से जुड़ी हुई थी । वे दोनों सुख-दुःख के सहभागी थे । ऋग्वेद (१०।९९।५) में वम्र संज्ञक दम्पती अपने अन्नादि के अपहरण से दुःखी दिखलाई पड़ते हैं । अन्य कोई दम्पती यातुधानों से पीड़ित होने से आक्रोश व्यक्त करते हुए देखे गये हैं ।[६] दूसरे कुछ दम्पतियों को यज्ञादि फलों को समान रूप से भोगते हुए देखा गया है ।[७] परवर्ती

---

१. (क)—तमर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि । कुमार० ६।७९ ।
(ख)—वागर्थाविव संपृक्तौ.....। रघु १।१ ।
(ग)—शब्दजालमशेषं तु धत्ते सर्वस्य वल्लभा ।
अर्थस्वरूपमखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः ॥
यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता ।
सा सा विश्वेश्वरी देवी स स सर्वो महेश्वरः ॥ शिव ७।२।४।६६-७ ।

२. ऋ० १०।८६।६-९, ११; १०।१५९।२-६; अथर्व० २०।१२६।६-९, ११ ।

३. अनु त्वा पत्नीर्हृषितं । ऋ० १०।१०३।७; द्र०—सायण एवं स्कन्द० भाष्य ।

४. जाया तप्यते कितवस्य हीना । ऋ० १०।३४।१० ।

५. क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते....। ऋ० १।१०४।३ ।

६. यदग्ने अद्य मिथुना शपातो ...। ऋ० १०।८७।१३; अथर्व० ८।३।१२; १०।५।४८ ।

७. ययाशिषा दम्पती वाममश्नुतः । अथर्व० १४।२।९; तु० वाज० सं० ८।५ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साहित्य में दाम्पत्य जीवन विषयक जो नाना वृत्तान्त हैं उनसे स्पष्ट होता है कि दम्पती में से किसी भी एक के सुख-दुःख, हानि-लाभ और पाप-पुण्य से दूसरा भी प्रभावित होता है। यदि पत्नी पति के पुण्य-पाप की सहभागिन है[1] तो पति भी पत्नी के अच्छे-बुरे कर्म का भागी होता है। पत्नी द्वारा किया गया पाप पति को भी लगता है।[2] पति-पत्नी का पुरुषार्थ-साधन भी एक दूसरे के सहयोग पर निर्भर है। पति की धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि पत्नी के विना संभव नहीं और पत्नी भी पति के विना इन्हें नहीं सिद्ध कर सकती।[3] अतः व्यावहारिक दृष्टि से दम्पती का अन्योऽन्याश्रय सम्बन्ध सिद्ध होता है।

दम्पती का साहचर्य सम्बन्ध ऋग्वेद काल से ही सुदृढ और प्रख्यात रहा है। विवाह-संस्कार में वर-वधू को आजीवन साथ रहने और कभी वियुक्त न होने के लिए प्रतिश्रुत कराया जाता था।[4] अर्यमा आदि देवों से उन्हें आजीवन संयुक्त रखने की प्रार्थना की जाती थी।[5] अग्नि से भी दम्पती को सुसङ्गठित रखने की प्रार्थना की जाती थी।[6] अथर्ववेद (१४।१।४९) में विवाह-संस्कार के एक मन्त्र में अग्नि से यह प्रार्थना की गई है कि वह वधू को सुभगा तथा वृद्धावस्था तक पति का साथ निभाने वाली बनावे। उन्हें संयुक्त रखने में अश्विनौ भी सहयोग देते थे (अथर्व २।३०।२)। दम्पती का मित्र भी उन्हें संयुक्त रखने में योगदान देता था।[7] उन्हें एक दूसरे से पृथक् करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।[8] ऋग्वेद (२।३९।२) में अखण्ड साहचर्य वाले अश्विनौ की उपमा दम्पती से दी गई है। इससे भी उनके साहचर्य सम्बन्ध के प्रख्यात, सुदृढ तथा सनातन होने की सूचना मिलती है। यद्यपि असन्तुष्ट

---

१. शरीरार्द्धं स्मृता भार्या पुण्यापुण्यफले समा।—बृह० स्मृ० (व्य० का०) २६।९२; तु०—समपापः पुनः स्त्रीणां भर्त्रा पापेन सङ्गमः। कथा० ६।२।१७७।

२. वसिष्ठ ध० सू० १९।४४; मनु ८।३१७; पद्म० ६।११२।२६; स्कन्द—१।२।३३।१४; २।४।३०।१२-३, ४३; कुलार्णवतन्त्र ११।१०९।

३. मार्क० १९।७१-३; बृहत्पराशरस्मृति ६।४७।

४. इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। ऋ० १०।८५।४२; अथ० १४।१।२२।

५. (क)—आ जरसाय समनक्त्वर्यमा। ऋ० १०।८५।४३; तु० अथर्व० १४।२।४०।
(ख)—समर्यमा सं भगो नो निनीयात् सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः।
ऋ० १०।८५।२३।

६. सं जास्पत्यं सुयममाकृणुष्व। ऋ० ५।२८।३; वाज सं० ३३।१२; अथर्व० ७।७३।१०।

७. जने मित्रो न दम्पती अनक्ति ...। ऋ० १०।६८।२; अथर्व० २०।१६।२।

८. को दम्पती समनसा वि यूयोदध। ऋ० १०।६५।१२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नारी के द्वारा पति के त्याग का एक सन्दिग्ध संकेत ऋग्वेद में है।[१] त्वचागत दोष (कुष्ठ) के कारण पति की द्वेष-पात्र नारी द्वारा उसे छोड़ कर चले जाने का भी इसमें उल्लेख है।[२] अथर्ववेद (१०।१।३) में पति द्वारा परित्यक्त नारी के अपने बान्धवों के पास जाने का उल्लेख है।[३] संभवतः पत्नी के किसी दोष के कारण ही ऐसी स्थिति आती थी। इनके अतिरिक्त संहिताओं में दाम्पत्य जीवन के विघटन के कोई उल्लेखनीय उद्धरण नहीं हैं। धर्मसूत्रों और स्मृतियों में वन्ध्या, गर्भपातिनी, मृतवत्सा तथा अप्रिय-वादिनी नारी के त्याग[४] तथा अधिवेदन[५] की प्रवृत्ति लक्षित होती है, किन्तु वैदिक संहिताओं में ऐसी स्थिति का कोई उल्लेख नहीं है। अथर्ववेद में नारी के वन्ध्यात्व दोष के निवारण (अथर्व० ३।२३।१), उसे प्रजनन-क्षम बनाने (अथर्व० ३।२३।६) एवं उसे मृत-वत्सा तथा गर्भपातिनी बनाने वाले दोषों या राक्षसादि तत्वों को नष्ट करके उसके गर्भाशय को गर्भधारण योग्य बनाने के लिए मन्त्रौषध के विधान भी (अथर्व० ८।६।६ में) प्राप्त होते हैं। अप्रियवादिनी नारी दाम्पत्य जीवन को अभि-शापमय बनाकर विघटन के कगार पर पहुँचा देती है। इस तथ्य से सुपरिचित ऋषि ने अथर्ववेद के सौमनस्य सूक्त में आशंसा की है कि पत्नी पति के लिए मधुर और शान्तिपूर्ण वचन बोलेगी।[६] इस तरह नारी के उपर्युक्त दोषों को मन्त्रौषध प्रयोग से दूर किए जाने से उसके त्याग की स्थिति नहीं आ पाती थी। घर से पलायित स्त्री को पुनः लौटा लाने के लिए अथर्ववेद (६।७७।१-३) के प्रतिष्ठापन-सूक्त में प्रदत्त मन्त्रानुष्ठान का प्रयोग किया जाता था।[७] अथर्ववेद (३।२५।५) के ही एक अन्य प्रयोग में पुरुष मन्त्रौषध प्रयोग से नारी को उसके माता-पिता के घर से आकृष्ट कर अपने घर लाता है तथा उसे अपने मनोनुकूल आचरण में निरत करते हुए अपने चित्त में अधिष्ठित बनाता है। अथर्ववेद (६।१३९।५) से ही यह भी विदित होता है कि दम्पती में शारीरिक-सम्बन्ध विच्छिन्न होने पर मन्त्रौषध प्रयोग से उनका

---

१. असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत। अजोषा वृषभं पतिम्। ऋ० १।९।४; अथर्व० २० ७१।१०।

२. द्र०—ऋ० ८।९१।४ तथा इस पर वेङ्कटमाधव और सायण का भाष्य।

३. जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु। अथर्व० १०।१।३।

४. अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत्।
मृतप्रजां पञ्चदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम्॥ बौ० ध० सू० २।२।४।६।

५. वन्ध्याऽष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥ मनु ९।८१।

६, जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्। अथर्व० ३।३०।२।

७. द्र०—कौशिकसूत्र ३६।५-६ तथा सायण-भाष्य (अथर्व० ६।७७।१ के पूर्व)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुनर्मिलन कराया जाता था। वैदिक साहित्य के पश्चात् ऐसे प्रयोग प्रायः नहीं मिलते। बौद्ध-साहित्य तथा पौराणिक साहित्य में पत्नी के त्याग के उल्लेख हैं। किन्तु प्रायः किसी अपराध के कारण ही उसका त्याग किया जाता था। श्रीमद्भागवत (५।१४।३७) में पूर्वजन्म के संस्कारों (वासना) के प्रभाव से विवाह करने अथवा छोड़ने के वचन में पत्नी के त्याग की प्रवृत्ति सामान्य जन विषयक नहीं, अपितु विरक्त जन विषयक है, क्योंकि प्रायः विरक्त व्यक्ति ही घर-द्वार और स्त्री का मोह छोड़कर प्रव्रजित होते थे। इस तरह प्राचीन साहित्य में दाम्पत्य-जीवन के विघटन के उल्लेख नाम-मात्र को ही हैं। सामान्यतः सभी दम्पती यावज्जीवन एक दूसरे का साथ निभाते थे।

मनु (९।१०१-२) ने यह धर्म विहित किया है कि दम्पती आजीवन साथ रहें, कभी वियुक्त न हों। पुराणों में नर-नारी को पुरुष और प्रकृति का स्वरूप तथा उनके साहचर्य को सनातन बतलाया गया है।[1] सामाजिक धारणा भी दम्पती को संयुक्त रखने के पक्ष में थी। महाकवि कालिदास कृत पुरूरवोर्वशीयम् नाटक में पुरूरवा तथा उर्वशी के द्वारा प्रणाम किये जाने पर नारद ने उन्हें कभी वियुक्त न होने का आशीर्वाद दिया है।[2] शुक्रनीति (३।१०-१३) में दम्पती में मतभेद या अलगाव उत्पन्न करना वर्जित बतलाया गया है। मार्कण्डेयपुराण (१४।४६-७) के अनुसार दम्पती में वैमनस्य उत्पन्न करने या उन्हें पृथक् करने वाले को नरक में आरे से दो टुकड़ों में चीरा जाता है। मार्कण्डेयपुराण (६७।३६) में एक ब्राह्मणी ने यह माना है कि उसके द्वारा पूर्वजन्म में किसी दम्पती को वियुक्त करने के फलस्वरूप उसे इस जन्म में वियोग सहना पड़ा है। स्कन्दपुराण (३।४।१६।२१-२, मोर संस्करण) में बतलाया गया है कि एक स्त्री ने पूर्वजन्म में अपने पति को ज्येष्ठपत्नी से पराङ्मुख किया था, फलतः वह पुनर्जन्म में विधवा हुई थी; जो स्त्रियाँ पति-पत्नी को एक दूसरे के प्रति विरक्त बनाती हैं वे २१ जन्मों तक कौमारवैधव्य को प्राप्त होती हैं। सामान्यतः दम्पती गृहस्थाश्रम में तो आजीवन साथ रहते ही थे, वानप्रस्थाश्रम में भी एक साथ जाते थे। धर्मशास्त्रों के अनुसार पुरुष एकाकी अथवा पत्नी के साथ भी वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर सकता था।[3] कहीं-कहीं तो पत्नी के साथ ही वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश का विधान

---

१. नरस्तु पुरुषः प्रोक्तो नारी प्रकृतिरुच्यते।
रमते तेन वै सार्द्धं न मुक्ता हि कदाचन॥ पद्म २।८।५३।

२. अविरहितौ दम्पती भूयास्ताम्!-कालिदासग्रन्थावली, पृ० ५२२।

३. द्र०—आप० ध० सू० २।९।२२।८-९; आदिपर्व ६१।४; मनु ६।३; याज्ञ० ३।४५; विष्णुस्मृति ९४३; शंख ६।२; लघुहारीत ५।२; बृहत्पराशरस्मृति १२।६९; अग्नि १६०।४; कूर्म उ० २।१-२; गरुड पू० १०२।१; नारद पू० २७।८५; ब्रह्म ११४।३६; भाग० ११।१८।१; विष्णुपुराण ३।९।१८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हैं।[१] सपत्नीक वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले महापुरुषों में स्वायंभुव मनु[२] महाराज स्वरोचि,[३] नाभि,[४] पृथु,[५] खनित्र,[६] करन्धम,[७] नरिष्यन्त,[८] दिलीप,[९] ययाति,[१०] धृतराष्ट्र[११] तथा पाण्ड्यराज मलयध्वज[१२] जैसे राजा और अगस्त्य,[१३] सौभरि[१४] आदि महर्षि उल्लेखनीय हैं। हर्षकृत नागानन्दम् नाटक [की प्रस्तावना] में नटी का शशुर अपनी पत्नी सहित वन को जाता है। इस तरह हम पाते हैं कि दम्पती गृहस्थाश्रम में तथा वानप्रस्थाश्रम में भी आजीवन साथ रहते थे।

वैदिक काल से ही दम्पती का साहचर्य सम्बन्ध लोकलोकान्तर और जन्मजन्मान्तर व्यापी माना जाता था। अथर्ववेद (१२।३।३) में दम्पती को उद्बोधित करते हुए कहा गया है कि वे इस लोक में मिलकर रहें, देवमार्ग (स्वर्ग) में मिलकर जायं और यम के राज्य में भी मिलकर जायं। पुरुष स्वर्ग में भी पत्नी और पुत्रों के साथ रहने की कामना करता था।[१५] अथर्ववेद (१२।३।१-२) में यह विश्वास व्यक्त किया गया है कि स्वर्गौदन-सम्पादन की विधि में पुरुष के साथ मृगचर्म में उसकी पत्नी के बैठने पर वे दोनों यम के राज्य में भी समान वय वाले होते हैं और मृत्यु के पश्चात् दम्पती के शरीरों को अग्नि के द्वारा दग्ध किये जाने पर वे स्वर्गलोक में पूर्ववत् आकृति ग्रहण करते हैं। शतपथ ब्राह्मण (५।२।१।१०) में कहा गया है कि पति द्वारा स्वर्गारोहण हेतु आहूत किये जाने पर पत्नी भी अपनी सहमति व्यक्त करती है।

बृहदारण्यकोपनिषत् (१।४।४) में नर-नारी मिथुन के क्रमशः विभिन्न पशु-योनियों में आविर्भाव की कल्पना दम्पती के जन्म-जन्मान्तरीय सम्बन्ध की मूल-भावना पर आधारित है। रामायण (२।२६।१७) में सीता ने कहा है कि मैंने ब्राह्मणों के मुख से सुना है कि माता-पिता अपनी कन्या जलोत्सर्ग पूर्वक जिस वर को देते हैं वह परलोक में भी उसी की होती है। महाभारत (आदिपर्व ६८।४६) में पाणिग्रहण संस्कार से प्राप्त भार्या को पति की इहलोक तथा परलोक की भी सहचारिणी बतलाया गया है। पतिव्रता नारी इहलोक तथा परलोक में भी पति की सहचारिणी बनती है। पति के पूर्व दिवङ्गत होने पर वह परलोक में उसकी प्रतीक्षा करती है और यदि पति पहले दिवङ्गत होता है तो वह बाद में जाकर उसे प्राप्त करती है (आदिपर्व ७४।४५-६)। मनु (९।२९, तथा

---

१. संवर्तस्मृति ९८। २. भाग० ८।१।७। ३. मार्क० ६३।४१।
४. भाग० ५।४।५। ५. वही० ४।२३।३। ६. मार्क० ११५।१६।
७. मार्क० १२५।३३। ८. वही, १३१।८। ९. रघु० ३।७०।
१०. कूर्म पु० २२।११; लिङ्ग पु० ६७।२४।
११. भाग० १।१३।२९, ५०। १२. वही, ४।२८।३३-४३।
१३. मत्स्य ६१।१७। १४. भाग० ९।६।५३; विष्णु ४।२।१२९।
१५. अथर्व० १२।३।१७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उनके टीकाकारों में से कुल्लूक, राघवानन्द और गोविन्दराज) ने पति द्वारा अर्जित स्वर्गलोक को पतिव्रता पत्नी द्वारा भी प्राप्त करने की बात करके दम्पती के लोक-लोकान्तर व्यापी साहचर्य को स्वीकार किया है।

संभवतः अति प्राचीन काल में पति की सहचारिणी बने रहने के ध्येय से ही पत्नी मृत पति की चिता में आरोहण करके सती हो जाती थी। ऋग्वेद (१०।१८।८, द्र० बृहद्देवता ७।१३) तथा अथर्ववेद (१८।३।१-२) में मृत पति की चिता के समीप लेटने वाली विधवा को देवर या पति-स्थानीय किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उठाकर घर लाने के उल्लेख उसी प्राचीन प्रथा के प्रतीक रूप में अनुपालन के सूचक हैं। किन्तु यह प्रथा परवर्ती काल में भी प्रचलित थी। अग्निपुराण (१५६।७) के अनुसार अनुमरण करने पर भी पत्नी के अतिरिक्त अन्य कोई बान्धव मृतपुरुष को नहीं पा सकता, क्योंकि अन्य सभी का परलोक का मार्ग बदल जाता है। पद्मपुराण (६।२१३।-२६) के अनुसार मृत पति का अनुगमन करने वाली नारी पापिनी होने पर भी उसके साथ स्वर्ग जाती है। ये वचन भी दम्पती के लोक-लोकान्तर व्यापी साहचर्य में विश्वास के सूचक हैं।

दिव्य-दम्पतियों तथा मानव-दम्पतियों के जन्म-जन्मान्तरीय सम्बन्ध के अनेक उल्लेख पुराणों में प्राप्त होते हैं। लक्ष्मी प्रत्येक जन्म में विष्णु को पति रूप में प्राप्त करती है।[१] वह विष्णु के प्रत्येक अवतार में उनकी सहधर्मिणी बनती है।[२] वह विष्णु के देव विग्रह के साथ देवी तथा उनके मानुष रूप धारण करने पर मानुषी रूप में अवतीर्ण होती है।[३] सती ने पुनर्जन्म में पार्वती रूप में जन्म लेकर शिव को पति रूप में प्राप्त किया था।[४] पुराणों में अनेक नारियों द्वारा अपने पुनर्जन्म को प्राप्त पतियों को पुनः प्राप्त किये जाने का उल्लेख है।[५] तपश्चर्यारत राजा स्वराष्ट्र को बाढ से बचाने वाली हरिणी ने बतलाया था कि उनकी दिवङ्गत अग्रमहिषी ही उस रूप में उत्पन्न होकर उन्हें मिली है।[६] नाटककार भास ने भी दम्पती के पुनर्जन्म में [मिलन पर] विश्वास व्यक्त किया है।[७] दण्डी के दशकुमारचरितम् में एक पति तथा उसकी पाँच पत्नियों के तीन जन्मों के सम्बन्ध की चर्चा है।[८] राजकुमार राजवाहन तथा राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी को एक दूसरे को देखते ही स्मरण हो आया कि वे पूर्व-

---

१. विष्णु १.९।१४१।

२. वही, १।६।१४२-४; स्कन्द ३।१।२२।१६-६।

३. वही, १।६।१४५; स्कन्द ३।१।२२।१६-७। ४. ब्रह्मवै० १।६।१५।

५. भाग० १०।५१७-८; पद्म ६।६१।२१-४३; विष्णु ३।१८।५२-८।

६. मार्क० ७१।१-२१। ७. स्वप्नवासवदत्तम् ६।११।

८. दशकु०, उ० पी०, उ० ४, पृ० ११६-१२०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जन्म में भी दम्पती थे।[१] बाणभट्ट ने कादम्बरी और चन्द्रापीड तथा महाश्वेता और पुण्डरीक (वैशम्पायन) के जन्म-जन्मान्तरीय सम्बन्ध की चर्चा की है।[२] कथा-सरित्सागर (४।२।४७-५२) के अनुसार जीमूतवाहन ने मलयवती को देखते ही कहा था कि यह तो पूर्वजन्म में भी मेरी पत्नी थी। एक द्विज तथा उसकी दो पत्नियों ने जराजीर्ण होने पर अगले जन्मों में भी दाम्पत्य भाव बने रहने की प्रार्थना के साथ अग्निप्रवेश किया था। फलस्वरूप वे अगले दो जन्मों में भी दम्पती बने थे।[३] दम्पती द्वारा स्वधर्मपालन तथा मर्यादा का अतिक्रमण न करने पर ही उनका सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर तक अविच्छिन्न रह सकता था। गरुडपुराण (उ० १६।५९) के अनुसार पति के जीवित रहते अथवा उसके दिवङ्गत होने पर व्यभिचार करने वाली नारी पुनर्जन्म में उसे नहीं पा सकती। इसीलिए महाकवि माघ ने यह माना है कि पतिव्रता पत्नी ही मनुष्य को पुनर्जन्म में भी प्राप्त होती है।[४]

वैदिक काल के पश्चात् भारतीय समाज में पति-पत्नी में गुरु-शिष्य भाव के सम्बन्ध की कल्पना कर ली गयी थी, क्योंकि तब पति को ही नारी का गुरु माना जाने लगा था।[५] नारी-शिक्षा का प्रचलन नगण्य हो जाने तथा कन्या का छोटी उम्र में विवाह का प्रचलन होने पर समाज में व्यावहारिक दृष्टि से यह उचित समझा गया कि अन्य किसी पुरुष की अपेक्षा पति ही नारी का सर्वोत्तम गुरु हो सकता है।[६] कन्या को अन्य शिक्षक से शिक्षा दिलाने पर उसका उसके साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित होने की आशंका भी हो सकती थी। प्रद्योत महासेन द्वारा अपनी पुत्री वासवदत्ता को वीणा-वादन की शिक्षा देने के लिए नियुक्त राजा उदयन के विषय में उसके मन्त्री ने कहा था कि वह वासवदत्ता को अपनी पत्नी बनाये विना शिक्षा नहीं देंगे।[७] नारदपुराण (२८।६२-३) के अनुसार विवाह-संस्कार में जो समङ्गीकरण (?) किया जाता है उसके प्रभाव से वर-वधू में गुरु-शिष्य भाव का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

---

१. वही, उ० ५, पृ० ११४-७। २. कादम्बरी उ० भा०, पृ० १९०।

३. कथा० १२।६।४१७-४३३। ४. शिशु० १।७१।

५. (क) पतिरेव गुरुः स्त्रीणां। वृद्धगौतम स्मृति १२।५; ब्रह्मवै० ४।६६।६६।
(ख) पतिरेको गुरुः स्त्रीणां……। कूर्म पू० १२।४६।

६. (क) गुरुविप्रेष्टदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः।
विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथा प्रियः।। ब्रह्मवै० २।४२।३१।
(ख) न गुरुः स्वामिनः परः। ब्रह्मवै० १।१५।१५।

७. भरतानां कुले जातो वत्सानामूर्जितः पतिः।
अकृत्वा दारनिर्देशमुपदेशं करिष्यति।। प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् ४।१७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वैदिक काल के पश्चात् पति को पत्नी का स्वामी भी कहा जाने लगा था। मनु ने कहा है कि दाता द्वारा कन्या का दान कर दिये जाने पर उसका स्वामित्व पति को प्राप्त हो जाता है।[१] देवीभागवतपुराण (५।१७।१८) के अनुसार विवाह-संस्कार में वधू अग्नि के समक्ष पति के अधीन रहने का वचन देती है। भास[२] और कालिदास[३] भी पति को ही नारी का स्वामी बतलाते हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण में 'स्वामी' को पति के पर्यायवाचक रूप में गिनाया गया है।[४] बृहत्पराशरस्मृति के अनुसार पति जीवितावस्था में ही नहीं, दिवङ्गत हो जाने पर भी पत्नी का स्वामी बना रहता है।[५] पति को स्वामी मानने के कारण एक तो उसकी सेवा करना पत्नी का कर्तव्य माना गया[६] और दूसरे पत्नी तथा उसके द्वारा अर्जित धन पर भी पति का ही स्वामित्व माना गया।[७] यद्यपि स्त्रीधन पर पत्नी का ही अधिकार रहता था और अनापत्काल में पति उसे नहीं ले सकता था,[८] किन्तु दुर्भिक्ष आदि आपत्कालों में उसका धन लेने पर वह उसे लौटाने को बाध्य नहीं था (यज्ञ० २।१४७)। दम्पती में ऐसे सम्बन्ध की कल्पना के कारण कदाचित् कोई पति अपनी पत्नी का दान या विक्रय कर सकता था।[९] अतः इस प्रवृत्ति को नियन्त्रित करने के ध्येय से मनु ने यह विधान किया था कि पति के द्वारा विक्रय या त्याग करने पर भी पत्नी उससे पृथक् नहीं होती[१०] अर्थात् वह तब भी उसकी पत्नी बनी ही रहती है और उनका दाम्पत्य-सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होता। पति को पत्नी के दान या विक्रय का अधिकार नहीं था। याज्ञवल्क्य, बृहस्पति आदि आचार्यों ने पत्नी का दान वर्जित बतलाया है।[११] नारद, दक्ष आदि ने उसे आपत्काल में भी अदेय

---

१. प्रदानं स्वाम्यकारणम्। मनु ५।१५२; कुल्लूक, राघवानन्द, मणिराम और गोविन्दराज ने 'प्रदान का अर्थ 'वाग्दान' किया है।

२. भर्तृनाथा हि नार्यः।-प्रतिमानाटकम् १।२५।

३. उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी। अभि० शा० ५।२६।

४. पतिः प्रियश्च भर्ता च स्वामी कान्ते च वर्तते। ब्रह्मवै० १।१०।१४७।

५. जीवन्नपि मृतो वापि पतिरेव प्रभुः स्त्रियाः।बृहत्पराशरस्मृति ६।५०।

६. पद्म २।४७।५६; स्कन्द २।७।१७।५५-६; ब्रह्मवै० ४।५७।१८-९।

७. धनजीवितयोः स्वामी भर्ता लोकेषु गीयते। नारद उ० ३०।५८; द्र०-उद्योगपर्व ३३।६४; मनु० ८।४१६; मत्स्य ३१।२२।

८. कात्यायन, ९०६ (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ६८४); देवल (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ६८५ में उद्धृत)।

९. द्र०—कात्यायन, ६३८-९ (कृत्यकल्पतरु, पृ० ३७४-५ में उद्धृत); राज० ४।३६; हिन्दूपरिवारमीमांसा, पृ० ८३-८।

१०. न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते। मनु ९।४६।

११. याज्ञ० २।१७५; बृहस्पतिस्मृति (व्य० का०) १४।२; अग्नि २५७।२६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बतलाया है।[१] अतः पति स्वामी होते हुए भी पत्नी को दासीवत् नहीं मानता था। वह उसके लिए प्रेयसी तो थी ही, साथ ही जैसा कि कालिदास ने माना है—गृहिणी, सचिव, सखा, शिष्या आदि सभी कुछ थी (रघु० ८।६७)। वैदिककाल से ही पत्नी को पुरुष की मित्र (सखा) भी माना गया है।[२] इतिहास-पुराण में भी पत्नी पुरुष की मित्र बतलाई गई है।[३] विशेषतः कलियुग में पत्नी ही पति की मित्र बतलाई गई है।[४]

यह स्मरणीय है कि गुरुशिष्यभाव, स्वामिसेवकभाव तथा सख्यभाव से दाम्पत्य-भाव सर्वथा भिन्न है, केवल सादृश्यवशात् ही इसे ऐसा बतलाया गया है। व्यावहारिक दृष्टि से पति-पत्नी में गुरु-शिष्यभाव, सेव्य-सेवकभाव या सख्यभाव की प्रकल्पना दाम्पत्य-सम्बन्ध को स्थायित्व प्रदान करने में सहायक हो सकती है। पति-पत्नी की अन्योऽन्याश्रयता और साहचर्य-सम्बन्ध की भी दाम्पत्य को स्थायित्व प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। किन्तु दाम्पत्य-सम्बन्ध को अटल तथा अविच्छेद्य बनाने में दम्पती में आध्यात्मिक दृष्टि से अभेद की कल्पना तथा उनके लोक-लोकान्तरीय और जन्म-जन्मान्तरीय सम्बन्ध की भावना का सर्वाधिक योगदान रहा है।

२–सहधर्माचरण—

दाम्पत्य जीवन को मर्यादित रखने में सहधर्माचरण की भावना का योगदान भी उल्लेखनीय है। यदि दम्पती का कर्तव्य एकमात्र काम-सन्तुष्टि तक सीमित माना गया होता तो कामोत्तेजना के शान्त हो जाने पर अथवा पति या पत्नी में से किसी एक की काम वासना दूसरे से शान्त न हो पाने पर दाम्पत्य जीवन में विघटन आने लगता। अतः दाम्पत्य-सम्बन्ध के स्थायित्व के लिए काम-वासना की शान्ति के अतिरिक्त कोई अन्य उन्नत, उदात्त और समान लक्ष्य दम्पती के समक्ष होना चाहिए, ताकि वे आजीवन उसकी प्राप्ति के लिए सङ्गठित होकर कर्तव्य परायण रहें। इसीलिए भारतीय संस्कृति में दाम्पत्य को मात्र काम-सम्बन्ध तक सीमित नहीं माना गया और पति-पत्नी के सम्मिलित कर्तव्यों में धर्माचरण किं वा सहधर्माचरण को प्रमुखता दी गई, जिसके फलस्वरूप वे मर्यादित और सङ्गठित रहते थे। वैदिक काल के ऋषि-मुनि आजीवन पत्नी के साथ रहते हुए यजन और तपश्चर्यादि करते थे।[५]

---

१. नारदस्मृति ४।४-५; दक्ष ३।१७-८; स्कन्द १।२।४।५२-३।
२. सखा ह जाया। ऐ० ब्रा० ८।३।१३।
३. आदिपर्व ७४।४१; वनपर्व ३१३।६४, ७२; शान्तिपर्व १४४।१६; पद्म ५।६४।५१। ४. वनपर्व १९०।२०।
५. ऋ० १।१७९।६; ७।१८।२१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋग्वेद से विदित होता है कि दम्पती संयुक्त रूप से अग्नि-सपर्या,[१] यज्ञादि कर्म,[२] सोम-सवन[३] और इन्द्रादि देवों का यजन-स्तवन[४] आदि करते थे। अथर्ववेद में दम्पती को यज्ञादि शुभ कर्मों के प्रवर्तन हेतु बड़े जीवन्त शब्दों में उद्बोधित किया गया है।[५] उन्हें यज्ञादि शुभ कर्मों के संपादन तथा उनके फल का मिलकर भोग करने का उपदेश दिया गया है (अथर्व० १२।३।७-१०)। उनसे कहा गया है कि वे अपनी खिचड़ी अलग न पकावें। पति या पत्नी ने एक दूसरे से अलग छिपा कर जो कुछ पकाया हो उसे एक में मिला कर ही उसका उपभोग करते हुए अपने लिए एक समान लोक की प्राप्ति सुनिश्चित करें।[६] तैत्तिरीय ब्राह्मण (३।७।५) में पति-पत्नी को यज्ञ का धुर्य कहा गया है, जिससे यह सुतरां स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में यज्ञ-संपादन में पति और पत्नी का समान योगदान स्वीकार किया जाता था। वस्तुतः वैदिक यज्ञों में यजमान के साथ उसकी पत्नी की उपस्थिति तो अनिवार्य थी ही, साथ ही उसे अनेक कृत्य भी संपादित करने पड़ते थे।[७] जैसा कि पीछे (द्र०-पृ० ८९, टि० ७) कहा जा चुका है पाणिनि के मतानुसार यज्ञ में पति की सहयोगिनी होने के कारण ही नारी को पत्नी संज्ञा प्राप्त होती थी। जैमिनि ने पूर्वमीमांसा (सूत्र ६।१।१६-२४) में पति-पत्नी को संयुक्त रूप से यज्ञादि के संपादन तथा उनकी फल-प्राप्ति का अधिकारी बतलाया है। वैदिक काल के दम्पती न केवल धर्म-साधन के लिए अपितु जीवन के अन्य सभी कर्तव्यों के लिए भी सङ्गठित रूप से प्रयत्नशील रहते थे। इसीलिए अथर्ववेद (१४।२।३७) में दम्पती को ऋतुकाल में समागम, पुत्रोत्पादन तथा धनार्जन का उपदेश दिया गया है।

वैदिक संस्कृति के परिशिष्ट-साहित्य के रूप में स्वीकार्य सूत्रग्रन्थों में दम्पती के सह-धर्माचरण की ही संस्तुति प्राप्त होती है।[८] तथापि पुरुष-प्रधान समाज को देखते हुए

---

१. ऋ० १।१४४।४; ५।४३।१५।

२. ऋ० २.३९।२ (दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु) की वेङ्कटमाधव कृत व्याख्या 'दम्पती इव सङ्गतौ लब्धयज्ञौ ...' से दम्पती के मिल कर यज्ञ-संपादन की सूचना मिलती है। ३. या दम्पती सुमनसा सुनुत ...। ऋ० ८।३१।५।

४. (क)—वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवः....। ऋ १।१३१।३; अथर्व२०।७२।२।
(ख)—मिथुना या सपर्यतः। ऋ० १।८३।३; अथर्व० २०।२५।३।

५. अन्वारभेथामनुसंरभेथाम् ...। अथर्व० ६।१२२।३; तु० वही, १२।३।७।

६. यद्यज्जाया पचति त्वत् परः परः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तो सह लोकमेकम्॥ अथर्व० १२।३।३९।

७. द्र०—द पोजीशन आफ वूमेन इन वैदिक रिचुअल, पृ० ६१-१२७।

८. द्र०—पीछे, पृ० ११६, टि० १-३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मनु ने कहा है कि वेद में पुरुष के लिए पत्नी के साथ मिल कर धर्माचरण करने का विधान है।[१] महाभारत में सहधर्माचरण ही दम्पती का धर्म बतलाया गया है।[२] पौराणिक साहित्य एवं स्मृतियों में पति-पत्नी के लिए संयुक्त रूप से ही यज्ञादि धार्मिक कृत्य विहित हैं। एक दूसरे से अलग रहकर धर्माचरण की अनुमति कहीं नहीं दी गई है। कदाचित् पति या पत्नी में से कोई एक दूसरे की अनुपस्थिति में उसकी अनुमति से या उसके प्रतिनिधि रूप में और अपने संकल्प में उसे अपने साथ मानते हुए किसी विशेष नियम, व्रत, पूजन या अनुष्ठान को अकेला भी कर सकता था, किन्तु ऐसा बहुत कम और अपवाद रूप में ही होता था। पुरुष पत्नी के साथ ही श्रौत-स्मार्तादि सभी धार्मिक कृत्यों को कर सकता था।[३] पत्नी के विना वह इनके सम्पादन का अधिकारी ही नहीं होता था।[४] पत्नी के विना किया गया पुरुष का धर्म निष्फल बतलाया गया है।[५] पद्मपुराण (२।५६।८, २५) में पत्नी को साथ न ले जाने वाले पुरुष की तीर्थ-यात्रा को भी निष्फल बतलाया गया है। ऐसे पुरुष को चोर बतलाया गया है जो पत्नी के होते हुए भी पितरों के श्राद्ध में उसके द्वारा पकाये हुए अन्न से पिण्डदान नहीं करता (पद्म २।५६।२७, ३१)। इस प्रकार पुरुष के लिए यज्ञ, दान, व्रत, पूजा, तीर्थयात्रा तथा श्राद्ध आदि किसी भी धार्मिक कृत्य में पत्नी को साथ रखना नितान्त आवश्यक था। नारी भी पुरुष के साथ ही धर्माचरण कर सकती थी। वह पति को पृथक् या उपेक्षित रख कर स्वतन्त्र रूप से यज्ञ, व्रत, उपवास आदि कुछ भी नहीं कर सकती थी।[६] वह पति की अनुमति से व्रतोपवास आदि कर सकती थी। यह कहा गया है कि पति की अनुमति लिए विना व्रतोपवास आदि करने वाली नारी पति की आयु क्षीण करती है तथा स्वयं नरक में गिरती है।[७] रामायण[८] और महाभारत[९] में नारी को पति की सहधर्मचरी कहा गया है, जिसका तात्पर्य है कि नारी पति के साथ ही धर्मा-चरण की अधिकारिणी होती थी।

१. तस्मात् साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः। मनु ९।९६।
२. दम्पत्योरेष वै धर्मः सहधर्मः कृतः शुभः। अनु० पर्व १४६।४०।
३. द्र०—पीछे, पृ० ७४, टि० ८। ४. द्र०—पीछे, पृ० ७४, टि० १०।
५. (क) तस्माद् भार्यां विना धर्मः पुरुषस्य न सिद्धयति। पद्म २।५९।३३।
(ख) भार्यां विना च यो धर्मः स एव विफलो भवेत्। पद्म २।५९।३४।
६. नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्। मनु ५।१५५; विष्णुस्मृति २५।१५; तु० पद्म १।३४।७४; मार्क० १६।६२।
७. विष्णुस्मृति २५।२६; अत्रिस्मृति, श्लोक १३६-७; पद्म १।३४।७६-७; शिव २।३।५४।४४; स्कन्द ४।४।३५।
८. रामा० १।७३।२६, इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।
९. सहधर्मचरीभर्तुर्भवत्यग्निसमीपतः। अनु० १४६।३४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यह उल्लेखनीय है कि धर्म शब्द अपने मूल और व्यापक अर्थ में व्यक्ति एवं समाज के लौकिक तथा पारलौकिक जीवन समेत समस्त प्राणियों के हित में विहित समस्त मर्यादित मानवीय आचरण तथा कर्तव्यों और विधियों का बोधक है। अतः दम्पती के सहधर्माचरण का तात्पर्य उनके द्वारा दाम्पत्य जीवन के समस्त कर्तव्यों का मिलकर सम्पादित करना ही है। धर्म शब्द अपने संकुचित अर्थ में आह्निक-आचार, देव-पितृ-पूजन, व्रत-उपवास, दान, जप-तप, यज्ञ-याग आदि का बोधक है। अस्तु, धर्म का जो भी तात्पर्य हो, उसके सम्पादन में पति-पत्नी के लिए एक दूसरे का सहयोग अपेक्षित और अनिवार्य माना जाता था। महाभारत (अनु० पर्व ४६।१०) में कहा गया है कि पुरुष का धर्म, रति (काम), भोग और सेवा-शुश्रूषा आदि पत्नी पर ही निर्भर है। मार्कण्डेय-पुराण में कहा गया है कि पत्नी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि में पति की सहायक होती है।[१] नारी भी त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) की प्राप्ति पति के साथ ही कर सकती है।[२] ऐसी स्थिति में मार्कण्डेयपुराण का यह उपदेश बहुत कुछ माने रखता है कि दम्पती वेदविहित धर्म का अनुपालन सहर्धामता से करें।[३] व्यास स्मृति में उद्बोधित किया गया है कि दम्पती एकचित्त होकर समान व्रत तथा समान आचरण करते हुए अहर्निश धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि में संलग्न रहें।[४] संभवतः प्राचीन आचार्यों के ऐसे उद्बोधनों से ही पति-पत्नी के मन में ऐसा प्रभाव पड़ता था कि वे जीवन के सारे कर्तव्यों को संगठित रूप से और धर्म-भावना से ही करते थे। सहधर्माचरण की भावना या धर्म-भावना से कर्तव्यों के निर्वाह की संगठित प्रवृत्ति का दाम्पत्य-सम्बन्ध को दृढ और मर्यादित बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

३. दाम्पत्य-प्रेम—

सुखी दाम्पत्य जीवन हेतु दम्पती में पारस्परिक सौमनस्य तथा प्रेम नितान्त आवश्यक है। प्राचीन भारत में दाम्पत्य जीवन के मर्यादित और सुखी होने का एक प्रमुख कारण यह भी था कि अधिकांश दम्पती परस्पर अनुरक्त और सन्तुष्ट थे। पति के लिए पत्नी ही प्रिया किं वा प्रियतमा थी।[५] कोई अन्य नारी उसकी प्रेमिका नहीं होती थी। स्त्री के लिए भी पति ही प्रिय[६] और सर्वप्रिय होने से प्रियतम था।[७] ऋग्वेद

---

१. धर्मार्थकामसंसिद्ध्यै भार्या भर्तुः सहायिनी ।मार्क० १९।७०।

२. द्र०—पीछे, पृ० ८८ टि० ७।

३. दम्पत्योः सहधर्मेण त्रयीधर्ममवाप्नुयात् । मार्क० २७।७६ ।

४. सम्यग्धर्मार्थकामेषु दम्पतिभ्यामहर्निशम् ।
एकचित्ततया भाव्यं समानव्रतवृत्तितः ॥ व्यासस्मृति २।१८ ।

५. सर्वेभ्यः प्रेयसी कान्ता प्रिया तेन प्रकीर्तिता । ब्रह्मवै० १।२४।२१ ।

६. ब्रह्मवै० १।१०।४७ । ७. देवी भाग० ९।४८।७६-८०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(१।८२।५) में हम पाते हैं कि इन्द्र की पत्नी उसकी गृहिणी ही नहीं, अपितु हृदयाह्लादिनी प्रिया भी है। परस्पर प्रगाढ अनुराग रखने वाले अनेकानेक दिव्य, दिव्यादिव्य तथा मानव दम्पतियों के उल्लेख वैदिक तथा पौराणिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। यही नहीं, हमारे प्राचीन साहित्य में पशु-पक्षियों और कीट-पिपीलिकादिक में भी आदर्श दाम्पत्य प्रेम का चित्रण प्राप्त होता है।[1] दिङ्नाग ने दिव्य दम्पतियों में उमा-महेश्वर तथा मानव-दम्पतियों में सीता और राम का पारस्परिक स्नेह प्रस्तर-स्तम्भों में उत्कीर्ण करने योग्य बतलाया है।[2] भारतीय साहित्य में यह तथ्य व्यक्त किया गया है कि विवाहोपरान्त पति-पत्नी में पारस्परिक प्रेम उत्तरोत्तर बढता जाता है।[3] वात्स्यायन ने (कामसूत्र ३।५।२९-३० में) कहा है कि विधिपूर्वक सम्पादित धर्म्य विवाहों का फल दम्पती में अनुराग उत्पन्न करना ही है, अतः पारस्परिक अनुराग से घटित होने वाला गान्धर्व विवाह प्रशंसनीय है। गाथासप्तशती (५।९८) में यह ध्वनित किया गया है कि परस्पर अनुरक्त पति-पत्नी एक-दूसरे से इतने प्रसन्न और सन्तुष्ट रहते हैं कि जगत् के अन्य स्त्री-पुरुषों की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता और न वे कभी किसी अन्य की कामना ही कर सकते हैं। नागानन्द नाटक में यह मनोवैज्ञानिक तथ्य व्यक्त किया गया है कि एक प्रेमी या प्रेमिका में अनुरक्त चित्त को दूसरे में आसक्त नहीं किया जा सकता।[4] वस्तुतः परस्पर अनुरक्त दम्पती कभी भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते, जिस कारण वे सुखी और सन्तुष्ट रहते हैं। संभवतः इसीलिए ब्रह्मवैवर्त पुराण (२।६६।६३) में दम्पती के पारस्परिक प्रेम को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया गया है।

किसी भी देश और काल में सभी पति-पत्नी परस्पर सदा अनुरक्त हों, ऐसा संभव नहीं है। इसी तथ्य को ख्यापित करने के लिए पुराणों में कहा गया है कि किसी पुरुष को अपनी पत्नी प्रिया होती है (पत्नी उसे प्रिय नहीं मानती), तो किसी स्त्री को पति प्रिय होता है (किन्तु वह पति की प्रेमपात्र नहीं होती)। परस्पर अनुरागपूर्ण दाम्पत्य

---

१. अथर्व० १४।२।६४; शान्तिपर्व १४३-१४८ अध्याय; भाग० ११।७।५४-; मत्स्य २०।२८-३७; २०६।१०-३१।

२. कुन्दमाला, अङ्क २, (प्रवेशक), पृ० ६३।

३. (क) गुणाद्रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभिवर्धते (इत्यादि) रामा० १।७७।२७-८।
(ख) अद्वैतं सुखदुःखयोः …(इत्यादि)। उत्तरराम० १।३९।
(ग) स्त्रीपुंसोर्वर्द्धते प्रेम नित्यं तन्नित्यनूतनम्। ब्रह्मवै० ४।१३०।३१।
(घ) यथा यथा च दम्पत्योः प्रौढिं परिचयो ययौ।
तयोस्तथा तथा प्रेम नवीभावमिवाययौ॥ कथा० २।६।६३।

४. किन्तु न शक्यते चित्तमन्यतः प्रवृत्तमन्यतः प्रवर्तयितुम्। नागा० अङ्क२, पृ० ७१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अति दुर्लभ है और कुछ धन्य दम्पतियों में ही परस्पर समान अनुराग हो पाता है।[१] दक्षस्मृति में कहा गया है कि परस्पर अनुरागपूर्ण दाम्पत्य स्वर्ग में भी दुर्लभ है। पति-पत्नी में जब कोई एक दूसरे पर अनुरक्त रहता है और दूसरा उससे विरक्त रहता है तब दाम्पत्य जीवन अत्यन्त कष्टकर हो जाता है।[२] महाकवि कालिदास को ऐसा दाम्पत्य अभीष्ट नहीं है जिसमें एक तो प्रेमरहित हो और दूसरा प्रेमयुक्त हो। महाकवि की दृष्टि में परस्पर अनुराग रखने वाले युगलों का ही विवाह होना चाहिए, ऐसे युगलों का विवाह न हो सकने की स्थिति में मर जाना अधिक अच्छा है।[३] भविष्यपुराण में प्रेम के चार हेतु बतलाये गये हैं-कभी-कभी यह दर्शनमात्र से उत्पन्न हो जाता है, कभी वार्तालाप से, कभी उपकार से तो कभी सहवास से[४]। ये चार हेतु सामान्य प्रेम के हैं। दाम्पत्य भाव की दृष्टि से भारतीय संस्कृति में प्रीति चार प्रकार की बतलाई गई है—नैसर्गिकी (या आभिमानिकी), आभ्यासिकी, संप्रत्ययात्मिका और वैषयिकी।[५] नर-नारी में पारस्परिक आकर्षण की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण दम्पती में नैसर्गिकी प्रीति हो सकती है। प्रायः पति के साहचर्य से स्त्री का चित्त उसी के समान हो जाता है।[६] समान चित्त वालों में प्रेम होता ही है। अतः दम्पती में साथ-साथ रहने से आभ्यासिकी प्रीति हो सकती है। कम उम्र में विवाह होने से दम्पती में संप्रत्ययात्मिका प्रीति हो सकती है। एक साथ मिलकर विषयोपभोग करने से दम्पती में वैषयिकी प्रीति हो सकती है। यदि इनमें से कदाचित् किसी भी प्रकार की प्रीति दम्पती में न रह जाय तो दाम्पत्य जीवन का निर्वाह कठिन हो सकता है।

परस्पर विरुद्ध मन वाले दम्पती में सौमनस्य तथा प्रेम का अभाव होने से दाम्पत्य जीवन कष्ट-प्रद, भारस्वरूप तथा नीरस हो जाता है। कालिदास ने परस्पर विरुद्ध दम्पती के जीवन को अनुशयपूर्ण बतलाया है।[७] प्रेमयुक्त दम्पती में भी कभी-कभी किसी

---

१. अभीष्टा कस्यचित् कान्ता कान्तः कस्याश्चिदीप्सितः।
परस्परानुरागाढ्यं दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ॥.....
.....परस्परानुरागो हि धन्यानामेव जायते ॥
मार्क० ६२।१०-११; स्कन्द ५ २।६१।१७-८।

२. स्वर्गेऽपि दुर्लभं ह्येतदनुरागः परस्परम्।
रक्त एको विरक्तोऽन्यस्तस्मात् कष्टतरं नु किम् ॥ दक्षस्मृति ४।६।

३. मालविकाग्निमित्रम् ३।१५।

४. दर्शनादथ संभाषादुपकारात् सहासनात्।
चतुर्धा स्नेहनिर्बन्धो नृणां सञ्जायतेऽधिकः ॥ भविष्य ४।७।२४।

५. कामसूत्र २।१।२।१; मानसोल्लास ५।१६।९८४; अनङ्गरङ्ग ४।२५।

६. स्त्रीणां हि साहचर्याद् भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि। वेणीसंहार १।२०।

७. उभौ विरोधक्रियया विभिन्नौ जायापती सानुशयाविवास्ताम्। रघु० १६।४५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बात को लेकर अन्तर्विरोध अथवा कलह की स्थिति आ सकती थी। ऐसे दम्पती को मिलाने में उनका मित्र ऋग्वैदिक काल से ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है।[१] उत्तररामचरित नाटक (४।१४) के अनुसार राजा दशरथ तथा कौशल्या के द्वारा एक दूसरे के विषय में उपालम्भ किये जाने पर उनके समधी राजा जनक उनमें सामञ्जस्य स्थापित करते थे। दम्पती का पारस्परिक मनोमालिन्य तथा अन्तर्विरोध प्रायः समयानुसार स्वतः शान्त हो जाता है। संभवतः इसीलिए नारद ने यह विधान किया है कि दम्पती परस्पर ईर्ष्या, असूया तथा रागहेतुक कलह के निर्णय हेतु ज्ञातियों अथवा राजा के पास न जांय। (नारद स्मृ०, स्त्रीपुंस० १२।८९)। शुक्रनीति (३।६३) में दम्पती के कलह में साक्ष्य देना भी वर्जित बतलाया गया है। इससे विदित होता है कि प्राचीन आचार्य दम्पती के कलह और अन्तर्विरोध के प्रशमन हेतु सामाजिक और प्रशासनिक हस्तक्षेप को उचित नहीं समझते थे। वे दाम्पत्य जीवन को प्रेमपूर्ण बनाये रखने हेतु धार्मिक कृत्यों के अनुष्ठान आदि को विशेष महत्त्व देते थे।

दाम्पत्य जीवन को प्रेमपूर्ण बनाने में विवाह संस्कार की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। ऋग्वेद[२] एवं अथर्ववेद[३] के विवाहसूक्तों के मन्त्रों में दम्पती का जीवन प्रेमपूर्ण बनाने हेतु देवों से प्रार्थना की गई है। विवाह संस्कार के अनेक कृत्यों का उद्देश्य वर-वधू में सौमनस्य, सौहार्द तथा प्रेम उत्पन्न करना ही था। ऋग्वेद में अग्नि, जिसका कि विवाह-संस्कार में महत्त्वपूर्ण स्थान है, को दम्पती में सौमनस्य स्थापित करने वाला बतलाया गया है।[४] अथर्ववेद के एक मन्त्र में दम्पती स्वयं यह प्रार्थना करते हैं कि हमारे मन एक साथ मिले रहें।[५] पुरुष के द्वारा अपने तथा पत्नी के हृदय को समान बनाने के उद्देश्य से मन्त्र और औषध का भी प्रयोग किया जाता था।[६] अथर्ववेद के छठें काण्ड के ८९ वें सूक्त का विनियोग कौशिकसूत्र (३६।१०-११) तथा सायण ने दम्पती के प्रीति-संजनन कर्म में जो अनुकूल न हो उसे अनुकूल करने में विहित किया है।[७] इस

१. जने मित्रो न दम्पती अनक्ति··· । ऋ० १०।६८।२; अथर्व० २०।१६।२।
२. सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः। ऋ० १०।८५।२३। तु०—सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व। ऋ० ५।२८।३; वाज० सं० ३३।१२; अथर्व ७।७३।१०।
३. इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती। अथर्व० १४।२।६४।
४. यद् दम्पती समनसा कृणोषि। ऋ० ५।३।२; इस मन्त्र का विनियोग आश्व० गृ० सू० १।४।७ में चतुर्थीकर्म में आज्याहुति में किया गया है।
५. ··· मन इन्नौ सहासति। अथर्व० ७।३७(३६)।१।
६. अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि। अथर्व० ६।१३९।३।
७. 'इदं यत् प्रेण्यः' इति तृचेन जायापत्योरन्योऽन्यं प्रीतिजननकर्मणि अननुकूलस्य शिरःकर्णं च अनुमन्त्रयेत् केशान् वा धारयेत्। सायण (अथर्व० ६।८९।१ के पूर्व)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तरह परस्पर विरक्त दम्पती के मन में स्नेह उत्पन्न करने के लिए मन्त्रौषध का प्रयोग किया जाता था। उनमें शारीरिक सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाने पर भी मन्त्रौषध प्रयोग से ही उनका पुनर्मिलन कराया जाता था (द्र०—अथर्व० ६।१३९।५)।

गृहस्थ पुरुष के लिए पत्नी का अनुकूल और प्रेमयुक्त होना आवश्यक था, अन्यथा गार्हस्थ्य का निर्वाह संभव नहीं था। अतः अथर्ववेद (१४।१।३१) में ब्रह्मणस्पति से यह प्रार्थना की गई है कि वह वधू के मन में पति के प्रति रुचि (प्रेम) जागृत करें। अथर्ववेद २।३६।४ से यह विदित होता है कि मन्त्रौषध के प्रयोग द्वारा भी पत्नी को पति की प्रियतमा तथा अविरोधिनी (अनुकूल) बनाया जाता था। प्रतिकूल और विरक्त स्त्री को आकृष्ट करने के लिए मन्त्रौषध के प्रयोग भी अथर्ववेद में विहित हैं।[1] ऐसे प्रयोगों से पत्नी पति की कामना करने वाली (अनुरक्त) तथा उससे पृथक् न होने वाली हो सकती थी।[2] पुरुष अपनी पत्नी के मन को अपने अनुकूल बनाने के लिए भी ऐसे प्रयोग करता था।[3] एक प्रयोग में पति अपनी पत्नी के अन्तःकरण और मन को सन्तप्त करके उसे अपने चित्त का अनुगामी बनाता है (अथर्व० ६।८९।२)। एक मन्त्र में पति उसे सम्बोधित करते हुए कहता है कि मित्रावरुण, सरस्वती और भूमि का मध्य भाग तथा दोनों छोर भी तुम्हें मुझसे संयोजित करें (अथर्व ६।८९।३)। मन्त्रौषध के प्रयोगों के द्वारा पुरुष विरक्त स्त्री को भी सर्वतोभावेन अपनी ओर इस तरह आकृष्ट करने का प्रयास करता था कि वह उसके अंग-प्रत्यंग की कामना करे,[4] उसकी भुजाओं का आश्रय ले, उसके हृदय में विराजे, उसके कार्य में दक्ष बने तथा उसकी चित्तानुवर्तिनी बने।[5] देवों से प्रार्थना की गई है कि वे स्मर (काम) को विरक्ता स्त्री के पास भेजें, ताकि उसके प्रभाव से कामार्त होकर वह पति का स्मरण करने लग जाय।[6] मरुद्गण, अन्तरिक्ष एवं अग्नि से पुरुष यह प्रार्थना करता है कि वे उसकी स्त्री को इतना

---

१. अथर्व० २।३०।१-५; ६।८।१-३ द्र० वही, ६।७७।३।

२. (क) एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः। अथर्व० २।३०।१; द्र० वही, १।३४।५।

(ख) एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः। अथर्व० ६।८।२।

३. एवा मामभि ते मनः समेतु सं च वर्तताम्। अथर्व ६।१०२।१; कौ०सू० ३५।१।

४. वाञ्छ मे तन्वं पादौ वाञ्छाक्ष्यौ वाञ्छ सक्थ्यौ। अथर्व० ६।९।१।

५. मम त्वा दोषणिश्रिषं कृणोमि हृदयश्रिषम्।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि॥ अथर्व० ६।९।२।

६. देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु। अथर्व० ६।१३०।१-३; ६।१३१।१-२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उन्मत्त बना दें कि वह उसे चाहने लग जाय।[1] अथर्ववेद (६।१३९।१-४) में मन्त्रौषध के ऐसे प्रयोग देखे जाते हैं जिनसे कि स्त्री कामार्त एवं शुष्क हृदय तथा शुष्क मुख वाली होकर पति के पास चली आती है। पुरुष स्त्री के हृदय को काम-बाणों से विद्ध करता है (अथर्व० ३।२५।१-३), ताकि उसके फलस्वरूप वह काम-पिपासा से शुष्कमुख वाली, मृदु, क्रोधरहित, तथा केवल पति की चित्तानुवर्तिनी हो जाय।[2] पति मित्रावरुण से प्रार्थना करता है कि वे उसकी पत्नी के हृदय को इतर भाव-बोध से शून्य, सर्वथा अक्षम एवं केवल उसी के वशीभूत बनावें।[3] परपुरुष में आसक्त नारी को उससे विरक्त बनाने तथा उसके जार को उससे व्यावृत्त करने के लिए भी मन्त्रौषध के प्रयोग किए जाते थे।[4] जार के विनाश हेतु भी विशेष प्रयोग किए जाते थे।[5] स्त्री को परपुरुष के लिए समागम के अयोग्य बनाकर सुरक्षित रखने के लिए गृह्यसूत्रों तथा कामसूत्र में भी विशेष प्रयोग विहित हैं।[6] वात्स्यायन ने (कामसूत्र ७।२।३२ में) एक चूर्ण विशेष का विधान किया है जिसे नारी की देह में छिड़क देने से वह परपुरुष की कामना नहीं करती। कौशिकसूत्र (८९।६) में पलायनशील (प्रद्राविणी) पत्नी को भी पतिपरायण बनाने के लिए प्रयोग विहित है।

दाम्पत्य जीवन में प्रेम, सौमनस्य तथा सौभाग्य बनाये रखने हेतु इतिहास-पुराण में व्रतोपवास,[7] देवताराधन,[8] होम[9] और कभी-कभी विशेष प्रकार के तिलक धारण[10]

---

१. उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय।
अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु॥ अथर्व० ६। ३०।४।

२. शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा।
मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता॥ अथर्व० ३।२५।४।

३. व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम्।
अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे॥ अथर्व० ३।२५।६।

४. अथर्व० ७।११३(११८)।१-२; ७।१४(११९)।१; द्र०-आप०गृ०सू० ८।२३।३।

५. द्र०-वही, ७।९०(९५)।१-३; द्र०–कौशिकसूत्र ३६।३५-७; बृ०उ० ६।४।१२।

६. आप० गृ०सू० ८।२२।१६; ८।२३।३-५; भार० गृ०सू० २।२८।६।१४; २।२६। ५६।५; हिरण्य० गृ०सू० १।१४।६-९; १।१५।१, ४-८; कामसूत्र ७।२।-३३-४।

७. गरुड पू० १२९।८-६; नारद पू० २१।२-१४; १११।१५; ११२।१८-२०, ३०-३६; ११३।४३-५०; १२२।२७-८; १२४।११; वामन ७६।७६-८२; भविष्य १।२०।४-२८; १।२१।४; भविष्य, उत्तरपर्व, अध्याय ९, ११, १५, १८ २०, २१, २२, ६८, ६२, १०२। द्र०–अनु० पर्व १०६।२२।

८. दाम्पत्यार्थमुमां सतीम्। भाग० २।३।७।

९. अग्नि २६०।१६; २६१।११; गरुड पू० १८५।८; नारद पू० ९०।२०८।

१०. गरुड पू० १८२।१६; १८४।१५; १८५।६-१२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अथवा लेप[१] आदि के प्रयोग के भी विधान प्राप्त होते हैं। मार्कण्डेयपुराण में पत्नी के मन में पति के प्रति अनुराग उत्पन्न करने के लिए 'मित्रविन्दा' इष्टि करने का उल्लेख है और यह कहा गया है कि इसे करने से दम्पती में परस्पर प्रेम उत्पन्न होता है।[२] स्कन्दपुराण के नागरखण्ड (३६।१२) में कहा गया है कि हाटकेश्वर क्षेत्रस्थ चित्रेश्वर पीठ में 'तं पत्नीभिः' इत्यादिक वैदिक मन्त्र का जप करने से पत्नी साध्वी और स्नेह करने वाली होती है। गरुडपुराण में प्रेतपीडा को पत्नी के साथ विरोध का एक कारण कहा गया है,[३] जिसका प्रशमन गया-श्राद्ध आदि से सम्भव है। मार्कण्डेयपुराण (४८।२६-३०) में दुःसह की विरोधिनी नामक कन्या को दम्पती में विरोध उत्पन्न करने वाली बतलाया गया है, जिसके प्रशमन हेतु बलिकर्म (भूत बलि देना), अतिवाद की तितिक्षा (कलह न करना) तथा शास्त्रोक्त आचार का पालन विहित किया गया है। वात्स्यायन ने (कामसूत्र २।१०।३२ में) दम्पती में प्रेम बढ़ाने में चतुष्षष्टि कलाओं का प्रयोग उपयोगी बतलाया है। गरुडपुराण में इन कलाओं को वशीकरण हेतु उपयोगी बतलाया गया है।[४] वशीकरण के बीभत्स उपायों में लिङ्गलेप[५] तथा भगलेप[६] को भी गिनाया गया है, किन्तु इन्हें शास्त्रों में गर्हित बतलाया गया है।

यदि किसी नारी का पति उस पर अनुरक्त न हो तो उसका भी जीवन निरर्थक हो जाता है।[७] नारी को सर्वाधिक क्लेश पति के अन्य स्त्री में अनुरक्त होने पर होता है।[८] अतः अति प्राचीन काल से ही नारी भी पति को अपने अनुकूल बनाने का यत्न करती रही है। ऋग्वेद के सपत्नीबाधन सूक्त (१०।१४५) से विदित होता है कि पत्नी अन्य स्त्रियों से पति के मन को हटा कर अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए मन्त्रौषध-प्रयोग करती थी।[९] अथर्ववेद के अनुसार भी उसके ऐसे प्रयोगों का उद्देश्य यह होता

---

१. अग्नि ३०२।१०; गरुड पू० १७८।१२; १८५।१५-८।

२. मार्क० ४८।४८-६; ६६।८-९।

३. विरोधो भार्यया सार्द्धं सा पीडा प्रेतसम्भवा। गरुड उ० १०।३४।

४. चतुःषष्टिकलाः प्रोक्ताः कामशास्त्रे वशीकराः। गरुड पू० १७८।१८।

५. गरुड पू० १८०।२; १८५।१६-८।

६. वही, पू० १७८।२१-३; १८०।५-६।

७. यस्या नास्ति पतिप्रेम तस्या जन्म निरर्थकम्। ब्रह्मवै० ४।५७।८।

८. सौन्दरनन्द ६।४१; गाथा० ३।४०।
द्र०—न तथाऽन्यसक्ता पत्युः, स्त्रीजनस्य दुःखमुत्पादयति यथाऽन्यसक्तः।
कुन्दमाला, अङ्क १, पृ० ३०।

९. मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु। ऋ० १०।१४५।६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

था कि उसका पति केवल उसी का होकर रहे, अन्य नारी का नाम भी न ले।[1] वह पति की प्रिया बनने[2] तथा पराङ्मुख, विरक्त या प्रोषित पति को घर लौटाने[3] हेतु भी ऐसे प्रयोग करती थी। गृह्यसूत्रों में असन्तुष्ट अथवा विरक्त पति के वशीकरण हेतु वधू के पिता आदि बान्धवों द्वारा होम आदि करने का विधान है (द्र०-आप० गृ० सू० ३।९।४)। पत्नी के द्वारा भी पति के वशीकरण तथा सपत्नी-बाधन के प्रयोग किये जाते थे (द्र०–आप० गृ० सू० ३।९।५-६)। महाभारत (वनपर्व २३३।७) से विदित होता है कि इस काल में स्त्रियाँ पति के वशीकरण हेतु व्रत, तप, स्नान, मन्त्रौषध प्रयोग, विद्या विशेष का प्रयोग, मूलकर्म, जप, होम या अगद-प्रयोग आदि कुछ भी कर सकती थी। मूलकर्म तथा अगद-प्रयोग जैसे कर्मों से स्त्रियाँ पति को मार डालती थी अथवा उसे जलोदरयुक्त, कुष्ठी, पलित (पके) केशों वाला, नपुंसक, जड, अन्धा या बहरा बना डालती थी (वनपर्व २३३।१४-६)। राजतरङ्गिणी (७।४२६) के अनुसार कार्मण (आभिचारिक) प्रयोगों से स्त्रियाँ अपने पति के रूप, बल, बुद्धि अथवा पुंस्त्व को नष्ट कर डालती हैं। आयुर्वेद में भी यह बतलाया गया है कि स्त्रियों के द्वारा वशीकरण हेतु स्वेद, रज, नाना अङ्गों के मल (गर) का प्रयोग किये जाने के कारण पति गम्भीर और घातक रोगों से ग्रस्त हो जाता है।[4] अतः ऐसे प्रयोगों को कभी भी प्रशस्त नहीं माना गया है। महाभारत वनपर्व (२३३।१२-३) में ऐसा करने वाली नारी को घर में घुसे हुए सर्प की तरह उद्वेगजनक बतलाते हुए कहा गया है कि ऐसे प्रयोगों से पति कभी भी वश में नहीं होता। कामसूत्र (४।१।२०-२१) में भी मूलकर्म का प्रयोग वर्जित बतलाते हुए कहा गया है कि ऐसे कर्मों से पति के मन में पत्नी के प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। वस्तुतः ऐसे कर्मों से दाम्पत्य जीवन में प्रेम और सुख कभी भी सुलभ नहीं हो सकता। अतः विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा गया है कि नारी को कथञ्चिदपि मूलकर्म नहीं करना चाहिए। मूलकर्म में रत नारी कल्पान्त तक नरक यातना भोगती है और पुनर्जन्म में दुर्भगा होती है।[5] पति को मूलकर्म से वश में करके नारी अन्ततः दुर्भाग्य को प्राप्त करती है और भूत-प्रेतों द्वारा सतायी

---

१. (क)-सूयथाऽसौ मम केवलो नाऽन्यासां कीर्तयाश्चन। अथर्व० ७।३९(३८)।१।
(ख)-ममेदसस्त्वं केवलो नाऽन्यासां कीर्तयाश्चन्। अथर्व० ७।३९ (३८) ४।

२. ... यथातेऽसानि सुप्रिया। अथर्व० ७।३९(३८)।२; द्र० तै० ब्रा० २।३०।१०।

३. अथर्व० ७।३९(३८)।१,५; ६।१३१।३।

४. चरक सं० शारीरस्थानम् २३।२३३-५।

५. मूलकर्म न कर्तव्यं कथञ्चिदपि योषिता।
मूलकर्मरता नारी कल्पं नरकमावसेत्॥
दौर्भाग्यं महदाप्नोति यत्र यत्राभिजायते।-विष्णुधर्मो० २।३४।३०-३१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जाती है। अतः वह मूलकर्म सर्वथा वर्जित करे। मूलकर्म करके वह अपना और पति का भी नाश कर डालती है।[1] पुराणों में दुष्ट स्त्री द्वारा वशीकरण हेतु योगिनी का दिया हुआ चूर्ण पति को खिलाये जाने पर उसके शोचनीय दुरवस्था को प्राप्त होने का हृदय-विदारक चित्रण करते हुए ऐसी स्त्री की घोर निन्दा की गई है।[2] स्त्री के लिए मूलकर्म आदि से पति का वशीकरण वर्जित बतलाये जाने के दो कारण थे—एक तो यह कि ऐसे प्रयोगों से पति अस्वस्थ तथा मृतप्राय हो जाता था और दूसरे ऐसा करने वाली नारी अपने वास्तविक कर्तव्य और धर्म से च्युत हो जाती थी। ऐसे दुष्प्रयोग न करने पर भी वह पातिव्रत्य के पालन, पति के मनोऽनुकूल आचरण तथा उसकी सेवा से उसे स्वाभाविक रूप से वश में कर सकती थी और ऐसा करने से उनका दाम्पत्य जीवन अधिक सुखी हो सकता था। अतः महाभारत में स्वयं द्रौपदी ने कहा है कि वशीकरण के उपायों को असाध्वी स्त्रियाँ ही अपनाती हैं।[3] द्रौपदी द्वारा इस प्रसंग में कथित नारी-धर्म या पत्नी के कर्तव्यों का पालन करने से वस्तुतः दाम्पत्य जीवन सुखी हो सकता है।[4] नारी के द्वारा सौभाग्य और दाम्पत्य प्रेम की प्राप्ति हेतु अनेक हानिरहित व्रतोपवास भी किये जाते थे। महाकवि कालिदास कृत विक्रमोर्वशीयम् नाटक (३।१२।७ से ३।१४।१ तक) में पुरूरवा की अग्रमहिषी के द्वारा उसे अपने अनुकूल बनाने के लिए 'प्रियानुप्रसादन' नामक व्रत किये जाने का उल्लेख है।[5] अभिज्ञानशाकुन्तलम् में अनसूया कहती है कि शकुन्तला को सौभाग्य प्राप्त कराने हेतु सौभाग्य-देवताओं की पूजा करनी चाहिए।[6] दाम्पत्य जीवन में सुख-सौभाग्य और प्रेम उत्पन्न करने के लिए पुराणों में जो व्रत विहित किये गये हैं, उनमें से अधिकांश स्त्रियों के द्वारा ही किये जाते थे।

प्राचीन साहित्य में वर्णित कुछ नगण्य अपवादों के अतिरिक्त अधिकांश दम्पती प्रायः आदर्शवादी, सदाचारी, मर्यादित और अनुशासित थे। उनमें एक दूसरे के प्रति विद्रोह, असहिष्णुता, उपेक्षा भाव या अतिचार की प्रवृत्ति शून्यप्राय या नहीं के बराबर थी। वे एक दूसरे को ईश्वरकृत सहचर मानते थे। दाम्पत्य को अटल, अविच्छेद्य, लोकलोकान्तरव्यापी तथा जन्म-जन्मान्तरीय सम्बन्ध माना जाता था। इसके विघटन की कल्पना करना भी पाप समझा जाता था। अतः कुछ दम्पती एक दूसरे से असन्तुष्ट अथवा प्रतिकूल होने पर भी इस सम्बन्ध का यथासम्भव यावज्जीवन निर्वाह करते थे।

---

१. विष्णुधर्मो० २।३४।३४-५।
२. नारद उ० १४।१४-४३; स्कन्द २ ७।२४।२५-६१।
३. वनपर्व २३३।१०।
४. वही, २३३।१८-५६।
५. कालिदासग्रन्थावली, पृ०, ४७६-८१।
६. ननु सख्याः शकुन्तलायायाः सौभाग्यदेवताऽर्चनीया। वही, पृ० ५७८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सहधर्माचरण कि वा जीवन के समस्त कर्तव्यों को संगठित होकर निष्पन्न करने की भावना के प्राधान्य के कारण काम-वासना की शान्ति के गौण हो जाने से दम्पती की यौन भावनाएँ मर्यादित थी। पति-पत्नी का पारस्परिक प्रेम दाम्पत्य जीवन को सुखी और मर्यादित रखने में मुख्य भूमिका प्रस्तुत करता है। प्राचीन साहित्य में वर्णित समाज में यद्यपि परस्पर अनुराग रहित दम्पती अत्यल्प होते थे, तथापि उनमें एक दूसरे के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए मन्त्रौषध प्रयोग, होम, जप, व्रतानुष्ठान आदि विभिन्न उपायों का प्रयोग भी किया जाता था और ऐसे उपायों में प्राचीन समाज की पूर्ण आस्था परिलक्षित होती है। इस तरह प्राचीन आचार्यों की समाज व्यवस्था के अङ्गभूत आचार और विधान दाम्पत्य जीवन को मर्यादित और सुखी बनाने के लिए अत्यन्त उपादेय और प्रभावशाली थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

षष्ठ अध्याय

मर्यादा का अनुपालन

दाम्पत्य जीवन को मर्यादित बनाने के लिए विवाह संस्कार से संघटित दाम्पत्य-सम्बन्ध की अविच्छेद्यता विषयक विशेष सामाजिक धारणाओं, सहधर्माचरण तथा दाम्पत्य प्रेम की तो आवश्यकता है ही, साथ ही इसके लिए यह भी, आवश्यक है कि पति-पत्नी एक दूसरे के साथ सहवास (समागम) से सन्तुष्ट रहें, किसी अन्य के साथ काम-पिपासा की शान्ति न करें। प्राचीन समाज में उदात्त धार्मिक भावनाओं, सत्प्रवृत्तियों नैतिक आदर्शों और सदाचार में आस्था के कारण सत्पुरुषों तथा साध्वी नारियों की प्रवृत्ति व्यभिचार में नही होती थी। प्राचीन भारतीय साहित्य में पति के पत्नी-परायण और परस्त्री-पराङ्मुख रहने तथा नारी के पतिव्रता होने और परपुरुष की आकाँक्षा न करने के महनीय दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही प्राचीन समाज के कर्णधारों ने पुरुष के लिए पत्नी के साथ रति तथा परस्त्रीसंसर्ग-त्याग और नारी के लिए पतिव्रता-धर्म के पालन के विधानों के द्वारा समाज को मर्यादित रखने का प्रयास किया था। नारी के शीलभ्रंश की संभावनाओं का विवेचन करते हुए उसकी शीलरक्षा हेतु विभिन्न उपाय भी निर्दिष्ट किये गये थे। प्रस्तुत प्रसंग में हम इन्हीं तथ्यों का विवेचन करेंगे।

१. पुरुष की एकनिष्ठता—

ऋग्वेद से लेकर आगे के साहित्य में हम पाते हैं कि कुछ नगण्य अपवादों के अतिरिक्त सम्पूर्ण समाज में दाम्पत्य मर्यादा का पालन होता था। ऋग्वेद में पति-पत्नी को परस्पर अनुरक्त तथा एक-दूसरे की कामना करते हुए देखा गया है।[१] ऋग्वैदिक समाज का पुरुष पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य नारी की न तो कामना करता है और न उसके पास जाता है। उसको उसकी पत्नी ही आकृष्ट करती है[२] और वही उसकी प्रसन्नता तथा सुख का स्रोत है।[३] गौतम ऋषि ने सोमपान से तृप्त इन्द्र से कहा है कि अब

१. (क) पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तम्। ऋ० १।६२।११।
(ख) उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न……। ऋ० १।७१।१।

२. जाया पतिं वहति वग्नुना। ऋ० १०।३२।३; (द्र०-जाया पत्नी पतिं यजमानं सुमत् कल्याणेन वग्नुना वाग्रूपेण शब्देन वहति आत्मसमीपं प्रापयति। सायण)।

३. जायेव पत्यावधि शेव मंहसे……। ऋ० ९।८२।४ (जाया यथा स्वभार्या भर्तरि सुखं प्रयच्छति तद्वत्।-सायण)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वह घर जाकर पत्नी के साथ आनन्द मनावे।[1] ऋषि विश्वामित्र ने भी सोमपान से तृप्त इन्द्र से घर लौटने का निवेदन करते हुए कहा है कि पत्नी ही उसका घर है;[2] वही उसके लिए कल्याणी है।[3] ऋग्वेद की अनेक उपमाओं में पति के पत्नी के पास जाने का उल्लेख है।[4] उषा के पश्चात् आने वाले सूर्य की उपमा योषा (पत्नी) का अनुगमन करने वाले पुरुष से दी गई है।[5] एक उपमा में पति के अपनी पत्नी के साथ मिलने के लिए संकेत-स्थल (निर्जन शय्यागृह ?) में जाने का भी उल्लेख है।[6] यह देखा गया है कि पुरुष प्रेम-निर्भर भाव से पत्नी के साथ वार्तालाप करता है,[7] उसकी बातों को ध्यान से सुनता है और उसी का सेवन करता है।[8] वह उसी के साथ समागम[9] तथा उसी में गर्भस्थापन[10] करता है। अथर्ववेद के विवाह-संस्कार के मन्त्रों में वर को वधू के साथ रमण के लिए कहा गया है।[11] वर प्रथम समागम में वधू से सन्तानोत्पादन विषयक बातें करता है।[12]

वैदिक संहिताओं में जाया (पत्नी) के साथ अतिशय कामोपभोग से पुरुष को 'जायेन्य'[13] या 'जायान्य'[14] संज्ञक क्षयरोग के होने तथा परस्त्री या वेश्या के साथ समा-

---

१. वक्षिन्त्समु पत्न्या मदः। ऋ० १।८२।६; (द्र०··· स्वभार्यया सह सममदः सम्मोदस्व। क्रीडेत्यर्थः।-स्कन्द० भाष्य); द्र०—ऋ० १।८२।५।

२. जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिः। ऋ० ३।५३।४।

३. ··· कल्याणीर्जाया सुरणं गृहं ते।-ऋ० ३।५३।६।

४. ऋ० ८।२।१९; ९।८६।१६; १०।१४९।४।

५. सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्। ऋ० १।११५।२।

६. ····पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम्। ऋ० ९.८६।३२।

तु०-मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते····। ऋ० ९।९३।२।

७. मर्यं न योषामभिमन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम्। ऋ० ४।२०।५।

८. ····जोषयासे गिरश्च नः। वधूयुरिव योषणाम्। ऋ० ३।५२।३; ४।३२।१६।

९. (क) अप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः। ऋ० १।१७९।१।

(ख) सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि। ऋ० २।१६।८।

१०. भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः। ऋ० ५।५८।७।

११. (क) मर्य इव योषामधिरोहयैनाम्। अथर्व० १४।२।३७।

(ख) आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः। अथर्व० १४।२।३९।

१२. ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै। अथर्व० १४।२।७१।

१३. यज्जायाभ्योऽविन्दत् तज्जायेन्यस्य ···। तै० सं० २।३।५।२; २।५।६।५।

१४. अथर्व० ७।७६।३-५; १९।४४।२; जायान्यम् निरन्तरजायासंभोगेन जायमानं क्षयरोगम्।—सायण (अथर्व ७।८०।३)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गम से किसी रोग की उत्पत्ति का कोई उल्लेख न होने के आधार पर भी पुरुष की पत्नी-परायणता को पुष्टि होती है। ऋग्वेद में औरस पुत्र को 'नित्यसूनु'[१] (सनातन-सन्तान) और 'तान्व'[२] अर्थात् आत्मज कहा गया है। अथर्ववेद में सन्तान को पितरों का उद्धार करने वाला कहा गया है।[३] इससे विदित होता है कि भारत भूमि में वैदिक काल से ही वंश-परम्परा को शुद्ध रखने हेतु मर्यादा का पालन किया जाता था।

स्कन्द पुराण ५।३।१९०।१०-११ में कहा गया है कि ऋतुकाल में कामेच्छा की सन्तुष्टि न हो पाने पर नारी अन्य पुरुष की कामना करने लगती है। यह तथ्य वैदिक ऋषियों को भी ज्ञात रहा होगा, इसीलिए अथर्ववेद में अशक्त पुरुष को पत्नी की कामेच्छा की सन्तुष्टि में समर्थ बनाने हेतु वाजीकरणकारक मन्त्रौषध के प्रयोग विहित हैं।[४] आयुर्वेद[५] और कामशास्त्र[६] में भी अशक्त पुरुष के लिए वाजीकरण के उपाय बतलाये गये हैं। क्षेमेन्द्र ने नर्ममाला (३।६४) में तरुणी भार्या वाले वृद्ध वणिक् की वाजीकरण की इच्छा की चर्चा की है। राजतरंगिणी (७।५२२) के अनुसार राजा कलश, मत्स्ययूष आदि वृष्य पदार्थों के सेवन के बल पर ही अन्तःपुर की रानियों का सेवन करता था। इस तरह वाजीकरण की प्रवृत्ति का भी दाम्पत्य-मर्यादा को बनाये रखने में पर्याप्त सहयोग रहा है।

वैदिक तथा पौराणिक साहित्य में वर्णित केवल कुछ गिने चुने दुराचारियों को छोड़ कर, सभी पुरुष दाम्पत्य मर्यादा का पालन करते थे। वैदिक काल के राजा अश्वपति के राज्य में न तो कोई पुरुष स्वैराचारी था और न कोई स्त्री ही स्वैरिणी थी।[७] रामायण के अनुसार राजा दशरथ के राज्य में कोई भी पुरुष परस्त्रीगामी नहीं था।[८] रामराज्य में न तो कोई नारी पति का अतिक्रमण करके परपुरुष का सेवन करती थी और न कोई पुरुष ही पत्नी का अतिक्रमण करके परस्त्री का सेवन करता था।[९] गुरुतल्पग जैसे महापातकियों का अस्तित्व ही रामराज्य में नहीं था (स्कन्द ३।२।३०।६६)। रावण और दण्डक जैसे दुराचारी पुरुषों को क्षमा नहीं किया जाता था और वे जीवित नहीं

१. नित्यो न सूनुः। ऋ० १।६६।१।
२. न जामये तान्वो रिक्थमारैक्। ऋ० ३।३१।२।
३. ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति। अथर्व० ६।१२२।२।
४. अथर्व० ४।४।१-८; ६।७२।१-३; ६।१०१।१-३; द्र० कौशिकसूत्र ४०।१४-८।
५. सुश्रुत, चिकित्सास्थानम् अध्याय २६; चरक, चि० स्था० अध्याय २।
६. कामसूत्र ७।१-२ अध्याय; पञ्चसायक, अध्याय ३।
७. न स्वैरी स्वैरिणी कुतः। छान्दोग्योप० ५।११।५।
८. क्वचिन्न दुष्टस्तत्रासीत् परदाररतिर्नरः। रामा० १।७।१५; पद्म ५।४६।२७।
९. नार्यो नात्यचरन् भर्तॄन् भार्यां नात्यचरत् पतिः। हरिवंश १।१४।१४५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रह पाते थे। कुछ गिने-चुने अपवादों को छोड़ कर रामायण और महाभारत कालीन समाज में नैतिकता और दाम्पत्य मर्यादा का पूर्णतः पालन होता था। अनेक पुरुष ऐसे थे जो स्वयं उपस्थिता स्त्री के प्रति भी अनासक्त और निर्विकार रहते थे। रात्रि में शय्या में उपस्थित होकर रतिदान की याचना करने वाली एक स्त्री (जो उत्तर दिशा की अधिष्ठात्री देवी थी) से अष्टावक्र ने स्पष्टमेव कह दिया था कि मैं परस्त्रीगमन नहीं करता।[१] जब गंगा ने स्त्री रूप धारण करके राजा प्रतीप की दाहिनी जाँघ पर बैठ कर कहा था कि मैं तुम्हें चाहती हूँ, मेरा सेवन करो। तो उसने कहा था कि मैं परस्त्री एवं असवर्णा स्त्री का कामतः सेवन नहीं करता।[२] तुम जिस स्थान (दक्षिण ऊरु) में बैठी हो। वह स्थान पत्नी का नहीं, अपितु पुत्रवधू का है। अतः तुम मेरी पुत्रवधू बन सकती हो।[३] जातकमाला की एक कथा के अनुसार शिवि नरेश अपने अमात्य की पत्नी के रूप पर मोहित होकर कामार्त हो बैठे थे। यह जानकर अमात्य ने हर संभव उपाय से उन्हें अपनी पत्नी देने का प्रयास किया, किन्तु धर्मभीरु राजा ने कथञ्चिदपि उसे ग्रहण नहीं किया।[४] कालिदास (रघु० ६।७५) ने कहा है कि राजा रघु के अन्तःपुर में निश्चिन्त सोयी हुई रमणियों के वस्त्रों का स्पर्श पवन भी नहीं करता था, तब भला उनके वस्त्र उघाड़ने का साहस कोई परपुरुष कैसे कर सकता था? मध्यरात्रि में अपने शयनागार में प्रोषितपतिका नारी के वेश में उपस्थित अयोध्या नगरी की अधिष्ठात्री देवी को सम्बोधित करते हुए राजा कुश ने पूछा था कि हे शुभे तुम कौन हो? किसकी पत्नी हो? मेरे पास आने का क्या प्रयोजन है? इन्द्रिय-संयमी रघुवंशी पुरुषों के मन की प्रवृत्ति परस्त्रियों में नहीं होती। अतः तुम निश्चिन्त होकर निवेदन करो।[५] मार्कण्डेयपुराण (१३।१७) में एक राजा ने अपने को नरक में ले जाने वाले यमदूतों से कहा है कि मैंने जीवन में कभी भी परस्त्री की कामना नहीं की थी। अभिज्ञान-शाकुन्तलम् नाटक में दुष्यन्त ने कहा है कि जितेन्द्रिय पुरुष प्रकृत्या परस्त्री के आलिङ्गन से पराङ्मुख रहते हैं।[६] ब्रह्मवैवर्तपुराण (४।८६।८८) में कहा गया है कि धर्मिष्ठ पुरुष अगम्यागमन नहीं करना चाहते। कथासरित्सागर में कहा गया है कि उत्तम पुरुष कथञ्चिदपि परस्त्री की कामना नहीं करता।[७] सातवीं शताब्दी में बाणभट्ट ने जाबालि आश्रम के वर्णन प्रसङ्ग में कहा है कि वहाँ चक्षुराग (नेत्रों में

१. (क)-परदारानहं भद्रे न गच्छेयं कथञ्चन। अनु० पर्व १६।८८।
(ख)-न भद्रे परदारेषु मनो मे संप्रसज्जति। वही, २०।१२।
२. आदिपर्व ६७।५-६। ३. वही, ६७।७-१६। ४. जातकमाला १३।४-३४।
५. का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा किं वा मदभ्यागमकारणं ते।
आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति। रघु० १६।८।
६. वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः॥ शाकु० ५।२८।
७. उत्तमास्तु न वाञ्छन्ति परदारान् कथञ्चन। कथा० ८।४।११८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लालिमा) केवल कोकिलों में देखा जाता था, परस्त्रियों में चक्षुराग नहीं होता था अर्थात् परस्त्रियों को अनुरागपूर्ण दृष्टि से कोई नहीं देखता था।[1] नवीं शताब्दी में शक्तिभद्र के आश्चर्यचूडामणि नाटक में राम ने शूर्पणखा के विषय में सीता से यह कहा है कि निरर्गल स्त्रियाँ कुटुम्बियों के संसर्ग में आने योग्य नहीं हैं।[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल के मर्यादा पालक पुरुषों को न तो परस्त्री के प्रति अभिरुचि रहती थी और न वे स्वच्छन्द स्त्रियों को अपने संसर्ग में आने देना चाहते थे। भास कृत पञ्चरात्रम् नाटक (२।४८) से विदित होता है कि परस्त्री के विषय में कुशल-प्रश्न भी शिष्टाचार के विरुद्ध माना जाता था। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में मर्यादा और आदर्शवादिता केवल सैद्धान्तिक नहीं थी, अपितु वह तत्कालीन पुरुषों के चरित्र और व्यवहार में भी प्रतिफलित हुई थी।

भारतीय संस्कृति में पुरुष के लिए एकपत्नीव्रत को ही धर्मसम्मत तथा सुख-जनक माना गया है। रामायण में धर्मपत्नी के साथ रमण को धर्मरति तथा परस्त्रीगमन को अभिशाप माना गया है।[3] महाभारत में कहा गया है कि धर्मपत्नी के साथ [विहित-काल में] समागम करने वाला अग्निष्टोम के तुल्य फल का भागी होता है।[4] विष्णु-पुराण (३।८।१४) के अनुसार परस्त्री-संसर्ग न करने वाले तथा स्वदारनिरत पुरुष से भगवान् विष्णु प्रसन्न रहते हैं। व्यासस्मृति (४।४) का वचन है कि अपनी पत्नी से सन्तुष्ट तथा परस्त्री की कामना न करने वाले मनुष्य को घर में ही तीर्थ का फल मिल जाता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण (४।३०।८५) के अनुसार विहितकाल में धर्मपत्नी समागम करने वाला पुरुष इहलोक तथा परलोक में भी पूजित (सम्मानित) होता है। महाभारत (उद्योगपर्व ३३।१०८) में परस्त्रीगमन न करने वाले पुरुष को सदा सुखी बतलाया गया है। वराह पुराण (११६।४४-५) में कहा गया है कि ऋतुकाल में पत्नी के साथ समागम से अधिक सुख कोई और क्या हो सकता है? दूसरे की सुन्दर स्त्री को देखकर जिसकी दृष्टि और चित्त विचलित न हो, उससे अधिक सुखी कौन हो सकता है? (वराह ११६।३५-६)। वामनपुराण के अनुसार अपनी पत्नी से सन्तुष्ट तथा परस्त्री-संसर्ग न करने वाले को लोक में किसी से कोई भय नहीं रहता।[5] विष्णुधर्मोत्तर (२।१२२।११) के अनुसार स्वदारनिरत पुरुष जीवन की सभी कठिनाइयों को पार कर लेते हैं। स्कन्दपुराण

---

१. चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु। कादम्बरी, पू० भा०, पृ० १४१।
२. देवि! न संसर्गमर्हति कुटुम्बिनाम् अनर्गलः स्त्रीजनः। आश्चर्यचूडा० अंक २।
३. द्र०-धर्मदारान् परित्यज्य परदारान् निषेवताम्।
त्यक्तधर्मरतिर्मूढो यस्यार्योऽनुमते गतः॥ रामा० २।७५।५१।
४. धर्मपत्नीरतो नित्यमग्निष्टोमफलं लभेत्। अनु० पर्व १०७।१०।
५. स्वदारतुष्टः परदारवर्जी न तस्य लोके भयमस्ति किञ्चित्॥ वामन ६६।२९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(७।१।२०८।१०) में परदारपराङ्मुख पुरुष का जन्म लेना ही सार्थक (सुजन्म) बतलाया गया है। बाणभट्ट ने अपनी पत्नी से पराङ्मुख पुरुष की उपमा कुत्ते से दी है।[१] अत्रिस्मृति के अनुसार परस्त्री की इच्छा न करना ही 'अस्पृहा' है।[२] कथासरित्सागर में कहा गया है कि उत्तम पुरुष कभी भी परस्त्री की कामना नहीं करते।[३] जयदेव लिखते हैं कि अपनी उन्नति और समृद्धि चाहने वाले सत्पुरुष भाद्रपद शुक्लपक्ष की चतुर्थी के चन्द्रमा की भाँति परस्त्री का मुख [काम भाव से] नहीं देखते।[४] पद्मपुराण (३।३१।८७-८) के अनुसार मन से भी परस्त्री की इच्छा न करने वाले पुरुषों पर ही यह पृथिवी टिकी हुई है। हितोपदेश में परस्त्रीगमन करने की अपेक्षा पुरुष का नपुंसक होना अच्छा बतलाया गया है।[५] परस्त्री को मातृवत् मानना भारतीय संस्कृति का एक आदर्श है।[६] पद्मपुराण (३।३१।८६-७) के अनुसार परस्त्री को मातृवत् मानने वाले मनुष्य यमयातना नहीं पाते। जिनके मन में परस्त्री की इच्छा न हो वे मनुष्य देवलोक को प्राप्त होते हैं, उन्हें यमयातना नहीं भोगनी पड़ती।[७] दाम्पत्य जीवन को मर्यादित बनाये रखने में इस तरह की मान्यताओं और अर्थवादों का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

२. ऋतुकालाभिगमन—

एक पत्नीव्रत के प्रशंसा-वचन तथा आदर्श दृष्टान्त समाज को मर्यादित रहने की प्रेरणा देते रहे हैं। इसके साथ ही राज्य या शासन द्वारा संवैधानिक रूप में मान्य, संरक्षित तथा पोषित धर्मशास्त्रों ने पुरुष के लिए पत्नी के साथ ऋतुकाल में समागम विहित करके दाम्पत्य जीवन को मर्यादित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। पुरुष केवल अपनी ही नहीं, अपितु पत्नी की भी काम-भावना की सन्तुष्टि कर सके तथा परिणामतः सन्तानोत्पत्ति संभव हो सके, इसके लिए शास्त्रकारों ने ऋतुकाल में समागम पर विशेष

---

१. ''''शुन इव निजदारपराङ्मुखस्य''''। हर्षचरित, उच्छ्वास ७, पृ० ३६७।
२. न स्पृहेत् परदारेषु साऽस्पृहा परिकीर्तिता।
अत्रिसंहिता, श्लोक ३८ (स्मृतिसन्दर्भ, भाग १, पृ० ३५५)।
३. उत्तमास्तु न वाञ्छन्ति परदारान् कथञ्चन। कथा० ८।४।११८।
४. उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते।
चतुर्थी चन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका॥ प्रसन्नराघवम् ७।१।
५. वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम्। मित्रलाभ, श्लोक १३०।
६. मातृवत् परदारेषु। गरुड पु० १११।१२
७. लोभो न जायते येषां परदारेषु मानसे।
ते यान्ति देवलोके तु न यमं वैश्यसत्तम॥ पद्म ३।३१।८६-९०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बल दिया है। धर्मसूत्रों, स्मृतियों तथा इतिहास-पुराण में पुरुष के लिए पत्नी के साथ ऋतुकाल में समागम धर्म (कर्तव्य) रूप में विहित है।[1] बौधायन धर्मसूत्र (४।१।१।२१) में पत्नी के साथ ऋतुकाल में समागम न करने, ऋतु से भिन्न काल में समागम तथा अयोनि-गमन में समान दोष बतलाया गया है। जैसा कि स्कन्दपुराण (५।३।१६०।१०-१२) में कहा गया है, 'स्त्री में पुरुष की अपेक्षा काम-भावना सदैव अधिक रहती है। ऋतुकाल में वह काम-बाणों से विशेष व्याकुल रहती है। इस काल में पति से काम-सन्तुष्टि न मिलने पर वह अन्य पुरुष की कामना करने लगती है। उसके द्वारा परपुरुष संसर्ग से जनित सन्तान से कुल का तथा स्वर्गस्थ पितरों का अधःपतन होता है।' अतः पुरुष का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह पत्नी की काम-भावना को सन्तुष्ट करे। ऋतुकालाभिगमन न करने वाले पति को बृहस्पतिस्मृति (व्य० का० २४।४) में गर्हणीय और दण्डनीय बतलाया गया है तथा अनेक स्मृतियों और पुराणों में ऐसे पति को भ्रूणहत्या[2] और ब्रह्महत्या[3] का भागी एवं नरकगामी[4] बतलाया गया है। बौधायन (ध० सू० ४।१।१।२०) के अनुसार ऐसे पुरुष के पितृगण उस मास उसकी पत्नी के रज में पड़े रह जाते हैं। ऐसे पुरुष के प्रायश्चित्त रूप में एक सौ बार प्राणायाम[5] तथा कृच्छ्रार्द्ध[6] विहित है। ऋतुकाल में समागम के विधान का तात्पर्य यह नहीं है कि अन्य समय में पुरुष कामोत्तेजना का सर्वथा दमन करे या अन्यस्त्री-गमन करे। अन्य काल में भी साभिलाष होने पर वह पत्नी के साथ ही समागम करे।[7] धर्मपत्नी के साथ रति सभी वर्णों के पुरुषों के लिए सामान्यतः धर्म रूप में विहित है।[8] शूद्र के लिए भी ऐसा ही विधान है।[9] वराहपुराण (१४२।३४-५) में कहा गया है कि पुरुष अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी दूसरी, तीसरी अथवा चौथी स्त्री का काम-भाव से स्पर्श तक न करे। धर्मशास्त्रों में मैथुन की दृष्टि से परस्त्रीमात्र को अशुचि कहा गया है।[10]

---

१. सामविधान ब्राह्मण १।३।५; आप० ध० सू० २।१।१।१७; गौ० ध० सू० १.५।१; वसिष्ठ ध० सू० १२।२१; वैखानस ध० सू० ३।१।५; मनु ३।४५; याज्ञ० १।७९; बृहस्पतिस्मृ० २।३२-३; शान्तिपर्व ६१।११-२; अनु० पर्व १६२।४१; कूर्म पु० २।४७; विष्णु ३।८।२५, ११२; विष्णुधर्मो० १।५८।११।

२. पराशरस्मृति ४।१३; व्यासस्मृति २।४६; मत्स्य ३२।३२-३; कूर्म पु० २।४८-९।

३. गरुड पु० ९५।१६-७।

४. मार्क० १४।५-६; भविष्य ३।२।२८।४५।

५. बौधा० ध० सू० ४।१।१।२३।

६. बृहस्पतिस्मृति ६।२५; कूर्म उ० ३४।७५।

७. आप० ध० सू० २।१।१।१८; विष्णुपु० ३।११।१२५। रजःस्राव तथा व्रत, श्राद्ध और पर्व कालों में पत्नी के साथ संभोग वर्जित है।—द्र०-विष्णुस्मृति अ० ६९।

८. सर्वेषां स्वदारनियमः स्वकर्मप्रतिपत्तिश्च धर्मः। -शंखलिखित (कृत्यकल्पतरु, व्य० का० पृ० ५८३।

९. गौ० ध० सू० २।१।५६; विष्णु पुराण ३।८।३५।

१०. बौधा.ध.सू. १।५।६।६; आप०स्मृ० २।४; शङ्खस्मृ० १६।१८; अग्नि १५५।३-४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऐसे सभी धर्मशास्त्रीय विधानों का तात्पर्य पुरुष को एकपत्नीव्रत की सत्प्रेरणा देकर समाज को मर्यादित बनाये रखना ही था।

३. अन्य-स्त्री-वर्जन—

धर्मशास्त्रानुसार पुरुष के लिए केवल अपनी पत्नी गम्या (समागम के लिए विहित) है तथा अन्य सभी स्त्रियाँ अगम्या हैं।[१] अगम्या का तात्पर्य उस स्त्री से है, जिसके साथ समागम शास्त्र द्वारा वर्जित हो। बौधायन धर्मसूत्र (२।२।४।११ = बौधा० स्मृ० २।२।७१) में मौसी, बुआ, बहिन, भानजी, पुत्रवधू, मामी तथा मित्र की पत्नी को अगम्या कहा गया है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अन्य स्त्रियाँ गम्या हैं। यहाँ अगम्या का तात्पर्य-बोध कराने के ध्येय से ही निकट सम्बन्ध की कुछ स्त्रियों की गणना की गयी है। कृत्यकल्पतरु में उद्धृत देवल के एक वचन में भी परस्त्री मात्र के साथ ही अपने से उत्तम वर्ण की स्त्री, भगिनी, पुत्री, सगोत्रा स्त्री, चाण्डाली, पतिता स्त्री तथा मादा पशु को अगम्या बतलाया गया है। मत्स्यपुराण (२२७।१४०-१४२) में माता, मौसी, बुआ, मामी, चचेरी बहिन, चाची, मित्र की पत्नी, प्रव्रजिता (भिक्षुणी) और निम्न वर्ण के पुरुष के लिए उच्च वर्ण की स्त्री (यथा-वराह पुराण ६८।९-११ में क्षत्रिय के लिए ब्राह्मणी, वैश्य के लिए क्षत्रिया तथा ब्राह्मणी और शूद्र के लिए तीनों द्विजाति वर्णों की स्त्रियों) को अगम्या बतलाया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण (२।३०।१९६-७) में शूद्र के लिए विप्र-पत्नी तथा विप्र के लिए शूद्र की पत्नी को अति अगम्या कहा गया है। अगम्या स्त्रियों की विस्तृत सूची ब्रह्मवैवर्तपुराण (२।३०।२०३-५; ४।७८।५१-३) तथा देवीभागवतपुराण (९।३४।७७-९) में है। वस्तुतः अगम्याओं की सूची सामान्य निर्देश या उपलक्षण रूप में ही प्राप्त होती है, जिसका तात्पर्य यही द्योतित करना है कि पुरुष के लिए पत्नी के अतिरिक्त अन्य सभी स्त्रियाँ अगम्या हैं। अगम्या-गमन सर्वथा वर्जित था (द्र० अनु०पर्व १०४।११५)। यहाँ तक कि यदि कोई पुरुष क्रोध वश अपनी पत्नी को अगम्या (अर्थात् उसके संभोग को मातृगमन या भगिनीगमन तुल्य) कह देता था तो उसे उसके साथ पुनः समागम के पूर्व प्रायश्चित्त करना पड़ता था।[२]

प्राचीन आचार्यों ने सदैव यही उपदेश दिया है कि मनुष्य कदापि परस्त्री की आकांक्षा न करे।[३] वह परस्त्रीगमन की बात मन से भी न सोचे।[४] मदालसा जैसी प्रबुद्ध

१. (क) ऋतौ भार्यामुपेयादिति शास्त्राद् गम्या स्वभार्या, तदितरा सर्वा अपि योषिदगम्या। परा० मा०, प्रा० का०, पृ० २३९।
(ख) स्वस्त्री गम्या च सर्वेषामिति वेदानुशासनम्। अगम्या च तदन्या या चेति वेदविदो विदुः॥—देवीभाग० ६।३४।६८, ब्रह्मवै० २।३०।१९५।

२. द्र० परा० स्मृ० १२।५६-८; यम (परा०मा०, प्रा०का०, पृ०३६०में उद्धृत)।

३. (क) परस्वे परदारेषु न कार्या बुद्धिरुत्तमैः। मार्क० २३।५७।
(ख) न लोभः परभार्यासु ब्राह्मणीषु विशेषतः। वराह १३७।१९२।

४. चरक०सूत्र० ८।१९; विष्णु ३।११।१२३; राजमार्तण्ड ८८; पञ्चसायक ४।१७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जननी भी अलर्क जैसे सुपुत्र को परायी स्त्री से मन मोड़ लेने का उपदेश देती थी।[1] लिङ्गपुराण (८५।१३८) में मनसा, वाचा एवं कर्मणा परस्त्रीगमन को वर्जनीय बतलाया गया है। परस्त्रीगमन को सभी आचार्यों ने सर्वथा वर्जित बतलाया है।[2] स्त्रीविरहित कामी पुरुष के लिए प्राणरक्षादि अपरिहार्य कारणों से एक सीमा के भीतर परस्त्रीगमन की स्वीकृति देने वाले आचार्य वात्स्यायन ने यद्यपि यह निर्देश दिया है कि वह पतिव्रता के अतिरिक्त किस स्त्री का सेवन कर सकता है और उसे कैसे पा सकता है, परन्तु अन्ततः उन्होंने इसे भी विघ्न-संकुल तथा धर्म और अर्थ का नाशक बतला कर वर्जित किया है (कामसूत्र ५।६।५१)। भारतीय संस्कृति में कामसेवन का फल सन्तानोत्पादन बतलाया गया है (द्र० पीछे पृ० ८२ टि० ४)। अतः इस दृष्टि से भी परस्त्रीसेवन निरर्थक माना जाता था। मनु (६।४८-५४) ने कई वचनों में यह स्पष्ट किया है कि परस्त्री में बीज-वपन करने वाला उससे उत्पन्न सन्तान का अधिकारी नहीं हो सकता। मनु (९।४१) जैसे आचार्यों ने अक्षुण्ण स्वास्थ्य तथा आयुष्य की रक्षा चाहने वाले पुरुष के लिए भी परस्त्रीगमन को सर्वथा वर्जित बतलाया है। परस्त्रीगमन से सामाजिक जीवन तथा व्यभिचारी पुरुष का व्यक्तिगत जीवन भी दुष्प्रभावित होता है (द्र० अध्याय ८)। अतः ऐसे दुष्परिणामों की चेतावनी देकर भी प्राचीन आचार्यों ने पुरुषों को अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्त्री के साथ यौन-सम्बन्ध से विरत रहने की सत्प्रेरणा दी थी।

प्राचीन काल के प्रायः सभी आचार्य पुरुष को चारित्रिक-स्खलन से मुक्त रखने के लिए उसे अन्य स्त्रियों के सम्पर्क में आने का यथासंभव कोई अवसर नहीं देते थे। उनकी मान्यता में नारी जलते हुए अङ्गार के समान और पुरुष घृतकुम्भ के समान है।[3] अतः वह नारी के सान्निध्य में द्रवित हो जाता है। वराहपुराण १४६।४४-६ के अनुसार नारी और पुरुष की अग्नि और घृतकुम्भ से उपमा करना मूर्खता है, क्योंकि घृतकुम्भ तो अग्नि के सान्निध्य में द्रवित होता है, जबकि पुरुष नारी को देखकर ही द्रवित हो जाता है। उसकी इस दुर्बलता से अभिज्ञ मनु प्रभृति आचार्यों ने निर्देश दिया है कि वह एकान्त में अपनी माता, भगिनी तथा पुत्री के साथ भी न रहे, क्योंकि बलवती इन्द्रियाँ विद्वान् पुरुष को भी विवेक-भ्रष्ट कर देती हैं।[4] शिवपुराण(२।२।३।४०) का उपदेश है कि मनुष्य अपनी माता, बहिन, पुत्री तथा भ्राता की पत्नी को कदापि

१. हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथा मनः परस्त्रीषु निवर्तयेथाः ।। मार्क० २३।५७।

२. (क) परदारान् न संगच्छेत् । वैखा० ध० सू० ३।७।
(ख) परदारा न गन्तव्या सर्ववर्णेषु कर्हिचित् । अनु० पर्व १०४।२०।
(ग) मनु ४।१३३; तु० गरुड पू० १०८।१३।
(घ) उत्तमवर्णाषु परपरिगृहीतासु च वर्जितः । कामसूत्र १।५।२।
(ङ) परदारा न गन्तव्या पुरुषेण विपश्चिता। ब्रह्म २२१।६०; मार्क०३१।६२।

३. भाग० ७।१२।९; पद्म ४।१८।१९; लिङ्ग पू० ८।२३।

४. मनु २।२१५; गरुड पू० ११४।६; तु० वामन १४।४६; स्कन्द ६।३६।६६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कुदृष्टि से न देखे। पद्मपुराण (१।५१।१०७-८) का उपदेश है कि मनुष्य अपनी पुत्रवधू, भ्राता की पत्नी, पुत्री, गुरुपत्नी तथा अन्य किसी युवती को कामभाव से न देखे, उसका स्पर्श न करे, उसके साथ वार्तालाप न करे, उसका भ्रूभङ्ग (कटाक्ष) दर्शन न करे और उसके साथ कलह एवं अश्लील वचनों का प्रयोग न करे। प्रायः नारी की स्वाभाविक चपलता जनित हावभावों को देखकर भी पुरुष विचलित और विवेकभ्रष्ट हो जाता है। यही देखकर मनु ने कहा है कि पुरुषों को विचलित करना स्त्रियों का स्वभाव ही है, अतः विद्वान् पुरुष को उनके सान्निध्य में विवेक नहीं खो देना चाहिए। वे कहते हैं कि काम-क्रोधादि के वशीभूत पुरुष चाहे विद्वान् हो या मूर्ख, स्त्रियाँ उसे उन्मार्ग में प्रवृत्त कर देती हैं (मनु २।२१३-४; तु० स्कन्द ४।३६।६७-८)। धार्मिक साहित्य में अनेकत्र स्त्रियों के चारित्रिक स्खलन तथा उनकी स्वाभाविक चपलता जन्य दोषों की निन्दा प्रायः पुरुष को चारित्रिक दृष्टि से अविचलित रखने और परस्त्री में आसक्त होने से रोकने के ध्येय से भी की गयी है। पुरुष को अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य किसी भी पारिवारिक, निकट-सम्बन्ध की अथवा परायी स्त्री के सम्पर्क से दूर रहने का उपदेश समाज को विकृत-यौनभावना से मुक्त रखने के ध्येय से ही दिया गया था। निकट-सम्बन्ध की स्त्रियों के अभिवादन विषयक विशेष नियम भी संभवतः इसी दृष्टिकोण से बनाये गये थे। उदाहरणार्थ- गौतम (ध०सू० १।६।७-८) के अनुसार स्नातक यदि घर में रह रहा हो तो माता, चाची और दीदी के अतिरिक्त किसी स्त्री का अभिवादन न करे। वह भाभी तथा दीदी के अभिवादन में चरण-स्पर्श प्रवास से लौटने पर भी न करे। वैखानस (ध० सू० १।११।४) के अनुसार वह युवती परस्त्री का अभिवादन उसे स्पर्श न करते हुए उसके समीप भूमि पर करे। अभिवादन में माता और चाची के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री के चरण-स्पर्श का निषेध करने वाले आचार्य निश्चयमेव अपने समाज को चारित्रिक दृष्टि से शुद्ध रखने के कट्टर पक्षपाती रहे होंगे। धर्मशास्त्रों में नग्ना परस्त्री को देखना वर्जित बतलाया गया है।[1] शंखलिखित स्मृति (१७।५४) में परस्त्री को नग्नावस्था में देखने के प्रायश्चित्त रूप में एक दिन का व्रत विहित किया गया है। परस्त्री के साथ अनर्गल वार्तालाप[2] तथा परिहास (द्र० गरुड पू० १०८।१३) भी वर्जित बतलाया गया है। विष्णु (स्मृ० ३२।७) ने आवश्यक वार्तालाप में परस्त्री को उसकी अवस्था के अनुसार बहिन, बेटी या माता जैसे सम्मान्य सम्बन्ध से सम्बोधित करनेको कहा है। मनु (२।१२९) के अनुसार ऐसी स्त्री को 'भवति' 'सुभगे' या 'भगिनी' कहकर सम्बोधित करे। आपस्तम्ब (ध० सू० १।४।१४।३१ तथा इस पर हरदत्त कृत उज्ज्वला व्याख्या) के अनुसार अरण्य में प्राप्त स्त्री को भी स्नातक माता या भगिनी कह कर ही

---

१. गौ०ध०सू० १।९।४८; वैखा०ध०सू० ३।२।६; (तु० आप०ध०सू० १।२।७।३); विष्णु स्मृ० ७१।२६; मार्कं० ३४।२३; भविष्य ४।२०५।४४; वामन १४।४५।

२. अग्नि २२७।४०; कूर्म उ० १६।८६; मत्स्य २२७।१२२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सम्बोधित करेगा। परस्त्री के साथ व्यवहार विषयक ऐसे नियम दुराचार की सम्भावना के मूलोच्छेद की दृष्टि से ही बनाये गये थे।

गृहस्थेतर आश्रमियों के चारित्रिक स्खलन को रोकने के लिए भी विशेष आचार-संहिता बनी थी। ब्रह्मचारी के लिए मैथुन सर्वथा वर्जित था (द्र० पीछे, पृ० ७७ टि० ५-७)। आपस्तम्ब (ध० सू० १।२।७।८-१०) ने ब्रह्मचारी के लिए स्त्री [की गन्ध] को सूंघना, उसकी कामना करना तथा अकारण उसका स्पर्श वर्जित बतलाया है। उसके लिए नग्न स्त्री का दर्शन भी वर्जित था (आप.ध.सू.१।२।७।३)। गौतम (ध.सू.१।२।२२) एवं मनु (२।१७९) ने मैथुन की आशङ्का की स्थिति में उसके लिए स्त्री का दर्शन और स्पर्श भी वर्जित बतलाया है। आपस्तम्ब (ध० सू० १।१।३।१६) एवं बौधायन (ध० सू० १।२।३।२४) का निर्देश है कि वह स्त्रियों के साथ प्रयोजन मात्र की बात करे (यावदर्थसंभाषी)। वाराह गृह्य सूत्र (६।१६) में उसके लिए स्त्री-स्पर्श वाले कार्य वर्जित बतलाये गये हैं। गौतम (ध० सू० १।२।३८) के अनुसार वह गुरुपत्नी एवं उसके बच्चों का उच्छिष्ट-भक्षण, स्नापन (स्नान कराना), प्रसाधन (अलङ्करण), पाद-प्रक्षालन, उन्मर्दन (मालिश) तथा चरण-स्पर्श न करे। मनु (२।२११) ने उसके लिए गुरुपत्नी का अभ्यञ्जन (तेल मालिश), स्नापन, गात्रोत्सादन (शरीर दबाना) आदि वर्जित बतलाया है। विष्णु (स्मृ० ३२।६) ने भी ब्रह्मचारी के लिए गुरुपत्नी का गात्रोत्सादन, अञ्जन, केशसंयमन एवं चरण-प्रक्षालन आदि वर्जित बतलाया है। श्रीमद्भागवतपु०(७।१२।८) के अनुसार युवा ब्रह्मचारी युवती गुरुपत्नी से अपने केश-प्रसाधन, उन्मर्दन, स्नपन, अभ्यञ्जन आदि न करावे। पद्मपुराण (१।५१।१०६-८) का उपदेश है कि ब्रह्मचारी गुरुपत्नी के साथ केलि न करे, उसके वचन अधोमुख होकर सुने, कामभाव से उसका दर्शन, स्पर्श तथा उसके साथ वार्तालाप न करे। युवा ब्रह्मचारी के लिए गुरुपत्नी के अभिवादन में चरण-स्पर्श भी निषिद्ध था। यद्यपि गौतम (ध० सू० १।२।३९), मनु (२।२१७) एवं विष्णु (स्मृ० ३२।१५) ने प्रवास से लौटे ब्रह्मचारी को गुरुपत्नी के चरण-स्पर्श की अनुमति दी है, किन्तु स्वयं गौतम (ध० सू० १।२।४०) के अनुसार अनेक आचार्यों ने व्यवहार-प्राप्त (षोडश वर्ष या अधिक वय के) ब्रह्मचारी के लिये गुरुपत्नी के चरण स्पर्श का निषेध किया है। मनु (२।२१२), विष्णु (स्मृ० ३२।१३) एवं स्कन्दपुराण (४।३६।६६) के अनुसार बीस वर्ष की अवस्था को प्राप्त हो जाने पर गुणदोषाभिज्ञ ब्रह्मचारी युवती गुरुपत्नी का अभिवादन न करे। वह उसका अभिवादन भूमि पर (भू-स्पर्श रूप में) कर सकता था (मनु २।२१६, विष्णु स्मृ० ३२।१४)। ऐसे सभी विधानों का उद्देश्य ब्रह्मचारी की कामोद्रेक-जन्य चित्तविकृति को रोकना ही था।

अति प्राचीन समाज के अनेक पुरुष अपनी आयु के तीसरे भाग में गृहस्थाश्रम के कामोपभोगों को छोड़कर वानप्रस्थाश्रम में चले जाते थे। वानप्रस्थ और भिक्षु दोनों को ही शास्त्रों में काम-विकार के कारणों, विशेषतः स्त्री-संसर्ग से दूर रहने का निर्देश

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दिया गया है। श्रीमद्भागवतपुराण (११।१७।३३) का उपदेश है कि गृहस्थेतर आश्रमी स्त्रियों का दर्शन, स्पर्श एवं उनके साथ वार्तालाप और परिहास न करे और न मैथुनासक्त प्राणियों का दर्शन करे। नारदपरिव्राजकोपनिषत् (४।३-४; ६।३५-६) में भिक्षु को निर्देश दिया गया है कि वह किसी स्त्री से वार्तालाप न करे, उसका स्मरण न करे, उसके विषय में बात न करे और चित्राङ्कित नारी का भी काम-भाव से दर्शन न करे। अन्यथा उसका मनोविकार उसके पतन का कारण बन सकता है। स्कन्दपुराण (४।४१।२६-७) में कहा गया है कि किसी नारी को कामभाव से देखने के फलस्वरूप भिक्षु को कुम्भीपाक नरक में यातना भोगनी पड़ती है। इस तरह गृहस्थेतर आश्रमियों को मर्यादित रखने के उद्देश्य से उनके लिए कामभाव से स्त्री का दर्शन, स्पर्श, स्मरण, आदि वर्जित किया गया था तथा इन वर्जनाओं के अतिक्रमण पर नरक-यातना का भी भय दिखलाया गया था। वस्तुतः प्राचीन धर्माचार्यों ने अपने विधि-विधानों और उपदेशों के द्वारा गृहस्थों तथा गृहस्थेतर आश्रमियों को संयमित रखने का प्रयास करके समाज को यौन-सम्बन्धों की दृष्टि से मर्यादित रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

४. पातिव्रत्य-पालन

मर्यादित दाम्पत्य जीवन के लिए पत्नी का पतिव्रता होना भी परम आवश्यक है। प्राचीन समाज में पतिव्रता नारी को ही प्रशस्त माना जाता था और वैदिक काल से ही भारतीय नारी पातिव्रत्य की कसौटी पर स्वयं को खरा सिद्ध करती रही है। ऋग्वेद (१।७३।३) की एक उपमा (अनवद्या पतिजुष्टेव नारी) से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में पति के संसर्ग में रहने वाली और पति के द्वारा सेवित—पतिव्रता नारी को ही अनवद्या (अनिन्द्या, विशुद्ध चरित्र वाली) माना जाता था। अथर्ववेद (११।१।१४) में पति के साहचर्य में रहने वाली साध्वी नारी को 'सुपत्नी' कहा गया है। इसमें शुद्ध, पवित्र यज्ञिय जलों को योषित् (युवती-स्त्री) का रूपक दिया गया है,[१] जिससे यह ध्वनित होता है कि अथर्ववेद कालीन समाज में स्त्रियों को चारित्रिक दृष्टि से शुद्ध और पवित्र माना जाता था। जैसा कि अथर्ववेद (६।२५।१-३) में प्रयुक्त 'वाका अपचितामिव' पदों के सायण कृत भाष्य से भी स्पष्ट होता है, तत्कालीन समाज की मान्यता थी कि वचनीय दोष (अर्थात् चारित्रिक लाञ्छन) पतिव्रता स्त्री को नहीं लग पाते। ऋग्वेद (७।७७।१) की एक उपमा (उपो रुरुचे युवतिर्न योषा) में नारी पति के सान्निध्य में रुचिर (शोभायमान) दिखलाई पड़ती है। ऐसा उसकी प्रसन्न मनःस्थिति में ही सम्भव है। पति ही भारतीय नारी के सुख-सौभाग्य का स्रोत रहा है। अतः पति के सान्निध्य में उसका प्रसन्न रहना स्वाभाविक ही था। परित्यक्ता नारी भी पति को पुनः प्राप्त कर फूली नहीं समाती थी (द्र० ऋ० १०।१०२।११)। अथर्ववेद (१२।३।२९) से विदित होता है कि पति के निधन

१, शुद्धा पूता योषितो यज्ञिया इमा....। अथर्व० ६।१२२।५; ११।१।१७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से पत्नी को परम क्लेश का अनुभव होता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल से ही भारतीय नारी तन-मन से पति के साथ जुड़ी हुई थी। संहिताओं में प्राप्त कुछ उपमाओं में नारी को पति के समान मन वाली बतलाया गया है।[१] तात्पर्य यह है कि वैदिक नारी ने अपनी चित्तवृत्ति को पति की चित्तवृत्ति के साथ जोड़ दिया था। अतः उसका आचरण भी पति की इच्छा के अनुकूल होता था। अथर्ववेद (१४।१।४२) में विवाह-संस्कार के एक मन्त्र में वधू को पति की अनुवर्तिनी बनने को कहा गया है और वह अपने जीवन में वस्तुतः पति का अनुवर्तन करती थी। शतपथ ब्राह्मण (१३।२।२।४) के अनुसार स्त्रियाँ स्वभावतः पति का अनुवर्तन करने वाली होती हैं। ऐसे उत्कृष्ट आदर्शों वाले समाज में नारी का पतिव्रता होना स्वाभाविक ही था।

वैदिक नारी मन से भी परपुरुष की बात नहीं सोचती थी। उसका समस्त अलंकरण, अङ्ग-प्रसाधन आदि पति के ही निमित्त होता था।[२] शोभन वस्त्रों से सुशोभित होकर वह उसी की कामना करती थी।[३] वह काम-भाव से उसी के पास जाती थी[४] और उसी के साथ संयुक्त[५] किं वा आलिङ्गनबद्ध[६] होती थी। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के विवाह-संस्कार के मन्त्रों में वधू को केवल पति के साथ शारीरिक सम्पर्क की अनुमति दी गई है।[७] वस्तुतः शोभन वस्त्र वाली और कामनायुक्त होकर वह अपना शरीर पति को ही समर्पित करती थी।[८] शची की उक्तियों से यह झलकता है कि मानो पति के साथ समागम में कुशल नारी उसके समान अन्य कोई नहीं है।[९] ऋग्वेद १।१७९।१-२ से विदित होता है कि तपस्वी पति की सेवा में यौवन बिताने वाली लोपामुद्रा ने परपुरुष की कल्पना भी नहीं की, अपितु वृद्धावस्था आने पर अगस्त्य को समागम हेतु प्रेरित करने के ध्येय से इतना ही कहा था कि पत्नियों को भी पतियों के साथ समागम का अवसर मिलना ही चाहिए। ऋग्वेद (३।५७।३) तथा इस पर वेङ्कटमाधवभाष्य से स्पष्ट होता है कि पत्नी पति के साथ समागम से ही पुत्र उत्पन्न करना चाहती थी। अथर्ववेद (१४।२।२४,३१) में विवाह-संस्कार के मन्त्रों में वधू को पति के साथ समागम से सन्तानोत्पादन हेतु उद्बोधित किया गया है।

१. ऋ० ४।२८।८; ६।७५।४; वाज० सं० १७।९६; २९।४१; तै० सं० ४।६।६।२;
२. ""पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः। ऋ० १०।११०।५; वाज० सं० २९।३०; अथर्व० ५।१२।५; द्र० अथर्व० १४।१।५५।
३. जायेव पत्य उशती सुवासाः। ऋ० १।१२४।७; ४।३।२; १०।७१।४; १०।९१।१३।
४. ऋ० १०।११०।५; अथर्व० ५।१२।५; वाज सं० २९।३०।
५. आ जाया युवते पतिम्। ऋ० १।१०५।२।
६. परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिम्। ऋ० १०।४३।१; अथर्व० २०।१७।१।
७. ऋ० १०।८५।२७; अथर्व० १४।१।२१; १४।१।४०; १४।२।२२, ३२।
८. उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः। ऋ० १०।७१।४।
९. ऋ० १०।८६।६; अथर्व० २०।१२६।६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जैसा कि डॉ० सूर्यकान्त ने भी (वैदिककोश, पृ० ४५५ में) स्वीकार किया है कि एक नपुंसक की पत्नी—'वध्रिमती' की प्रार्थना पर अश्विनौ ने उसके पति को पुंस्त्व प्रदान किया था, जिसके फलस्वरूप उसे हिरण्यहस्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।[1] ऋग्वेद (८।१।३४) तथा इसके सायण-भाष्य से विदित होता है कि देव-शाप से नपुंसक बने हुए आसंग नामक राजा को उसकी पत्नी ने अपनी तपश्चर्या के बल पर पुंस्त्व की प्राप्ति करायी थी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक युग की नारी इतनी सच्चरित्र थी कि वह अपने पति के वृद्ध अथवा पुंस्त्व-विहीन होने पर भी अपनी वासना की शान्ति अथवा सन्तान-लाभ के लिए भी परपुरुष की कामना नहीं करती थी। छान्दोग्योपनिषत् (५।११।५) में राजा अश्वपति ने पूर्ण आत्मविश्वास के साथ यह कहा है कि उसके राज्य में कोई भी नारी स्वैरिणी नहीं हो सकती। वैदिक युग से ही भारतीय नारी किसी भी प्रलोभन पर अपने जराजीर्ण पति का अतिक्रमण नहीं करती थी। शतपथ ब्राह्मण (४।१।५।६) में सुकन्या ने कहा है कि वह अपने पिता के द्वारा चुने गये अपने पति को नहीं छोड़ सकती। इतिहास-पुराण में भी सुकन्या के द्वारा अश्विनीकुमारों के प्रणय-प्रस्ताव को ठुकराने की प्रशस्ति गायी गयी है।[2]

वैदिक साहित्य के पश्चात् आदिकाव्य रामायण में नारी के पातिव्रत्य के सर्वोच्च आदर्श दृष्टिगत होते हैं। रामायण काल की पतिव्रता नारियों की अग्रिम पंक्ति में उल्लेखनीय सती साध्वी सीता का चरित्र प्रत्येक देश और प्रत्येक काल की पतिव्रता स्त्रियों के लिए अनुकरणीय बन गया है। वनगमन के समय सीता ने राम से अपने चरित्र विषयक दुराशङ्का का निराकरण करते हुए कहा था कि मैं आपके अतिरिक्त किसी भी पुरुष को मन से भी नहीं देखूँगी।[3] सती अनसूया को अपनी पति-भक्ति के विषय में आश्वस्त करते हुए वह बोली थी कि मुझे विदित है कि पति ही नारी का गुरु होता है। अपने पति के अनार्य और वृत्तिहीन होनेपर भी मैं अद्वैधभाव से उसकी सेवा की होती (रामा० २।११८।२-३)। एक अन्य स्थल में सीता ने कहा है कि मेरे पति के दीन और राज्यहीन होने पर भी वही मेरे लिए गुरु हैं और मैं उन पर नित्य अनुरक्त हूँ (रामा० ५।२४।९)। युग-युग से भारतीय नारी का यही आदर्श रहा है कि वह परपुरुष संसर्ग से अपने चरित्र में लाञ्छन लगाने की अपेक्षा मर जाना अधिक प्रशस्त मानती थी। सीता ने कहा है कि वह उद्बन्धन (फाँसी), विषम स्थान से पतन, विष-भक्षण या अग्नि-प्रवेश करके देह त्याग देगी, किन्तु राम के अतिरिक्त किसी भी पुरुष का स्पर्श तक नहीं करेगी (रामा० ३।४५।३६-७)। सीता ने तृण से अन्तरित (ओट) करते हुए रावण से कहा था कि मुझसे

१. ऋ० १।११६।१३; १।११७।२४; ६।६२।७; १०।३९।७; १०।६५।१२।

२. वनपर्व १२३।१-१२; भाग० ९।३।१०-१७ देवीभाग० ७।४-५ अध्याय।

३. न त्वहं मनसा त्वन्यं द्रष्टास्मि त्वदृतेऽनघ। रामा२०१७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपना मन मोड़कर अपनी स्त्रियों में लगाओ। तुम्हारे लिए मेरी कामना करना उचित नहीं है, पापी मनुष्य को सिद्धि के समान तुमको मैं कभी भी नहीं मिल सकती। मैं एक पुरुष की पतिव्रता स्त्री हूँ। उच्चकुल में उत्पन्न हुई हूँ तथा एक पवित्र कुल की वधू हूँ। मैं कदापि गर्हणीय दुष्कर्म नहीं कर सकती। ऐसा कह कर रावण की ओर पीठ फेरते हुए सीता ने कहा कि मैं तुम्हारे लिए औपयिकी ? नहीं, अपितु परस्त्री हूँ (रामा० ५।२१।३-६)। उसने स्पष्ट कह दिया था कि मुझे धन और ऐश्वर्य के लोभ से डिगाया नहीं जा सकता। सूर्य के साथ प्रभा की भाँति राम के साथ मेरा तादात्म्यभाव है। राम की भुजा का आश्रय लेकर मैं किसी अन्य पुरुष की भुजा का आश्रय ले ही नहीं सकती (रामा०५।२१।१५-६)। हनुमान् से सीता ने कहा है कि मैं पति-भक्ति के आगे किसी भी पुरुष का स्वतः स्पर्श नहीं करना चाहती। रावण के द्वारा अपहरण के समय जो मेरा स्पर्श किया गया उस समय मैं प्रतीकार में असमर्थ, अनाथ और विवश थी (रामा० ५।३७।६२-३)। वस्तुतः सीता ने अत्यन्त विषम स्थितियों में अपने चरित्र की रक्षा करके स्वयं को निखारा था। इसीलिए भारतीय साहित्य में सीता के पातिव्रत्य के विषय में जितना लिखा गया है उतना अन्य किसी नारी के विषय में नहीं।

सीता के पातिव्रत्य की विशेष चर्चा का तात्पर्य यह नहीं कि अन्य नारियों में पति के प्रति वैसी निष्ठा नहीं थी। रामायण काल में तथा उसके पूर्वकालिक समाज में भी असंख्य पतिव्रता स्त्रियाँ रही हैं, जिनमें से अनेक की चर्चा प्राचीन साहित्य में है, किन्तु जिन नारियों के जीवन में कोई विशेष उथल-पुथल और संघर्ष की कोई उल्लेखनीय स्थिति नहीं आयी, जिनका जीवन शान्तिपूर्ण बीता, उनका साहित्य में कोई उल्लेख नहीं हो पाया। फलतः वे अज्ञातनाम और विस्मृत हो गयीं। सती अनसूया जैसी नारियों को विशेष सम्मान देने के अतिरिक्त रामायण में अन्य भी अनेक पतिव्रता नारियों का चरित्र अनुकरणीय बतलाया गया है। रामायण (२।३०।६) में सीता ने राम से कहा है कि सत्यवान् का अनुवर्तन करने वाली सावित्री की भाँति मैं आपके वश में रहने वाली हूँ। रामायण के सुन्दरकाण्ड (२४।९-१३) में सीता ने स्वयं को उसी प्रकार राम के प्रति अनुरक्त और उनकी अनुवर्तिनी बतलाया है जिस प्रकार सुवर्चला अपने पति भगवान् सूर्य के प्रति, शची इन्द्र के प्रति, अरुन्धती वसिष्ठ के प्रति, रोहिणी चन्द्रमा के प्रति, लोपामुद्रा अगस्त्य के प्रति, सुकन्या च्यवन के प्रति, सावित्री सत्यवान् के प्रति, श्रीमती कपिल के प्रति, मदयन्ती सौदास के प्रति, केशिनी सगर के प्रति और दमयन्ती नल के प्रति। महाभारत भी पातिव्रत्य के उज्ज्वल आदर्शों तथा महनीय चरित्र की अनेकानेक पतिव्रता नारियों की गौरव-गाथाओं से विभूषित है। वैदिक वाङ्मय तथा रामायण और महाभारत में जिन नारियों के अवदात चरित्रका यशोगान है, प्रायः उन्हीं नारियों के तथा कुछ अन्य नारियों के उज्ज्वल चरित्र का गुण-गान पौराणिक साहित्य में भी पाया जाता है। इनमें सावित्री, लोपामुद्रा, अरुन्धती, शाण्डिली, शतरूपा,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अनसूया, लक्ष्मी, स्वधा, सती, संज्ञा, सुमति, श्रद्धा, मेना और स्वाहा को गिनाते हुए शिवपुराण में कहा गया है कि ऐसी अन्य भी अनेक पतिव्रता नारियाँ हैं, जिनकी चर्चा विस्तार-भय से नहीं की जा रही है।[1] युग-युग की उत्तम-स्त्रियों के नाम-निर्देश की एक प्रवृत्ति पुराणों में अन्यत्र भी देखी जा सकती है।[2]

सामाजिक चरित्र के निर्माण में नारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। अच्छे चरित्र वाली नारी ही बच्चों को सच्चरित्र बना सकती है। जिस नारी का अपना चारित्रिक बल और आदर्श न हो वह अपने समाज के भावी कर्णधारों को कभी समुचित मार्ग-निर्देश नहीं दे सकती। प्राचीन समाज के नैतिक-गुण सम्पन्न तथा सदाचारी होने में नारी जाति का भी सहयोग रहा है। प्राचीन नारी स्वभावतः मर्यादित तथा पतिव्रता थी। प्रकृत्या सच्चरित्र होने के कारण वह परपुरुष की कल्पना भी नहीं करती थी। महाभारत में नियोग से पुत्रोत्पादन हेतु प्रेरित करने वाले पति पाण्डु से कुन्ती ने कहा है कि मैं मन से भी आपके अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष के साथ समागम का विचार नहीं करती।[3] द्रौपदी ने कहा है कि पति से भिन्न कोई भी पुरुष चाहे वह सुन्दर वेश-भूषा से अलंकृत, धनी, सुन्दर और युवा देव, मनुष्य या गन्धर्व ही क्यों न हो, मुझे अभीष्ट नहीं है (वनपर्व २३३।२३)। उसने परपुरुष के द्वारा अपने शरीर का स्पर्श किये जाने पर भी खिन्नता व्यक्त की थी (विराटपर्व १८।२-५)।

महाभारत कालीन समाज में ऐसी अनेक नारियाँ थी जो किसी भी मूल्य पर पर-पुरुष का संसर्ग नहीं चाहती थी। आपत्काल में अकेली और निरीह नारी कामुक पुरुषों से अपने शील की रक्षा स्वयं अपने नैतिक और आध्यात्मिक बल से करती थी। महाभारत (वनपर्व ६३।२७-३९) के अनुसार वन में अजगर के मुख से दमयन्ती की रक्षा करने वाले व्याध ने जब रात्रि में उसके साथ बलात्कार की चेष्टा की तो वह उसके शाप से मृत्यु को प्राप्त हो गया था। जातक कथाओं में भी अपने शील की रक्षा स्वयं करने वाली स्त्रियों के अनेक उदाहरण मिलते हैं[4]। जातक(५४६)की एक कथा में धन-सम्पत्ति का प्रलोभन देने वाले कामुक पुरुषों से एक स्त्री ने कहा है कि यह धन मेरे पति के चरणों की धूल के समान भी नहीं है। फासबाल जातक (५।६८२) के अनुसार जब एक यक्ष ने एक नारी से यह कहा था कि वह उसकी कामेच्छा पूरी करे अथवा अपनी मृत्यु का वरण करे तो वह उसके हाथों मरने को उद्यत हो गयी थी। इस तरह हम पाते हैं कि प्राचीन समाज की नारियाँ अपनी शील-रक्षा हेतु मर-मिटने को तत्पर

१. शिव २।३।५४।११-२; तु० स्कन्द ३।२।७।१४-५; ४।४।६-८।
२. द्र०-ब्रह्मवै० २।१६।६४-७२; देवीभाग० ९।१८।५५-६०।
३. न ह्यहं मनसाऽप्यन्यं गच्छेयं त्वदृते नरम्। आदिपर्व १२०।५।
४. द्र० हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० १२६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रहती थी, किन्तु वे कामातुर पुरुषों के बहकावे में नहीं आती थी। जयदेव ने अपने प्रसन्नराघव-नाटकम् (१।५६) में कहा है कि कामातुर पुरुषों के वचनों से पतिव्रता नारियों का मन विचलित नहीं होता। भारतीय नारी का यह आदर्श रहा है कि उसका पति चाहे जैसा भी हो, वह उसी को अपना सब कुछ समझ लेती थी, उसकी रिक्तता की पूर्ति हेतु अन्य पुरुष के सपने कभी नहीं देखती थी। ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा गया है कि पतिव्रता स्त्री अपने अवगुणी पति की भी सेवा करती है और उसकी प्रशंसा करती है।[1] प्राचीन युग की नारी आधुनिक नारी की भाँति पति के बहु-आयामी पुरुष रूप को, उसके समग्र व्यक्तित्व को बुद्धि और तर्क से परखने तथा उसके गुण-दोषों की समीक्षा करके उस पर अंकुश लगाने तथा यथाकथञ्चित् उसके साथ सामञ्जस्य स्थापित करने की चेष्टा नहीं करती थी, वह तो अपने जीवन की डोर से बँधे हुए पुरुष को केवल निर्विशेष भाव से पति रूप में देखती थी और हार्दिक भावना से उससे सम्बद्ध रहती थी। प्राचीन समाज में दाम्पत्य जीवन को विखण्डित होने से बचाने का सर्वाधिक श्रेय उस युग की साध्वी नारी का ही रहा है।

सती-साध्वी नारियों की परिवार तथा समाज के निर्माण में जो भूमिका रही है उसके मूल्यांकन के प्रसङ्ग में इतिहास-पुराण में कहा गया है कि वे सम्पूर्ण पृथिवी को धारण करती हैं।[2] उन्हें तीनों लोकों को धारण करने वाली भी बतलाया गया है।[3] कथासरित्सागर (७ २।४१) में कहा गया है कि कुछ विरली पतिव्रता स्त्रियाँ ऐसी भी हैं जो ईश्वर के समान इस जगत् के सृजन, पालन तथा संहार में समर्थ हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में पतिव्रता स्त्रियों की अलौकिक–दिव्य और आध्यात्मिक शक्तियों को ख्यापित करने वाली अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं।[4] महाभारत (अनु० पर्व ७३।२) में भीष्म ने इन्द्र से कहा है कि इस ब्रह्माण्ड में ऐसे अनेक लोक हैं जिनको मैं देख सकता हूँ या पतिव्रता स्त्रियाँ ही देख सकती हैं, किन्तु तुम जैसे समर्थ देवता भी उन्हें नहीं देख सकते। सती सावित्री ने पातिव्रत्य के बल पर ही यम से अपने अन्धे तथा राज्यच्युत श्वशुर के लिए नेत्र-लाभ तथा राज्य-लाभ, अपने पुत्रहीन पिता के लिए एक सौ पुत्रों की प्राप्ति के वरलाभ के साथ ही अपने मृत-पति को प्राणदान दिलाया था।[5] पति-

१. निर्गुणं स्वामिनं साध्वा सेवते च प्रशंसति ॥ब्रह्मवै०. १।२४।१३।
२. स्त्रियः साध्व्यो महाभागाः सम्मताः लोकमातरः।
धारयन्ति महीं राजन्निमां सवनकाननाम् ॥अनु० पर्व ४३।२०।
तु०-साध्व्यो जगद् धारयन्ति सुशीलाः पतिदेवताः। हरिवंश २।७८।७।
३. (क)–एकपत्न्यः स्त्रियः सर्वा धारयन्ति जगत् त्रयम् ॥ विष्णुधर्मो० २।३३।१।
(ख)–तासां राजन् प्रसादेन धार्यते वै जगत् त्रयम् ॥ मत्स्य २१४।२१।
४. द्र०–हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० १२६-७; महाभारत में नारी, पृ० ६८-७७
५. वनपर्व २९७।२६-५६; मत्स्य २१४।१८-२०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्रता नारी की आध्यात्मिक शक्ति का एक उदाहरण राजतरङ्गिणी (२।५०-२) में है। कश्मीर के राजा तुञ्जीन की रानी वपुष्मा के पतिव्रता-धर्म के प्रभाव से दुर्भिक्ष और हिमपात के समय क्षुधार्त प्रजाओं के आहारार्थ उनके घरों में प्रतिदिन मरे हुए कबूतर गिरते थे। इस तरह के अनेक आख्यान प्राचीन साहित्य में हैं, जो पतिव्रता नारियों के महनीय चरित्र और उनके पातिव्रत्य की शक्ति को ख्यापित करते हैं।

पातिव्रत्य-विधान—वैदिक साहित्य में नारी की कर्तव्य-निष्ठा के प्रति कोई संदेह नहीं किया गया है। उसे कर्तव्यों के प्रति सजग करने के लिए आचार-संहिता निर्दिष्ट करने की प्रवृत्ति धर्मसूत्रों में लक्षित होती है।[1] कालान्तर में नारी के कर्तव्यों का निर्देश पतिव्रता-धर्म के रूप में किया जाने लगा था। महाभारत में कहा गया है कि पतिव्रता होना नारी का परम धर्म है।[2] पतिव्रता धर्म का जैसा विस्तृत विधान भारतीय साहित्य में उपलब्ध है उसका प्रतिमान विश्व-साहित्य में मिलना कठिन है। मनु आदि की स्मृतियों तथा इतिहास-पुराण के अनेक प्रसङ्गों में पतिव्रता नारियों के धर्म का प्रतिपादन है।[3] नारी के कर्तव्यों का बहुत कुछ निर्देश पतिव्रता शब्द की विभिन्न परिभाषाओं में किया गया है। ये परिभाषाएँ नाना दृष्टियों से की गयी हैं। यथा—पति के साथ सामञ्जस्य-स्थापन की दृष्टि से, सहिष्णुता जैसे गुणों की दृष्टि से, पति के दैनन्दिन जीवन के कार्यों में सहयोग की दृष्टि से तथा यौन-सम्बन्ध की शुचिता की दृष्टि से। दाम्पत्य जीवन में सफलता के लिए पति-पत्नी के स्वभाव में सामञ्जस्य अपेक्षित होता है। पति के स्वभाव के अनुकूल स्त्री ही उसके साथ प्रेम से जीवन-यापन कर सकती है तथा उसकी प्रतिच्छाया या प्रतिबिम्ब के समान उसका साथ निभा सकती है। महाभारत के अनुसार पतिव्रता पत्नी पति के प्रसन्न रहने पर प्रसन्न, दुःखी होने पर दुःखी, प्रोषित (प्रवासी) होने पर दीन मुखाकृति वाली हो जाती है तथा उसके क्रुद्ध होने पर प्रिय वचन बोलती है[4]। बृहस्पति स्मृति (२।४८३) तथा वृद्धहारीत स्मृति (८।१६८) में उस नारी को पतिव्रता बतलाया गया है जो पति के आर्त (दुःखी) होने पर आर्त,

---

१. बौ० ध० सू० २।२।३।४५-५१; गौतम ध० सू० २।९।१-५; आप० ध० सू० १।१०।२८।२०; वसिष्ठ ध० सू० ५।१।

२. पतिव्रतात्वं भार्यायाः परमो धर्म उच्यते। शान्तिपर्व ३५९।१०।
तु०—पातिव्रत्यं परो धर्मः स्त्रीणामिति हि शुश्रुम। पद्म ५।११०।७६।

३. रामा० २।३९।२४-३१; २।११७।२३-९; २।११८।२-१२; वनपर्व २०६।७-२४; २३३।१७-५९; शान्तिपर्व १४४।८-९; अनु० पर्व १२३।९-१९; १४६।३४-५८; शिव २।३।५४।१४-८१; स्कन्द ४।४।३-७०; कामसूत्र, खण्ड ४, अध्याय १।

४. हृष्टे भवति सा हृष्टा दुःखिते मयि दुःखिता।
प्रोषिते दीनवदना क्रुद्धे च प्रियवादिनी॥ शान्तिपर्व १४४।९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रसन्न होने पर प्रसन्न, प्रोषित (प्रवासी) होने पर मलिन तन-वसन वाली तथा कृश-काय हो जाती है और उसके दिवंगत होने पर स्वयं भी दिवंगत हो जाती है—

आर्तार्ते मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा।
मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥

शिवपुराण (२।३।५४।४०-४१; तु० स्कन्दपुराण ४।४।३२) में पतिव्रता नारी का यह लक्षण बतलाया गया है कि वह पति के प्रसन्न रहने पर प्रसन्न, उसके विषण्ण (उदास)-मुख वाला होने पर विषण्ण-मुखाकृति वाली, सदा पति की हितैषिणी तथा पति की सम्पत्ति और विपत्ति—दोनों अवस्थाओं में एक समान रहती है। मत्स्यपुराण (२०।३२), श्रीमद्भागवत (४।२८।१९) तथा कुट्टनीमतम् (श्लोक ४४१) में यह ध्वनित किया गया है कि अच्छी पत्नी अपने व्यवहार में पति की प्रतिच्छाया या प्रतिबिम्ब की तरह आचरण करती है, किन्तु पति के क्रुद्ध होने पर स्वयं भी क्रुद्ध नहीं होती, अपितु भयभीत हो जाती है। नारी का सौम्य तथा सहिष्णु होना अन्यतम आवश्यक गुण है। इसी अपेक्षा से महाभारत में कहा गया है कि पति के द्वारा निष्ठुर वचन बोले जाने तथा दुष्ट-दृष्टि से देखे जाने पर भी प्रसन्न रहने वाली नारी को पतिव्रता मानना चाहिए।[1]

साध्वी भार्या पति के प्रति माता के समान ममतामयी, भगिनी के समान शुभेच्छु तथा दासी के समान सेवा-शुश्रुषा में तत्पर होती है, ऐसा मानकर ही उसे अंगुत्तर निकाय (४।९२) में माता, भगिनी तथा दासी के समान बतलाया गया है। सुजाताजातक (३।३४८-९) में पति के प्रति व्यवहार को देखते हुए पत्नी के सात भेद बतलाये गये हैं, जिनमें से चार साध्वी पत्नी के तथा शेष तीन प्रकार दुष्ट स्वभाव की स्त्री के हैं। साध्वी पत्नी के चार प्रकारों में उसको क्रमशः माता, भगिनी, सखी तथा भृत्य के समान बतलाया गया है।[2] महाकवि कालिदास की दृष्टि में अच्छी पत्नी पुरुष की कुशल गृहिणी, परामर्शदात्री (सचिव), सखी (मित्र) तथा उपदेश-ग्रहण और ललित कलाओं के सम्पादन में प्रिय-शिष्या के समान होती है।[3] पद्मपुराण (तु० गरुड पुराण पू० ६४।६; स्कन्दपुराण ३।७।१७।५५-६) में उस स्त्री को पतिव्रता कहा गया है जो सेवा-कार्य में दासी, रमण हेतु वेश्या तथा भोजन बनाकर खिलाने में ममतामयी जननी और विपत्ति के समय समुचित परामर्श देने में मन्त्री के समान हो।[4]

---

१. परुषाण्यपि चोक्ता या दृष्टा दुष्टेन चक्षुषा।
सुप्रसन्नमुखी भर्तुर्या नारी सा पतिव्रता ॥ अनु० पर्व १४६।४२।

२. द्र०—सेनगुप्ता, नीलाक्षी : इवोल्यूशन आफ हिन्दू मैरेज, पृ० १६२-३।

३. गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ। रघु० ८।६७।

४. कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननीसमा।
विपत्सु मन्त्रिणी भर्तुः सा च भार्या पतिव्रता ॥ पद्म १।४७।५६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नित्य पति की सेवा-शुश्रूषा करने वाली, उसके सन्तुष्ट रहने पर प्रसन्न होने वाली, उसके क्रुद्ध होने पर भी उसका त्याग न करने वाली, उसका दोष न पकड़ने वाली, उसके द्वारा प्रताडित होने पर भी सन्तुष्ट रहने वाली और उसके सभी कार्यों को करने के लिए सम्मुख उपस्थित रहने वाली नारी को भी पतिव्रता कहा गया है (पद्म २।५०।२२-४)। प्राचीन समाज में नारी का कार्य-क्षेत्र घर-गृहस्थी तक सीमित होने के कारण उससे जो अपेक्षा की जाती थी वही पतिव्रता नारी की इन परिभाषाओं में उल्लिखित है। प्रायः ऐसी ही अपेक्षा से व्यासस्मृति में कहा गया है कि पत्नी को पति की प्रतिच्छाया के समान अनुगामिनी, स्वच्छ, पति के हितकर कार्यों में सखी के समान तथा पति के द्वारा आदिष्ट कार्यों के सम्पादन में दासी के समान होना चाहिए।[1] पातिव्रत्य की उपर्युक्त परिभाषाएँ पत्नी के कर्तव्यों का ही निर्देश करती हैं। वस्तुतः स्त्रीधर्म के अन्तर्गत गिनाये जाने वाले पत्नी के समस्त कर्तव्यों[2] का निर्वाह पातिव्रत्य के अन्तर्गत आता है।

दाम्पत्य जीवन की सफलता हेतु यह आवश्यक है कि पति अन्य नारी की कामना न करे तथा पत्नी भी पति को ही सब कुछ माने। यदि पत्नी पति को चारित्रिक, बौद्धिक या शारीरिक न्यूनताओं या दोषों का ही आकलन करती रहेगी तथा उसे निकृष्ट पुरुष मानकर हेय दृष्टि से देखेगी तो निश्चयमेव वह उसकी उपेक्षा या अवहेलना भी करेगी। इसके परिणाम स्वरूप दाम्पत्य जीवन में कटुता, वैमनस्य तथा विघटन की स्थिति आ जायेगी। ऐसी संभावित परिस्थिति के प्रतीकार हेतु ही प्राचीन आचार्यों ने अपने उपदेशों में ऐसे भाव व्यक्त किये हैं कि पति का शील-स्वभाव, आचार-विचार, बुद्धि-वैभव तथा आर्थिक और सामाजिक स्तर चाहे जैसा भी हो, पत्नी अपने जीवन में उसको ही सर्वोपरि तथा सर्वोत्कृष्ट पुरुष समझे।[3] महाभारत में कहा गया है कि साध्वी स्त्री पति को सदा देवतुल्य मानती है।[4] मनु (स्मृति ५।१५४ द्र०-कुल्लूक) ने कहा है कि साध्वी स्त्री सदाचारहीन, कामवृत्त (अन्यस्त्री-लम्पट) अथवा विद्या-वित्तादि गुणों से रहित पति को भी सदैव देववत् मानकर उसकी सेवा करे। पुराणों में पतिव्रता के धर्म (कर्तव्य) के निर्देश के प्रसङ्ग में यह कहा गया है कि वह क्लीव (नपुंसक), दुर्दशा को प्राप्त, रोगी, वृद्ध, सुखी अथवा

---

१. छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु।
दासीवादिष्टकार्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत्॥ व्यासस्मृति २।२७।

२. पत्नी के कर्तव्य-निर्देश हेतु द्र०-शंख (याज्ञ० १।८७ की टीका मिता० में उद्धृत); शंखलिखित (कृत्यकल्पतरु, व्य० का० पृ० ६२२-३) तथा हारीत (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ६२३-५ में उद्धृत)।

३. द्र०-विधेर्विष्णोर्हराद्वापि पतिरेकोऽधिको मतः। शिव २।३।५४।४३।

४. देववत् सततं साध्वी भर्तारमनुपश्यति। अनु० पर्व १४६।४०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दुःखी पति का भी उल्लंघन न करे।[1] पतिव्रता स्त्री का यह गुण बतलाया गया है कि वह पतित, रोगी, दुष्ट, गुणहीन एवं निर्धन पति (चाहे वह युवा हो या वृद्ध) की भी सेवा करती है, उसका त्याग नहीं करती।[2] वह पति के दोष को अपने हृदय में नहीं रखती।[3]

पतिव्रता शब्द का प्रयोग यौन-सम्बन्धों की दृष्टि से शुद्ध और पति के प्रति निष्ठा-युक्त स्त्री के अर्थ में भी किया गया है। इस दृष्टि से पतिव्रता का लक्षण बतलाने की प्रवृत्ति भी प्राचीन साहित्य में पायी जाती है।[4] नारी विषयक सार्वकालिक धारणा को व्यक्त करते हुए पद्मपुराण (२।४१।७१-२) में यह कहा गया है कि नारी का रूप और यौवन केवल एक पुरुष अर्थात् पति के उपभोग के लिए होता है। शिवपुराण (७।१।२४।३७) में स्त्रियों की सृष्टि केवल पति के उपभोग के निमित्त बतलायी गयी है। वैदिक साहित्य में नारी को पति के अतिक्रमण अथवा परपुरुष के सेवन की कोई अनुमति नहीं दी गयी है, जिससे स्पष्ट होता है कि सामान्यतः वैदिक नारी के द्वारा पातिव्रत्य का पालन किया जाता था और उसमें पति के अतिक्रमण की प्रवृत्ति प्रायः नहीं थी। गौतम धर्मसूत्र (२।९।२) में यह विधान है कि नारी पति का अतिक्रमण न करे। मनुस्मृति (९।२९) एवं बृहस्पति (स्मृति व्य० का० २५।८) में कहा गया है कि जो नारी अपने मन, वचन तथा देह को संयत रखते हुए पति का अतिक्रमण नहीं करती वही पति-लोक को प्राप्त करती है तथा सत्पुरुषों के द्वारा उसे साध्वी नारी की संज्ञा दी जाती है।[5] नारी के लिए पातिव्रत्य विधान द्वारा प्राचीन आचार्यों ने दाम्पत्य जीवन को काम-सम्बन्धों की दृष्टि से मर्यादित करने का प्रयास किया था। वे नारी को परपुरुष की आकांक्षा या परपुरुषासक्ति से विरत करने के ध्येय से ही ऐसे भावों को व्यक्त करते थे कि उनका प्रभाव सीधे उसके अन्तर्मन या हृदय में पड़ता था और वे उसकी चित्तवृत्ति को शुद्ध करने में सक्षम होते थे। महाभारत में तो यहाँ तक कहा गया है कि जो नारी काम-भाव से पति के अतिरिक्त किसी

---

१. क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव च।
सुखितं दुःखितं वापि पतिमेकं न लङ्घयेत्॥
शिव २।३।५४।३१; स्कन्द ३।२।७।३४; ४।४।३१।

२. पतितं रोगिणं दुष्टं निर्गुणं धनहीनकम्।
युवानं चैव वृद्धं वा भजेत् तं न त्यजेत् सती॥ ब्रह्मवै० १।९।७०।

३. पतिव्रता पतिकृतं दोषं नानयते हृदि। पद्म ५।६७।५।

४. द्र०—पतिव्रता तु सा ज्ञेया योनिसंरक्षणा तथा। नारद उ० २३।८२।

५. पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता।
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते॥ मनु ५।१६५; ९।२९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्य पुरुष के नाम पर सूर्य, चन्द्र तथा वृक्ष आदि को भी नहीं देखती उसे ही धर्मचारिणी (पतिव्रता) मानना चाहिए ।[1]

शिवपुराण (२।३।५४।७४-७) में पतिव्रता स्त्रियाँ चार प्रकार की बतलायी गयी हैं :—उत्तमा, मध्यमा, निकृष्टा और अधमा । (१) उत्तमा पतिव्रता वह है जो स्वप्न में भी केवल अपने पति को देखती है, अन्य पुरुष को नहीं । (२) जो स्त्री दूसरे पुरुषों को पिता, भ्राता या पुत्र की भाँति सद्बुद्धि से देखती है उसे मध्यमा पतिव्रता कहा गया है । (३) निकृष्टा पतिव्रता वह है जो पातिव्रत्य को स्वधर्म मान कर व्यभिचार नहीं करती । (४) जो स्त्री अपने पति [परिवार या] कुल के भय से व्यभिचार नहीं करती वह अधमा पतिव्रता कही गयी है । यहाँ यह स्पष्ट है कि ऐसे भेदों की गणना का पुराणकार का उद्देश्य नारी को आत्मावलोकन हेतु प्रेरित करके उसे चारित्रिक पतन से सचेष्ट करना तथा गर्हित आचरण के प्रति उसके लज्जा-बोध एवं संकोच के भाव को जागृत करके उसे असत्संकल्प से विरत करना ही हो सकता है । ब्रह्मवैवर्त पुराण (४।८४।२७) में कहा गया है कि उत्तम-पतिव्रता स्त्री प्राणान्त की स्थिति में भी जार के साथ अपयश-जनक सम्बन्ध नहीं करती । भविष्य पुराण में नारी के सतीत्व (पातिव्रत्य) को तीन बातों पर निर्भर बतलाया गया है—परपुरुष से प्रेम न होना, पति से प्रेम तथा अपने चरित्र की रक्षा के प्रति सचेष्टता ।[2] इस तरह प्राचीन भारत में नारी ने शास्त्रानुरोधेन तथा स्वकीय सदाशयता से भी पातिव्रत्य के पालन के द्वारा अपने परिवार, वंश और समाज का परम हित किया है । पातिव्रत्य के लाभों की चर्चा पद्मपुराण में है । इसके अनुसार नारी के पतिव्रता होने से उसका वंश शुद्ध रहता है, घर में लक्ष्मी आती है तथा उसके पिता और पति दोनों के वंशों के पितरों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।[3] भविष्यपुराण (३।४।२४।३४-५) में पतिव्रता नारी में उत्पन्न मनुष्य को श्रेष्ठ (आर्य) तथा दूषिता (असाध्वी) स्त्री में उत्पन्न मनुष्यों को वर्णसंकर बतलाया गया है । इस प्रकार प्राचीन आचार्यों ने सुखी और मर्यादित दाम्पत्य-जीवन के लिए एवं वंश-शुद्धि हेतु तथा समाज को वर्ण-सांकर्य से बचाने के ध्येय से भी नारी के लिए पातिव्रत्य का पालन धर्म रूप में विहित किया था ।

नारी के लिए ऋतुकाल में पति के साथ समागम धर्म रूप में विहित था । इसका उल्लंघन पाप या अपराध माना जाता था । बौधायन एवं यम के अनुसार ऋतुस्नाता

१. न सूर्यचन्द्रौ न तरुं पुन्नाम्ना या निरीक्षते ।
भर्तृवर्जं वरारोहा सा भवेद् धर्मचारिणी ॥ अनु० पर्व १४६।४३ ।

२. सतीत्वे प्रायशः स्त्रीणां प्रदिष्टं कारणत्रयम् ।
परपुंसामसंप्रीतिः प्रिये प्रीतिः स्वरक्षणे ॥ भविष्य १।८।६६ ।

३. पद्म १।५४।६३; ब्र०-शिव २।३।५४।५९; स्कन्द ४,४।६१ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नारी यदि पति के साथ समागम नहीं करती तो उसे भ्रूणघ्नी घोषित करके घर से निकाल देना चाहिए।[1] ऐसी नारी कहाँ जायेगी, इस विषय में उन्होंने कुछ नहीं कहा है। पराशर (स्मृति ४।१२) के अनुसार जो ऋतुस्नाता नारी द्वेषवश पति के पास नहीं जाती और अपने ऋतुकाल को व्यर्थ बिता देती है वह नरक में गिरती है तथा अगले जन्मों में विधवा होती है। इस प्रकार पाप तथा नरक-यातना और पुनर्जन्म में कष्ट-प्राप्ति का भय भी नारी को पति के साथ समागम हेतु प्रेरित करता रहा होगा।

पुरुष के लिए कामभाव से परस्त्री के दर्शन, स्पर्श एवं उसके साथ वार्तालाप तथा अश्लील चेष्टाओं आदि के निषेध विषयक वचनों के अनुपात की अपेक्षा नारी के लिए परपुरुष के साथ ऐसे व्यवहार के निषेध विषयक वचनों का अनुपात अत्यल्प है। इसका कारण यह है कि स्त्री कामुक होने पर भी प्रायः स्वयं अपनी ओर से किसी पुरुष को अनैतिक आचरण के लिए प्रेरित करने का प्रयास नहीं करती, अपितु किसी पुरुष के द्वारा अनेक बार अनुप्रेरित किये जाने पर ही वह उसकी ओर आकृष्ट अथवा समर्पित होती है (द्र०—कामसूत्र ५।१।८-१२)। किन्तु इस तरह की चारित्रिक शिथिलता भी सभी स्त्रियों में नहीं होती। ब्रह्मवैवर्तपुराण (४।८४।२६) में चारित्रिक दृष्टि से स्त्रियों के तीन भेद उत्तम, मध्यम और अधम बतलाये गये हैं। उत्तमा स्त्री स्वभावतः पतिव्रता होती है। वह प्राणान्त की स्थिति में भी परपुरुष या जार के साथ सम्बन्ध नहीं करती।[2] मध्यम कोटि की नारी संरक्षक पुरुषों के द्वारा यत्नपूर्वक रक्षा किये जाने के कारण परपुरुष का सेवन नहीं करती (ब्रह्मवै० ४।८४।२६)। इस कोटि की स्त्रियों के विषय में महाभारत तथा पुराणों में कहा गया है कि वे कामुक पुरुषों के प्रलोभन के अभाव में तथा पारिवारिक जनों के भय से मर्यादा का पालन करती हैं।[3] वे मार पड़ने अथवा बन्धन में रखे जाने के भय से अपने चरित्र की रक्षा करती हैं।[4] ऐसी स्त्रियों का सतीत्व अवैध प्रणय हेतु अवसर, एकान्त स्थान तथा प्रणय-याचना करने वाले पुरुष के अभाव में ही सुरक्षित रहता है।[5] ब्रह्मवैवर्तपुराण ४।८४।३१-४० में अधम

१. द्र०—बौ० ध० सू० ४।१।१।२२; यम (कृत्यकल्पतरु, व्य० का० पृ० ६१७ में उद्धृत)।

२. ....प्राणान्तेऽपि न कुरुते तं जारमयशस्करम्। ब्रह्मवै० ४।८४।२७।

३. अनर्थित्वान्मनुष्याणां भयात् परिजनस्य च।
मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु॥
अनु० पर्व ३८।१६; शिव ५।२४।२०; स्कन्द ६।४४।१३; तु० गरुड पू० ११५।६५।

४. अलाभात् पुरुषाणां हि भयात् परिजनस्य च।
वधबन्धभयाच्चापि स्वयं गुप्ताः भवन्ति ताः॥
अनु० पर्व ३८।२३; तु०-शिव ५।२४।२७।

५. गरुड पू० ११४।६; पद्म १।५४।२०; ब्रह्मवै० ४।८४।३०; वराह १७७।१८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कोटि की नारी के दुःसाहसपूर्ण दुश्चरित्र का उद्घाटन किया गया है। इसके अनुसार वह पति की भर्त्सना करती है तथा जार का सेवन प्रसन्नता से करती है।[१] अधम कोटि की दुराचारिणी नारी की निन्दा पौराणिक साहित्य में अनेकत्र प्राप्त होती है। महाभारत [=शिवपुराण ५।२४।२२] में कहा गया है कि पति के साथ निष्ठा-पूर्वक न रहने वाली स्त्रियाँ [गुरुजनों के] भय, अनुकम्पा, आर्थिक सुख-सुविधा तथा जाति और कुल के सम्बन्ध को भी ध्यान में नहीं रखती।[२] ब्रह्मवैवर्तपुराण (४।८४।३७) में कहा गया है कि गुरुजनों के द्वारा भर्त्सना किये जाने तथा विविध उपायों से रक्षा किये जाने पर भी अधम स्त्री जार के साथ सम्बन्ध-स्थापन कर ही लेती है, राजा भी उसे नियन्त्रित नहीं कर सकते। प्रायः ऐसी स्त्री को कोई पुरुष न तो प्रिय होता है और न अप्रिय। वह नये-नये तृणों को चरने की कामना वाली गायों के समान नये पुरुष की कामना करती रहती है।[३] वह सुन्दर पुरुष को देखकर द्रवित हो जाती है।[४] सुन्दर वेश-भूषा में स्थित अपने भ्राता अथवा पुत्र को देख कर भी वह द्रवित हो पड़ती है[५]। ऐसी स्त्रियाँ किसी पुरुष की अगम्यता, अवस्था-वैषम्य अथवा उसके रूप आदि का भी विचार नहीं करती।[६] सम्मानित और सुरक्षित होने पर भी वे कुबड़े, अन्धे, जड (मूर्ख), बौने, पङ्गु, तथा अन्य कुत्सित मनुष्यों के साथ आसक्त हो जाती हैं।[७] जो भी कोई पुरुष उनसे प्रणय याचना करता है, उनके समीप जाता है, उनकी सेवा करता है, उसी-की कामना वे करने लगती हैं।[८] मनु (९।१५) ने कहा है कि ऐसी स्त्री अपने पौंश्चल्य (पुंश्चली-प्रवृत्ति), चञ्चल-चित्त तथा स्नेह-भाव से शून्य होने के कारण पति के साथ सम्बन्ध विगाड़ डालती है। पतिव्रता नारियों के गुणों की बहुशः प्रशंसा करने वाले प्राचीन साहित्य में जहाँ कुछ अधम स्त्रियों की चारित्रिक दुर्बलताओं का उद्घाटन किया गया है वहां उसका उद्देश्य एक तो लोक-निन्दा के द्वारा उन्हें लज्जित कर ऐसे आचरण

---

१. पतिं भर्त्सयते नित्यं जारं च सेवते सदा। ब्रह्मवै० ४।८४।३२। द्र० वही, २।१६।५३-४।

२. न भयान्नाप्यनुक्रोशान्नार्थहेतोः कथञ्चन।
न ज्ञातिकुलसम्बन्धात् स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु॥ अनु० पर्व ३८।३८।

३. ब्रह्मवै० ४।८४।३८; तु० पद्म १।५४।१०; भाग० १०।६०।४८; कथा० ७।३।१७४।

४. अनु० पर्व ३८।२६; शिव ५।२४।३०-३१; ब्रह्मवै० ४।८४।३५; गरुड पू० १०९।३६। ५. गरुड पू० १०९।३७; पद्म १।५४।१९।

६. अनु० पर्व ३८।१७; मनु ९।१४; बृहत्परा० स्मृ० ६।५४; शिव ५।२४।२१; विष्णुधर्मो० ३।२२४।१५-६; पञ्चतन्त्र, मित्रभेद १५४।

७. अनु० पर्व ३८।२०-२१; शिव ५।२४।२४-५।

८. अनु० पर्व ३८।१५; शिव ५।२४।१९; द्र०-स्कन्द ६।४४।१२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के प्रति उनकी अरुचि उत्पन्न करके उससे विरत करना था तथा दूसरे उनकी चारित्रिक सुरक्षा के प्रति पुरुषों को सावधान करना था।

५—नारी के शीलनाश के कतिपय कारण—

कोई स्त्री स्वभावतः दूषित चरित्र की नहीं होती। यद्यपि उच्छृङ्खल चरित्र वाले माता-पिता के आनुवंशिक दोष भी उसे दुराचरण में प्रवृत्त कर सकते हैं,[1] किन्तु अन्य अनेक परिस्थितियाँ भी उसके चारित्रिक पतन का हेतु बनती हैं। वात्स्यायन (कामसूत्र ५।६।४९) के अनुसार पुरुषों के साथ गोष्ठियों में अधिकाधिक मिलन, निरंकुशता (संरक्षक के नियन्त्रण में न रहना), पति की स्वच्छन्दचारिता, पुरुषों से मिलने की छूट, पति का प्रवासी होना, स्वयं [अकेले] विदेश में रहना, आजीविका के साधन न होना, स्वैरिणी स्त्रियों का संसर्ग और पति का ईर्ष्यालु स्वभाव—ये स्त्रियों के शीलनाश के कारण हैं। रतिरहस्य (४।२२, तु० अनङ्गरङ्ग ४।२१) में उर्युक्त स्थितियों के साथ ही नारी का पितृगृह में निवास, यात्रा एवं उत्सवों में परपुरुष का साहचर्य तथा पति की वृद्धावस्था को भी उसके शीलनाश के कारणों में गिनाया गया है। दामोदरगुप्त ने (कुट्टनीमतम् श्लोक ५०९ में) कहा है कि पति के द्वारा किये गये अपमान, सास-ससुर के कठोर नियन्त्रण तथा घर के दूषित वातावरण जैसे शीलनाश के कारणों से स्त्रियाँ अति स्नेहेन अन्य पुरुष में आसक्त होती हैं। उधर मनु (९।१३ = गरुड पू० १०९।१६) ने नारी के शीलनाश के छः कारण बतलाये हैं—मद्यपान, दुष्ट पुरुषों का संसर्ग, पति का विरह, भ्रमणशीलता, अधिक सोने की आदत और दूसरे के घर में निवास। व्यास ने द्वार पर बैठना, खिड़की से बाहर झाँकना, अश्लील वार्तालाप एवं हास्य को कुलीन स्त्रियों के शीलनाश का कारण बतलाया है[2]। हाल ने गाथा-सप्तशती (२।९७) में एक ग्रामीण नारी के व्यभिचारिणी होने के कारणों में प्रचुर युवकों वाला ग्राम, मधुमास, युवावस्था, पति का वार्द्धक्य, पुरानी मदिरा का पान और स्वाधीनता को गिनाया है। हाल के अनुसार चौराहे पर घर वाली, प्रियदर्शिनी (सुन्दरी), युवती प्रोषितपतिका, असती प्रतिवेशिनी (पड़ोसिन) के साहचर्य में रहने वाली तथा दुर्गतिपूर्ण जीवन बिताने वाली नारी के लिए शील की रक्षा कर पाना कठिन होता है (गाथासप्तशती १।३६)। सोमदेव (कथासरित्सागर ७।२।८७) के अनुसार एक तो स्त्री का स्त्रीत्व और उस पर यौवन आदि से जनित मदोन्मत्तता, एकान्त स्थान,

---

१. असत्कुलप्रसूता याः पित्रोर्दुःशीलमिश्रिताः ॥
ध्रुवं ताः परभोग्याश्च पतिं निन्दन्ति सन्ततम्। ब्रह्मवै० १।६।३९-४०।
तु०-असद्वंशप्रसूता या पित्रोर्दोषेण नारद। दुर्विनीता च सा दुष्टा…। वही १।२४।११।

२. द्र०—व्यास (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ६२२ एवं विवादरत्नाकर, पृ० ४३० में उद्धृत)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परपुरुष की सहज उपलब्धि और नारी पर किसी का नियन्त्रण न होना—ये पाँचों कारण शील को दूषित करने वाले हैं। राजतरङ्गिणी (३।४९६) में स्वैरिणी स्त्री का साहचर्य, युवा पुरुषों का संसर्ग, भोग-विलास के साधनों की उपलब्धता, पितृगृह में निवास, पति का मृदु स्वभाव आदि को नारी के शीलनाश के कारणों में गिनाया गया है। भविष्य पुराण (१।१०।१५) में दुष्टस्त्री का अथवा दुष्ट पुरुषों का साहचर्य, एकान्त-स्थान, स्वतन्त्रता एवं अति परिहासशीलता को स्त्रियों के शीलनाश के कारणों में गिनाया गया है। नारी के शीलनाश के विभिन्न कारणों की एक अधिक विस्तृत सूची भविष्यपुराण १।८।२०-२४ में है। ऐसे किसी एक या एकाधिक कारणों से नारी का शील नष्ट हो सकता है।

६. नारी के स्वातन्त्र्य का नियमन—

प्रायः नारी की स्वाभाविक चञ्चलता एवं स्वच्छन्दता ही उसके शील-नाश का कारण बनती है। नारी-स्वभाव की चञ्चलता का प्रथम संकेत ऋग्वेद में देखा जा सकता है, जहाँ उसके मन को दुर्दम्य तथा बुद्धि को लघु बतलाया गया है।[1] लौकिक संस्कृत साहित्य में नारी के मन की स्वाभाविक चञ्चलता के उल्लेख अनेकत्र हैं।[2] नारी के चित्त को दुर्दम्य एवं बुद्धि को लघु मानने वाले ऋग्वैदिक समाज के कर्णधार संभवतः उसको नितान्त स्वतन्त्र नहीं छोड़ते होंगे। धर्मसूत्रों में नारी को स्वतन्त्रता का निषेध किया गया है।[3] गौतम ने कहा है कि स्त्री धर्माचरण के लिए भी स्वतन्त्र नहीं है।[4] महाभारत, स्मृतियों एवं पुराणों में स्वच्छन्दचारिणी नारी को कुल का नाश करने वाली बतलाया गया है।[5] महाभारत में अष्टावक्र ने कहा है कि स्त्रियाँ स्वतन्त्र नहीं, अस्वतन्त्र हैं। प्रजापति का मत है कि स्त्री स्वतन्त्र छोड़ने योग्य नहीं है।[6] अष्टावक्र का

---

१. इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत् स्त्रिया अशास्यं मनः। उतो अहक्रतुं रघुम्। ऋ० ८।३३।१७।

२. रामा० ३।४५।३०; वनपर्व ७१।६; उद्योगपर्व ३७।५३; अनु० पर्व ३८।२४; ब्रह्म गौ० ३१।१५; स्कन्द ४।३६।६७; मृच्छ० ४।१५; सौन्दरनन्द ८।४३,४६; कथा० ३।५।२८; ७।३।२,१४२,२३२; १०।८।९३; नीतिकल्पतरु ६ (अ)।१५६; २८।५३।

३. न स्त्री स्वातन्त्र्यं विन्दते। बौ० ध० सू० २।२।३।४५; बौ० स्मृति २।२।५०;— अस्वतन्त्रा स्त्री पुरुषप्रधाना। वसिष्ठ ध० सू० ५।१।

४. अस्वतन्त्रा धर्मे स्त्री। गौ० ध० सू० २।९।१।

५. अनु० पर्व १९।९४; बृहत्परा० स्मृ० ५।१८; ६।५६; गरुड पू० १०९।३८-९।

६. नास्ति स्त्रीणां स्वतन्त्रता अस्वतन्त्रा हि योषितः।
प्रजापतिमतं ह्येतन्न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ अनु० पर्व २०।१४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपना भी यही मत है कि तीनों लोकों में कोई भी स्त्री स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं है (अनु० पर्व २०।२०)। मनु ने कहा है कि पुरुष अपनी स्त्रियों को दिन-रात कभी भी स्वतन्त्र न छोड़े।[1] याज्ञवल्क्य (स्मृति १।८५) जैसे आचार्य भी यही कहते हैं कि स्त्री के लिए क्वचिदपि स्वातन्त्र्य विहित नहीं है। नारदस्मृति (१३।३०) तथा बृहत्पराशरस्मृति (६।६०) में कहा गया है कि स्वतन्त्र छोड़ देने पर कुलीन स्त्रियाँ भी नष्ट (चरित्रभ्रष्ट) हो जाती हैं, अतः प्रजापति ने उनके लिए स्वतन्त्रता विहित नहीं की है। हरदत्त वेदालंकार (हिन्दू परिवारमीमांसा, पृ० ११८) ने नारी को अस्वतन्त्र बतलाने के तीन कारण माने हैं—१. दुर्जनों से सतीत्व की रक्षा, २. आर्थिक परावलम्बन तथा ३. वर्णसंकरता आदि दोषों से सुरक्षा। किन्तु प्राचीन आचार्यों ने मुख्यतः चारित्रिक रक्षा की दृष्टि से ही नारी के अस्वातन्त्र्य का विधान किया था, आर्थिक कारण तो गौण था। वे मानते थे कि यदि नारी को स्वतन्त्र छोड़ दिया गया और उस पर किसी का कोई प्रतिबन्ध न रहा, तो अपनी स्वाभाविक चञ्चलतावश वह कभी भी पथभ्रष्ट और चरित्रभ्रष्ट हो सकती है। पद्मपुराण (१।५४।२४) में स्वीकार किया गया है कि स्वतन्त्र नारी स्वेच्छाचारिणी हो सकती है, वह परपुरुष के इङ्गित पर चरित्र से विचलित हो सकती है। ब्रह्मवैवर्तपुराण (४।११८।११८) में माना गया है कि स्वतन्त्र नारी निश्चयमेव परपुरुषगामिनी होती है। वस्तुतः नारी को स्वच्छन्द छोड़ने के दुष्परिणामों के परिप्रेक्ष्य में ही पूर्वाचार्यों ने उसकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाया था। उसके अस्वातन्त्र्य का तात्पर्य उसके नागरिक अधिकारों का हनन, जो कि आज के आदमी की कल्पना हो सकती है, कदापि नहीं था। विशृङ्खल नारियों के चारित्रिक पतन तथा तज्जन्य सामाजिक दुष्परिणामों के कटु अनुभवों के आधार पर ही प्राचीन आचार्यों ने उसकी स्वच्छन्द गतिविधियों को प्रतिबन्धित किया था।

विष्णु[2] और मनु[3] प्रभृति आचार्यों ने यह विधान किया है कि स्त्री बाल्यावस्था में पिता, यौवन में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहे। वह स्वतन्त्र न रहे। मनु (५।१४९) ने कहा है कि स्त्री पिता, पति अथवा पुत्रों से विरहित न रहे। इनसे विरहित स्त्री अपने पति तथा पिता दोनों के कुलों को गर्हित बना डालती है। महाभारत (अनु० पर्व ४६।१५) में कहा गया है कि घर में पाली गयी और नियन्त्रित रखी गयी स्त्री ही घर की लक्ष्मी होती है, अन्यथा नहीं। याज्ञवल्क्य (१।८५) ने विधान किया है कि कन्या की रक्षा उसका पिता, विवाहिता की रक्षा उसका पति तथा वृद्धा की रक्षा पुत्र करें, उनके अभाव में ज्ञाति-कुल के बान्धव उसकी रक्षा करें। स्त्री को क्वचिदपि

१. अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम्। मनु ९।२।

२. बाल्ययौवनवार्द्धकेष्वपि पितृभर्तृपुत्राधीनता। विष्णुस्मृति २५।१३।

३. बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम्॥ मनु ५।१४८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वातन्त्र्य प्राप्त नहीं है। बृहस्पति स्मृति (२।४८१) में कहा गया है कि पति, पिता या पुत्रों से विरहित होकर दूसरों के घर रहने वाली तथा विशेषतः असत्सङ्ग में रहने वाली स्त्री निश्चयमेव निन्दनीय हो जाती है। नारी के चारित्रिक पतन की आशंका बाल्यावस्था या वृद्धावस्था में नहीं, अपितु युवावस्था में ही हो सकती है। अतः उससे यह अपेक्षा की जाती रही है कि वह पति से कभी अलग न रहे।[1] सधवा स्त्री का स्वच्छन्द आचरण उचित नहीं माना जाता था।[2] याज्ञवल्क्य ने पति रहित स्त्री के लिए यह निर्देश दिया है कि वह पिता, माता, पुत्र, भ्राता, सास, ससुर अथवा मामा से अलग न रहे, अन्यथा वह गर्हणीय हो जाती है (याज्ञ० १।८६)। स्वच्छन्दाचरण जन्य चारित्रिक दोषों से नारी की रक्षा हेतु उसकी स्वतन्त्रता का नियमन करने वाले तथा उसके लिए संरक्षक पुरुषों के आधीन रहने का निर्देश करने वाले ये विधान सम्भवतः प्राचीन युग की समाज व्यवस्था के लिए अत्यन्त उपयोगी और सार्थक थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दक्ष तथा बृहस्पति जैसे आचार्यों की यह धारणा थी कि नारी को आरम्भ से ही नियन्त्रित और अनुशासित रखना चाहिए, अन्यथा उसकी स्वेच्छाचारिता के परिणामस्वरूप जब उसमें चारित्रिक विकार आ जायगा तब उसे नियन्त्रित कर पाना सम्भव नहीं है। अतः वे कहते हैं कि अपने मन से चलने वाली स्त्री को यदि स्नेहवश निवारित नहीं किया गया तो बाद में वह उपेक्षित व्याधि की तरह असाध्य हो जाती है।[3] प्राचीन समाज में नारी को चारित्रिक शिक्षा देने, उसे सदाचार-निष्ठ तथा मर्यादित रखने का दायित्व पारिवारिक जनों का ही था। अतः उनके लिए इस तरह के विचार मार्गनिर्देशक थे। नारी की स्वेच्छाचारिता को प्रतिबन्धित किये बिना पारिवारिक जन उसकी चारित्रिक सुरक्षा के विषय में सर्वथा आश्वस्त नहीं हो सकते थे। यद्यपि यह भी स्वाभाविक था कि उपर्युक्त विधानों की छाया में अनेक नारियों को निरंकुश पुरुषों के आधीन प्रताडनापूर्ण और कुण्ठाग्रस्त जीवन बिताना पड़ा होगा, किन्तु ऐसे विधानों का वास्तविक उद्देश्य नारी की स्वाभाविक चञ्चलता से सम्भाव्य स्वच्छन्दता तथा स्वैराचारिता की प्रवृत्ति को नियन्त्रित करके उसके चरित्र को सुरक्षित रखना ही था।

प्राचीन आचार्यों ने नारियों की चारित्रिक सुरक्षा की दृष्टि से उनके लिए विशिष्ट आचार-संहिता निर्दिष्ट की थी। उदाहरणार्थ, शंख [-लिखित] ने अपने धर्मसूत्र में यह विधान किया है कि स्त्री बिना अनुमति के घर से बाहर न निकले, शिर में उत्तरीय (आँचल) रखे बिना न रहे। द्रुतगति से संचरण न करे। वणिक्, प्रव्रजित एवं वैद्य

---

१. पतिं विना न तिष्ठेत दिवा वा यदि वा निशि। गरुड पु० ९५।३१।
२. नैतद् युक्तं भर्तृमत्या यत्स्वैरेण प्रवर्तनम्। ब्रह्म गौ० १९।१०।
३. दक्षस्मृति ४।२-३; बृहस्पतिस्मृति, व्य० का० २५।३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जैसे पुरुषों के अतिरिक्त अन्य परपुरुष से कोई वार्तालाप न करे। किसी को अपने नाभि-प्रदेश का दर्शन न करावे। अपने गुल्फ (टखने) पर्यन्त लम्बा अधोवस्त्र (साड़ी आदि) धारण करे। अपने स्तनों को अनावृत न करे। मुंह खोल कर न हँसे। अपने पति एवं उसके बान्धवों के प्रति द्वेष न करे।[1] हारीत ने कहा है कि वह अन्य पुरुष का दर्शन, उससे वार्तालाप, दुष्ट तथा प्रव्रजित स्त्रियों का संसर्ग न करे। परगृह, रथ्या (सड़क), चत्वर (चबूतरे), वीथी (गली) तथा प्रव्रजितों के मठों में न जाय। कूप के मार्ग में न ठहरे। सन्ध्याकाल में विचरण न करे। दूसरे की शय्या, आसन, वस्त्र एवं आभूषण का पुनः संस्कार किये विना मन से भी उपयोग न करे।[2] शंख [-लिखित] ने कहा है कि वह गणिका, धूर्ता, अभिसारिणी, प्रव्रजिता, प्रेक्षणिका, माया (जादू-टोना), मूलक्रिया तथा कुहक (इन्द्रजाल या ठगविद्या) का प्रयोग करने वाली स्त्रियों के साथ न रहे, क्योंकि इनके संसर्ग से कुलीन स्त्रियों का भी चरित्र दूषित हो जाता है।[3] पुराणों में पतिव्रता नारी के विषय में कहा गया है कि वह रजकी (धोबिन), बन्धकी (व्यभिचारिणी), श्रमणा (प्रव्रजिता) और दुर्भगा स्त्री के साथ मित्रता न करे तथा पति से द्वेष करने वाली स्त्री के साथ कभी वार्तालाप न करे।[4] इस प्रकार के विधानों का उद्देश्य स्त्रियों को अपनी चारित्रिक शुद्धता को बनाये रखने के प्रति सचेष्ट करना ही था और प्रायः स्त्रियों के द्वारा इन नियमों का समादर से पालन होने के कारण समाज में व्यभिचार की प्रवृत्ति का उद्रेक सरलतया सम्भव नहीं था।

७. पत्नी की रक्षा—

ऋग्वैदिक समाज में दाम्पत्य मर्यादा की पूर्ण प्रतिष्ठा, स्वैराचारिता के अभाव एवं औरस सन्तान के उल्लेखों (द्र० पीछे पृ० १५७, टि. १-२) के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संहिताओं के काल से ही भारत-भूमि में नारी की चारित्रिक रक्षा पर ध्यान दिया जाता था। धर्मसूत्रों में नारी की रक्षा के उपदेश के प्रसङ्ग में कहा गया है कि पुरा काल में यम की सभा में यह निर्णय दिया गया है कि पुत्र बीजी पिता का होता है [क्षेत्री का नहीं]। अतः पति को अप्रमत्त (सावधान) होकर अपने क्षेत्र (पत्नी) की रक्षा करनी चाहिए, ताकि उसमें अन्य कोई पुरुष

१. (क) मिता० (याज्ञ० १।८७) में उद्धृत शंख के वचन।
(ख) शंखलिखित के वचन (कृत्यकल्पतरु व्य० का० पृ० ६२२)।

२. हारीत (कृत्यकल्पतरु, पृ० ६२४; विवादरत्नाकर, पृ० ४३२ में उद्धृत)।

३. न गणिका धूर्ताभिसारिणीप्रव्रजिताप्रेक्षणिकामायामूलकुहककारिकादुःशीलादिभिः सहैकत्र तिष्ठेत्, संसर्गेण हि कुलस्त्रीणां चारित्रं दुष्यति। शंख (मिता० याज्ञ० १।८७, द्र० कृत्यकल्पतरु, व्य० का० पृ० ६२३)।

४. शिव २।३।५४।३६-७; स्कन्द ४।४।२६-७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बीज-वपन न कर सके।[1] धर्मसूत्रों में एक प्राचीन गाथा के रूप में इसके उल्लेख से प्रतीत होता है कि यह व्यवस्था वैदिककाल से ही चली आ रही थी। मार्कण्डेय पुराण (६६।३५) में कहा गया है कि पत्नी की रक्षा का विधान श्रुति द्वारा किया गया है। बौधायन के अनुसार चारों वर्णों के पुरुषों को धन की रक्षा से भी अधिक तत्परता से पत्नी की रक्षा करनी चाहिए।[2] जब कि मनु ने इसी तरह के शब्द राजा के कर्तव्यों के निर्देश के रूप में कहे हैं।[3] रामायण काल में भी नारी की सुरक्षा पुरुष का प्रमुख कर्तव्य माना जाता था।[4] महाभारत (उद्योगपर्व ३८।११) में कहा गया है कि स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी होती हैं, अतः उनकी रक्षा विशेष रूप से करनी चाहिए। पत्नी की रक्षा न करने वाले पुरुष को गर्हित बतलाया गया है।[5]

यद्यपि मनु का यह कथन सही है कि दुर्बल पुरुष भी पत्नी की रक्षा का प्रयास करते हैं (मनु ९।६), तथापि पत्नी के चरित्र पर विश्वास के कारण अथवा अन्य किसी परिस्थिति में उसे अरक्षित रखने से संभाव्य विभिन्न दोषों को देखते हुए ही उसकी रक्षा का विशेष उपदेश शास्त्रों में दिया गया है। महाभारत एवं शिवपुराण में कहा गया है कि कुलीन, रूपवती तथा सनाथ होते हुए भी स्त्रियाँ मर्यादा में नहीं रहती, यह उनमें एक दोष है।[6] संभवतः कुछ स्त्रियों में ऐसी दुष्प्रवृत्ति देखकर ही उनके विषय में ऐसे वचन कहे गये होंगे। मर्यादा के अतिक्रमण की यह सम्भावना अरक्षित स्त्रियों में ही हो सकती थी। पद्मपुराण (१।५४।२५) में स्पष्ट कहा गया है कि अरक्षित रहने से युवती स्त्री स्वच्छन्द और दुष्ट हो जाती है। स्त्री को अरक्षित रखने में अनेक दोष बतलाये गये हैं। उसके अरक्षित रहने से वर्णसङ्कर सन्तान का जन्म हो सकता है, जो कि स्वर्गस्थ पितरों का भी पतन करा देता है।[7] हरिवंश पुराण (२।६६।६४) में कहा गया है कि

---

१. आप० ध० सू० २।६।१३।६; बौ० ध० सू० २।२।३।३४-६; वसिष्ठ ध० सू० १७।६।

२. सर्वेषामपि वर्णानां दाराः रक्ष्यतमा धनात्। बौ० ध० सू० २।२।४।२; बौ० स्मृ० २।२।६१।

३. चतुर्णामपि वर्णानां दाराः रक्ष्यतमाः सदा। मनु ८।३५९। द्र०-मार्क० ६६।३५।

४. कच्चित् स्त्रियः सान्त्वयसे कच्चित् तास्ते सुरक्षिताः। रामा० २।१००।४९।

५. न रक्षति च यो दारान् परदारांश्च गच्छति।
गर्हितौ तौ नरौ नित्यं धर्माचारबहिष्कृतौ॥ महा० (परा० मा०, प्रा० का०, पृ० ३६ में उद्धृत)।

६. कुलीना रूपवत्यश्च नाथवत्यश्च योषितः।
मर्यादासु न तिष्ठन्ति स दोषः स्त्रीषु नारद॥ अनु० पर्व ३८।११; शिव ५।२४।१५।

७. मार्क० ६६।३७; द्र० उद्योगपर्व २५।४१-२; पद्म १।५४।२६; भविष्य १।८।१६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुरुष को सभी उपायों से पत्नी की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि उसका परपुरुष के द्वारा धर्षण मृत्यु से भी अधिक क्लेशप्रद होता है। अरक्षित स्त्रियाँ मनु (९।५) के अनुसार पति तथा पिता के कुलों को और शिव (२।३।५४।६) एवं स्कन्दपुराण (४।४।६०) के अनुसार पति, पिता तथा माता तीनों के कुलों को शोकमग्न कर देती हैं। बृहत्पराशरस्मृति (६।५५) के अनुसार स्त्री के चरित्र में विकार आने पर वह अनायास परपुरुष में आसक्त हो जाती है और पति के जीवन तथा धन का नाश कर डालती है। प्राचीन साहित्य में परपुरुषासक्त नारी के द्वारा पति की हत्या की चर्चा अनेकत्र मिलती है।[1] ऐसी नारियों के द्वारा पति की हत्या की सत्य घटनाओं के अनेक दृष्टान्त भी उसमें यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं।[2] ब्रह्मवैवर्तपुराण (४।२३।४०) में अरक्षित स्त्री को पति की आयु, धन तथा यश के नाश का हेतु बतलाते हुए उसकी रक्षा यत्नपूर्वक करने का उपदेश दिया गया है। यह भी कहा गया है कि पत्नी परपुरुष के संस्पर्श या संसर्ग से अशुद्ध हो जाती है, अतः उसकी रक्षा करनी चाहिए।[3] भविष्यपुराण (१।८।४) के अनुसार सुरक्षित स्त्री पति के त्रिवर्ग की हेतु और अरक्षित स्त्री इसके विपरीत अर्थात् त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) की नाशक होती है, अतः उसकी रक्षा की जानी चाहिए। जैसा कि पीछे (द्र०-पृ० १३५, टि० २) कहा जा चुका है—पत्नी कृत पाप पति को ही लगता है। अतः अरक्षित स्त्री के द्वारा किये गये पाप का भागी बनने से बचने के लिए भी पति का यह कर्तव्य हो जाता था कि वह उसकी रक्षा करे। ब्रह्मवैवर्तपुराण (४।१८।१०८-९) में कहा गया है कि पत्नी की रक्षा न करने वाला पुरुष पापी होता है तथा नरक में गिरता है, अतः बुद्धिमान् पुरुष यत्नतः पत्नी की रक्षा करे। नारी की रक्षा यदि पति स्वयं करता है तो अन्य कोई पुरुष उसे धर्षित नहीं कर सकता।[4]

नारी की रक्षा के अनेक लाभ बतलाये गये हैं। मनुस्मृति (९।९) तथा स्कन्दपुराण (५।२।६१।४२-३) में सन्तान-परम्परा को शुद्ध रखने हेतु पत्नी की रक्षा आवश्यक बतलायी गयी है। मनु जैसे चतुर समाज व्यवस्थापक ने पुरुष को सचेत करते हुए कहा है कि वह पत्नी की रक्षा करके ही अपनी सन्तान को वर्णसंकर होने से बचा सकता है और तभी अपने चरित्र, कुल, शरीर तथा धर्म की रक्षा भी कर सकता है।[5] मार्कण्डेय

---

१. वनपर्व २३३।१४-५; ब्रह्मवै० ४।८४।३३; राज० ७।४२५; कथा० १२।२।७८।

२. अर्थ० १।२०।१५-६; बृहत्संहिता ७८।१-२; हर्षचरित उ० ६, पृ० ३५५; स्कन्द ७८।५०-२; विष्णुधर्मो० २।६२।१८; भविष्य १।८।५६-६१; राज० ७।४२५।

३. कलत्रं पाकपात्रं च सदा रक्षितुमर्हति।
परस्पर्शादशुद्धां च शुद्धां स्वस्पर्शने सदा॥ ब्रह्मवै० ४।१८।११०।

४. नारीं रक्षति भर्ता चेन्न कोऽपि खण्डितुं क्षमः। ब्रह्मवै० १।१५।१३।

५. स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति॥ मनु ९।७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुराण (६६।३५-६) में कहा गया है कि पुरुष की आत्मा ही आत्मज (सन्तान) रूप में पत्नी में जन्म ग्रहण करती है, अतः उसे पत्नी की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि उसकी रक्षा से अपनी ही आत्मा की रक्षा होती है। कथासरित्सागर (१०।७।४६) में कहा गया है कि स्त्री यदि सुरक्षित है तो वह दोनों लोकों में पति की रक्षा करती है। इस तरह स्त्री की सुरक्षा पर ही पुरुष के वंश की शुद्धि तथा औरस सन्तान का जन्म निर्भर करता है। उसके धर्म, अर्थ और काम की सफलता तथा दाम्पत्य जीवन में सुख-सन्तोष आदि अनेक बातों को देखते हुए भी स्त्री की रक्षा करना उसका प्रमुख कर्तव्य माना जाता था।

इस प्रसंग में प्राचीन भारत में अपनाये गये नारी की सुरक्षा-विषयक उपायों की संक्षिप्त चर्चा भी अपेक्षित है। ऋग्वेद की एक उपमा से विदित होता है कि उस काल में नारी शिर पर वस्त्र (अधिवस्त्र) ओढती थी,[1] जो संभवतः अवगुण्ठन (घूँघट) का भी काम देता था। ऋग्वेद में संवृत (आच्छादित) सोम की उपमा नारी के साथ दी गयी है,[2] जिससे स्पष्ट होता है कि नारी अवगुण्ठन (घूंघट) से अपना मुख ढका करती थी। उस काल में भी स्त्री से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह नीचे देखे (अधोमुख रहे), ऊपर को न देखे, पैरों को सटा कर चले [टाँगे न फैलावे] तथा उसके अङ्ग दिखलायी न पड़ें, ढके रहें।[3] संभवतः ऐसी व्यवस्था नारी की चारित्रिक रक्षा की दृष्टि से ही की जाती थी। रामायण (२।३३।८) महाभारत (आश्रमवासिक पर्व १५।१३) तथा पाणिनि की अष्टाध्यायी (३।२।३६) से भी विदित होता है कि नारी को परपुरुषों के समक्ष अवगुण्ठन का प्रयोग करना पड़ता था। रामायण (६।११४।२८) से यह भी विदित होता है कि केवल असामान्य स्थितियों में ही नारी परपुरुष के दृष्टिपथ में आती थी। संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों में अवगुण्ठनयुक्त कुलवधुओं का चित्रण है।[4] ब्रह्मवैवर्तपुराण (४।११८।११७) में स्पष्ट कहा गया है कि चारित्रिक सुरक्षा की दृष्टि से ही आचार्यों ने नारी को परपुरुष की दृष्टि से बचाने का निर्देश दिया है। अतः असूर्यंपश्या नारियाँ ही शुद्ध तथा पवित्र होती हैं। पद्मपुराण (१।५४।२१) में नारी की घृतकुम्भ से तथा पुरुष की प्रज्वलित अङ्गार से उपमा देते हुए नारी रूपी घृत को परपुरुषरूपी अग्नि से बचाने को कहा गया है। कुलार्णवतन्त्र (११।५८) में भी कुलवधू को [परपुरुषों से] गुप्त रखने का उल्लेख है। किन्तु नारी को हठात् नियन्त्रित करके पर्दे में रखने का दुरा-

१. ये वां यज्ञेभिरावृताऽधिवस्त्रा वधूरिव। ऋ० ८।२६।१३।
२. अयमु त्वा वि चर्षणे जनीरिवाभि सं वृतः। प्र सोम इन्द्र सर्पतु। ऋ० ८।१७।७।
३. अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर।
मा ते कश-प्लकौ दृशन्त्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥ ऋ० ८।३३।१९।
४. द्र०-प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० ४१४-५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ग्रह भी भारतीय समाज में नहीं था। रामायण ६।११४।२७ में स्पष्ट कहा गया है कि वृत्त (शील) ही नारी का वास्तविक आवरण (अवगुण्ठन) है, जो उसे सुरक्षित रखता है।

कौटिल्य ने (अर्थ० १।२०।१८ में) राजा के अन्तःपुर की रानियों की चारित्रिक रक्षा की दृष्टि से भिक्षुओं, जटाधारी संन्यासियों, जादू टोना करने वाले कुहकाजीवियों तथा बाहरी दासियों के साथ उनका संसर्ग वर्जित करने का निर्देश दिया है। वराहमिहिर (बृहत्संहिता ७८।६-११) के अनुसार अपने वंश, यश एवं मान की वृद्धि हेतु पुरुषों को भिक्षुणी, प्रव्रजिता, धाय, कुमारी(?), रजकी (धोबिन) मालिन, दूषितचरित्र वाली सखी, नाईन एवं दूतियों से अपनी स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए। वे मानते हैं कि नारी का रात्रि में विचरण या जागरण, रोग का बहाना करना, दूसरे के घर में झांकना तथा आपत्काल एवं उत्सवों के अवसर परपुरुष-संकेत के कारण बनते हैं, अतः इन सब स्थितियों में उसकी रक्षा करनी चाहिए। मनुस्मृति (९।१०-११, तु० बृहस्पतिस्मृति २।४८०, द्र०-वही, व्य०का०२५।६) में नारी की चारित्रिक सुरक्षा विषयक व्यावहारिक तथा उपयोगी सुझाव देते हुए कहा गया है कि बाहरी उपायों से स्त्रियों की रक्षा नहीं की जा सकती। अतः उन्हें परिवार में धन-संपत्ति के संचय, व्यय, शौच, धर्मकार्य, भोजन बनाना तथा गृहोपकरणों की देख-रेख जैसे कार्यों में व्यस्त रखना चाहिए। बृहत्पराशर स्मृति (६।५२) में कहा गया है कि स्त्रियों को घर के कार्यों में नियोजित करना चाहिए। गृहस्थी के कार्यों में व्यस्त रहने पर वे उन्हीं के विषय में सोचेंगी। तात्पर्य यह है कि इस तरह उनके जीवन में कार्य-व्यस्तता रहने पर उनके मन में चारित्रिक विकार नहीं आयेगा और चारित्रिक पतन का कोई अवसर भी नहीं रह जायेगा। इसके अतिरिक्त, जैसा कि मनु (९।१२) के टीकाकार कुल्लूक भट्ट ने कहा है, नारी को धर्म और अधर्म का बोध कराकर एवं धर्म जनित पुण्य से स्वर्ग-प्राप्ति और अधर्म जनित पाप से नरक-यातना विषयक उपदेश देकर उसके आचरण को संयमित करना चाहिए। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन साहित्य में अनेक पतिव्रताओं के उदात्त चरित्र तथा कुलटा स्त्रियों के अधःपतन की कथाओं का भी सामान्य नारी को आदर्शोन्मुख बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। महाभारत (अनु० पर्व ११।११-४, तु० विष्णु-स्मृ०९९।२१) में पतिव्रता नारियों में लक्ष्मी के निवास तथा दुष्ट और कर्तव्यहीन नारियों को उसके द्वारा त्यागे जाने के वर्णन को भी उनके लिए सत्प्रेरणादायक कहा जा सकता है। मार्कण्डेयपुराण (४७।६६) में दुःसह से कहा गया है कि वह पति-परायणा, घर से बाहर निकलने को उत्कण्ठित न रहने वाली तथा लज्जाशील स्त्री को पीडित न करे। वह पति-सेवारत, दुष्ट स्त्रियों का संसर्ग न करने वाली तथा कुटुम्ब एवं पति के भोजन के अनन्तर अवशिष्ट अन्न से अपना उदर-पोषण करने वाली नारी को भी पीडित न करे (मार्क० ४७।७३)। इस तरह कर्तव्यनिष्ठ साध्वी स्त्री को दुःसह जैसी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आसुरी शक्ति के द्वारा पीडित न करने की कल्पना से भी नारी को सदाचार निष्ठ रहने की प्रेरणा मिल सकती थी।

प्रोषितपतिका की चारित्रिक रक्षा हेतु उसके आचरण को नियन्त्रित करने की प्रवृत्ति का सूत्रपात सूत्र साहित्य में लक्षित होता है।[१] इतिहास-पुराण[२] तथा स्मृति-साहित्य[३] में प्रोषित-पतिका के लिए ऐसी आचार-संहिता विहित है, जिसके पालन से उसके चारीत्रिक-स्खलन की संभावना प्रायः नहीं रह जाती। मनु (९।७४) ने पुरुष को यह निर्देश दिया है कि वह प्रवास के पूर्व पत्नी की वृत्ति की व्यवस्था करदे, अन्यथा उसकी पत्नी चरित्रवती होने पर भी वृत्ति के अभाव में दूषित हो सकती है। गृह्यसूत्रों के अनुसार पुरुष प्रवास के पूर्व जीवित शतपदिका (गोजर) को पीस कर उसके लेप को निद्रा-निमग्न पत्नी के योनि-प्रदेश में मन्त्रोच्चारण पूर्वक अनुलिप्त करे, ताकि उसके साथ कोई अन्य पुरुष समागम न कर सके।[४]

विधवा की चारित्रिक रक्षा का प्रश्न भी कम विकट नहीं था। जैसा कि महाभारत (आदिपर्व १५७।१२) में कहा गया है—कामुक जन विधवा स्त्री को अपनी वासना की शान्ति हेतु उसी तरह देखते हैं जैसे गीध आदि पक्षी भूमि में गिरे हुए मांस को। अतः प्राचीन मनीषियों ने यथासम्भव ऐसे विधान प्रस्तुत किये थे, जिनके अनुपालन से उसकी चारित्रिक सुरक्षा संभव हो सकती थी। विष्णुस्मृति (२५।१४=स्कन्द ४।४।७१) में विधवा के लिए यावज्जीवन ब्रह्मचर्य पालन अथवा पति के साथ अनुमरण विहित किया गया है। मनु (५।१५८) तथा यम (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ६३८) ने उसके लिए यावज्जीवन ब्रह्मचर्य पालन विहित किया है। यावज्जीवन ब्रह्मचारिणी रहने वाली विधवा को स्वर्ग की अधिकारिणी बतलाया गया है (मनु ५।१६०; विष्णुस्मृति २५।१७)। मनु (५।१५७) ने कहा है कि वह पुष्प, मूल तथा फलों पर निर्भर रहकर देह को कृश कर ले, किन्तु परपुरुष का नाम तक न ले। धर्मशास्त्रीय वाङ्मय में विधवा के लिए ब्रह्मचर्य-पालन, विविध धार्मिक कृत्यों एवं व्रतों के अनुष्ठान, शृङ्गार-प्रसाधन के निषेध, नियन्त्रित खान-पान तथा सादे वस्त्रों के परिधान का विधान उसके मन को वासना के उद्रेक से मुक्त रखने तथा उसे उच्छृङ्खल मनोवृत्ति के पुरुषों के जाल में फँसने से बचाने के ध्येय से ही किया गया था। प्रोषितपतिकाओं तथा विधवाओं के विषय में प्राचीन

१. द्र०—कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ६३२ में उद्धृत विष्णु, शङ्खलिखित तथा हारीत के वचन; कामसूत्र ४।१।४४-५।

२. रामा० २।२६।२९-३४; द्र०—वही, ५।११।२; ५।१५।१९-२३; ५।१६।२०; अनु० पव १२३।१७; अग्नि २२२।२१-३।

३. मनु ९।७५; याज्ञ० १।८४; व्यास २।५२; बृहस्पतिस्मृ० २।४८५;

४. आप० गृ० सू० ८।२३।३; हिरण्यकेशि गृ०सू० १।१४।७; भार०गृ०सू० २।२८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आचार्यों ने ऐसे विधान उन्हें शारीरिक तथा मानसिक कष्ट देने के लिए नहीं, अपितु उनके तन, मन को अनुशासित रखते हुए समाज को दुराचार से मुक्त रखने के उद्देश्य से ही प्रस्तुत किये थे।

प्राचीन आचार्यों ने नारी की चारित्रिक सुरक्षा विषयक उपदेशों और उपायों के द्वारा उसकी स्वाभाविक चपलता से संभाव्य अतिचार की प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करके दाम्पत्य जीवन को मर्यादित बनाने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया था, किन्तु उन्हें ऐसा मिथ्या भ्रम कदापि नहीं था कि नारी को सर्वथा पहरा देकर ही सुरक्षित रखा जा सकता है।[1] भर्तृहरि ने शृङ्गारशतक (५४) में कहा है कि स्त्रियाँ उन्मत्त प्रेम के आवेश में जो काम आरम्भ करती हैं (जो कदम उठाती हैं) उसमें विघ्न उपस्थित करने में ब्रह्मा भी कातर हो उठते हैं। महाभारत में कहा गया है कि नित्य असंयमित रहने वाली नारियों की रक्षा वाणी से समझाने पर अथवा वध (मार-पीट), बन्धन या विविध प्रकार से बल-प्रयोग करके भी नहीं की जा सकती।[2] देवीभागवत (६।६।१४) में कहा गया है कि चञ्चल चित्त की नारी दूसरे के द्वारा सुरक्षित रखे जाने पर भी पतिव्रता नहीं हो सकती। स्वयं मनु ने भी यह कहा है कि घर में अवरुद्ध और आप्त पुरुषों की देख-रेख में रखी जाने पर भी स्त्रियाँ अरक्षित रहती हैं, जो स्त्रियाँ अपने शील की रक्षा स्वत: करती हैं वही सुरक्षित रह सकती हैं (मनु ९।१२)। प्राचीन भारतीय साहित्य में अनेकत्र ऐसे उल्लेख हैं कि साध्वी नारियाँ स्वयं अपने शील (सच्चरित्र) रूपी कवच से सुरक्षित रहती हैं।[3]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन में हमने यह पाया कि भारत भूमि में वैदिककाल से ही दाम्पत्य मर्यादा की पूर्ण-प्रतिष्ठा थी। दम्पती को मर्यादित रखने के लिए धर्मसूत्रों के काल से ही आचार-संहिता प्रस्तुत की जाने लगी थी। पुरुष के लिए परस्त्री संसर्ग वर्जित था। नारी की स्वतन्त्रता का नियमन उसकी चारित्रिक रक्षा की दृष्टि से किया गया था, किन्तु उसके नागरिक अधिकारों अथवा मौलिक अधिकारों का हनन नहीं किया गया था। पुनश्च पुरुष को भी नारी की शील-रक्षा के लिए सचेष्ट किया गया था। इस प्रकार प्राचीन ऋषियों, धर्माचार्यों तथा कवियों ने तत्कालीन नैतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में दाम्पत्य जीवन को मर्यादित बनाने के लिए यथासम्भव सभी सत्प्रयास किये थे।

---

१. निसर्गतरला नारा: को नियन्त्रयितुं क्षमः। राज० ३।५१५।
तु०-नियन्तुं चपला नारी रक्षयापि न शक्यते। कथा० ७।२।९३।

२. वाचा च वधबन्धैर्वा बलैर्वा विविधैस्तथा।
न शक्या रक्षितुं नार्यस्ता हि नित्यमसंयताः॥ अनु० पर्व ४०।१४-५।

३. रामा० २।४५।२५; वनपर्व ७०।९; ७४।२६; सौन्दरनन्द ६।४०; देवीभाग० ६।६।१५; कथा० ७।२।७; १०।७।४६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सप्तम अध्याय

अतिचार की प्रवृत्ति

आदिम मानव समुदाय में अनियमित यौन-सम्बन्धों [Promiscuity] की कल्पना करने वाले लेखकों ने इसके जो उदाहरण प्राचीन भारतीय साहित्य से दिये हैं, वे वस्तुतः सुप्रतिष्ठित विवाह-संस्था वाले समाज के अन्तर्गत कामोन्माद से ग्रस्त कुछ स्त्री-पुरुषों के दुराचार या नैतिक शिथिलता (Sexual laxity) के द्योतक हैं। उनमें से कुछ की समीक्षा हम प्रथम अध्याय में कर चुके हैं और शेष दृष्टान्तों तथा प्राचीन भारतीय साहित्य में प्राप्त कुछ अन्य उदाहरणों की भी समीक्षा हम यहाँ 'निकटाभिगमन' (Incest), परस्त्रीगमन, कन्यागमन, वेश्यागमन तथा स्त्रीकृत व्यभिचार—परपुरुषगमन जैसे शीर्षकों में करेंगे।

१. निकटाभिगमन—

मोर्गन, एङ्गिल्स् प्रभृति पाश्चात्य लेखकों से प्रभावित डॉ० एस० सी० सरकार[१], डॉ० भगवत शरण उपाध्याय[२], डॉ० इरावती कार्वे[३], डॉ० चन्द्र चक्रवर्ती[४], डॉ० रामशरण शर्मा[५] जैसे अनेक विद्वानों ने पिता-पुत्री, माता-पुत्र तथा भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध के अनेक उदाहरण वैदिक, पौराणिक तथा बौद्ध साहित्य से दिये हैं। ये विद्वान् मानते हैं कि आदि काल में निकट-सम्बन्धियों में यौन-सम्बन्ध होता था, जो कालान्तर में नैतिक मूल्यों की उद्भावना तथा विवाह-संस्था के उद्भव के पश्चात् समाज द्वारा प्रतिबन्धित कर दिया गया था। इनकी दृष्टि में ये उदाहरण उसी परम्परा के द्योतक हैं। हम पीछे कह चुके हैं कि प्राचीन भारतीय साहित्य में प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार विवाह-संस्था का उद्भव मानव-सृष्टि के भी पूर्व दिव्य सृष्टि के साथ ही हुआ था। निकटाभिगमन सम्बन्धी तथाकथित उदाहरणों में से अनेक तो दिव्य या अतिमानवीय सृष्टि विषयक अथवा प्रतीकात्मक या रूपकात्मक हैं, जिनका भौतिक यथार्थ से कोई

---

१. सम आस्पेक्ट्स् आफ द अर्लियस्ट सोसल हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ७४-६; ११६-१४४। २. वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० १२४-१३५।
३. किनशिप यूसेजेज् एण्ड फेमिली ऑर्गनाइजेशन (ए.बी.ओ.आर. आई, २०, पृ० २१४-२२२। ४. सेक्स लाइफ इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० ६५-७५।
५. पर्स्पेक्टिव इन सोसल एण्ड इकॉनामिक हिस्ट्री आफ अर्ली इण्डिया, पृ० ३५ एवं आगे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सम्बन्ध नहीं है, कुछ उद्धरणों को भ्रान्तिवश निकटाभिगमन का दृष्टान्त मान लिया गया है। कामोन्मादवश नैतिक मर्यादा का त्याग कर निकट-सम्बन्ध की स्त्रियों यथा–पुत्री, माता या विमाता, भगिनी आदि के साथ वस्तुतः दुराचार कर बैठने वाले नर-पशुओं के मात्र कुछ गिने-चुने ही उदाहरण प्राचीन साहित्य में हैं।

(अ) पिता-पुत्री में यौनाचार–ऋग्वेद के अनेक स्थलों में आपाततः पिता-पुत्री में यौन-सम्बन्ध का आभास होता है, किन्तु उनके तात्पर्यार्थ का गम्भीरता से पर्यालोचन करने पर ऐसी भ्रान्ति का निराकरण हो जाता है। उदाहरणार्थ–ऋग्वेद (१।७१।५) में देव–इन्द्र के द्वारा अपनी दुहिता में दीप्ति (कान्ति) का आधान (स्थापन) किये जाने का उल्लेख (स्वायां देवो दुहितरि त्विषि धात्) है। सायण (ऋ० १।७१।५) के अनुसार यहाँ दुहिता का तात्पर्य पृथिवी से है। पर्जन्य उसमें वर्षा करके सस्य की उत्पत्ति रूप दीप्ति का आधान करता है। यहाँ पृथिवी या इसके पर्याय वाचक के स्थान पर दुहिता शब्द के प्रयोग से तात्पर्यार्थ को आलङ्कारिक शब्दों में व्यक्त किया गया है। पिता के द्वारा पुत्री में गर्भाधान (पिता दुहितुर्गर्भमधात्) का जो उल्लेख ऋग्वेद (१।१६४।३३ = अथर्व ९।१०।१२) में है वहाँ भी आलङ्कारिक प्रयोग है। यास्क (निरुक्त ४।२१) ने यहाँ पिता का पर्जन्य तथा दुहिता का पृथिवी अर्थ किया है। वेङ्कटमाधव (ऋ० १।१६४।३३) के अनुसार जल से भूमि की उत्पत्ति की दार्शनिक कल्पना के परिप्रेक्ष्य में ही पृथिवी को पर्जन्य की पुत्री कहा गया है और उस पर वर्षा करके जीवों की उत्पत्ति करने के कारण पर्जन्य को उसमें गर्भस्थापन करने वाला कहा गया है। सायण के अनुसार भी यहाँ पिता का तात्पर्य आदित्य, इन्द्र या पर्जन्य है, जो कि दुहिता (= दूरे निहिता = दूर स्थापित) पृथिवी में सभी (स्थावर-जङ्गम जीवों) की उत्पत्ति में समर्थ वृष्टि-रूप गर्भ का स्थापन अर्थात् वर्षण करता है। अतः यह भी स्पष्टतः एक रूपकात्मक प्रयोग है, इसमें पिता द्वारा पुत्री के साथ दुराचरण की कल्पना करना उचित नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि वैदिक ऋषि ने मानव समाज में देखी हुई घटना का आरोप प्राकृतिक जगत् में किया है। वैदिक ऋषि केवल तात्पर्यार्थ को चमत्कारपूर्ण शैली में व्यक्त करने के लिए ही ऐसे शब्दों का प्रयोग करते थे। इसी तरह आपाततः पिता-पुत्री में यौन-सम्बन्ध का आभास कराने वाला एक अन्य प्रसङ्ग भी ऋग्वेद (५।४२।१३) में ("....दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो....") है, किन्तु इसका भी यही तात्पर्य है कि इन्द्र या पर्जन्य अपनी दुहिता = पृथिवी की वक्षणाओं अर्थात् नदियों के तटों में रूपों (ओषधि-वनस्पति आदि) का उत्पादन करता है। ऐसे प्रसङ्गों के विषय में डॉ० शिवराज शास्त्री का यह कथन सटीक और समीचीन है कि 'पिता-दुहिता के यौन-सम्बन्धों के अस्पष्ट और अट-पटे संकेतों में ऋग्वैदिक ऋषियों की उस प्रवृत्ति के दर्शन हुए हैं जिससे कवि अनहोनी बातें कह कर अपने श्रोताओं तथा पाठकों को चमत्कृत करने का प्रयत्न करते हैं' (ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध, पृ० २५१)। इसी तरह ऋग्वेद

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(३।३१।१) में पिता, दुहिता, सेक (रेतःसेक) जैसे शब्दों के प्रयोग के आधार पर भ्रान्तिवश पिता-पुत्री में यौन-सम्बन्ध का संकेत मान लिया गया है। यद्यपि यह ऋचा अर्थ की दृष्टि से दुरूह समझी जाती है (द्र०—ग्रिफिथ कृत आंग्लानुवाद की पाद-टिप्पणी), तथापि यास्क (निरुक्त ३।५), शौनक (बृहद्देवता ४।११०) और सायण (ऋ० ३।३१।१) ने इसमें पुत्रहीन पिता के द्वारा पुत्रिका-धर्मानुसार कन्यादान करके उसमें उत्पन्न दौहित्र को अपने पिण्डदाता के रूप में प्राप्त करने का तात्पर्य व्यक्त किया है। यद्यपि इसी ऋचा का वैकल्पिक अर्थ प्रस्तुत करने वाले बृहद्देवता (४।१११) के 'तस्यां सिञ्चति रेतो वा तच्छासदिति कीर्तितम्' इन शब्दों से पिता-पुत्री के यौन-सम्बन्ध का संकेत मिलता है, किन्तु एक तो बृहद्देवता रचना काल की दृष्टि से बहुत बाद का होने से उस ऋचा के तात्पर्य को पूर्ण विश्वास के साथ नहीं प्रकट करता, दूसरे इसके द्वारा सुझाये गये तात्पर्य को प्रामाणिक रूप से स्वीकार करने में कोई सांस्कृतिक आधार भी नहीं है, जबकि अन्य व्याख्याकारों की दृष्टि में यह ऋचा पुत्रिका-धर्मानुसार प्रदत्त कन्या में दौहित्र की उत्पत्ति की सूचक है। अतः इस ऋचा को भी पिता-पुत्री में यौन-सम्बन्ध के प्रचलन को ख्यापित करने के लिए असंदिग्ध प्रमाण के रूप में नहीं उद्धृत किया जा सकता।

पिता-पुत्री में यौन-सम्बन्ध का एक बहुचर्चित आख्यान ऋग्वेद १०।६१।५-७ में बीज रूप में उपनिबद्ध है,[1] जिसका पल्लवन ब्राह्मण ग्रन्थों में तथा विस्तार पौराणिक साहित्य में प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मण (३।३३, तु० शतपथ ब्राह्मण १।७।४।१-२; पञ्चविंश ब्राह्मण ८।२।१०) में कहा गया है कि प्रजापति ने अपनी दुहिता, जिसे दिव (द्युलोक) या उषा भी कहते हैं, का अभिध्यान किया।[2] इसमें आगे कहा गया है कि इसे देख कर देवों ने कहा था कि प्रजापति ऐसा आचरण कर रहा है जिसे पहले किसी ने नहीं किया (अकृतं वै प्रजापतिः करोतीति। ऐ०ब्रा० ३।३३)। शतपथब्राह्मण (१।७।४।२) के अनुसार देवों ने प्रजापति के अपनी पुत्री, जो उन देवों की भगिनी थी, के साथ समागम की चेष्टा को पापपूर्ण और अनुचित बतलाया था। प्रजापति के इस अतिचार के लिए देवों के द्वारा प्रेरित रुद्र ने उसको बाण से विद्ध किया था।[3] ऐतरेय ब्राह्मण (३।३३) में कहा गया है कि रुद्र द्वारा विद्ध प्रजापति ऊपर को [अन्तरिक्ष में] उछला। तब से उसे मृग (मृगशिरा नक्षत्र) कहा गया। शतपथ-ब्राह्मण (३।१।३।८) में प्रजापति का मृगशिरा नक्षत्र के साथ तादात्म्य बतलाया गया है।[4] प्रजापति की दुहिता रोहित् (मृगी) ही रोहिणी [नक्षत्र] बनी थी

१. द्र०—पिता यत् स्वां दुहितरमधिष्कन्। ऋ० १०।६१।७।
२. प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद् दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये। ऐ.३।३३।
३. शत० ब्रा० १।७।४।३; ताम् अभ्यायत्याविध्यत् सः।-ऐ० ब्रा० ३।३३।
४. एतद् वै प्रजापतेः शिरो यन्मृगशीर्षम्। शत० ब्रा० ३।१।३।८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और उसका अनुसरण करने वाले प्रजापति (मृगशिरा) को मृगव्याध रूप में अवस्थित रुद्र के द्वारा बाण से विद्ध किया गया था (ऐ० ब्रा० ३।३३) । इस तरह ऋग्वेद १०।६१।५-७ में पिता के द्वारा दुहिता के साथ समागम की अतीत-कालिक घटना के रूप में उल्लिखित सरल और स्पष्ट कथा को नया मोड़ देते हुए ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रजापति और उसकी पुत्री के द्वारा मृग और मृगी के रूप धारण तथा मृग-व्याध रूप में स्थित रुद्र द्वारा मृग रूप धारी प्रजापति को विद्ध किये जाने की कल्पना जोड़ी गयी है और यही कथा पौराणिक साहित्य में भी ग्रहण की गयी है। इसके साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थों में इस कथा में खगोलीय नक्षत्रपिण्डों की संरचना सम्बन्धी घटना का भी समायोजन किया गया है। तात्पर्य यह है कि इसमें आकाशस्थ ग्रह-नक्षत्रपिण्डों के विघटन से मृगशिरा तथा रोहिणी जैसे नक्षत्रों के प्रादुर्भाव तथा मृगशिरा के द्वारा रोहिणी का अनुसरण भी संसूचित होता है। तथापि यहाँ पिता—प्रजापति के द्वारा पुत्री—द्यौ या उषा के साथ समागम का निषेध न कर उसे एक सत्य घटना के रूप में स्वीकार किया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि दिव्य सृष्टि में पिता-पुत्री में यौन-सम्बन्ध की कोई एक घटना घटित हुई होगी। इस घटना को अतीत युगीन मानव समाज से सम्बद्ध बतलाने वाले लेखकों के मत से प्रभावित होकर डा० शिवराज शास्त्री ने भी यह माना है कि उपर्युक्त प्रसङ्ग से अधिक से अधिक यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ऋग्वैदिक ऋषियों ने अपनी जाति के सुदूर अतीत की इस स्मृति-शेष प्रथा को प्रजापति एवं उसकी दुहिता के मैथुन के रूप में प्रतिबिम्बित किया है (द्र०—ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध, पृ० २५१)। किन्तु इस कल्पना का समर्थन नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह घटना यदि मनुष्य समाज में घटित हुई होती तो वैदिक ऋषि उसे दिव्य परिवेश में प्रजापति के साथ नहीं जोड़े होते। ऋग्वैदिक काल से ही दिव्य सृष्टि को मानव सृष्टि से सर्वथा पृथक् तथा पूर्ववर्ती माना गया है। अतः हमें उक्त अद्वितीय घटना को दिव्य सृष्टि से सम्बन्धित मानने में कोई आपत्ति नहीं है। नैतिकता की दृष्टि से ब्राह्मणग्रन्थों में प्रजापति के इस आचरण को दिव्य सृष्टि में भी अकृतपूर्व तथा पापपूर्ण बतलाया गया है। इस आचरण के अक्षम्य होने के कारण ही रुद्र ने प्रजापति को बाण से विद्ध किया था।

पौराणिक साहित्य[1] तथा पुष्पदन्त के शिवमहिम्नःस्तोत्रम् (२२) में ब्राह्मण ग्रन्थों की इस कथा को स्पष्ट स्वरूप दिया गया है। यह उल्लेखनीय है कि अनेक पुराणों में प्रजापति के मृगशिरा एवं उसकी पुत्री के रोहिणी नक्षत्र के साथ तादात्म्य की कल्पना छोड़ दी गयी है। कुछ पुराणों में प्रजापति को इस आचरण के दोष से मुक्त करने के लिए भी

१. द्र०—प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः।
रोहिद्भूतां सोऽन्वधावद् ऋक्षरूपी हतत्रपः॥ भाग० ३।३१।३६।
तु०—देवीभाग० १।१४।६६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रयास किया गया है। यथा—मत्स्यपुराण (३।३६-४३) के अनुसार ब्रह्मा ने अपने शरीर से उत्पन्न देवी, जो कि शतरूपा, सावित्री, सरस्वती, गायत्री या ब्रह्माणी भी कही गयी है, को आत्मजा (कन्या) के रूप में कल्पित किया, किन्तु वे उसको देख कर कामार्त हो गये। तब वसिष्ठ आदि मुनियों से लज्जित ब्रह्मा ने उन्हें सृष्टिकर्म हेतु प्रेषित करके उस शतरूपा या सावित्री (गायत्री) के साथ विवाह करके रमण किया। ब्रह्मा के आत्मजागमन के अनौचित्य का स्पष्टीकरण करते हुए मत्स्यपुराण (४।१-१०) में कहा गया है कि ब्रह्मा की दिव्य सृष्टि अतीन्द्रिय होने के कारण उसका रहस्य दिव्य प्राणी ही जानते हैं, मनुष्य नहीं। देवताओं को कार्याकार्य (धर्माधर्म) का कोई शुभाशुभ फल नहीं मिलता। अतः मनुष्यों को उनके विषय में वितर्क नहीं करना चाहिए। ब्रह्मा और गायत्री (या सावित्री या सरस्वती) का साहचर्य आतप (धूप) और छाया के समान है। ब्रह्मा स्वयं वेदराशि हैं तो सावित्री उनकी अधिष्ठातृ-देवता। अतः सावित्रीगमन में ब्रह्मा को कोई दोष नहीं लग सकता था। प्रो० काँटावाला कहते हैं कि ब्रह्मा के पुत्रीगमन के अतिपातकिता-दोष को कम करने के ध्येय से यह प्रतीकात्मक और दाम्पत्यपरक व्याख्या दी गयी है।[1] हम पीछे द्वितीय अध्याय (पृ० ३९-४०) में कह चुके हैं कि पुराणों के अनुसार आदि सृष्टि के प्रमुख देवों की पत्नियों का आविर्भाव उनके वामाङ्ग से हुआ था। वे उन देवों की अङ्गजा या आत्मजा थी, तभी वे उनकी अर्द्धाङ्गिनी कहलायी। आदि सृष्टि के देवता की पत्नी उसकी शरीरजा होने पर भी अगम्या नहीं थी। अतः आदि सृष्टि के देवों के विषय में अनैतिकता का दोषारोपण अनुचित होगा। वेदों और ब्राह्मणग्रन्थों की प्रतीकात्मक भाषा का रहस्य ज्ञात न होने के कारण हमें ऐसे आख्यानों में दोष नहीं खोजना चाहिए। तथापि मत्स्यपुराण (४।११-२) में लोकसंग्रह के ध्येय से यह कल्पना कर ली गयी है कि ब्रह्मा ने इस कर्म से लज्जित होकर अपने मनःक्षोभ के कारणभूत काम को रुद्र के द्वारा भस्म किये जाने का शाप दिया था। श्रीमद्भागवतपुराण (३।१२। २८-३३) के अनुसार ब्रह्मा के द्वारा सरस्वती की कामना किये जाने पर उनके मरीचि आदि पुत्रों ने उन्हें विरत करते हुए कहा था कि ऐसा गर्हित कर्म न तो पहले किसी ने किया था, न कोई करता है और न करेगा। अनुकरणीय चरित्र वाले तेजस्वियों के लिए भी यह कर्म अश्लाघनीय है। उनके इन वचनों से लज्जित ब्रह्मा ने अपना वह शरीर त्याग दिया था। श्रीमद्भागवत १०।८५।४७-८ में कन्या के प्रति कामार्त ब्रह्मा का देवों (मरीचि के पुत्रों) के द्वारा उपहास किये जाने का भी उल्लेख है। वामनपुराण (४६।४-५) के अनुसार आत्मजा को समागम हेतु आमन्त्रित करने के पाप से ही ब्रह्मा का शिरश्छेदन हुआ था।

---

१. कल्चरल हिस्ट्री फ्रॉम द मत्स्यपुराण, पृ० ६६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उपर्युक्त कथा से मिलती-जुलती शिवपुराण (२।२।३।२६-४३) की एक कथा के अनुसार आदि सृष्टि में सन्ध्या के प्रति कामार्त पिता ब्रह्मा तथा मरीचि, अत्रि, दक्ष आदि भ्राताओं को शिव ने पापाचरण से विरत किया था। सन्ध्या भी उनके प्रति कामभावयुक्त हुयी थी। अतः उसने प्रायश्चित्त रूप में उत्कट तप के द्वारा जीवधारियों के लिए उत्पन्न होते ही कामार्त न होने की मर्यादा स्थापित करके देहत्यागहेतु अग्निप्रवेश का निश्चय किया था (शिव २।२।५।२६-३०)। इस कथा के द्वारा भी पुराणकार ने कामार्त चित्त में नैतिकता की विजय का दुन्दुभिघोष किया है। ब्रह्माण्डपुराण (४।१।३९-४४) में प्राचेतस दक्ष की पत्नी वीरिणी से उत्पन्न पुत्री सुव्रता के साथ ब्रह्मा, स्वयं दक्ष, धर्म और भव के द्वारा मनसा रमण के फलस्वरूप उसमें उन्हीं चारों के समान चार कुमारों के जन्म का उल्लेख है। इसी कथा के साथ कूर्मपुराण (पू० १४। ६१-३) में शिव द्वारा दक्ष को अपनी कन्या में सन्तानोत्पादन का शाप दिये जाने का सम्बन्ध भी जोड़ा जा सकता है। अतिमानवीय प्रकृति की तथा दिव्य-सृष्टि से सम्बन्धित ऐसी कथाओं को मानवीय धरातल के ऐतिहासिक यथार्थ के साथ सम्बद्ध करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। इतिहास में इन्हें 'मिथ' से अधिक महत्त्व कुछ नहीं दिया जा सकता। श्रीमद्भागवत पुराण (६।६।३४-५) के अनुसार ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित कश्यप ने वैश्वानर की दो पुत्रियों के साथ विवाह किया था। श्रीधर भाष्य के अनुसार वैश्वानर दनु का पुत्र था। अतः कश्यप ने पौत्रियों के साथ विवाह किया। किन्तु यह विवाह स्वेच्छया नहीं अपितु ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित होने के कारण हुआ था। यह कथा भी अतिमानवीय धरातल की एवं देवाख्यानपरक है। अतः इसके आधार पर भी मानव-समाज के विषय में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। इसी तरह की एक कथा पितृगणों से सम्बन्धित है। मत्स्यपुराण (१४।१-७) के अनुसार अग्निष्वात्तादि पितृगणों की अच्छोदा नामक मानसी कन्या तपस्या का वर देने हेतु आये हुए पितृगणों में से अन्यतम अमावसु से कामार्त होकर संसर्ग की याचना करने के फलस्वरूप योगभ्रष्ट हुयी थी, किन्तु अमावसु उसके प्रति अनासक्त था। इस तरह पुराणों में दिव्य-सृष्टि में पिता-पुत्री के यौन-सम्बन्ध की सम्भावना करने के बावजूद यथासम्भव ऐसे सम्बन्धों को घटित होने से बचाया गया है।

आदि कालीन मानव समाज में पिता-पुत्री में यौन-सम्बन्ध का कोई सुनिश्चित उदाहरण प्राचीन साहित्य में नहीं है। डा० हेमन्त चटर्जी ने मत्स्य एवं कूर्म पुराण के आधार पर कहा है कि वृष्णिवंशी राजा तैत्तिरि ने अपनी कन्या को संगीत की शिक्षा देते समय कामार्त होकर उसके साथ रमण किया था (द्र०—फार्म्स आफ मैरेज इन ऐन्सेण्ट इण्डिया, पृ० १३२)। किन्तु यह तथ्य प्रमाणित नहीं हो पाता। मत्स्यपुराण ४४।६२ में तैत्तिरि का उल्लेख होने पर भी उसके साथ उक्त कथा नहीं दी गयी है। कूर्मपुराण (पू० २४।४९-५५) के अनुसार उस राजा का

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नाम आनकदुन्दुभि था और वह कन्या उसकी आत्मजा नहीं थी, अपितु उसे शिव के द्वारा दी गयी थी। अतः इसे पिता-पुत्री में यौन-सम्बन्ध का उदाहरण नहीं कहा जा सकता। स्कन्दपुराण (१।२।६०।२७-३७) में घटोत्कच के द्वारा राक्षसी मौर्वी को निरुत्तर करके विजित करने के ध्येय से सुनायी गयी एक कथा के अनुसार एक विधुर पुरुष ने अपनी पुत्री के साथ यह कह कर रमण किया था कि वह अन्य की पुत्री है और उसे वह बाल्यावस्था से ही अपनी पत्नी बनाने के ध्येय से अपने घर ले आया था। यहाँ इसे स्पष्टतः एक कथा बतलाया गया है। अतः यह वास्तविक घटना नहीं थी। साहित्य-शास्त्रीय मानदण्डों के अनुसार भी कथा की विषय-वस्तु वास्तविक नहीं, अपितु कवि-कल्पित होती है (द्र०-भामह: काव्यालङ्कार १।२५-६)। तथापि इसके आधार पर यह माना जा सकता है कि कदाचित् वासना के उद्दाम आवेग में प्रमत्त होकर किसी भी देश या काल में कोई पुरुष-पशु ऐसा भी कर सकता है। पालि-साहित्य की एक थेरी गाथा में भी एक अधम पिता के अपनी पुत्री के साथ यौन-सम्बन्ध का उल्लेख है। किन्तु पालिगाथाओं को भी यथार्थ पर आधारित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इनमें विभिन्न कथाओं के द्वारा बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित कोई उपदेश देना ही प्रमुख उद्देश्य रहता है। तथापि इसके आधार पर किसी पिता के ऐसे दुराचरण की संभावना की जा सकती है। राजतरङ्गिणी (७।२७८) के अनुसार कश्मीर में राजा कलश के गुरु प्रमदकण्ठ ने तन्त्रोपासना में अपनी पुत्री के साथ रमण किया था। तान्त्रिक उपासना में भी ऐसे दृष्टान्त अपवाद रूप ही हैं। सामान्यतः ऐसा नहीं होता था। यद्यपि कुछ तान्त्रिक ग्रन्थों में पञ्च-मकारोपासना में पुत्रीगमन में भी दोष नहीं माना गया है,[1] किन्तु अन्यत्र तन्त्रसाधक को केवल स्वकीया पत्नी के साथ ही रमण की अनुमति दी गयी है।[2] इस तरह परवर्ती काल के साहित्य के कुछ उदाहरणों के आधार पर अति प्राचीन समाज में पिता-पुत्री में यौन-सम्बन्ध का प्रचलन सिद्ध करने की कुचेष्टा नहीं करनी चाहिए।

(ब) माता-पुत्र के यौनाचार की कल्पना—डॉ० एस० सी० सरकार तथा उनके मत के कुछ समर्थकों के अनुसार प्राचीन काल में माता-पुत्र में भी यौन-सम्बन्ध होता था, किन्तु ऋग्वैदिक काल तक यह प्रतिबन्धित हो चुका था। उनके विचार से ऋग्वेद (६।५५।५) में पूषा के लिए माता का दिधिषु (मातुर्दिधिषु) तथा स्वसा का जार (स्वसुर्जारः) जैसे वचनों का प्रयोग कवि ने उसी प्रथा की स्मृति से प्रभावित होकर किया है। किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। वेङ्कटमाधव, सायण तथा स्कन्दस्वामी के अनुसार उक्त प्रसंग में माता का तात्पर्य रात्रि से है। संभवतः सूर्योदय के पूर्व

१. गुह्यसमाज तन्त्र, पटल ५, पृ० २० (धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग ५, पृ० २८ में उद्धृत)। २. स्वस्त्रीविषय एवेदं... । ब्रह्माण्ड ४।८।३१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रात्रि की सत्ता होने के कारण ही उसे पूषा (सूर्य) की माता कहा गया है। स्कन्दस्वामी के अनुसार दिधिषु शब्द के पारिभाषिक अर्थ यहाँ संगत नहीं होते, अतः यहाँ दिधिषु का तात्पर्य है—धारयिता या निरुद्ध करने वाला। पूषा (आदित्य) अपने उदय से रात्रि का अवरोधक होने के कारण ही उसका दिधिषु कहलाता है। वस्तुतः यह एक रूपकात्मक वर्णन है। प्राकृतिक घटनाओं के रूपकात्मक वर्णन में मानवीय सम्बन्धों का आरोप करते समय वैदिक ऋषि समस्त गुण-धर्मों का समन्वय आवश्यक नहीं मानता, अपितु उसमें लोकविरुद्ध सम्बन्धों की उद्भावना के द्वारा वर्ण्य विषय को चमत्कारपूर्ण बना देना उसका मुख्य उद्देश्य रहता है। अतः इस प्रसंग के आधार पर माता और पुत्र में यौन-सम्बन्ध की कल्पना करना उचित नहीं है। डॉ० सरकार ने माता और भगिनी के साथ यौन-सम्बन्ध के प्रचलन को सिद्ध करने के लिए ऐतरेय ब्राह्मण (७।१३) की जिस गाथा को उद्धृत किया है, उसमें मनुष्य के द्वारा माता या भगिनी के साथ समागम का निर्देश नहीं है। उसमें पुत्र के महत्त्व को स्पष्ट करने के लिए ही यह कहा गया है कि पुत्रहीन पुरुष शुभलोक को नहीं प्राप्त करता, यह तथ्य पशु-पक्षी भी जानते हैं, अतः वे सन्तान-लाभ हेतु माता और भगिनी के साथ भी समागम करते हैं। पराशर स्मृति (६।९२) में भी एक श्लोक इसी आशय का है। ऐसे वचनों का उद्देश्य पुत्रोत्पादन के महत्त्व को प्रतिपादित करना मात्र था। इसी प्रकार शांखायन श्रौतसूत्र (१५।१७) में पुत्र के द्वारा माता तथा भगिनी के साथ समागम (तस्मात् तु पुत्रो मातरं स्वसारं चाधिरोहति) के उल्लेख के विषय में उसके टीकाकार आनर्तिय ने स्पष्ट कहा है कि यह अर्थवाद पुत्रोत्पत्ति को प्रशंसा के लिए ही प्रयुक्त है अथवा इसका आशय यह प्रकट करना है कि ऐसा आचरण पशुओं के द्वारा किया जाता है।[1] आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (२२।१३।२) में गोसव याग के (पशुव्रत के) प्रसंग में माता, भगिनी या सगोत्रा स्त्री के साथ समागम विषयक वचनों (उप मातरमियाद् उप स्वसारम् उप सगोत्राम्) का उद्देश्य भी पुत्रोत्पत्ति के महत्त्व को प्रतिपादित करना ही माना जा सकता है।[2] वैदिक यज्ञों के प्रसंग में कथित ऐसे वचनों का अभिधेयार्थ कदापि ग्राह्य नहीं है। पुत्रोत्पत्ति के महत्त्व को ख्यापित करने के लिए अर्थवाद रूप में प्रयुक्त ये वचन प्रायः उन मन्त्रों के हैं जिनका विनियोग प्रजनन के प्रतीक रूप में क्रिये जाने वाले कृत्यों (गोसव आदि) में होता था। अतः ऐसे वचनों के आधार पर वैदिक समाज में माता के साथ पुत्र के यौन-सम्बन्ध के प्रचलन की कल्पना को प्रमाणित नहीं किया जा सकता। ऋग्वैदिक काल के बहुत पूर्व से ही भारतीय समाज में नैतिकता की पूर्ण प्रतिष्ठा थी। अतः उसमें ऐसे घोर अनैतिक सम्बन्धों की स्वीकृति कभी भी नहीं रही होगी। आपत्काल के लिए भी धर्मशास्त्रों में ऐसा कोई विधान नहीं है और प्राचीन साहित्य में किसी भी पुरुष के द्वारा सन्तान-

१. अर्थवादोऽयं पुत्रोत्पत्तिप्रशंसार्थः गावो वा एतत्सत्रम् आसत इति।
२. द्र०—फार्म्स आफ मैरेज इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० १२६-१३०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लाभ की भावना से माता के साथ समागम का कोई भी दृष्टान्त नहीं है। निकटाभिगमन के एक पौराणिक दृष्टान्त के रूप में साम्ब विषयक कथा को भी प्रस्तुत किया गया है,[१] जो कि उचित नहीं है। जैसा कि वराहपुराण (१७७।३९) से स्पष्ट होता है, साम्ब को पुत्र रूप में नहीं, अपितु पति कृष्ण की भ्रान्ति में देखने पर ही उनकी सोलह हजार रानियाँ कामार्त हुयी थी, जिसके कारण साम्ब को अगम्यागमन का पाप लगा था। स्कन्दपुराण ७।१।१०१।४०-४१ तथा भविष्यपुराण १।७३।४१ के अनुसार कृष्ण ने साम्ब को अपनी उन रानियों की कामोत्तेजना का निमित्त होने के कारण ही कुष्ठरोग से युक्त होने का शाप दिया था। मत्स्यपुराण (७०।५-८; तु० भविष्य १।७३।३५-८; स्कन्द ७।१।१०१।२५-८) के अनुसार साम्ब को कामेच्छा से देखने वाली उन रानियों को कृष्ण ने दस्युओं के द्वारा अपहृत होने का शाप दिया था। स्कन्दपुराण के नागरखण्ड (२१३।२९-३४) में रात्रि के अन्धकार में शंका युक्त साम्ब के द्वारा दीपक के प्रकाश में पहचाने जाने पर पलायित होने वाली विमाता नन्दिनी विषयक कथा बाद में कल्पित प्रतीत होती है। यहाँ भी साम्ब को कुष्ठरोग होने का उल्लेख है (स्कन्द ६।२१३।५७)। यद्यपि पुराणों में साम्ब को निर्दोष चित्रित किया गया है, किन्तु उक्त अभिशस्ति के फलस्वरूप उसके कुष्ठ-पीडित होने तथा इसके प्रतीकार हेतु उसके द्वारा सूर्य की उपासना करने के उल्लेख के आधार पर उसे इस कलङ्क से नितान्त अनाविल नहीं कहा जा सकता। स्कन्दपुराण (३।१।३५।९-३५) में उल्लेख है कि एक युवक ने अपनी विधवा जननी के साथ बलात्कार करके बाद में पश्चात्ताप करते हुए व्यास मुनि से प्रायश्चित्त पूछा और उनके निर्देशानुसार धनुष्कोटि तीर्थ में व्रती रहते हुए माघ संक्रान्ति से लेकर तीन मास तक यथाविधि स्नान करने से वह पाप-मुक्त हुआ था। यहाँ अध्याय की फलश्रुति से स्पष्ट होता है कि यह कथा धनुष्कोटि तीर्थ के माहात्म्य को ख्यापित करने के लिए कल्पित की गयी है। अंगुत्तरनिकाय (२।३३१) के अनुसार एक बार एक पुत्र तथा उसकी माता ने प्रव्रजित होकर संघ में प्रविष्ट होने पर भी परस्पर दुराचार किया था।[२] ऐसे उद्धरणों की ऐतिहासिक सत्यता सन्दिग्ध है। माता-पुत्र के परस्पर व्यभिचार को सर्वथा विश्वसनीय नहीं माना जा सकता, क्योंकि प्राचीन सांस्कृतिक परिवेश में पला हुआ मनुष्य इतना अधम नहीं था। अत: यह सम्भव है कि ऐसी एक-दो कथाएँ वासना के आवेश को नियन्त्रित करने में कुछ अधम मनुष्यों की असमर्थता को ख्यापित करने के ध्येय से गढी गयी हों और इनका उद्देश्य समाज को यह चेतावनी देना हो कि कामोन्माद के क्षणिक आवेश में अन्धा होकर कोई दुराचारी और परम नीच पुरुष कदाचित् अपनी जननी को भी धर्षित कर सकता है।

(स) भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध—डा० एस० सी० सरकार प्रभृति विद्वानों

१. वही, पृ० १३३। २. बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन, पृ० २२५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने ऋग्वेद में सूर्या के द्वारा अश्विनौ के पति रूप में वरण, पूषा एवं अग्नि के लिए स्वसा का जार जैसे शब्दों का प्रयोग, अग्नि के द्वारा अपनी भगिनियों में गर्भस्थापन के उल्लेख तथा यम-यमी सम्वाद आदि के आधार पर प्राचीन भारत में भ्राता-भगिनी में यौनाचार को सिद्ध करने का प्रयास किया है। किन्तु वैदिक ऋषियों के सामाजिक दृष्टिकोण तथा उनकी भाषा शैली पर विचार करने पर विदित होता है कि वस्तुस्थिति ऐसी नहीं थी। ऋग्वेद (१।११६।५) में सूर्या के द्वारा अश्विनौ के पति रूप में वरण (वृणीत जेन्या युवां पती) के उल्लेख के आधार पर उसके साथ उनके दाम्पत्यभाव की कल्पना भ्रमपूर्ण है, क्योंकि सूर्या के द्वारा अश्विनौ के रथ के वरण की भी चर्चा ऋग्वेद (१।११७।३; ४।४३।२) में है। ऋग्वेद ४।४३।६ में अश्विनौ के रथ को उन्हें सूर्या का पति बनाने वाला कहा गया है। ऋग्वेद १।१८४।३ में अश्विनौ के द्वारा सूर्या को रथ में बैठा कर गन्तव्य स्थान तक पहुँचाने का उल्लेख है। उनके रथ में सूर्या के बैठने का उल्लेख तो अनेकत्र है।[1] अतः यह कहा जा सकता है कि सूर्या को अपने रथ में बैठा कर सुरक्षा देने के कारण ही अश्विनौ को उसका पति (=पाता या रक्षक) कहा गया है। ऋग्वेद १०।८५।९; अथर्व १४।१।९ तथा ऐतरेय ब्राह्मण ४।७ से यह प्रमाणित हो जाता है कि सूर्या का विवाह सोम के साथ हुआ था, न कि अश्विनौ के साथ। वे तो उसके वरणकर्ता मात्र थे। अतः अश्विनौ के साथ सूर्या (भ्राता-भगिनी) के दाम्पत्य-भाव की कल्पना उचित नहीं है। ऋग्वेद ६।५५।४-५ में पूषा (सूर्य) को स्वसा (बहिन) का जार (स्वसुर्जारः) कहा गया है। इस प्रसंग में जार शब्द का वेंकटमाधव तथा सायण कृत एवं डा० सरकार प्रभृति कतिपय विद्वानों के द्वारा स्वीकृत प्रेमी या उपपति अर्थ युक्तिसंगत नहीं है। यास्क (नि० ३।१६) के अनुसार यहाँ उषा को पूषा की बहिन साहचर्य के कारण बतलाया गया है। इस प्रसंग में स्कन्दस्वामी की यह व्याख्या तर्कसंगत है कि एक ही प्रजापति से उत्पन्न होने के कारण उषा को पूषा की बहिन कहा गया है। उनके अनुसार पूषा (सूर्य) को उषा (उषाकाल) का जरयिता (जीर्ण करने वाला अर्थात् अपने उदय से उसका तिरोधान करने वाला) होने के कारण ही जार कहा गया है। अथवा उषाकाल के पश्चात् उदित सूर्य का प्रेमिका के पीछे जाने वाले प्रेमी (जार) के आचरण से पश्चात् गमन (अनुसरण) रूप साधर्म्य वश उसे जार का रूपक दिया गया है। इसी तरह ऋग्वेद ७।९।१ में उषा काल में प्रज्वलित अग्नि को उसके उपस्थ में जगने वाला जार कहा गया है। अग्नि और उषा को लक्ष्य करके ही ऋग्वेद (१०।३।३) में कहा गया है कि जार (अग्नि) बहिन (उषा) के पीछे जाता है (स्वसारं जारोऽभ्येति पश्चात्)। यहाँ पर उषा काल के पश्चात् प्रदीप्त अग्नि को प्रेमिका के

---

१. ऋ० १।११८।५; ५।७३।५; ६।६३।५; ८।८।१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पीछे-पीछे जाने वाले जार का रूपक दिया गया है। भ्राता-भगिनी को जार-जारिणी मानने का दुराग्रह वैदिक ऋषि में नहीं था। अन्यथा वह यम-यमी में या अन्यत्र भी यह सम्बन्ध बतला सकता था। पुनश्च ऋग्वैदिक काल में यदि भ्राता-भगिनी का यौन-सम्बन्ध धर्म-सम्मत रहा होता तो मानव-समाज के परिप्रेक्ष्य में इसकी चर्चा कहीं न कहीं हुई होती। ऋग्वैदिक समाज में नैतिक मूल्यों का पूर्ण विकास हो चुका था। अतः पाप-पुण्य की भावना से सुपरिचित वैदिक ऋषि भ्राता-भगिनी के गर्हित यौनाचार का आरोप देवों के सम्बन्ध में भी कदापि नहीं कर सकता था। स्त्रीलिङ्ग विषयों को भगिनी संज्ञा से अभिहित करने की वैदिक ऋषि की एक प्रवृत्ति रही है। उसी तरह उपर्युक्त प्रसङ्गों में पूषा तथा अग्नि को जार संज्ञा से अभिहित करके वैदिक ऋषि पूषा के उदय या अग्नि के प्रज्वलन में कलात्मकता या सौन्दर्य की भावना को अभिव्यक्त करना चाहता है। यहाँ वैदिक ऋषि को भ्राता का भगिनी के साथ अनैतिक सम्बन्ध कदापि अभीष्ट नहीं है। उसने तो ऐसे रूपकात्मक प्रयोग के द्वारा पूषा या अग्नि के प्रति अपनी श्रद्धा और भावुकता का परिचय दिया है। ऋग्वेद की ऋचाओं की भाषा की अपनी अलग विशेषता है। वह ब्राह्मण ग्रन्थों की तरह रहस्य से बोझिल या रामायण, महाभारतादि की भाषा की भाँति सरल-सपाट और वस्तुकथन परक अथवा कालिदास आदि कवियों की भाषा की भाँति नितान्त परिमार्जित, प्राञ्जल और अलंकारों के सुष्ठु प्रयोग से सम्पन्न भी नहीं है। अतः हमें ऋग्वेद की भाषा में प्रयुक्त उपमाओं या रूपकों की उपपत्ति परवर्ती साहित्यालोचन के प्रतिमानों से नहीं लगानी चाहिए। ऋग्वेद १०।२१।८ में अग्नि को अपनी बहिनों में गर्भ-स्थापित करने वाला (गर्भं दधासि जामिषु) कहा गया है। यहाँ बहिनों से तात्पर्य ओषधियों से है। अग्नि और सोम में से यद्यपि ओषधियों का पोषण और संवर्धन सोमतत्त्व से ही अधिक होता है, किन्तु उनके अंकुरण से लेकर फलपाकपर्यन्त प्रक्रिया में अग्नितत्त्व (उष्मा) का भी सहयोग आवश्यक है। वैदिक ऋषि ने यहाँ इस वैज्ञानिक तथ्य का उद्घाटन किया है कि ओषधियों में बीज-स्थापन अग्नि करता है। इस प्रसंग में भाई के द्वारा बहिन में गर्भाधान का अर्थ कदापि ग्राह्य नहीं है। ऋग्वेद ९।६५।१ में सोम सवन में प्रयुक्त अंगुलियों तथा सोम के लिए क्रमशः बहिनों एवं पति का रूपक (स्व-स्वारो जामयस्पतिम्) प्रयुक्त है। जैसा कि सायण का कथन है, यहाँ एक हाथ में अवस्थित होने से सभी अंगुलियाँ परस्पर बहनें कही गयी हैं और सोम को सभी स्थावर-जङ्गम जीवों का स्वामी मान कर पति कहा गया है। अतः यह भी एक रूपकात्मक प्रयोग है। इसके आधार पर भ्राता के भगिनियों का पति होने की कल्पना नहीं की जा सकती। इसी तरह ऋग्वेद १०।९४।४ में सोम-सवन में प्रयुक्त पत्थर के अंगुलियों से आलिङ्गन की आलङ्कारिक (उत्प्रेक्षात्मक) कल्पना को देख कर भी भ्रमवश भ्राता-भगिनी के यौन-सम्बन्ध की कल्पना कर ली गयी है, जब कि यहाँ भ्राता के प्रति

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भगिनी के प्रेम, स्पर्श तथा आलिङ्गन की पवित्रता तथा सदाशयता का बोध कराने के ध्येय से ही कवि ने उक्त कल्पना को प्रस्तुत किया है।

भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध की सिद्धि के पक्ष और विपक्ष में विद्वानों के द्वारा बहुशः आलोचित ऋग्वेद के यम-यमी संवाद के कुछ शब्दों तथा उनके तात्पर्य पर (पीछे, पृ० ४३-४४ में संक्षिप्त चर्चा के बावजूद) एक बार पुनः यहाँ कुछ चर्चा की जा रही है। ऋग्वेद १०।१०।१-२ से विदित होता है कि यम ने यमी के काम-वासना-पूर्ण सख्य-भाव को अस्वीकृत कर दिया था (न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्)। तब यमी ने देवों के द्वारा भी 'त्यजस' (पुत्री या भगिनी) की कामना की चर्चा करते हुए शारीरिक-संसर्ग का आमन्त्रण दिया (ऋ० १०।१०।३) तो यम ने कहा कि जो आचरण पहले कभी नहीं किया गया उसे हम अब कैसे कर सकते हैं।[1] इससे स्पष्ट है कि इस सूक्त के द्रष्टा ऋषि की दृष्टि में पूर्वकाल में भी भगिनी के साथ यौन-सम्बन्ध नहीं होता था। यमी ने तब कहा था कि मिथुन सन्तान होने के नाते धाता ने हमें गर्भ से ही दम्पती बनाया है (ऋ० १०।१०।५)। इस पर यम ने आरम्भिक सृष्टि के दिनों का रहस्य दुर्ज्ञेय बतलाते हुए यमी को मित्रावरुण के कठोर अनुशासन का स्मरण दिलाया (ऋ० १०।१०।६)। तब कामार्त यमी के द्वारा स्पष्टतया शरीर-समर्पण की बात कहे जाने पर यम ने उसे भयभीत करते हुए कहा था कि देवों के प्रहरी (गुप्तचर) बैठे या सोये नहीं हैं, वे हमारे चतुर्दिक विचरण कर रहे हैं (ऋ० १०।१०।७-८)। यमी के द्वारा जामि (भ्राता-भगिनी जैसे निकट सम्बन्धियों) के अयोग्य काम-सम्बन्ध हेतु पुनः प्रेरित किये जाने पर यम ने कहा था कि ऐसे युग भविष्य में आयेंगे जब कि जामि (भ्राता-भगिनी आदि) अपने अयोग्य आचरण करेंगे (ऋ० १०।१०।६-१०)। डा० एस० सी० सरकार[2] तथा डा० भगवतशरण उपाध्याय[3] ने इस ऋचा को भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध के प्रचलन की आसन्न समाप्ति अथवा स्मृति-शेष होने का द्योतक बतलाया है, किन्तु यह उचित नहीं, क्योंकि ऐसा होता तो इसके पहले (ऋ० १०।१०।४ में) यम के द्वारा भूतकाल में ऐसा न होने की बात नहीं कही गयी होती। कामपीडित यमी के द्वारा शारीरिक संसर्ग हेतु अन्तिम निवेदन को भी अस्वीकृत करते हुए यम ने कहा था कि भगिनीगमन को अतीत काल में भी पाप-पूर्ण बतलाया गया है (पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्। ऋ० १०।१०।१२)। यम ने अनेक बार अपने उत्तर में यमी से कहा था कि वह अन्य पुरुष की कामना करे (ऋ० १०।१०।८,१०,१४) जिससे स्पष्ट होता है कि उस काल में भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध नहीं होता था।

---

१. न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम। ऋ० १०।१०।४।

२. सम आस्पेक्ट्स् आफ द अर्लियस्ट सोसल हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ७४।

३. वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० १२७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

डा० भगवतशरण उपाध्याय (वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० १२६) के अनुसार यह सूक्त प्राचीन समाज में निकटाभिगमन की प्रथा के त्वरित लोप का सूचक है। यह उनकी अपनी कल्पना मात्र है। इस सूक्त से ऐसी बात नहीं सूचित हो पाती। पुनश्च यहाँ यह विचारणीय है कि किसी भी देश-काल की कोई भी कामार्त नारी इतनी निर्लज्जता से अपने भ्राता से शारीरिक-संसर्ग के लिए आग्रह नहीं कर सकती। यमी और यम के इस संवाद का गुम्फन करने वाला निश्चयमेव कोई तीसरा ही व्यक्ति रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि यमी के साथ यम के प्रणय-प्रस्ताव विषयक किसी प्राचीन कथानक को इस सूक्त के संकलनकर्ता ने नाटकीय-संवाद का स्वरूप प्रदान करते हुए इसे अधिक-से अधिक रोचक बनाकर सार्वजनिक उत्सवों के समय एकत्रित जनता का अधिकाधिक मनोरञ्जन के साथ ही नैतिक-शिक्षा प्रदान करने के ध्येय से ही कल्पना का पुट देकर यमी की कामार्तता को स्वयं उसी के मुख से इतनी बार मुखरित किया है कि उसका चरित्र उपहासास्पद लगने लगता है। तीव्र काम-पिपासायुक्त यमी के शरीर-समर्पण के निवेदन को यम ने दृढता-पूर्वक अस्वीकार किया है। इस तरह इस सूक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके द्रष्टा ऋषि की दृष्टि में ऐसा सम्बन्ध न तो पहले कभी प्रचलित था और न उसके समय में ही ऐसा यौनाचार हो सकता था।

ऋग्वेद १०।१६२।५ (तु० अथर्व० ८।६।७) में गर्भिणी के पास उसके गर्भ को नष्ट करने के लिए किसी भूत-प्रेत के उसके भ्राता, पति या जार के रूप में आने के उल्लेख के आधार पर भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध की कल्पना करना भी उचित नहीं है। किसी महिला के पास प्रत्येक व्यक्ति नहीं जा सकता था। उसके भ्रातादि स्वजन उसके कुशल-प्रश्न आदि हेतु उसके पास जा सकते थे। अतः कोई राक्षस या भूत-प्रेत आदि भी उनका रूप धारण कर किसी गर्भिणी के पास उसके गर्भ को नष्ट करने के लिए जा सकता था। इस प्रसंग में कामभाव से उसके समीप जाने का कोई संकेत नहीं है। अतः उक्त ऋचा के आधार पर वैदिक समाज में भ्राता-भगिनी में यौनाचार की कल्पना करना नितान्त अनुचित है। ऋग्वेद १०।८५।२१-२ में विश्वावसु गन्धर्व से प्रार्थना की गयी है कि वह नववधू को छोड़ कर अन्य पितृगृहस्थ सुव्यक्तावयवा कन्या (अथर्व० १४।२।३३ के अनुसार पितृगृहस्थ 'जामि') के पास जाय तथा नवोढा को पति से संयुक्त होने दे। ऐसे वचनों के आधार पर डॉ० एस० सी० सरकार तथा डॉ० इरावती कार्वे आदि के द्वारा भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध की जो अनुचित कल्पना की गयी है उसका सम्यक् खण्डन क्रमशः डा० नीलाक्षी सेनगुप्ता[1] तथा डा० शिवराज शास्त्री[2] जैसे विद्वान् कर चुके हैं। विश्वावसु गन्धर्व को वस्तुतः कन्या के कौमार्य का

१. इवोल्यूशन आफ हिन्दू मैरेज, पृ० १३।
२. ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध, पृ० ३१६-३२०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रक्षक माना जाता था और उसके प्रतीक उदुम्बर (गूलर) के दण्ड को त्रिरात्रव्रत में वर-वधू की शय्याओं के मध्य उनके ब्रह्मचर्य-पालन के साक्षी के रूप में रखा जाता था। सम्भवत: यह विश्वास किया जाता था कि उसके प्रति श्रद्धालु और आदर भावयुक्त होने से अथवा उसके द्वारा प्रताडित होने के भय से वे त्रिरात्र पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। चतुर्थीकर्म में उस उदुम्बर दण्ड को उक्त मन्त्रों से उठाते हुए उस गन्धर्व का विसर्जन किया जाता था। अतः इसके आधार पर भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध की कल्पना नितान्त हेय है। इस प्रसङ्ग में यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि 'जामि' शब्द का तात्पर्य निकट सम्बन्धी होता है, किन्तु ऋग्वेद १०।१०।१० तथा अथर्व० १८।१।११ से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'जामि' (निकट-सम्बन्धियों) में यौन-सम्बन्ध पहले से ही नहीं होता था (द्र०—पीछे, पृ० २०१)। ऋग्वेद के विवाह सूक्त में वधू को पितृकुल से मुक्त करके पतिकुल से सम्बद्ध करने (ऋ० १०।८५।२५) तथा पितृगृह को रथ से प्रस्थान (ऋ० १०।८५।२३, २६, ३२) आदि के उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि कन्या का विवाह पितृगृह से दूर अन्य कुल में होता था। ऐतरेय ब्राह्मण (३।१७) में पत्नी के लिए प्रयुक्त 'अन्योदर्या' तथा जैमिनि ब्राह्मण (१।३००) में दम्पती के लिए 'अजामि' विशेषण के प्रयोग से भी यह सूचित होता है कि प्राचीन काल में भ्राता-भगिनी या अन्य निकट-सम्बन्धियों में विवाह अथवा यौन-सम्बन्ध कदापि समाज-सम्मत नहीं था।

इतिहास-पुराण के स्रोतों के आधार पर भी डॉ० भगवतशरण उपाध्याय जैसे कुछ विद्वानों ने प्राचीन भारत में भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध का प्रचलन सिद्ध करने में उत्साहातिरेक का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ—उन्होंने महाभारत के आधार पर श्रद्धा को वैवस्वत मनु की पत्नी मानते हुए इस युगल को भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध का एक दृष्टान्त माना है (द्र०—वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० १३०)। किन्तु यह प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि महाभारत में मनु को सूर्य का पुत्र (आदिपर्व ७५।१२, शान्तिपर्व १६६।६८) तथा श्रद्धा को सूर्य की पुत्री (शान्तिपर्व २६४।८) बतलाते हुए भी उनमें दाम्पत्य भाव वहाँ नहीं बतलाया गया है। इसी तरह महाभारत के आधार पर भरत के द्वारा अपनी तीन बहिनों के साथ विवाह की बात भी कही गयी है (द्र०—वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० १३०)। किन्तु वहां उल्लिखित भरत कोई मनुष्य नहीं, अपितु शंयु नामक अग्नि का पुत्र है (वनपर्व २१९।६-७), जिसका उल्लेख ऋग्वेद (१।९६।३; ६।१६।४) तथा ब्रह्माण्डपुराण (२।१२।८) में भी प्राप्त होता है। अतः यह प्रसंग देवशास्त्रीय और प्रतीकात्मक है या अतिमानवीय धरातल का है, जिसका मानवीय यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है। राजा द्रुपद के अपनी भगिनी से विवाह-सम्बन्ध की जो कल्पना की गयी है (द्र०—वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० १३१) वह भी भ्रान्ति का ही परिणाम है। द्रुपद राजा पृषत का एकमात्र पुत्र था। उसे पृषत का पुत्र होने के कारण ही

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पार्षत कहा गया है (आदिपर्व १२६।४१; १६५।६, २१)। द्रुपद (पार्षत) की पत्नी को (आदिपर्व १६६।३६) में पृषती कहा गया है तथा उसी को आदिपर्व (गीताप्रेस सं०, १६६।५१ तथा पाठ-समीक्षात्मक संस्करण के आदिपर्व १५५।३४, ४७ में उद्धृत अधिकांश पाण्डुलिपियों में) पार्षती कहा गया है, जो कि व्याकरण सम्मत भी है। पति के नाम में ङीप् प्रत्यय जोड़ने से पत्नी की संज्ञा बन सकती है (द्र०-पतञ्जलि कालीन भारत, पृ० १७३)। ऐसे उदाहरण पुराणों में भी हैं। श्रीमद्भागवत में हविर्धान की पत्नी को हविर्धानी (भाग० ४।२४।८) तथा पुरञ्जन की पत्नी को पुरञ्जनी (भाग० ४।२७।१) कहा गया है। अतः पृषती या पार्षती राजा द्रुपद (पार्षत) की पत्नी थी, न कि भगिनी।

पौराणिक वंशावलियों में अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, सोमप एवं आज्यप संज्ञक साग्निक एवं अनग्निक पितरों की मानसी कन्याओं के लिए प्रयुक्त 'पितृकन्या' शब्द का पिता की कन्या अर्थात् भगिनी अर्थ करके कुछ विद्वानों के द्वारा पितृकन्याओं के साथ कुछ मनुष्यों के विवाह को भ्राता-भगिनी में विवाह-सम्बन्ध का उदाहरण मान लिया गया है,[1] जो कि नितान्त भ्रमपूर्ण है। ऐसे उदाहरण अतिमानवीय दाम्पत्य के माने जा सकते हैं, भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध विषयक जो अन्य उदाहरण दिये गये हैं उनका विश्लेषण विस्तार भय से यहाँ सम्भव नहीं है, उनके विषय में संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि कुछ उदाहरणों में तो उनकी व्याख्या में भ्रान्ति हुयी है तथा कुछ उदाहरण ऐसे हैं, जिनका पाठ भ्रष्ट होने से उनका ऐसा अर्थ प्रतीत होता है, किन्तु इतर पुराणों के तत्समकक्ष पाठ के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुतः भ्राता-भगिनी में विवाह-सम्बन्ध नहीं होता था। निकट सम्बन्धियों में विवाह या यौन-सम्बन्ध विषयक जो उद्धरण देवताओं अथवा आठ देवयोनियों विषयक हैं, वे अतिमानवीय धरातल के हैं, उन्हें मनुष्यों के इतिहास से नहीं जोड़ा जा सकता। भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध विषयक जो वर्णन बौद्ध साहित्य में हैं, वे सर्वथा विश्वसनीय नहीं हैं, क्योंकि उनमें प्रायः वैदिक तथा पौराणिक संस्कृति के महापुरुषों के विषय में सनातन-परम्परा और आदर्शों के विपरीत अनर्गल बातें गढी गयी हैं। सनातन-संस्कृति की प्रतिक्रिया स्वरूप उभरे हुए बौद्ध साहित्य में जिस काल के समाज की चर्चा है उसका वर्णन सनातन संस्कृति के साहित्य, विशेषतः महाकाव्यों और पुराणों में भी है, किन्तु वहाँ उसका ऐसा चित्रण नहीं है।

निकटाभिगमन विषयक कुछ संदिग्ध प्रसंगों के आधार पर यह नहीं मान लेना चाहिए कि ये वर्णन जिस काल के हैं उस काल में नैतिकता का विकास नहीं हुआ था,

---

१. सम आस्पेक्ट्स् आफ द अर्लियस्ट सोसल हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ११६-१३५; वूमेन इन ऋग्वेद, १२६-१३१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्योंकि यदि ऐसा होता तो इन कथाओं से सम्बद्ध पात्रों में अन्य अनेक चारित्रिक दोष होते, किन्तु ऐसा नहीं लक्षित होता। डॉ० एस० सी० सरकार तथा डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ने प्राचीन समाज में ऋग्वैदिक साक्ष्यों के आधार पर निकटाभिगमन का प्रचलन सिद्ध न हो पाने पर इस आशय के साक्ष्यों वाले पुराणों के अंशों को वैदिक साक्ष्यों से भी प्राचीन मान कर अपने मन्तव्य की सिद्धि का प्रयास किया है,[1] किन्तु तब तो पुराणों के अनैतिकता का चित्रण करने वाले अंशों की अपेक्षा प्राचीन समाज की नैतिकता का प्रतिपादन करने वाले अंशों को वैदिक काल के अधिक पहले का मानना पड़ेगा, क्योंकि पुराणों में सृष्टि के आदि काल के वर्णनों में प्राचीन समाज को अमर्यादित नहीं, अपितु प्रकृत्या मर्यादित और सदाचारी बतलाया गया है और प्रत्येक आगामी युग में धर्म के ह्रास तथा अधर्माचरण की उत्तरोत्तर वृद्धि की कल्पना की गयी है। पुराणों की दृष्टि में निकटाभिगमन की दुष्प्रवृत्ति अतीत युगों में नहीं थी, अपितु आगामी युगों में ही इसका उद्रेक होगा। कलियुग के मनुष्यों के विषय में कहा गया है कि वे कन्या, सास, पुत्रवधू, भगिनी, विमाता तथा भ्राता की पुत्री के साथ व्यभिचार करेंगे। वे अपनी जननी के अतिरिक्त सभी अगम्या स्त्रियों के साथ अनैतिक-सम्बन्ध स्थापित करेंगे।[2] ऐसे वर्णनों को पुराणकारों के द्वारा समकालीन सामाजिक स्थिति पर व्यक्त की गयी प्रतिक्रिया मात्र मानना भी उचित नहीं है। हमें इस बात पर गंभीरता से विचार करना चाहिए कि सनातन धर्म की परम्परा के समस्त साहित्य में कृत, त्रेतादि युगों की अपेक्षा कलियुग में अनैतिकता की प्रवृत्तियों की उत्तरोत्तर वृद्धि की बातें क्यों कही गयी हैं? प्राचीन साहित्य में सामान्य जन की तो बात ही दूर रही, सर्वोच्च पद और प्रतिष्ठा वाले पुरुषों के दुष्कर्मों पर भी पर्दा डालने की कोई कुचेष्टा नहीं लक्षित होती। अतः हम कह सकते हैं कि विशाल भौगोलिक सीमाओं वाले, असंख्य जन-समुदायों तथा विविध विचार-धाराओं और संस्कृतियों वाले प्राचीन भारत में यद्यपि कामोन्माद में कुछ स्त्री-पुरुष निकटाभिगमन कर सकते थे, किन्तु हमारे द्वारा विवेचित वैदिक तथा इतिहास-पुराणादि साहित्य में निकटाभिगमन का एक आचार या प्रथा के रूप में प्रचलन कहीं नहीं लक्षित होता।

(द) भ्राता की पत्नी के साथ यौन-सम्बन्ध—ऋग्वेद १०।८५।४४ में वधू के लिए 'देवृकामा' होने की आशंसा के आधार पर देवर के साथ उसके यौन-सम्बन्ध की डॉ० एस० सी० सरकार सदृश लेखकों की कल्पना का सुष्ठु खण्डन डॉ० शिवराज-शास्त्री (द्र०—ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध, पृ० ३३२-३) कर चुके हैं।

---

१. सम आस्पेक्ट्स् आफ द अर्लियस्ट सोसल हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० १३६-१४१; वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० १२६।

२. ब्रह्मवै० २।७।४५-८; देवीभाग० ९।८।४३-५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋग्वेद में भग, अर्यमा आदि देवों के द्वारा वधू को उसके पति को प्रदान किये जाने,[१] उसके पति से संयोजन[२] पति को शरीर-समर्पण[3] और उससे दश पुत्रों के प्रजनन[४] सास, ससुर, ननद, देवर आदि पर उसके शासन करने[५] और दम्पती के हृदयों के एकीकरण[६] एवं उनके कभी वियुक्त न होने[७] की शुभाशंसाओं तथा देवर के साथ उसके यौन-सम्बन्ध की चर्चा के अभाव[८] से यह सूचित होता है कि वैदिक काल में देवर का भ्राता की पत्नी के साथ यौन-सम्बन्ध जन-प्रख्यात या समाज-सम्मत नहीं रहा होगा। ऋग्वेद १०।४०।२ में विधवा के द्वारा देवर को अपनी शय्या में बुलाने का उल्लेख नियोग व्यवस्था का द्योतक माना जा सकता है। गौतम ध० सू० २।९।४ में सन्तान की इच्छुक विधवा के लिए देवर का नियोग विहित है। पति के वंश का आसन्न व्यक्ति तथा सहोदर होने के कारण देवर में उसके समान गुण-धर्मादि की विद्यमानता को ध्यान में रखकर ही उसे विधवा के साथ समागम हेतु नियुक्त किया जाता था। इसके लिए भी उसको घृताभ्यक्त होकर गर्भधारण पर्यन्त समागम करने तथा कामतः प्रवृत्त न होने आदि नियमों का पालन करना पड़ता था।[९] वंश-रक्षा हेतु नियोग की व्यवस्था के अतिरिक्त भ्राता की पत्नी के साथ यौन-सम्बन्ध कभी भी धर्मसम्मत नहीं माना गया है। मनु (९।५७) ने स्पष्ट कहा है कि ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी अनुज के लिए गुरुपत्नी तथा अनुज की पत्नी ज्येष्ठभ्राता के लिए पुत्रवधू तुल्य है। नारद (स्मृ०, स्त्रीपु०, १२।८५) ने नियोग के विना अग्रज या अनुज की पत्नी के साथ रमण करने वाले को गुरुतल्पग कहा है। नियोग व्यवस्था केवल आपत्काल में विहित थी। मनु (९।५८) के अनुसार अनापत् काल में नियुक्त होने पर भी ज्येष्ठ भ्राता अनुज की पत्नी के साथ तथा अनुज ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी के साथ समागम करने पर पतित हो जाता है। नियोग की आड़ में व्यभिचार की प्रवृत्ति का कोई उल्लेखनीय दृष्टान्त प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता। मनु (९।६२) ने यह विधान किया है कि विधवा में नियोग का उद्देश्य पूर्ण होने के पश्चात् नियुक्त भ्राता यदि कनिष्ठ हो तो उसे गुरु-पत्नी तुल्य समझे और यदि वह ज्येष्ठ हो तो उसे पुत्रवधू तुल्य समझे तथा विधवा भी उन्हें देवर तथा ज्येष्ठ (जेठ) के तुल्य समझे। नियोग के विना अथवा पुत्रवती होने पर भी वासना की शान्ति के ध्येय से नियोग के द्वारा पुत्रोत्पादन की प्रवृत्ति को हतोत्साहित तथा वर्जित करने के लिए मनु (९।१४३) ने कहा है कि विधवा के द्वारा नियोग के

---

१. ऋ० १०।८५।३६। २. ऋ० १०।८५।२२,२४,४४।
३. ऋ० १०।८५।२७; अथर्व० १४।१।२१। ४. ऋ० १०।८५।४५।
५. ऋ० १०।८५।४६। ६. ऋ० १०।८५।४७। ७. ऋ० १०।८५।४२।
८. ऋग्वैदिककाल में पारिवारिक सम्बन्ध, पृ० २३४-५।
९. द्र०—कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ६३९-६४१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विना देवर से उत्पादित पुत्र जारजात तथा पुत्रवती होने पर भी नियोग के द्वारा उत्पादित पुत्र कामज कहलाते हैं और रिक्थ के भागी नहीं होते। नारद (स्त्रीपु० १२।८४) ने भी मनु जैसे आचार्यों के वचनों को लक्ष्य करके कहा है कि किसी नारी के द्वारा विना नियोग के देवर से जनित पुत्र को धर्मवेत्ताओं ने जारजात तथा रिक्थ का अनधिकारी बतलाया है। इस प्रकार प्राचीन भारत में नियोग के अतिरिक्त भ्राता की पत्नी के साथ यौन-सम्बन्ध कभी भी प्रशस्त नहीं माना गया है।

उपर्युक्त मर्यादाओं के बावजूद कुछ पुरुष भ्राता की पत्नी के साथ यौन-सम्बन्ध कर लेते थे। अपने भ्राता उतथ्य की सगर्भा पत्नी के साथ बृहस्पति ने बलात्कार किया था और गर्भस्थ भ्रूण (शिशु) के द्वारा प्रतिरोध किये जाने पर उन्होंने उसे अन्धा होने का शाप दिया था।[1] उनके द्वारा ममता के सेवन से भरद्वाज के जन्म की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है।[2] किन्तु अग्रज की पत्नी को अतिप्राचीनकाल से ही मातृतुल्य माना जाता था। ऋग्वेद के आठवें मण्डल के ऋषि कण्व के वंश-वर्णन के प्रसंग में बृहद्देवता (६।३६-८) में उल्लेख है कि कण्व ने अपनी पत्नी की गोद में शिर रखकर सोये हुए अनुज प्रगाथ पर पापाचरण की आशंका करते हुए उसे शाप देने को उद्यत होकर पादाघात से जगाया तो उसने कण्व के आशय को समझ कर उसे तथा उसकी पत्नी को माता-पिता के रूप में स्वीकारा था। अग्रज की पत्नी के साथ यौन-सम्बन्ध की गर्हणीयता का संकेत रामायण (४।५५।३-४) में भी है, जहाँ अङ्गद ने सुग्रीव के विषय में कहा है कि जो पुरुष ज्येष्ठ-भ्राता के जीवित रहते हुए उसकी पत्नी, जो कि मातृतुल्य होती है, को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण करता है वह धर्म को क्या जाने? सामान्यतः नारियाँ देवर के साथ शारीरिक सम्पर्क से अपने को बचाती रही हैं। हाल ने गाथा सप्तशती (१।५९) में कहा है कि एक ग्राम-वधू कुटुम्ब विघटन के भय से अपने साथ देवर के द्वारा की जाने वाली कामुकतापूर्ण चेष्टाओं का निवेदन पति से नहीं करती और अपने चरित्र की रक्षा की चिन्ता में क्षीण होती जाती है। किन्तु कुछ स्त्रियाँ देवर के साथ अनुचित प्रणय के मोह में पड़ कर पति को धोखा भी दे सकती थी। हर्षचरित (उच्छ्वास ६, पृ० ३५५) के अनुसार देवर में आसक्त रानी देवकी ने कर्णोत्पल में मकरन्द-चूर्ण के रूप में विष मिला कर अपने पति राजा देवसेन को मार डाला था। महाभारत (अनु० पर्व ८।२२) में नारी के द्वारा पति के अभाव में देवर को पति रूप में स्वीकार किये जाने के उल्लेख से सूचित होता है कि कभी-कभी कुछ जातियों की विधवायें देवर की पुनर्भू पत्नी बन जाती थी। इस तथ्य का एक ऐतिहासिक उदाहरण विशाखदत्त के देवीचन्द्रगुप्त नाटक और हर्षचरित (पञ्चम

१. बृहद्देवता ४।११-४; ब्रह्माण्ड ३।७४।३७-४५; तु०—भाग० ६।२०।३६-८।
२. विष्णु ४।१६।१६-८; भाग० ६।२०।३८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उच्छ्वास) तथा काव्यमीमांसा अध्याय ६ में है—गुप्तनरेश रामगुप्त ने अपनी रानी ध्रुवदेवी को शकराज को देना स्वीकार कर लिया था, किन्तु उसके भ्राता चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उस शकराज का वध करके गुप्त साम्राज्य का अधिपति बन कर ध्रुवस्वामिनी को अपनी महिषी बनाया था। अनुज की पत्नी के साथ अग्रज के यौन-सम्बन्ध को कभी भी प्रशस्त नहीं माना जाता था। रामायण (४।१८।१८-२३) में अनुज सुग्रीव की पत्नी रुमा के साथ यौन-सम्बन्ध करने वाले बाली के वध का औचित्य बतलाते हुए राम ने कहा है कि अपनी पुत्री, भगिनी तथा अनुज की पत्नी के साथ काम-सम्बन्ध करने वाले का वध ही समुचित दण्ड है। ऐसे कुत्सित सम्बन्ध का कोई उल्लेखनीय और प्रख्यात उदाहरण परवर्ती साहित्य में नहीं है।

२. परस्त्रीगमन—

प्राचीन साहित्य में निकट-सम्बन्ध की अगम्या स्त्रियों की अपेक्षा अन्य स्त्रियों के साथ यौन-सम्बन्ध के उल्लेख अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त होते हैं। कुछ देवताओं में भी यह प्रवृत्ति बतलायी गयी है। शतपथ तथा जैमिनि ब्राह्मण में इन्द्र को अहल्या का जार कहा गया है।[1] परवर्ती साहित्य में इन्द्र के द्वारा अहल्या के धर्षण की घटना का उल्लेख अनेकत्र प्राप्त होता है।[2] ऋग्वेद ३।५३।८ में इन्द्र के द्वारा माया से नाना रूपों के धारण (रूपं रूपं मघवा बोभवीति, तु० इन्द्रो मायाभिः पुरु रूप ईयते) के उल्लेख को भी इन्द्र की चारित्रिक शिथिलता के प्रसंग में उद्धृत किया गया है।[3] उक्त ऋचाओं के अर्थ की सङ्गति महाभारत (अनु० पर्व ४०।२४-३८) में मिलती है, जहाँ देवशर्मा ने यह बतलाया है कि किसी सुन्दरी के साथ रमण हेतु इन्द्र कितने रूप धारण करके उसके पास आ सकता है। देवशर्मा इन्द्र से अपनी पत्नी की रक्षा यत्न-पूर्वक करता था (अनु० पर्व ४०।१६-२०)। एक बार अपने प्रवास काल में उसने यह दायित्व अपने शिष्य विपुल को सौंपा था, जिसने इन्द्र के दुष्प्रयास को योगबल से विफल करके उसे यह शाप दिया था कि अब से उसकी पूजा का प्रचलन नहीं रहेगा (अनु० पर्व ४०।३६-६०; ४१।२०)। हरिवंशपुराण(३।५।१२-७) के अनुसार जनमेजय के अश्वमेध यज्ञ में मारे गये अश्व के साथ लेटी हुई उसकी रानी वपुष्टमा के साथ इन्द्र ने उस अश्व में प्रविष्ट होकर समागम किया था। फलतः राजा ने शाप दिया था कि अब से राजा लोग अश्वमेध यज्ञ से इन्द्र का यजन नहीं करेंगे। संभवतः इन्द्र के तथाकथित दुराचरण के कारण ऐसी शापोक्तियों के प्रभाव से कालान्तर में उसकी पूजा का प्रचलन लुप्त होने लगा होगा।

---

१. शत० ब्रा० ३।३।४।१८; जै० ब्रा० २।७९।

२. रामा० १।४८।१७-२७; शान्तिपर्व २६६।४७-५१।

३. द्र०—वैदिककोश, पृ० २६२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋग्वेद (१०।१०९।२-५) तथा अथर्ववेद (५।१७।२-१८) में बीज रूप में संकेतित चन्द्रमा (सोम) के द्वारा गुरु (बृहस्पति) की पत्नी तारा के अपहरण का वृत्तान्त पौराणिक साहित्य में सविस्तार उपनिबद्ध है।[1] यद्यपि देवीभागवत १।११। ५७-८ में चन्द्रमा ने कहा है कि कामना करने वाली स्त्री का सेवन [धर्म के] विरुद्ध नहीं है और बलशाली पुरुष का सब कुछ अपना होता है, दुर्बल का कुछ भी अपना नहीं होता। किन्तु ऐसे अनीतिपूर्ण वचनों से उसके दुष्कर्म का औचित्य नहीं सिद्ध होता। तारा के निमित्त भीषण संग्राम हुआ था और अन्ततः चन्द्रमा ने उसे बृहस्पति को लौटाया था। मत्स्यपुराण (२३।४६) के अनुसार चन्द्रमा को इस दुराचरण के लिए ब्रह्मा ने पाप-ग्रह होने का शाप दिया था। पुराणों के अनुसार एक बार राजसूय यज्ञ में अवभृथ के पश्चात् श्रीसम्पन्न चन्द्रमा से आकृष्ट तथा कामार्त होकर लक्ष्मी, सिनीवाली, द्युति, तुष्टि, प्रभा, कुहू, कीर्ति, वसु और धृति संज्ञक नौ देवियाँ अपने पतियों को छोड़कर उसके पास आयी, जिनका उसने स्वकीया की भाँति भोग किया था[2]। उस समय वह इतना प्रतापी था कि उनके पति सम्मिलित रूप से भी उसका प्रतीकार शाप से या शस्त्रों से भी नहीं कर सके थे (मत्स्य २३।२७; अग्नि २७४।७)। यह कथा देवों-विषयक, प्रतीकात्मक तथा राजसूय यज्ञ से जन्य प्रताप के अर्थवाद रूप में कल्पित प्रतीत होती है। दिव्य-परिवेश की इन कथाओं में परस्त्रीगमन की प्रवृत्ति की चर्चा होने पर भी मानव इतिहास से इनका समायोजन नहीं किया जा सकता।

ऋग्वेद (१०।८५।४०-४१) एवं अथर्ववेद (१४।२।३-४) में क्रमशः सोम, गन्धर्व तथा अग्नि के द्वारा कन्या के वेदन तथा अन्त में अग्नि के द्वारा उसे उसके मानव पति को दिये जाने के उल्लेख और परवर्ती साहित्य[3] में इन्हीं के द्वारा कन्या के भोग के उल्लेख के आधार पर अनेक पाठक तथा लेखक भी इन तत्त्वों के द्वारा मानव कन्या के वस्तुतः उपभोग की अव्यावहारिक कल्पना करते हैं। यदि सोम, गन्धर्व तथा अग्नि वास्तव में कन्या के साथ यौन-सम्बन्ध करते तो उसका कन्यात्व नष्ट हो जाता तथा उसके आपन्नसत्त्वा (गर्भिणी) होने की भी संभावना होती, किन्तु किसी भी कन्या के साथ ऐसी संभावित घटना का कोई उल्लेख कहीं नहीं मिलता। अतः ऋग्वेद १०।८५।४० में प्रयुक्त 'पति' शब्द का संरक्षक अर्थ मानते हुए सोम आदि के

१. द्र०-ब्रह्माण्ड ३।६४।२९-४४; मत्स्य २३।३०-४७; २४।१-३; विष्णु ४।६।७-३३।
२. मत्स्य २३।२३-६; अग्नि २७४।२-६; ब्रह्माण्ड ३।६४।२६।
३. द्र०—वसिष्ठ ध० सू० २८।५; अत्रिसंहिता, (स्मृ० सं० भाग १) श्लोक १३९-१४० तथा १९२-३; संवर्तस्मृति, ६४ (स्मृ० स० १, पृ० ५५३) बृहस्पति-स्मृ० ५।६२; अग्नि १६५।१९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्वारा कन्या का क्रमशः संरक्षण किये जाने का तात्पर्य ग्रहण करना चाहिए। इनके द्वारा कन्या के भोग का भी लगभग वैसा ही अर्थ है जैसा ज्यौतिष में ग्रहों के भोग का। प्रो० आर० आर० राव (द आर्यन् मैरेज, पृ० २५-७), डॉ० राजबली पाण्डेय (हिन्दू-संस्कार, पृ० २४२-३) तथा डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय (भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, पृ० १२१) प्रभृति विद्वानों ने इस विषय की समीक्षा अपने-अपने दृष्टिकोण से करते हुए स्वीकार किया है कि सोम, गन्धर्व और अग्नि कन्या के शारीरिक तथा मानसिक विकास में सहायक प्राकृतिक तत्त्व हैं। धर्मशास्त्रों के अनुसार सोम कन्या को शौचाचार का गुण, गन्धर्व उसे मधुर वाणी तथा अग्नि उसे सर्वभक्ष्यत्व (सब कुछ खा-पचा लेने की क्षमता) प्रदान करता है।[1] अतः यह कहा जा सकता है कि सोम, गन्धर्व तथा अग्नि को कन्या के चरित्र का संरक्षक एवं उसके व्यक्तित्व-विकास तथा पति-प्राप्ति में सहायक मानकर ही उनके विषय में ऋग्वेद एवं परवर्ती साहित्य में उपर्युक्त बातें कही गयी हैं।

अथर्ववेद ४।३७।११ में कुत्ते, बन्दर या समस्त शरीर में रोमों से युक्त कुमार के सदृश आकृति धारण करके स्त्रियों के साथ सङ्गत होने वाले गन्धर्व को नष्ट करने के उल्लेख के आधार पर किसी स्त्री के साथ गन्धर्व के अवैध सम्बन्ध की कल्पना भी उचित नहीं है, क्योंकि उक्त मन्त्र में उल्लिखित गन्धर्व किसी स्त्री के पास काम-सन्तुष्टि हेतु नहीं, अपितु भूत-प्रेत आदि की भाँति उसे आविष्ट या रोगाक्रान्त करने के लिए आता है। यह तथ्य कौशीतकि-ब्राह्मण २।६ में एक कुमारी तथा बृहदारण्यकोपनिषत् ३।७।१ में एक स्त्री के 'गन्धर्वगृहीता' होने के उल्लेख से भी प्रमाणित होता है। गन्धर्वोन्मादित रोगी का वर्णन आयुर्वेद में भी प्राप्त होता है।[2] ऋग्वेद १०।८५।२१ तथा परवर्ती ग्रन्थों में चतुर्थी कर्म में विश्वावसु गन्धर्व के विसर्जन हेतु प्रयुक्त मन्त्र के आधार पर यह भ्रामक कल्पना की गयी है कि कन्या के साथ उसका यौन-सम्बन्ध रहता था और उसी पूर्वसंसर्ग की वासना से वह विवाह के बाद भी उसके साथ आ जाता था, इसका भी निराकरण हम पीछे (पृ० २०२-३ में) कर चुके हैं। यद्यपि वैदिक साहित्य में गन्धर्वों की स्त्री-प्रियता का उल्लेख है,[3] किन्तु किसी स्त्री के साथ उनके अवैध सम्बन्ध की चर्चा कहीं नहीं है। महाभारत (विराटपर्व २२।६०-६४, २४।१) से विदित होता है कि दुराचरण के लिए उद्यत कीचक का वध यद्यपि प्रच्छन्न रूपेण भीम ने किया था, किन्तु सैरन्ध्री (द्रौपदी) के वचनों पर विश्वास करके लोगों ने माना था कि उसकी हत्या

---

१. बौ०ध०सू० २।२।४।५; वसिष्ठ ध०सू० २८।६; याज्ञ० १।७१; बृह०स्मृ० ५।६५।

२. सुश्रुत सं०उत्तरतन्त्र ६०।१०; चरक सं०चिकित्सा० ६।१६; वनपर्व २३०।२१।

३. तै० सं० ६।१।६।५; ऐ० ब्रा० १।२७; शत० ब्रा० ३।२।४।३; कौ० ब्रा० १२।३; ब्रह्मपुराण, गौ० ख० ३५।४,८,१४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गन्धर्व ने की है। इससे विदित होता है कि गन्धर्वों को नैतिकता का पक्षधर तथा अनैतिकता के प्रति असहिष्णु माना जाता था।

नैतिक शिथिलता के सर्वाधिक दृष्टान्त राक्षसों में पाये जाते हैं। रामायण (५।२०।५) में रावण ने कहा है कि परायी स्त्रियों के साथ रमण तथा उनका बलात् अपहरण राक्षसों का स्वधर्म है। वामनपुराण (११।२६) में परदाराभिमर्षण को राक्षसों का धर्म बतलाया गया है। रामायण (६।१११।५३; ७।२४।१-३) में रावण के विषय में यह कहा गया है कि वह देव, दानव, मनुष्य, नाग आदि किसी भी जाति की कन्याएं अपहृत करके ले आता था। इसी प्रयास में उसे वेदवती का शाप (रामा० ७।१७।३१-२) तथा रम्भा से बलात्कार करने पर नलकूबर का भी शाप (रामा० ७।२६।४१-५६; वनपर्व २८०।५९-६०) प्राप्त हुआ था। परस्त्री-हरण करने वाले राक्षसों में कुम्भकर्ण (रामा० ६।६१।२०), नरकासुर (विष्णु ५।२६।६,३१; भाग० १०।५९।३३), भृगु की पत्नी के अपहर्ता पुलोमा (आदिपर्व ६।१), मदालसा के अपहर्ता पातालकेतु (मार्क० १६।२८-३१) आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। पद्मपुराण (२।५०।४) में गोभिल नामक राक्षस ने कहा है कि मैं परस्त्री का बलात् भोग करता हूँ। महिषासुर ने मुनि-पत्नियों को दूषित किया था (स्कन्द १।३।२।१६।४)। अनेक अन्य दैत्यों के द्वारा भी साध्वी नारियों को दूषित किये जाने के उल्लेख मिलते हैं (द्र०-स्कन्द ४।७१।८)। कुछ राक्षस प्रायः मद्यमांसाशी होने के कारण तथा कुछ अन्य राक्षस स्वयं को अप्रतिम बली और अजेय तथा अवध्य मान कर भी ऐसी दुष्प्रवृत्ति में लिप्त होते थे। सभी राक्षस ऐसे नहीं थे। विभीषण ने परस्त्रीहरण को यश, धन और कुल का नाशक बतलाया था (राम० ७।२५।१८)।

मानव समाज में परस्त्रीगमन के छिट-पुट दृष्टान्त ऋग्वेद से ही दृष्टिगत होने लगते हैं। कितव की जाया का अन्य पुरुषों के द्वारा अभिमर्षण (ऋ० १०।३४।४), अपनी स्त्रियों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों में भी पुत्रोत्पादन की एक पुरुष की दम्भोक्ति (ऋ० १०।१८३।३), जार के अपनी प्रेमिका स्त्री के पास जाने,[1] एक कनीन जार के द्वारा परस्त्री को धन लुटाने (ऋ० १।११७।१८) तथा प्रेतात्मा के द्वारा किसी गर्भिणी के गर्भ को नष्ट करने के लिए उसके पास उसके जार के रूप में जाने की सम्भावना (ऋ० १०।१६२।५ अथर्व० २०।९६।१५) के उल्लेख से विदित होता है कि वैदिक समाज में भी कुछ पुरुष नैतिक शिथिलता (Sexual Laxity) के दोष से ग्रस्त थे। ऋग्वेद (१०।१६२।५) के उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर डॉ० एस० सी० सरकार ने यह माना है कि प्रत्येक विवाहिता नारी का एक जार (प्रच्छन्न प्रेमी) रहता होगा।[2] यह

१. ऋ० १।१३४।३; ६।३८।४; ६।६९।२३; ६।१०१।१४।

२. सम आस्पेक्ट्स् आफ द अर्लियस्ट सोसल हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ८५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उनकी बेतुकी और पूर्वाग्रहपूर्ण कल्पना है, उन्होंने ऋग्वैदिक नारी की पति-भक्ति और चरित्र-निष्ठा (द्र०—पीछे, पृ० १६६-८) का सम्यक् आकलन नहीं किया है। वैदिक इण्डेक्स (१, पृ० २८६) के लेखकों तथा डॉ० सूर्यकान्त (वैदिक कोश, पृ० १६२) ने कहा है कि आरम्भ में जार शब्द के अर्थ में पाप-भावना का समावेश नहीं था। यह ठीक है कि जार शब्द का प्रेमी के अर्थ में भी प्रयोग होता था, किन्तु परस्त्री के साथ सम्बन्ध करने वाले जार के प्रति समाज की धारणा आरम्भ से ही अच्छी नहीं रही होगी। वाजसनेयिसंहिता २३।३०-३१ एवं शतपथ-ब्राह्मण १३।२।६।८ में स्वीकार किया गया है कि न तो शूद्र ही अपनी पत्नी के साथ अर्य (त्रैवर्णिक पुरुष या वैश्य) जार के सम्बन्ध से सन्तुष्ट होता था और न अर्य ही अपनी पत्नी के शूद्र जार से प्रसन्न होता था। यह नहीं कहा जा सकता कि अनैतिक आचरण को ऋग्वैदिक समाज में पाप नहीं माना जाता था। संभवतः जार तथा उपपति[1] को समाज का अवाञ्छित व्यक्ति मानने के कारण ही वाजसनेयिसंहिता ३०।६ में उन्हें पुरुषमेध के बलि-पशुओं में गिनाया गया है।

तैत्तिरीय संहिता (५।६।८।३ तु०- मै०सं० ३।४।७) में कहा गया है कि अग्नि-चयन करने वाला स्त्रीसमागम न करे, दूसरी बार अग्निचयन करने वाला परस्त्री के साथ तथा तीसरी बार अग्निचयन करने वाला किसी भी स्त्री के साथ समागम न करे। वस्तुतः यहाँ अग्निचयन करने वाले पुरुष के लिए ब्रह्मचर्य पालन की आवश्यकता पर बल देने के उद्देश्य से ही ऐसे वचन कहे गये हैं। अतः ऐसे वचनों के आधार पर उस काल में परस्त्रीगमन को समाज-सम्मत बतलाना उचित नहीं है (द्र० वैदिक इण्डेक्स १, पृ० ३६६, ४८०)। मैत्रायणी संहिता (१।४।११) में एक ऋषि के पिता की संदिग्धता के उल्लेख को नैतिक-शिथिलता से सम्बद्ध करने की कल्पना का खण्डन करते हुए मैकडॉनल और कीथ जैसे विद्वानों ने भी यह स्वीकार किया है कि उक्त अंश यह द्योतित करता है कि ऋषित्व की पहचान कठिन है (द्र०-वैदिक इण्डेक्स, १, पृ० ३९७)। वैदिक साहित्य के कतिपय अन्य अंशों को भी भ्रमवश नैतिक-शिथिलता का द्योतक मान लिया गया है। उदाहरणार्थ-कात्यायन श्रौतसूत्र (१३।३।९) के अनुसार महाव्रत-याग में

---

१. पराशरमाधव (आ० का०, पृ० ६९३) में उद्धृत देवल के एक वचन के अनुसार मोहवश [यदा-कदा] परस्त्रीगमन करने वाले पुरुष को जार कहते हैं, और यदि उस स्त्री के घर में ही वह निवास करने लगता है तो उसे उपपति कहा जाता है। किन्तु इस भेद पर ध्यान न देकर अनेकत्र इन दोनों को एक दूसरे का पर्याय मान लिया गया है (द्र० अमरकोश २।६।३५; ब्रह्मवै० १।१०।१६६; गौ० ध० सू० २।६।१६ पर हरदत्तकृत मिताक्षरा; तथा ऋ० १०।१६५।५ पर सायणभाष्य)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मार्जालीय धिष्ण्या (शाला) के दक्षिण में एक परिवृत (चारों ओर से आच्छन्न) स्थान में एक युगल मिथूनीभूत होता है।[1] ऐतरेय आरण्यक (५।१।५) में महाव्रतयाग के कृत्यों में मैथुन को भी गिनाया गया है। शतपथ १२।१।३।२१ तथा ताण्ड्य ब्राह्मण ४।१०।२ से स्पष्ट होता है कि महाव्रत याग प्रजापति से सम्बद्ध है। अतः इस याग में मैथुन का यह नाटक प्रजापति के सृष्टिकर्म के प्रतीक रूप में और उसे सन्तुष्ट करने के उद्देश्य से किया जाता होगा।[2] वैदिक साहित्य में अनेकत्र जिन उद्धरणों में अनैतिक यौन-सम्बन्धों का आभास होता है उनमें से अनेक प्रतीकात्मक तथा रहस्यवादी प्रकृति के हैं, उनका वास्तविकता या भौतिक यथार्थ से कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं है।[3] इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि वेबर एवं लुडविग जैसे भारती-विद्या (इण्डॉलाजी) के आरम्भिक अध्येताओं का विचार था कि वैदिक काल में अनैतिकता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था, किन्तु इसका खण्डन डेलब्रुक जैसे विद्वानों ने किया था। इनसे सहमति रखने वाले मेकडॉनल एवं कीथ ने वैदिक समाज में मर्यादाहीनता विषयक अनेक मिथ्यारोपों का खण्डन करते हुए भी वैदिक साहित्य में बहुपत्नीकता, इन्द्र और अहल्या की कथा तथा शूद्रा के अर्य जार एवं अर्य-जाया के शूद्र जार के उल्लेखों के आधार पर यह कहा है कि उस समय बहुत उच्च नैतिक स्तर की कल्पना नहीं की जा सकती (द्र०—वैदिक इण्डेक्स १, पृ० ३९७)। यह कथन उनकी अपनी मानसिकता की उपज है। नैतिक शिथिलता के उपर्युक्त थोड़े से दृष्टान्त वैदिक कालीन विशाल समाज के लिए अपवाद रूप में माने जा सकते हैं, क्योंकि वैदिक साहित्य के अधिकांश उद्धरणों से विदित होता है कि उस समाज में नैतिकता तथा मर्यादाशीलता की पूर्ण प्रतिष्ठा थी। वैदिक इण्डेक्स के लेखक जिस (काल्पनिक) ऊँचे नैतिक स्तर की अपेक्षा वैदिक आर्यों से रखते हैं वह संभवतः किसी भी देश या काल के समाज में शायद ही मिले।

इतिहास-पुराण में प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार प्रारम्भिक मानव समाज में व्यभिचार की प्रवृत्ति नहीं थी, अपितु इसका प्रचार कालान्तर में हुआ था। रामायण (७।३०।३३) में गौतम ने इन्द्र को शाप देते हुए कहा है कि उसके द्वारा प्रवर्तित परस्त्रीगमन की यह प्रवृत्ति अब मनुष्यों में भी फैल जायेगी। मनुस्मृति (९।६७) के अनुसार समाज में वर्णसंकरता का दोष राजा वेन के द्वारा फैलाया गया था। ब्रह्मवैवर्त पुराण १।१०।१६६-१७० के अनुसार कहीं-कहीं जार या उपपति का नवज्ञ या उपपत्नी

---

१. द्र०—स्त्रीपुंसौ सुरतसम्भोगं कुरुतः। करक-भाष्य (का० श्रौ० सू० १३।३।९)।

२. द्र०-फार्म्स आफ मैरेज इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० १२९।

३. इस विषय में विशेष विवरण हेतु द्र०—डाँगे, एस० ए०: (१) सेक्सुयल सिम्बॉलिज्म इन वैदिक रिचुयल, पृ० ५१ एवं आगे, (२) कल्चरल सोर्सेज फ्रॉम द वेद, पृ० ५२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के साथ सम्बन्ध देखा जाता है। यह गर्हित दुराचरण अवैदिक और विश्वामित्र के द्वारा प्रवर्तित है। इस तरह के सम्बन्ध महापुरुषों के लिए दुस्त्याज्य हैं, अतः देशकालानुसार कदाचित् वे ऐसा कर सकते हैं। सामान्य पुरुषों के लिए ऐसे सम्बन्ध अपयशजनक हैं, किन्तु महापुरुषों को ऐसे सम्बन्धों से किसी भी युग में कोई दोष नहीं लगता। प्राचीन साहित्य में देवों, अवतारी पुरुषों, ऋषि-मुनियों तथा राजाओं की व्यभिचार में प्रवृत्ति की आलोचना नहीं की गयी है। मत्स्यपुराण में स्पष्ट कहा गया है कि देवों को कार्य और अकार्य (करणीय और अकरणीय) व्यवहार से कोई शुभ या अशुभ फल नहीं मिलता।[१] वे अपने किसी आचरण से धर्म अथवा अधर्म को नहीं प्राप्त करते।[२] पराशरमाधव (आ० का०, पृ० ४७३) में उद्धृत बौधायन के एक श्लोक के अनुसार देवों तथा मुनियों के द्वारा जैसा आचरण किया गया है वैसा आचरण मनुष्य न करे। वह केवल अपने लिए विहित कर्म करे। महाभारत शान्तिपर्व २९१।१७ में भी यही कहा गया है कि वह देवों और मुनियों के द्वारा किये गये कर्मों को न तो स्वयं करे और न उनकी निन्दा करे। श्रीमद्भागवत (१०।३३।२८-३१) में परीक्षित् ने यह प्रश्न किया है कि धर्मसेतुओं (धर्मशास्त्रों) के वक्ता, कर्ता और रक्षक होने पर भी श्रीकृष्ण ने परदाराभिमर्षण क्यों किया ? इस पर शुकदेव ने प्रायः आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।६ १३।७-९) के समान शब्दों में यह उत्तर दिया था कि समर्थ पुरुष धर्म-व्यतिक्रम तथा साहस जैसे अकृत्य कर सकते हैं। इससे उनको कोई दोष नहीं लगता। किन्तु असमर्थ व्यक्ति को मन से भी वैसा नहीं करना चाहिए, अन्यथा वह नष्ट हो जाता है। कृष्ण के उसी आचरण-विषयक शंका के उत्तर में पद्मपुराण (६।२४५।१७४-७) में कहा गया है कि सारा जगत् कृष्ण का अपना ही अङ्ग है। अपने एक अङ्ग के दूसरे अङ्ग के साथ मिलन को रति नहीं कहा जा सकता। कृष्ण की दृष्टि में स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं है, वे निसर्गतः सबके पति, सबकी आत्माओं के स्वामी हैं एवं इतने समर्थ भी हैं कि उन्हें अपने ऐसे किसी आचरण से पाप नहीं लग सकता। इस तरह शास्त्रों में महापुरुषों के दुराचरण को क्षम्य बतलाया गया है, किन्तु सामान्य पुरुषों को ऐसा न करने का उपदेश दिया गया है।

महाभारत (आदिपर्व १८०।३१-२) में कहा गया है कि सभी वर्णों के पुरुष सभी वर्णों की एवं सभी जातियों की नारियों में सन्तानोत्पादन करते है। अतः जाति की परीक्षा संभव नहीं है। ये वचन अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों के अतिरिक्त प्रच्छन्न दुराचार के भी द्योतक हैं। प्राचीन भारत में प्रतिलोम विवाह को कभी भी धर्मसम्मत नहीं माना गया है। प्रतिलोमज सन्तानों के जो वर्णन प्राचीन साहित्य में हैं, उनमें से अनेक अधम वर्ण के पुरुष के द्वारा उत्तम वर्ण की नारी के साथ व्यभिचार से

१. कार्याकार्ये न देवानां शुभाशुभफलप्रदे। मत्स्य ४।६।
२. न धर्माधर्मसंयोगं प्राप्नुवन्त्यमराः क्वचित्। वही, ६१।१४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उत्पन्न हुए होंगे। महाभारत (अनु० पर्व २७।१७) में मतङ्ग मुनि को एक वृषल (शूद्र) नापित के द्वारा एक ब्राह्मणी में उत्पन्न बतलाया गया है। अनेक वर्णसंकर जातियों की उत्पत्ति के स्रोत भी ऐसे व्यभिचारज सन्तान ही माने जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त धर्मशास्त्रों में स्वीकृत द्वादश विध पुत्रों में से गूढज, कानीन तथा सहोढ संज्ञक पुत्रों का जन्म भी अनैतिक यौन-सम्बन्ध का ही परिणाम माना जा सकता है। प्रो० काणे (द्र० धर्मशास्त्र का इतिहास, द्वि० भा०, पृ० ८८५) ने भी इन्हें अवैधानिक संसर्ग का फल बतलाया है।

यद्यपि अति प्राचीन काल से ही नैतिक मूल्यों, मर्यादाओं तथा सदाचार की रक्षा करना राजा का स्वधर्म माना जाता था, किन्तु राजसत्ता के मद से मत्त कुछ आसुरी प्रकृति के राजा स्वयं ही अनैतिक आचरण करते थे। महाभारत (वनपर्व १९०।३५) में कहा गया है कि कलियुग के राजा सत्पुरुषों की स्त्रियों के साथ भी दुराचार करेंगे। वात्स्यायन के समय में भी कुछ अनाचारी राजाओं के द्वारा कुछ कन्याओं तथा महिलाओं, जो संभवत: आर्थिक दृष्टि से विपन्न और पिछड़े क्षेत्रों, दुर्बल वर्गों तथा प्रतिक्रिया में असमर्थ कुलों अथवा अर्थ-लोलुप परिवारों की होती रही होंगी, के साथ दुष्कर्म किया जाता था। कामसूत्र (५।५।३२-६) के अनुसार आन्ध्र (देश) में वाग्दता जनपद कन्याएं दशवें दिन कुछ उपहार लेकर राजा के अन्तःपुर में जाती हैं, जहाँ से वे संभुक्त होकर ही लौटती हैं। वात्सगुल्मक नामक देश में महामात्रों की नारियाँ रात्रि में राजा के पास पहुँचती हैं। विदर्भ की जनपद-सुन्दरियाँ प्रेम-प्रदर्शन हेतु एक मास या एक पक्ष पर्यन्त राजा के अन्तःपुर में रहती हैं। अपरान्त प्रदेश के निवासी राजाओं तथा महामात्रों के साथ मधुर सम्बन्ध बनाने के लिए अपनी सुन्दरियों को उनकी सेवा में भेजते हैं। सौराष्ट्र में नगर एवं जनपद की रमणियाँ कभी समूह में अथवा कभी एक-एक करके राजा के साथ क्रीडा हेतु उसके अन्तःपुर में जाती हैं। ऐसे उल्लेख उन राजाओं के धर्मविरुद्ध आचरण के साथ ही वहाँ की स्त्रियों की भी नैतिक शिथिलता के द्योतक हैं। कामसूत्र ५।५।३, ३७ में भी राजाओं के लिए यह आचरण वर्जनीय बतलाया गया है। किन्तु सभी राजा ऐसे दुराचारी नहीं होते थे। ब्रह्मवैवर्तपु० ४।५९।७४ में कहा गया है कि प्रजा की स्त्रियों को राजा मातृवत् मानते हैं। शुक्रनीति (१।३८९) का विधान है कि दस्युकर्म करने पर भी राजा परायी स्त्रियों तथा कन्याओं को दूषित न करे। राजा के चारित्रिक स्खलन में कुछ अर्थलोलुप तत्त्वों का सहयोग भी रहता था। राजतरङ्गिणी (६।१६४-५) के अनुसार राजा क्षेमगुप्त से अभीष्ट धन की प्राप्ति के लोभी धूर्त, विट आदि अपनी पत्नियों को उसके साथ रमण हेतु प्रस्तुत करते थे। अपने रसिक स्वभाव के कारण अनेक राजा इन्द्रियों को संयमित नहीं रख पाते होंगे। संस्कृत नाटकों से यह विदित होता है कि कुछ राजा अनेक रानियों के होते हुए भी अपने अन्तःपुर में दिखलायी पड़ी किसी युवती कुमारी से, राजमहिषी के द्वारा विवाह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कराये जाने तक, प्रणय-चेष्टा में संलग्न रहते थे। कामसूत्र (५।५।२५) के अनुसार वृत्ति के इच्छुक, महामात्रों से पीडित, बन्दी, व्यवहार (मुकदमे) में दुर्बल, अपने धन से असन्तुष्ट या अन्य किसी कार्य की सिद्धि के इच्छुक पुरुषों की स्त्रियाँ राजा के रमण हेतु सरलता से मिल सकती थी। राजतरङ्गिणी (८।२०) के अनुसार राजा उच्चल के द्वारा सेवामुक्त कायस्थों ने अपने पदों में पुनः नियुक्ति पाने के उद्देश्य से अपनी, माता भगिनी, पुत्री या पत्नी को सामन्तों की सुरत-सेवा में लगाया था।

संभवतः अति प्राचीन काल से ही कोई भी अनैतिक पुरुष नट-नर्तक आदि रङ्ग-कर्मियों की स्त्रियों के साथ यौन-सम्बन्ध कर लेता था। बौधायन (ध० सू० २।२।४।३ =बौ० स्मृ० २।२।६२) ने चारणों तथा रङ्ग-कर्मियों की स्त्रियों के साथ व्यभिचार पर दण्ड का निषेध किया है और उसका यह हेतु बतलाया है कि उनके पति ही स्वयं प्रच्छन्न रहकर उनका परपुरुषों के साथ संसर्ग करवाते हैं तथा उन्हें उनसे रमण का अवसर देते हैं। बौधायन के वचनों का अनुमोदन मनुस्मृति (८।३६२), विष्णुधर्मोत्तर (२।७२। १०४) तथा मत्स्यपुराण (२२७।१२३-४) में भी प्राप्त होता है। रामायण से भी यह सूचित होता है कि शैलूष (नट) अपनी पत्नी को दूसरों को [उपभोग हेतु] देता था।[1] नटों की स्त्रियों की निर्लज्जता और अनैतिकता का आभास पतञ्जलि के इन शब्दों से होता है कि उनसे जो भी पुरुष पूछता है कि तुम किसकी स्त्री हो तो वे स्वयं को उसी की स्त्री बतलाती हैं (द्र०—अष्टाध्यायी ३।२।१११ पर महाभाष्य)। ऐसी निरर्गल स्त्रियों के साथ उच्छृङ्खल मनोवृत्ति के पुरुषों के व्यभिचार-परायण होने की आशङ्का प्राचीन समाज में भी रहती होगी।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन समाज में दासी की विवशता का लाभ उठाकर उसका स्वामी उसके साथ रमण करता था। छान्दोग्योपनिषत् (४।४।२-५) से यह विदित होता है कि जबाला नामक दासी के साथ अनेक पुरुषों ने रमण किया था। श्रीमद्भागवत (६।१।२१,३१) में ब्राह्मण अजामिल की निन्दा उसके दासीपति होने के कारण ही की गयी है। दासीगमन को कोई गम्भीर अपराध नहीं माना जाता था। किन्तु याज्ञवल्क्य (२।२९१) ने दासी की इच्छा के विरुद्ध उसके साथ बलात्कार करने पर दश पण अर्थदण्ड का विधान किया है। नारद (स्मृति, स्त्रीपुंस० १२।७८) ने ब्राह्मणेतर वर्ण की स्वैरिणी नारी, वेश्या तथा दासी के साथ आनुलोम्येन (अपेक्षाकृत उच्च वर्ण के पुरुष के द्वारा निम्नवर्ण की स्वैरिणी, वेश्या या दासी के साथ) रमण की स्वीकृति दी है। किन्तु नारद (स्मृ० स्त्रीपुंस० १२।७९) ने यह भी कहा है कि ये ही स्त्रियाँ यदि भुजिष्या (नियत पुरुषपरिग्रहा) हों तो उनके साथ रमण में परस्त्रीगमन का दोष लगता है। ये स्त्रियाँ यदि दूसरे की परिग्रह (दूसरे की अधीनस्थ अथवा दूसरे

१. द्र० ···शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि। रामा० २।३०।८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की पत्नी) हों तो गम्या होने पर भी इनका सेवन न करे। इन सब विवरणों के आधार पर यह माना जा सकता है कि प्राचीन समाज में दासी का चारित्रिक दृष्टि से शुद्ध रह पाना आसान नहीं था।

स्कन्दपुराण काशीखण्ड (५८।१२८) के अनुसार वाराणसी में राजा दिवोदास के शासन काल में अनेक पुरुष विज्ञानकौमुदी नामक भिक्षुणी से आकर्षण तथा वशीकरण की विद्या ग्रहण करके उसका सफल प्रयोग परायी स्त्रियों में करते थे। दिवोदास सुदूर अतीत के (वैदिक कालीन) राजा थे। यह वर्णन यदि दिवोदास कालीन न भी हो तो काशीखण्ड की रचना के पूर्वकालीन सामाजिक स्थिति का द्योतक तो माना ही जा सकता है। इसी तरह के शब्दों में शिवपुराण (२।५।५।५६) में कहा गया है कि अरिहन् द्वारा त्रिपुर में वेद-विरुद्ध उपदेश दिये जाने के पश्चात् वहाँ के पुरुषों ने आकर्षण और वशीकरण विद्याओं को सीखकर उनका प्रयोग परायी स्त्रियों में किया था। यहाँ संभवतः पुराणकार ने बौद्ध धर्म तथा उसकी तान्त्रिक क्रियाओं के प्रचार के पश्चात् समाज में उभरी हुई व्यभिचार की प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के रूप में ऐसे वचन कहे हैं। पुराणों के इन वर्णनों से यह संकेत मिलता है कि आकर्षण तथा वशीकरण जैसी आभिचारिक क्रियाओं का प्रयोग परायी स्त्रियों के साथ अनैतिक सम्बन्ध बनाने के लिए भी किया जाता था।

तान्त्रिक उपासना में परकीया स्त्री के साथ भी समागम विहित था। महाकालसंहिता, (पटल २५०, पृ० १४८) के अनुसार स्वकीया के सुलभ या अनुकूल न होने पर परकीया स्त्री को शक्ति रूप में ग्रहण करके उसे दीक्षित कर वस्त्राभूषण आदि से सम्मानित करके उपासना की आवश्यक औपचारिकता के रूप में उसके साथ रमण किया जा सकता है। यद्यपि तान्त्रिक उपासना में सुरत-क्रिया का उद्देश्य देवता को सन्तुष्ट करना था।[1] अतः विशुद्ध रूप से तान्त्रिक उपासना के अङ्गरूप में विहित मैथुन को नैतिक शिथिलता के रूप में देखना उचित नहीं होगा। किन्तु इस उपासना की आड़ में व्यभिचार की प्रवृत्ति के उभरने के कारण इसे बाद में अवाञ्छित मान कर प्रतिबन्धित किया जाने लगा था। ब्रह्माण्डपुराण ४।८।३१ में कहा गया है कि यह उपासना जन-सामान्य के लिए नहीं, अपितु तपोबल-युक्त पुरुषों के लिए ही विहित है। वे भी केवल अपनी पत्नी को शक्ति बना कर ही इसे कर सकते हैं।

पुराणों के अनुसार कलियुग के मनुष्य परदारप्रधर्षक होते हैं।[2] जारधर्म

---

१. द्र०—कुलार्णवतन्त्र ८।१०७; सुन्दरीपटल (तन्त्रकौमुदी, पृ० १०५); कालीपटल (तन्त्रकौमुदी, पृ० १५८); निर्वाणतन्त्र ११।८-९ (तन्त्रसंग्रह २, पृ० ३१);—फेत्कारिणीतन्त्र १०।३८,४२ (तन्त्रसंग्रह, २ पृ० २२४-५); नारद पुराण पृ० ८५।२६,२९।

२. लिङ्ग पु० ४०।३२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपना कर वे साध्वी स्त्रियों को भी दूषित करते हैं।[१] गृहकार्यों में सहयोग देने के बहाने घर में उपपति रहा करते हैं और प्रायः सभी वर्णों के जार घर में आते रहते हैं।[२] इस युग में चारों वर्णों के लोग कन्याविक्रयी हो जाते हैं तथा माता, पत्नी, पुत्रवधू, पुत्री एवं भगिनी के जार से उपार्जित धन से जीविका चलाते हैं।[३] नैतिक पतन की पराकाष्ठा के ऐसे वर्णन कलियुग के विषय में भविष्यवाणी के रूप में प्राप्त होते हैं। पुराणों में प्राचीन युगों की अपेक्षा कलियुग विषयक भविष्यवाणियों में (भविष्यत् काल में) ही दुराचार के अधिक बढने की बातें इस तथ्य की सूचक हैं कि प्राचीन समाज में नैतिकता और चारित्रिक शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

३. कन्यागमन—

यद्यपि किसी कन्या[४] (=कुमारी) के साथ विवाह-सूत्र में बँधे विना यौन-सम्बन्ध करना सदैव गर्हित और पापपूर्ण माना गया है, किन्तु कई बार कामान्ध पुरुषों के द्वारा कन्याओं को भी दूषित किया गया है। ऋग्वेद की कुछ उपमाओं से ऐसा आभास होता है कि उस काल में कुछ प्राप्त-यौवना कन्याओं के साथ उनके प्रेमी कभी-कभी अनैतिक सम्बन्ध कर लेते थे। एक उपमा में एक युवक के अपने मित्र की बहिन (जो सम्भवतः कुमारी रही होगी) के पास जाने (क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम्।—ऋ० ६।६६।२२) का उल्लेख है, किन्तु इससे यौनाचार की कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती। ऋग्वेद १।६६।४ में अग्नि को कन्याओं का जार कहा गया है। यास्क (नि० १०।२१) के अनुसार यहाँ अग्नि को कन्या का 'जरयिता' (अर्थात् यौवन को प्राप्त कराने वाला) होने के कारण ही जार कहा गया है। स्कन्दस्वामी के अनुसार ऋग्वेद के उक्त प्रसंग में अग्नि-साक्षित्व में विवाह निष्पन्न होने के कारण तथा सायण एवं मुद्गल के अनुसार अग्नि में लाजादि होम के अनन्तर कन्यात्व की निवृत्ति (अर्थात् पत्नीत्व की प्राप्ति) होने से ही अग्नि को कन्या का जार कहा गया है। अतः प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में ऐसे प्रसंगों से कन्या के साथ किसी पुरुष के अवैध सम्बन्ध का बोध नहीं होता। स्कन्दस्वामी ने ऋ० १।११७।१८ (में 'जारः कनीन इव') के भाष्य में स्वीकार किया है कि कन्या का जार हो ही नहीं सकता। उसका पति ही नहीं है तो पति का प्रतियोगी जार (अर्थात् उपपति) कहाँ से हो सकता है?[५] किन्तु यह तर्क ग्राह्य नहीं हो सकता, क्योंकि ऋग्वेद के एक स्थल में कन्या एवं उसके जार के सम्बन्ध की स्पष्ट प्रतीति होती है।[६]

---

१. नारदपू० ४१।३८। २. स्कन्द २।७।२४।४७। ३. ब्रह्मवै० २।७।४१-२; देवीभाग० ६।८।४०। ४. अप्राप्तमैथुनास्त्री कन्योच्यते। मेधा०(मनु ८।२१६)।

५. द्र०—कनीनशब्दोऽत्र न कन्यावचनः, कन्याया जारत्वासम्भवात्। न च स कन्यायाः सम्भवति, भर्तुरभावात्।

६. द्र०—प्रयन्तमित् परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ऋ०१।१५२।४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने किसी व्यक्ति का नाम माना है,[१] किन्तु वैदिक इण्डेक्स[२] के लेखकों एवं डा० सूर्यकान्त[३] ने सायण की यह मान्यता असंगत बतलाते हुए त्सिमर (Zimmer) से सहमत होकर इसका अर्थ कुमारी का परित्यक्त शिशु किया है। त्सिमर ने ऋग्वेद १।११२।८; २।१३।१२; २।१५।७ में प्रयुक्त 'परावृक्' या 'परावृज्' का भी यही अर्थ ग्रहण किया है, जिसे ओल्डनबर्ग एवं वैदिक इण्डेक्स के लेखकों सहित डा० सूर्यकान्त ने भी स्वीकार किया है।[४] अग्रू के पुत्र-त्याग विषयक यह अर्थ भारतीय स्रोतों से नहीं प्राप्त होता। पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके दृष्टिकोण से सहमत भारतीय विद्वानों के द्वारा ऐसे अर्थ की कल्पना की गयी है। चूँकि वैदिक काल में कन्याओं का विवाह युवावस्था में होता था तथा विवाह के पूर्व वे 'समनों' में जाती थीं,[५] जहाँ वे युवकों के सम्पर्क में आती थीं। अतः कदाचित् दुर्दान्त वासना के आवेश में युवा मित्र के साथ शारीरिक संसर्ग हो बैठने पर परिणामतः गर्भवती हो सकती थी। वाजसनेयिसंहिता एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण में कुमारी पुत्र[६] तथा अथर्ववेद में कानीन[७] के उल्लेख को देखते हुए प्रमाण-सादृश्यवशात् उपर्युक्त आधुनिक विद्वानों ने रहसू एवं प्रसव-त्याग करने वाली अग्रू का विवाहिता अथवा विधवा अर्थ करने की अपेक्षा कुमारी-कन्या अर्थ निश्चित किया है। ऋग्वेद में कुमारी के पुत्र के त्याग, रहसू के अवगोपन तथा वाजसनेयि संहिता में कुमारी पुत्र की पुरुषमेध के बलि-पशुओं में गणना[८] से यह प्रकट होता है कि उद्भ्रान्त चित्त वाले युवक-युवती यदि पथ-भ्रष्ट होकर प्रच्छन्न रूप से अवैधानिक संसर्ग कर भी बैठते थे तो परिणामतः गर्भवती होने पर युवती कन्या सामाजिक अप्रतिष्ठा के भय से गर्भपात अथवा नवजात शिशु का त्याग कर देती थी। यद्यपि अथर्ववेद (५।५।८) में कानीन पुत्र के उल्लेख से विदित होता है कि अवैध सन्तान के त्याग की निष्ठुर प्रथा सर्वत्र प्रचलित नहीं थी तथा कालान्तर में उसके प्रति समाज में उदार दृष्टिकोण बन चुका था। व्यास एवं कर्ण जैसे कानीन पुत्रों को समाज में आदर मिला। कानीन के उदाहरण रूप में इन्हीं का नाम लिया गया है।[९] धर्मशास्त्रों में कानीन को द्वादशविध पुत्रों में स्थान दिया

१. देखिए पीछे, पृ० २२० टि० ७ (ख)। २. वैदिक इण्डेक्स १, पृ० ४९२।
३. वैदिककोश, पृ० २६६, कालम १।
४. द्र०—वैदिक इण्डेक्स, पृ० ४९३; वैदिककोश, पृ० २६९, कालम १।
५. समग्रु वो न समनेष्वञ्जन्। ऋ० ७।२।५।
६. वाज० सं० ३०।६; तै० ब्रा० ३।४।२।१।
७. अथर्व० ५।५।८ (यहाँ कानीन शब्द का प्रयोग औषधि विशेष के प्रसंग में है)।
८. द्र०—ऊपर टिप्पणी ६।
९. द्र०-अष्टाध्यायी ४।१।११६ पर काशिकावृत्ति।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

निजी मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों से ग्रस्त दृष्टि से उसे देख रहा है। उपर्युक्त प्रसंगों में यास्क स्पष्टतः पुत्रिका-धर्म की प्रथा का संकेत देख रहे हैं।[१] पुत्रिका के प्रसंग में गेल्डनर प्रभृति पाश्चात्य लेखकों के मत को उद्धृत करते हुए वैदिक इण्डेक्स के लेखकों ने ऋग्वेद के उपर्युक्त उद्धरणों को अनिश्चित अर्थ वाला बतलाते हुए कहा है कि सम्भवतः ये पुत्रिकाधर्म की प्रथा की ओर कुछ भी संकेत नहीं करते।[२] उनकी यह धारणा उचित नहीं लगती, क्योंकि एक तो जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि यास्क जैसे भारतीय आचार्य उपर्युक्त स्थलों में पुत्रिकाधर्म का संकेत बतलाते हैं, दूसरे अन्यत्र भी ऋग्वेद (३।३१।१) में पुत्रिकाधर्म की प्रथा का स्पष्ट संकेत है।[३]

ऋग्वेद (२।२९।१) में 'रहसू' के पाप कर्म के गोपन का संकेत (आरे मत्कर्त रहसूरिवागः) है। सायण के अनुसार 'रहसू' का अर्थ है व्यभिचारिणी, जो गुप्त रूप से प्रसव या गर्भपात कराके दूर फेंक आती है।[४] ऐसा आचरण चिर-प्रोषितपतिका, विधवा या कुमारी ही कर सकती है। ऋग्वेद में इन्द्र के द्वारा अग्रू के परित्यक्त पुत्र का वल्मीक (दीमक के टीले) से उद्धार[५] तथा उसे उक्थों (स्तोत्रों) का भागी बनाने[६] का उल्लेख है। यास्क ने निरुक्त (३।२०) में अग्रू-विषयक कोई चर्चा नहीं की है। सायण के अनुसार अग्रू एक नारी का नाम है।[७] वेंकटमाधव इसे किसी पुरुष का नाम मानते हैं[८] मेकडॉनल, कीथ, विल्सन, ग्रिफिथ, लुडविग् आदि पाश्चात्य एवं प्रोफेसर काणे तथा अल्टेकर प्रभृति भारतीय विद्वानों के अनुसार अग्रू शब्द का अर्थ है अविवाहित कन्या।[९] ऋग्वेद (४।३०।१६) में 'परावृक्त' शब्द को यद्यपि सायण

---

१. (क)-अभ्रातृकेव पुंसः पितॄनेत्यभिमुखी सन्तानकर्मणे पिण्डदानाय न पतिम्। निरुक्त ३।५।

(ख)-अभ्रातृका इव योषास्तिष्ठन्ति सन्तानकर्मणे पिण्डदानाय हतवर्त्मानः। इत्यभ्रातृकाया अनीर्वाह औपमिकः। निरुक्त ३।४।

२. वैदिक इण्डेक्स, १, पृ० ५३७। ३. द्र०—पीछे, पृ० १९२।

४. रहस्यन्यैरज्ञातप्रदेशे सूयत इति रहसूर्व्यभिचारिणी। सा यथा गर्भं पातयित्वा दूरदेशे परित्यजति तद्वत्। सायण (ऋ० २।२९।१)।

५. वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ। ऋ० ४।१९।९।

६. उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं....। ऋ० ४।३०।१६।

७. (क)-अग्रू नाम काचित्। तस्याः पुत्रम्। सायण (ऋ० ४।१९।९)।

(ख)-अग्रुवः एतन्नाम्न्याः पुत्रं परावृक्तम् एतन्नामकम्। सायण (ऋ० ४।३०।१६)।

८. अग्रुनाम्नः कस्यचित् पुत्रम्। वेंकट० (ऋ० ४।१९।९)।

९. द्र०—वैदिक इण्डेक्स १, पृ० ३९६, वैदिककोश, पृ० ७, कालम १ तथा पृ० २१७, कालम १; धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० २९३; द पोजीशन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० ५०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने किसी व्यक्ति का नाम माना है,[1] किन्तु वैदिक इण्डेक्स[2] के लेखकों एवं डा० सूर्यकान्त[3] ने सायण की यह मान्यता असंगत बतलाते हुए त्सिमर (Zimmer) से सहमत होकर इसका अर्थ कुमारी का परित्यक्त शिशु किया है। त्सिमर ने ऋग्वेद १।११२।८; २।१३।१२; २।१५।७ में प्रयुक्त 'परावृक्' या 'परावृज्' का भी यही अर्थ ग्रहण किया है, जिसे ओल्डनबर्ग एवं वैदिक इण्डेक्स के लेखकों सहित डा० सूर्यकान्त ने भी स्वीकार किया है।[4] अग्रू के पुत्र-त्याग विषयक यह अर्थ भारतीय स्रोतों से नहीं प्राप्त होता। पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके दृष्टिकोण से सहमत भारतीय विद्वानों के द्वारा ऐसे अर्थ की कल्पना की गयी है। चूँकि वैदिक काल में कन्याओं का विवाह युवावस्था में होता था तथा विवाह के पूर्व वे 'समनों' में जाती थीं,[5] जहाँ वे युवकों के सम्पर्क में आती थी। अतः कदाचित् दुर्दान्त वासना के आवेश में युवा मित्र के साथ शारीरिक संसर्ग हो बैठने पर परिणामतः गर्भवती हो सकती थी। वाजसनेयिसंहिता एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण में कुमारी पुत्र[6] तथा अथर्ववेद में कानीन[7] के उल्लेख को देखते हुए प्रमाण-सादृश्यवशात् उपर्युक्त आधुनिक विद्वानों ने रहसू एवं प्रसव-त्याग करने वाली अग्रू का विवाहिता अथवा विधवा अर्थ करने की अपेक्षा कुमारी-कन्या अर्थ निश्चित किया है। ऋग्वेद में कुमारी के पुत्र के त्याग, रहसू के अवगोपन तथा वाजसनेयि संहिता में कुमारी पुत्र की पुरुषमेध के बलि-पशुओं में गणना[8] से यह प्रकट होता है कि उद्भ्रान्त चित्त वाले युवक-युवती यदि पथ-भ्रष्ट होकर प्रच्छन्न रूप से अवैधानिक संसर्ग कर भी बैठते थे तो परिणामतः गर्भवती होने पर युवती कन्या सामाजिक अप्रतिष्ठा के भय से गर्भपात अथवा नवजात शिशु का त्याग कर देती थी। यद्यपि अथर्ववेद (५।५।८) में कानीन पुत्र के उल्लेख से विदित होता है कि अवैध सन्तान के त्याग की निष्ठुर प्रथा सर्वत्र प्रचलित नहीं थी तथा कालान्तर में उसके प्रति समाज में उदार दृष्टिकोण बन चुका था। व्यास एवं कर्ण जैसे कानीन पुत्रों को समाज में आदर मिला। कानीन के उदाहरण रूप में इन्हीं का नाम लिया गया है।[9] धर्मशास्त्रों में कानीन को द्वादशविध पुत्रों में स्थान दिया

१. देखिए पीछे, पृ० २२० टि० ७ (ख)। २. वैदिक इण्डेक्स १, पृ० ४९२।
३. वैदिककोश, पृ० २६६, कालम १।
४. द्र०—वैदिक इण्डेक्स, पृ० ४९३; वैदिककोश, पृ० २६९, कालम १।
५. समग्रुवो न समनेष्वञ्जन्। ऋ० ७।२।५।
६. वाज० सं० ३०।६; तै० ब्रा० ३।४।२।१।
७. अथर्व० ५।५।८ (यहाँ कानीन शब्द का प्रयोग औषधि विशेष के प्रसंग में है)।
८. द्र०—ऊपर टिप्पणी ६।
९. द्र०-अष्टाध्यायी ४।१।११६ पर काशिकावृत्ति।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गया।[1] वसिष्ठ (ध० सू० १७।२२-३) तथा याज्ञवल्क्य (स्मृ० २।१२६) जैसे आचार्यों ने अविवाहिता एवं अवाग्दत्ता कन्या से पितृगृह में उत्पन्न होने के कारण उसे मातामह का पुत्र बतलाया है। विष्णु ने पितृगृह में असंस्कृता किन्तु वाग्दत्ता कन्या से उत्पन्न होने की स्थिति में उसे पाणिग्रहण करने वाले का पुत्र बतलाया है।[2] गौतम एवं बौधायन ने उसे रिक्थ-भागी नहीं, अपितु केवल गोत्रभागी बतलाया है।[3] परवर्ती धर्मशास्त्रों में द्वादश प्रकार के पुत्रों में उसे उसके पूर्व गिनाये गये पुत्रों के अभाव में दायाधिकारी बतलाया गया है।[4] किन्तु कानीन पुत्र को मान्यता देने का तात्पर्य कन्याओं को नैतिक-शिथिलता की छूट देना कदापि नहीं था। महाभारत की कथा से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन समाज में कुमारी को सन्तान के प्रसव से कलङ्क लगता था। अतः कुन्ती ने कानीन कर्ण के प्रसव को छिपाया था।[5] भारतीय संस्कृति में यह मान्यता रही है कि कुमारियों के सन्तान प्रसव की घटनाएँ बीते युगों में नहीं होती थी, अपितु यहाँ यह कहा गया है कि ऐसी घटनाएँ कलियुग में हुआ करेंगी।[6] महाभारत में कन्या का गर्भधारण अनुचित एवं अधर्मपूर्ण बतलाया गया है।[7] धर्मशास्त्र में कानीन पुत्र की वैधता की स्वीकृति के बावजूद समाज में अविवाहिता स्त्री से उत्पन्न सन्तान को उपेक्षणीय माना जाता था। अनूढा से उत्पन्न पुत्र को श्राद्ध में वर्जित बतलाया गया है।[8] विवाह के पूर्व गर्भधारण करने वाली कन्या से उत्पन्न सन्तान को चाण्डाल कहा गया है।[9] इस तरह के उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कामुक पुरुषों के द्वारा दूषित की गयी कन्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को सामाजिक तथा आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त होने पर भी उसे धार्मिक दृष्टि से हेय माना जाता था। किन्तु दूषित की गयी कन्या के प्रति कैसा व्यवहार किया जाता था, इस विषय में कोई अधिक सूचना नहीं मिलती। सत्यवती एवं कुन्ती को तत्कालीन समाज में यथोचित सम्मान मिला। दण्डी की अवन्तिसुन्दरी (पृ० १७६) में प्रदत्त एक उपकथा के अनुसार अग्निहोत्र की अग्नि की परिचर्या करने वाली कात्यायनी नामक एक कन्या को उस अग्नि के द्वारा अन्तर्वत्नी (आपन्नसत्त्वा) बनाये जाने पर उसके पिता ने त्याग दिया था। किन्तु ऐसी कन्या को त्यागने का नृशंस विधान धर्मशास्त्रों में नहीं मिलता।

---

१. बौ० ध० सू० २।२।३।२४ वसिष्ठ १७।२१ मनु ६।१६० विष्णु स्मृ० १५।१०।
२. पितृगृहे असंस्कृतयैवोत्पादितः। स च पाणिग्राहस्य। विष्णुस्मृति १५।११-२।
३. गौ० ध० सू० ३।१०।३१; बौ० ध० सू० २।२।३।३२।
४. द्र०—याज्ञ० २।१३२। ५. आदिपर्व १११।२२; वनपर्व अ० ३०८।
६. कुमार्यश्च प्रसूयन्ते तस्मिन् कलियुगे सदा॥ परा० स्मृति १।३२।
७. जानती चाप्यकर्तव्यं कन्याया गर्भधारणम्। वनपर्व ३०८।८।
८. विष्णुस्मृति ८२।४ ६. औशनसस्मृति १।६-१०; नारदपु० उ० १३।२-३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राचीनकाल में काम-कलुषित पुरुष ही चञ्चल स्वभाव और सरल हृदय की कुमारियों को दूषित करने का अपराध करता था। अन्यथा भारतवर्ष में कन्याओं का चरित्र सदा उज्ज्वल रहा है। अपने नैतिक बल पर ही वैदिक युगीन कुमारियाँ निःशंक होकर 'समनों' में जाती थी (समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् । ऋ० ७।२।५), युवकों से बेखटके मिलती थी, किन्तु अपने ऊपर अपने अभिभावकों के विश्वास का हनन नहीं करती थी। ऋग्वेद (१०।१५९।३) में शची के द्वारा अपनी पुत्री के विषय में व्यक्त की गयी उदात्त धारणा (अथो मे दुहिता विराट्) उसके चरित्रबल की द्योतक है। वैदिककालीन कन्याओं में तेजस्विता[1] और यशस्विता[2] की झलक का हेतु उनका अवदात चरित्र ही था। अथर्ववेद में यह भाव व्यक्त किया गया है कि कल्याणी कन्या की सर्वसाधारण के समागम के लिए दुर्लभता[3] तथा उसकी विशिष्ट वर के लिए समागम-सुलभता[4] सभी कल्पों में एक समान देखी जाती है। ब्रह्मचर्य के बल पर युवा पुरुष को पति रूप में प्राप्त करना ही वैदिक कालीन कन्याओं का आदर्श रहा है (अथर्व० ११।५।१८)। पौराणिक काल में भी कन्याएँ अपने कौमार्य की रक्षा के प्रति सचेष्ट रहती थी। यद्यपि रामायण (७।८९।४-७) में बुध के प्रस्ताव पर इला ने स्वयं को कामचरी बतलाते हुए आत्मदान किया है, किन्तु उसके मुख से ऐसे शब्दों का प्रयोग महाभारत या पुराणों में नहीं कराया गया है। रामायण (१।३३।१७-८) में सोमदा नामक गन्धर्वी के द्वारा स्वयं को अविवाहिता बतला कर चूली नामक मुनि से पुत्र-याचना तथा उनके द्वारा उसे ब्रह्मदत्त नामक मानस पुत्र दिये जाने की कथा अतिमानवीय स्तर की है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कोई कन्या किसी पुरुष से रतियाचना स्पष्ट शब्दों में नहीं करती थी, अपितु अपनी इस इच्छा को पुत्र-कामना के रूप में व्यक्त करती थी। इसी तथ्य का एक उदाहरण महाभारत एवं पुराणों में शर्मिष्ठा का है। महाभारत आदिपर्व ८२।५-२७ एवं मत्स्यपुराण ३१।६-२७ के अनुसार देवयानी की दासी शर्मिष्ठा को प्रथम ऋतुकाल में यह चिन्ता हुई कि उसने पति का वरण नहीं किया है। तब उसने उद्यान में यदृच्छया प्राप्त ययाति की दानशीलता की प्रशंसा करके उससे पुत्र की याचना की और यह कहा कि सखी का पति भी पति के ही तुल्य होता है।[5] उसके ये वचन शास्त्र-सम्मत अथवा तत्कालीन किसी लोकाचार या देशाचार से प्रमाणित नहीं हैं। चिरकौमार्य की पीडा एवं ऋतुकाल में तीव्र मन्मथवेदना से उद्वेलित चित्त वाली शर्मिष्ठा ने देवयानी को प्रसूता और अपने यौवन को वृथा व्यतीत

१. कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्मां अपि सं सृज। अथर्व० १२।१।२५।
२. यथा यशः कन्यायां `` तेजसा मा समुक्षतु ```समनक्तु मा। अथर्व० १०।२।२०।
३. अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिताः। अथर्व० २०।१२८।८।
४. सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिताः। अथर्व० २०।१२८।९।
५. आदिपर्व ८२।१९; मत्स्य ३१।१९; द्र० आदिपर्व ८३।२१; मत्स्य ३२।२१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होते हुए देख कर चातुर्यपूर्ण वचनों से ययाति को प्रलोभित करके उसके साथ समागम द्वारा पुत्र प्राप्ति का अवसर प्राप्त किया था। सखी के पति को पतितुल्य बतलाते हुए उसके साथ रमण का कोई दूसरा दृष्टान्त नहीं मिलता। अतः ऐसे वचनों को ययाति के साथ शर्मिष्ठा के समागम के औचित्य की सिद्धि हेतु कवि के द्वारा कल्पित भी माना जा सकता है। पुनश्च शर्मिष्ठा उस समय देवयानी की सखी नहीं, अपितु दासी बन कर रह रही थी। रामायण में कुशनाभ की कन्याओं (बालकाण्ड, अध्याय ३२) तथा कुशध्वज की कन्या वेदवती (उत्तरकाण्ड, अध्याय १७) की कथा से सूचित होता है कि उस काल में कन्याएँ कामुक पुरुषों के प्रणय-प्रस्ताव का दृढता से विरोध करती थी। प्रायः कामुक पुरुष असुरक्षित एवं एकान्त में प्राप्त कन्या को अपनी वासना की शान्ति हेतु नाना प्रलोभन देकर उसके कन्यात्व को दूषित करता रहा है। यद्यपि दुष्यन्त जैसे प्रणय-चाटुकार पुरुष के प्रति पूर्वानुराग से कामोन्मत्त होकर आत्मदान करने वाली शकुन्तला जैसी भी कुछ कन्याएँ समाज में हो सकती थी, किन्तु साधारणतया अनेक कन्याएं ऐसे पुरुष से यह कह कर बच निकलती थी कि वे पितृ-पराधीन एवं अस्वतन्त्र हैं। (द्र०-पीछे पृ० १०४ टि० ७) अपने कन्यात्व के दूषित होने तथा अनिश्चित भविष्य की भी वे चर्चा करती थी। महाभारत (आदिपर्व ६३।७५-८) में सत्यवती ने पराशर मुनि से कहा है कि मैं पिता के आधीन हूँ। आपके साथ समागम से मेरा कन्यात्व दूषित हो जायेगा। तब मैं कैसे अपने घर लौटूँगी तथा कैसे जीवित रहूँगी ?किन्तु प्रभावशाली मुनि ने उसे यह कह कर आश्वस्त कर लिया था कि उन्हें सन्तुष्ट कर देने पर भी वह कन्या ही बनी रहेगी। सत्यवती की ही भाँति कुन्ती ने भी असामान्य स्थिति में ही सूर्य को आत्मदान किया था। दुर्वासा द्वारा प्रदत्त 'देवहूति' विद्या के परीक्षण रूप में कुन्ती ने भगवान् सूर्य का आवाहन किया तो वे तत्क्षण वहाँ आ पहुँचे और उसे समागम हेतु प्रेरित करने लगे (आदिपर्व ११०।८-१४; वनपर्व ३०६।१-१५)। ऐसा न करने पर उन्होंने उसे, उसके पिता तथा मन्त्रदाता गुरु को भी शाप देने का भय दिखाया (वनपर्व ३०६।१६-८)। कुन्ती किसी साधारण कन्या की तरह सरलतया आत्मदान के लिए उद्यत नहीं हुई। उसने अपने कन्यात्व तथा पितृ-बान्धवों की प्रतिष्ठा के नष्ट होने के भय एवं लज्जावश भी समागम की अनिच्छा व्यक्त की थी (आदिपर्व ११०। १५-६)। उसने कहा था कि माता, पिता, गुरु एवं कन्यादान में सक्षम अन्य बन्धुओं के होते हुए मैं आत्मदान करके धर्म का लोप नहीं कर सकती। अपनी देह की रक्षा करना ही स्त्रियों का व्रत है (वनपर्व ३०६।२३; द्र० वही ३०७।८)। उसने यह भी कहा कि आपके साथ विधि-विधान रहित समागम से मेरे कुल की उज्ज्वल कीर्ति नष्ट हो जायेगी (वनपर्व ३०७।९)। इस पर सूर्य ने उसे माता-पिता अथवा गुरु के नियन्त्रण से मुक्त बतलाते हुए कहा कि कन्या शब्द कामनार्थक 'कम्' धातु से निष्पन्न

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। कन्या सभी कामोपभोगों की इच्छा कर सकती है और [अपनी काम-तुष्टि के लिए ?] स्वतन्त्र है (वनपर्व ३०७।१२-३)। उन्होंने यह भी कहा कि लोक में सभी स्त्री-पुरुष अनावृत (स्वच्छन्द) हैं। यही लोक का स्वभाव है। इससे भिन्न (अनुशासनबद्ध या मर्यादित) आचरण तो विकार है (वनपर्व ३०७।१५; द्र० पीछे पृ० १० टि० २)। ये वचन नैतिक आदर्श एवं सामाजिक मर्यादा के प्रतिकूल हैं और सूर्य के मुख से मात्र कुन्ती को प्रलोभित करने के लिए ही कहलाये गये हैं। कन्यात्व के दूषित होने के कुन्ती के भय को दूर करने के ध्येय से सूर्य ने यह भी कहा था कि मेरी कृपा से तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा (आदिपर्व ११०।१७) और तुम पुनः कन्या बन जाओगी (वनपर्व ३०७।१६)। कुन्ती को इस प्रकार आश्वस्त करके ही सूर्य ने उसके साथ समागम किया था (आदिपर्व ११०।१८)। किन्तु वनपर्व ३०७।२३-८ के अनुसार सूर्य ने कुन्ती के साथ यौन-सम्बन्ध नहीं किया था, अपितु केवल उसकी नाभि का स्पर्श किया था तथा योगशक्ति से उसे आपन्नसत्त्वा (सगर्भा) बनाया था। कुन्ती के साथ सूर्य के समागम की यह कथा अतिमानवीय स्तर की है, किन्तु यहाँ कुन्ती ने लगभग वही विचार व्यक्त किये हैं, जो ऐसी विषम परिस्थिति में फँसी हुई प्रत्येक सच्चरित्र कन्या व्यक्त कर सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी कन्या शील-दूषण के लिए सरलता से तत्पर नहीं होती थी। उसकी विवशता का लाभ उठा कर एवं नाना प्रलोभन देकर कामोन्मत्त पुरुष ही उसे दूषित करता था।

प्राचीन मनीषियों ने किसी कन्या के साथ विवाह किये बिना यौन-सम्बन्ध की अनुमति किसी को भी नहीं दी थी। गौतम धर्मसूत्र १।६।२१ में कामभावना से किसी कन्या का आलिङ्गन तक वर्जित बतलाया गया है। महाभारत (अनु० पर्व १०४।१०७, तु०—रतिरहस्य १३।७) में कन्यागमन वर्जित बतलाया गया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।६।१३।३) तथा दण्डीकृत दशकुमारचरित (उ० पी०, उ० ४, पृ० ६१) में भी कन्यागमन में दोष बतलाया गया है। हरदत्त (आप० ध० सू० २।६।१३।३ की टीका उज्ज्वला) के अनुसार यह दोष मैथुन से दूषित कन्या तथा उसको दूषित करने वाले पुरुष दोनों को लगता है। महाभारत शान्तिपर्व १६५।४२-३ के अनुसार स्वेच्छया मैथुन से दूषित होने वाली कन्या ब्रह्महत्या का तीन चौथाई भाग प्राप्त करती है तथा उसका शेष एक चौथाई भाग उसे दूषित करने वाला पुरुष प्राप्त करता है। कोक्कोक (रतिरहस्य १३।५) के अनुसार कन्यागमन करने वाला सदा सूतकी (अशुचि) रहता है और प्रतिदिन ब्रह्महत्या प्राप्त करता है। धर्मशास्त्रों में कन्यागमन को उपपातकों में गिनाया गया है।[1] पुराणों के अनुसार ऐसा दुराचरण करने वाले पापी पुरुष नरक में यातना पाते हैं।[2]

१. बौधा० ध० सू० २।१।२।४-५; मनु ११।६१; याज्ञ० ३।२३८; वृद्धहारीतस्मृ० ६।१६४; अग्नि १६८।३१; पद्म २।६७।६८।

२. गरुड उ० ३५।१८; पद्म २।९६।१२; भविष्य १।१६१।२; स्कन्द ६।२६।५३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कन्या-दूषण एक दण्डनीय एवं अक्षम्य अपराध था। सर्वप्रथम तो कन्या के बान्धव ही उसे दूषित करने वाले पुरुष को दण्डित करते थे। रामायण से विदित होता है कि अरजा को दूषित करने वाला राजा दण्डक अपनी समस्त प्रजा एवं समस्त राज्य सहित शुक्राचार्य के शाप से सप्ताहव्यापी पांसु-वर्षा से नष्ट हो गया था।[1] हरिवंश पर्व २।११६।८१ में उषा को धर्षित करने वाले अनिरुद्ध के विषय में बाणासुर के वचनों से स्पष्ट होता है कि कन्या का दूषण उसके कुल की प्रतिष्ठा के लिए आघात-जनक माना जाता था। श्रीमद्भागवत १०।६२।२८ में भी कन्यादूषण को 'कुलदूषण' (कुल को दूषित करने का अपराध) कहा गया है। शिवपुराण २।५।५३।४ में बाण ने कहा है कि अनिरुद्ध ने हमारी कन्या को दूषित करके हमारे कुल के चरित्र को दूषित किया है, अतः इसका शस्त्रों से वध कर दो। राजा त्रय्यारुणि ने अपने पुत्र सत्यव्रत को किसी पुरवासी की कन्या का अपहरण करने के अपराध में पुर से निर्वासित कर चाण्डालों के साथ निवास का आदेश दिया था (शिव ५।३७।४६-५१)। धर्मशास्त्रों में कन्यागमन के लिए अपराधी की पात्रता तथा अपराध की प्रकृति के अनुसार सर्वस्व-हरण, अङ्गछेदन अथवा वधदण्ड तक का विधान किया गया है।[2] पुराणों में कन्या-गामी के सामाजिक बहिष्कार की भावना विविध प्रकार से व्यक्त की गयी है। ब्रह्माण्डपुराण (४।८।१६) में एक मास तक कन्यागमन करने वाले को शूद्रतुल्य एवं सर्वकर्मबहिष्कृत बतलाया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण (२।५२।२५-४३) में कन्यागमन करने वाले को चाण्डालतुल्य एवं अस्पृश्य बतलाया गया है। इस प्रकार प्राचीन साहित्य में जहाँ कुमारीगमन के कुछ गिने चुने उदाहरण हैं, वहीं ऐसी कुत्सित चेष्टा के नियन्त्रण हेतु किये जाने वाले प्रयासों की भी चर्चा है। प्राचीन समाजशास्त्रियों की इन मर्यादावादी भावनाओं का सामाजिक चरित्र के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

४. वेश्यागमन—

दाम्पत्य मर्यादा के बाहर कामाग्नि की शान्ति के लिए वेश्यागमन की प्रवृत्ति का अस्तित्व वैदिक काल में भी बतलाया जाता है। जैसा कि पीछे (पृ० ७-८, ५१-२ में) कहा जा चुका है—दिव्य-सृष्टि की अप्सराएँ उन्मुक्त यौन-सम्बन्ध वाली थी। यद्यपि वेदों में अप्सराओं को देवपत्नी (अथर्व० ६।११८।३) तथा गन्धर्वपत्नी (ऋ० १०।११।२; अथर्व० २।२।५; ४।३७।१२; १४।२।३४) भी कहा गया है, किन्तु ऋग्वेद से ही अप्सराओं के साथ मनुष्यों के भी यौन-सम्बन्ध की सूचना मिलती है (द्र०-यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक् (ऋ० १०।९५।९)। ऋग्वेद ६।७८।३ की व्याख्या में सायण

१. रामा० ७।८१।७-१०: द्र० अर्थ० १।६।५: बुद्धचरित ११।३१।

२. द्र०-कृत्यकल्पतरु, व्य०का० पृ० ५९५-७; विवादरत्नाकर, ४२, पृ० ४०१-४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने अप्सराओं के द्वारा स्वर्गलोक से भूमण्डल में आकर किसी राजा के साथ रमण की कल्पना की है। ऋग्वेद १०।९५ तथा परवर्ती साहित्य में पुरूरवा और उर्वशी[1] एवं अन्य अप्सराओं की कथाएँ (द्र० पीछे पृ० ५२) इस तथ्य की द्योतक हैं कि उनका किसी पुरुष के साथ कभी भी एकनिष्ठ-सम्बन्ध नहीं होता था। अथर्ववेद में काम का अप्सराओं के साथ विशेष सम्बन्ध बतलाया गया है (अप्सरसामयं स्मरः। अथर्व० ६।१३०।१)। ऐसा लगता है कि वे सदा भोग-विलास में मग्न रहती थी (अप्सरसः सधमादं मदन्ति''' अथर्व० ७।११४।३)। एक स्थल पर अप्सरा को आनन्दित—प्रमोदित करने वाली कहा गया है (आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां''''अथर्व० ४।३८।४)। संभवतः अप्सराओं के आनन्द-प्रमोद का साधन होने के कारण ही परवर्ती साहित्य में देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, अनेक ऋषि-मुनियों और राजाओं के साथ उनके रमण की प्रवृत्ति पायी जाती है (द्र०—पीछे, पृ० ५०, ५२)। महाभारत वनपर्व (४६।४२-३) में उर्वशी ने अर्जुन से कहा है कि हम अप्सराएं उन्मुक्त काम-सम्बन्ध वाली हैं (द्र० पीछे, पृ० ७)। इन्द्र से मेरा सम्बन्ध होने से तुम मुझे गुरुपत्नी मत समझो। पुरुवंश के पुरुषों के साथ ही उनके पुत्र, पौत्रादि भी अपने तपोबल से स्वर्ग में आने पर हमारे साथ रमण करते हैं। अप्सराओं को उनकी इस चारित्रिक प्रवृत्ति के कारण ही स्ववेंश्या (स्वर्गलोक की वेश्या) कहा गया है (द्र० पीछे, पृ० ८, टि० २)। भूलोक की पुंश्चली स्त्रियों को भी उन्हीं के अंश से उत्पन्न बतलाया गया है (द्र०—ब्रह्मवै० १।२४।१२)। रामायण ७।२६।-३४-७ में नलकूबर के पास जाती हुई रम्भा के द्वारा रावण से कहे गये वचनों तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण (१।१०।४५-६) में कामदेव के पास जाती हुई घृताची के द्वारा रति-याचना करने वाले विश्वकर्मा से कहे गये वचनों से विदित होता है कि अप्सराएं जितने समय तक जिसके साथ रहने के लिए अनुबन्धित होती थी उस अवधि में किसी अन्य के साथ शारीरिक संसर्ग नहीं करती थी। यद्यपि अनेक अप्सराएं इन्द्र के निर्देश पर मनुष्यों के साथ संसर्ग करती थी, तथापि अनेकत्र उन्हें स्वेच्छया भी किसी देव, गन्धर्व या मनुष्य के साथ संसर्ग करते हुए देखा गया है। अप्सराओं का उल्लेख स्ववेंश्या के रूप में होने पर भी परवर्ती काल के साहित्य में कहीं भी उन्हें रूपाजीवा गणिका या वेश्या के समान नहीं माना गया है।

वैदिक साहित्य के अनेक उद्धरणों से वेश्यागमन की प्रवृत्ति को सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है। पिशेल एवं गेल्डनर ने ऋग्वेद के कतिपय स्थलों में और विशेषतः उषा के वर्णन प्रसंग में वेश्या-प्रथा के संकेत बतलाये हैं।[2] उनकी अवधारणाओं के समर्थन में प्राचीन भारतीय साहित्य में कोई प्रमाण नहीं मिलता। ऋग्वेद १।९२।४ में उषा की उपमा अपना वक्षःस्थल उघाड़ने वाली 'नृतू' (नर्तकी) से दी गयी है। कामुक

१. शत० ब्रा० ११।५।१।१; मत्स्य २४।२७-३४; विष्णु ४।६।३५-९४।
२. वैदिक इण्डेक्स, १, पृ० ४८१; वैदिककोश, पृ० २६३, कालम १।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुरुषों को आकर्षित करने के लिए रूपाजीवा भी अङ्गप्रदर्शन कर सकती है। संभवतः इसी आधार पर वैदिक इण्डेक्स के लेखकों ने भी 'नृतू' को एक वेश्या मान लिया है। किन्तु उनकी उपस्थापना पूर्णतः सही नहीं है, क्योंकि यह कोई अपरिहार्य नियम नहीं है कि जो स्त्री नर्तकी हो वह वेश्या भी हो। ऋग्वेद १।१६७।४ में मरुतों के 'साधारणी' के साथ सङ्गत होने की उपमा (साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः) में वेश्याप्रथा का संकेत माना गया है,[1] जो कि कुछ अंशों में सही है। यहाँ 'साधारणी' शब्द का प्रयोग परवर्ती बौद्ध साहित्य की भांति यदि गणिका के अर्थ में न भी हो तो भी इससे यह तो सूचित होता ही है कि ऋग्वेद-काल में कोई स्त्री ऐसी भी थी जो कि सर्वसाधारण के लिए गम्या थी। ऋग्वेद १।१०४।५ में एक 'निष्षपी' पुरुष के द्वारा अपना धन नष्ट किये जाने का उल्लेख है। 'निष्षपी' का तात्पर्य यास्क (नि० ५।१६) के अनुसार स्त्रीकामी पुरुष है, तो वेङ्कटमाधव के अनुसार कामचारी पुरुष और सायण एवं मुद्गल के अनुसार यथेष्टचारी दासीपति है। जबकि स्कन्दस्वामी के अनुसार इसका तात्पर्य है वेश्या में आसक्त पुरुष। अतः इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि वैदिक समाज में कोई ऐसा भी पुरुष था, जो किसी स्त्री, वह चाहे कुलटा, पुंश्चली या वेश्या जो भी हो, को धन लुटाता था। ऋग्वेद १।११२।२३ में अश्विनौ के द्वारा ध्वसन्ति और पुरुषन्ति की रक्षा की चर्चा है। स्कन्दस्वामी के अनुसार ये दो वेश्याएं थी, जिनके पास अश्विनौ पहुँचे थे। किन्तु इनका वेश्यात्व जब तक किसी अन्य प्रख्यात प्राचीन स्रोत से भी प्रमाणित नहीं होता तब तक इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। अथर्ववेद (२०।१३६।५-१२) में महानग्नी का वार्तालाप एक निर्लज्ज वेश्या का सा है। ऐतरेय ब्राह्मण (१।२७।१) में महानग्नी को प्रायः वेश्या के पर्याय रूप में वर्णित किया गया है।

वैदिक इण्डेक्स के लेखकों ने प्राचीन ग्रीक में होने वाले मेलों में कन्याओं के अजनबी पुरुषों से सम्पर्क-साधन की स्वच्छन्दता के आधार पर ऋग्वेद ४।५८।८ में 'समनों' में जाने वाली 'योषा' (युवती) (अभि प्रवन्त समनेव योषाः) के उल्लेख का वेश्यापरक अर्थ लगाया है,[2] जो कि नितान्त अनुचित है। उक्त ऋचा में यास्क से लेकर सायण तक किसी भी आचार्य ने ऐसे अर्थ की संभावना नहीं की है। अथर्ववेद ५।७।८ में प्रयुक्त 'नग्ना' (उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम्) का भी वैदिक इण्डेक्स (पृ० ३६६, टि० ४२) में वेश्यापरक अर्थ ग्रहण किया गया है, जब कि यहाँ पर केवल नग्ना स्त्री के किसी सोये हुए पुरुष के पास जाने का बोध होता है और ऐसा आचरण केवल वेश्या ही नहीं, कोई अन्य कामिनी भी कर सकती है। अतः ऐसे संदिग्ध स्रोतों के आधार पर कोई निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा।

---

१. वैदिक इण्डेक्स १, पृ० ३९६, टि० ४३। द्र०-वही, पृ० ४४४।
२. वही, २, पृ० ४२९, टि० १३; वैदिककोश, पृ० ५४५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाजसनेयि संहिता में प्राप्त 'अयोगू' (वाज० सं० ३०।५=तै० ब्रा० ४।४।१।१) तथा "अतिष्कद्वरी', 'अतीत्वरी' एवं 'विजर्जरा' (वाज० सं० ३०।१५) शब्दों का वेश्यापरक अर्थ मानते हुए वैदिक समाज में वेश्यावृत्ति की जो कल्पना की गयी है (वैदिक इण्डेक्स, १, पृ० ३९६) वह कथञ्चिदपि उचित नहीं है। 'अयोगू' का अर्थ वेबर के अनुसार अविनीत स्त्री और त्सिमर के अनुसार भ्रातृहीन कन्या है, जिसके वेश्या बनने का भय रहता है (द्र० वैदिककोश, पृ० २१-२ में 'अयोगू' की टिप्पणी)। ऐसा अर्थ इनकी निजी कल्पना की उपज प्रतीत होता है, इसकी कोई संगति नहीं लगती। महीधरभाष्य (वाज० सं० ३०।५) में 'अयोगू' का अयोगन्ता (अयसो गन्तारम्) अर्थ किया गया है जो कि वेश्यापरक नहीं है। 'अतिष्कद्वरी' का अर्थ महीधर के अनुसार अत्यन्त स्कन्दनशील या अतिस्रवणशील स्त्री है।[1] इसका तात्पर्य अति संभोग कराने वाली स्त्री से लगाया जा सकता है। ऐसी प्रकृति वेश्या की ही नहीं, व्यभिचारिणी अथवा अपने पति के साथ अत्यन्त संभोगेच्छु स्त्री की भी हो सकती है। अतः इस शब्द के आधार पर भी इन विद्वानों के मत की पुष्टि नहीं होती। 'अतीत्वरी' का अर्थ महीधरभाष्य (वाज० सं० ३०।१५) के अनुसार अत्यन्त कुलटा स्त्री है। अमरकोश में भी इसे असती और कुलटा स्त्री के पर्याय रूप में गिनाया गया है।[2] अतः इसका अर्थ भी रूपाजीवा वेश्या नहीं हो सकता। 'विजर्जरा' का अर्थ है जराजीर्ण होने से शिथिल शरीर वाली (वाज० सं० ३०।१५ पर महीधर भाष्य) या विगलित यौवना स्त्री। यह आवश्यक नहीं कि यह शब्द वृद्धवेश्या का ही बोधक हो, प्रसंगतः इसका अर्थ बहुपुरुष संभुक्ता स्त्री भी हो सकता है। अतः ऐसे संदिग्ध अर्थ वाले शब्दों के आधार पर वेश्याप्रथा की कल्पना उचित नहीं है।

यह उल्लेखनीय है कि संदिग्ध स्रोतों के आधार पर वेश्याप्रथा की कल्पना विषयक पिशेल एवं गेल्डनर प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों के अतिवादी दृष्टिकोण को विन्तरनित्ज्, जॉली तथा वैदिक इण्डेक्स के लेखक अप्रामाणिक बतला चुके हैं।[3] कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने 'पुंश्चली' शब्द का वेश्या अर्थ किया है,[4] जो कि भ्रमपूर्ण है। वाजसनेयि संहिता में पुंश्चलू (=पुंश्चली) की पुरुषमेध के बलि-पशुओं में गणना से सूचित होता है कि उसके प्रति सामाजिक धारणा अच्छी नहीं थी। वहां 'कामाय पुंश्चलूम्' (वाज० सं० ३०।५) एवं 'नर्माय पुंश्चलूम्' (वाज० सं० ३०।२०) के प्रयोगों में पुंश्चलू स्त्री की कामपरायणता तथा परिहासशीलता का बोध होता है। यदि कोई भाष्यकार पुंश्चली का चाहे वेश्या अर्थ करता है तो भी उसका तात्पर्य व्यावसायिक वेश्या नहीं,

---

१. अति स्कन्दति स्रवति इत्यतिष्कद्वरी। महीधर (वाज० सं० ३०।१५)।
२. पुंश्चली धर्षिणी बन्धक्यसती कुलटेत्वरी। अमरकोश २।६।१०।
३. वैदिक इण्डेक्स १, पृ० ३९६, टि० ४६। ४. वही, १, पृ० ३९६, टि० ४१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपितु अपनी काम-पिपासा की तृप्ति के लिए अनेक पुरुषों के साथ रमण करने वाली जघनचपला स्त्री ही है।[१] अमरकोश (२।६।१०-११) में इसे स्वैरिणी स्त्री के पर्यायों में गिनाया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण (२।३१।४-५) में ऐसी नारी को पुंश्चली कहा गया है जो चार पुरुषों के साथ समागम कर चुकी हो। पद्मपुराण (२।५०।४५) में पति का त्याग करने वाली नारी को पुंश्चली कहा गया है। महीधर ने पुंश्चलू का अर्थ कहीं व्यभिचारिणी (वाज० सं० ३०।५ में) तथा कहीं दुष्टा स्त्री (वाज० सं० ३०।२० में) बतलाया है। प्रायः ऐसे ही अर्थ में पुंश्चली का प्रयोग परवर्ती साहित्य में पाया जाता है।[२] वैदिक इण्डेक्स (१, पृ० ३९६, टि० ४१) के लेखकों ने अथर्ववेद के पन्द्रहवें काण्ड में प्रयुक्त पुंश्चली शब्द को भी वेश्या-प्रथा के प्रमाण रूप में उद्धृत किया है, किन्तु न तो पुंश्चली शब्द के अर्थ से और न उक्त काण्ड की प्रासंगिक वर्ण्य-वस्तु से ही उनके मत की पुष्टि हो पाती है। वहां पूर्वादिक चारों दिशाओं में भ्रमण करने वाले व्रात्य की पूर्व दिशा में श्रद्धा पुंश्चली, दक्षिण में उषा पुंश्चली, पश्चिम में इरा पुंश्चली एवं उत्तर में विद्युत पुंश्चली सहचरी बनी थी (अथर्व० १५।२।५, १३, १९, २५)। यह प्रसंग विशुद्ध रूप से प्रतीकात्मक है एवं आध्यात्मिक व्याख्या की अपेक्षा रखता है। अतः यहां पर प्रयुक्त पुंश्चली शब्द के आधार पर भी वैदिक समाज में वेश्या-प्रथा के प्रचलन अथवा व्यभिचार की प्रवृत्ति का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

वैदिक इण्डेक्स के लेखकों ने वैदिककाल में वेश्या-प्रथा के प्रचलन के प्रमाण रूप में ऋग्वेद (१।१२४।७; ४।५।५) एवं अथर्ववेद (१।१७।१) से अभ्रातृमती कन्याओं के तीन प्रसंगों तथा ऋग्वेद (२।२९।१) से 'रहसू' (गुप्तरूप से प्रसव करने वाली) को उद्धृत किया है।[३] उनके अनुसार ऋग्वेद (४।१९।९ एवं ४।३०।१६) में 'अग्रूपुत्र' तथा वाजसनेयि संहिता (३०।६ एवं तै० ब्रा० ३।४।२।१) में कुमारी पुत्र के उल्लेख भी वेश्याप्रथा की ओर संकेत करते हैं।[४] किन्तु इनके मन्तव्य के विषय में पूर्वाग्रह-मुक्त और तटस्थ होकर परीक्षा करने की आवश्यकता है। ऐसे प्रसंगों पर गम्भीरता से विचार करने पर इन विद्वानों का मत प्रमाणित नहीं हो पाता।[५] 'रहसू' तथा 'अग्रू के पुत्र त्याग' के उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए वेश्या की अपेक्षा कन्या ही अधिक चिन्तित हो सकती है। अतः ऐसे प्रसंगों के आधार पर

---

१. पुंश्चलूर्जघनचपला। पुंमांसं पुंमांसं (प्रति) चलतीति पुंश्चली वेश्या जघनचपला स्त्री। करकभाष्य (का० श्रौ० सू० १३।३।६)।

२. द्र०—यस्य माता गृहे नास्ति भार्या च पुंश्चली तथा।
अरण्यं तेन गन्तव्यमरण्याद् दुःखदं गृहम्॥ ब्रह्मवै० ४।८४।१०।

३. वैदिक इण्डेक्स १, पृ० ३९५। ४. वही, १, पृ० ३९६।

५. द्र०—पीछे, पृ० २१९-२२०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वैदिक काल में वेश्याप्रथा का संकेत मानना उचित नहीं है। तथापि ऋग्वेद में 'निष्पपी' 'और 'साधारणी' तथा अथर्ववेद के 'महानग्नी' प्रकरण के ऊपर दिये गये विवेचन से लक्षित होता है कि उस काल में भी वेश्यागमन की प्रवृत्ति का सूत्रपात हो चुका था।

पुराणों में वेश्या-प्रथा के उदय विषयक कई धारणाएं प्राप्त होती हैं। विज्ञानेश्वर (याज्ञ० २।२९० पर मिता०) के अनुसार स्कन्दपुराण में वेश्या जाति की उत्पत्ति पञ्चचूडा नामक अप्सरा से कल्पित की गयी है। मत्स्यपुराण (७०।२६-८) के अनुसार देवासुर युद्ध में मारे गये असुरों की स्त्रियों को इन्द्र ने वेश्या-धर्म के पालन का निर्देश दिया था। भविष्यपुराण (४।१११।२६ के) अनुसार उनको वेश्याधर्म के पालन का आदेश देते हुए इन्द्र ने कहा था कि उनके पास आने वाला पुरुष सुरूप या कुरूप जैसा भी हो, वे उसके धन से प्रयोजन रखें। उससे धन लेकर रतिदान में व्यतिक्रम कोई वेश्या न करे, अन्यथा वह ब्रह्महत्या को प्राप्त करेगी। इन कथाओं से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि राजाओं के द्वारा विजित राजवंशों की महिलाओं को लाकर अपने राष्ट्र के नागरिकों के लिए साधारणी बनाये जाने की घटना वेश्या-प्रथा के उदय का एक स्रोत रही होगी। प्राचीन काल में युद्ध में विजित राज-परिवारों की अपहृत रमणियों को यदा-कदा वारवनिता के रूप में नियोजित करने की प्रथा प्रचलित थी।[1] किन्तु पुराणों में क्वचित् इस प्रथा के विरोध में भी कुछ वचन प्राप्त होते हैं। अग्निपुराण (२३६।६२-३) में राजा को निर्देश दिया गया है कि वह विजित शत्रु की स्त्रियों की रक्षा करे। वेश्याप्रथा के प्रचलन के कुछ दृष्टान्त बौद्ध-साहित्य में प्राप्त होते हैं। वैशाली में मातापितृविहीन सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या अम्बपाली पर आसक्त होकर उसके साथ विवाह के इच्छुक अनेक राजकुमारों में परस्पर कलह को रोकने के लिए उसे उन सबके लिए गम्या बना दिया गया था। गणराज्य के समस्त राजकुमारों की भोग्या होने के कारण ही उस 'साधारणी' स्त्री को गणिका कहा जाता था। (द्र०—परमत्थदीपनी, थेरी की अट्ठकथा, पृ० २०७)। वैशाली की इस घटना के अनुकरण पर ही राजगृह में सालवती को गणिका बनाया गया था। लिच्छिवियों में भी सर्वसुन्दरी कन्याओं का विवाह नहीं हो पाता था। उन्हें सम्पन्न परिवारों के युवकों के लिए 'साधारणी' बना दिया जाता था (द्र०—बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन, पृ० १४७)। महाकवि कालिदास ने (मेघदूत १।२५ में) विदिशा के समीपवर्ती पहाड़ी की गुफाओं (शिला-वेश्मों) में नागरिकों के द्वारा पण्यस्त्रियों के साथ रतिक्रीडा की चर्चा की है। ये पण्यस्त्रियां व्यावसायिक (रूपाजीवा) वेश्याएं ही कही जा सकती हैं। यद्यपि प्राचीन समाज में वेश्या की अपेक्षा गणिका का स्तर अधिक समृद्ध था, किन्तु मृच्छकटिक

---

१. द्र०—सेक्स लाइफ इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० ९८-९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(१।३१-२) में दोनों शब्दों के समानार्थक प्रयोग से विदित होता है कि व्यावसायिक दृष्टि से दोनों को समान समझा जाता था।

वेश्यागमन की प्रवृत्ति के कुछ न कुछ उदाहरण सभी वर्णों के पुरुषों के मिलते हैं। अपने घर में वेश्या को रख लेने वालों में कोई ब्राह्मण रहा है[१] तो कोई शूद्र।[२] राजतरङ्गिणी (६।७४) के अनुसार कश्मीर के एक ब्राह्मण राजा यशस्कर ने एक वेश्या पर अनुरक्त होकर उसे अपने अन्तःपुर की प्रमुख रानी बना लिया था। क्षेमेन्द्र (कलाविलास ४।३१) के अनुसार भी एक राजा ने एक वेश्या को अन्तःपुर की रानियों में प्रमुख बनाया था। कभी-कभी कोई गणिका किसी पुरुष के प्रेम-पाश में बँधकर उसकी पत्नी अथवा रखैल के रूप में भी उसके घर पर रहने लगती थी, जिसका एक प्रमाण मृच्छकटिक की नायिका गणिका वसन्तसेना है। यद्यपि किसी उत्कृष्ट पद और समृद्धि वाले पुरुष के घर पर कभी कोई वेश्या उसकी वासना शान्त करने हेतु स्वयं पहुँच सकती थी (द्र० समयमातृका ८।११६-१२०), किन्तु सामान्य पुरुष प्रायः वेश्या के घर पर ही जाते थे। स्कन्दपुराण (३।३।२२।५०-५५) में उल्लेख है कि दक्षिणापथ में बाष्कल ग्राम का एक ब्राह्मण नवयौवना पत्नी को छोड़कर भी रात्रि में वेश्या के पास जाता था। नवयौवन के मद में कुछ युवा-विद्यार्थी (ब्रह्मचारी) भी वेश्यालय में जाते थे[३]। समयमातृका (६।६) में एक भिक्षु के वेश्यालय में रात बिताकर प्रातःकाल राजमार्ग को छोड़कर कुमार्ग से मठ की ओर लौटने का उल्लेख है। अपने कुष्ठी पति की इच्छानुसार उसे पीठ में बैठा कर वेश्या के घर ले जाने वाली एक पतिव्रता की कथा अनेक पुराणों में दी गयी है।[४] इस तरह बौद्ध साहित्य के सृजन काल से लेकर प्रायः पूर्व मध्यकाल तक भी समाज के सभी वर्गों में से कुछ न कुछ पुरुष वेश्यागमन करते रहे हैं।

वेश्यागमन यद्यपि सदाचार विरुद्ध था, किन्तु इसे कोई गम्भीर पाप या अपराध नहीं माना जाता था। मनु तथा याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों के द्वारा इसके विषय में कोई विशेष विधान प्रस्तुत नहीं किया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि उनके समय इसकी कोई उत्कट सामाजिक समस्या नहीं थी। वैसे प्राचीन काल में किसी नगर में सम्भवतः एकाध ही वेश्यालय होते थे। सम्भवतः वेश्यागमन करने वाले पुरुषों की संख्या नहीं के समान होने के कारण ही इसे कोई गम्भीर अपराध या पाप नहीं माना जाता था। नारद (स्मृ० स्त्रीपुंस० १२।७८) ने आनुलोम्येन (उत्तम वर्ण के पुरुष के लिए निम्नवर्ण की) वेश्या को गम्य बतलाया है। सम्भवतः यह छूट ब्राह्मणेतर

---

१. स्कन्द २।७।१८।४०। २. नारद उ० १६।६३-७०।

३. स्कन्द ६।१९७।१-६; देशोपदेश ६।१३-६। ४. गरुड पू० १४२।२१-२; पद्म २।५३।८-८४; मार्क० १६।२०-३२; स्क० ५।३।१७१।४०-६०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वर्णों के पुरुषों के लिए थी, क्योंकि ब्राह्मण के लिए वेश्यागमन पर वेश्या को प्रदत्त शुल्क के बराबर अर्थदण्ड विहित किया गया है।[1] अन्य वर्णों के लिए ऐसा दण्ड विहित नहीं था। किन्तु वेश्या के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध संभोग दण्डनीय अपराध माना जाता था। व्यास ने बलात् वेश्यागमन करने वाले के लिए दश पण का अर्थदण्ड विहित किया है।[2] जहाँ तक वेश्यागमन में पाप की कल्पना का प्रश्न है इस विषय में प्राचीन धर्मशास्त्री कोई विशेष चर्चा नहीं करते। किन्तु इस विषय में व्याघ्र ने यह कहा है कि साधारणी स्त्री (गणिका या वेश्या) के साथ संभोग में परस्त्रीगमन, कन्यादूषण या गुरुतल्पगमन जैसा कोई पाप नहीं होता।[3] तथापि पुराणकारों की दृष्टि में वेश्यागमन पापपूर्ण और नरकप्रद था और यह विश्वास किया जाता था कि इसका दुष्परिणाम पुनर्जन्म में भी भोगना पडता है।[4] वेश्यागमन के दोषों के परिप्रेक्ष्य में ही मृच्छकटिक (४।१४) में इसे कुलीन और शीलवान् पुरुष के लिए वर्जनीय बतलाया गया है। शुक्रनीति (३।११४) में इसे राजा के लिए वर्जनीय बतलाया गया है। क्षेमेन्द्र ने अपने देशोपदेश के तृतीय उपदेश, कलाविलास के चतुर्थसर्ग तथा समयमातृका में यत्र तत्र वेश्यागमन के दुष्परिणामों की चर्चा पूर्वक इस बुराई से बचने का उपदेश दिया है।

किसी स्त्री को वेश्या बनने के लिए विवश करने में प्रमुख दोष शेष समाज का और विशेषतः पुरुष वर्ग का ही रहा है। अपनी आजीविका हेतु वेश्यावृत्ति को स्वेच्छया अपनाने वाली स्त्रियाँ सम्भवतः प्राचीन समाज में विरली ही रही होंगी। किन्तु इस वृत्ति को अपना लेने पर वे तथा उनकी स्त्री-सन्तानें व्यभिचार को ही अपना कुलधर्म मानने लगती थी।[5] शुल्क देने वाले पूरुष की सेवा को उनका धर्म (कर्तव्य) बतलाया गया है।[6] पुराणों में कुछ वेश्याओं में यह आदर्श देखा गया है कि किसी पुरुष

---

१. वेश्यागामी द्विजो दण्ड्यो वेश्याशुल्कसमं पणम्। मत्स्य २२७।१४४; विष्णुधर्मो० २।७२।१२६।

२. प्रसह्य वेश्यागमने दण्डो दश पणः स्मृतः। (कृत्यकल्पतरु, व्य०का०, पृ०५९९)।

३. जात्युक्तं पारदार्यं च कन्यादूषणमेव च।
साधारणस्त्रियां नास्ति गुरुतल्पत्वमेव च॥
याज्ञ० ३।२६० एवं गौ० ध० सू० ३।५।११ की मिता० एवं परा० मा०, प्रा० का०, पृ० २६३ में व्याघ्र के नाम से उद्धृत।

४. द्र०—वेश्यादिरक्तो मूढात्मा खल्वाटो जायते नरः। स्कन्द १।२।५१।१९।

५. वयं तु स्वैरचारिण्यो वेश्यास्तु न पतिव्रताः।
अस्मत् कुलोचितो धर्मो व्यभिचारो न संशयः॥
शिव० ३।२६।२१; स्कन्द ३।३।२०।४८।

६. मत्स्य ७०।३०; भविष्य ४।१११।२६; रुद्रटकृत काव्यलङ्कार १२।३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के साथ एक विशेष अवधि के लिए अनुबन्धित होने पर वे किसी भी स्थिति में उसे नहीं छोड़ती थी। शिवपुराण (३।२६।२२-५१) एवं स्कन्दपुराण (३।३।२०।४६-७४) में उल्लेख है कि महानन्दा नामक वेश्या तीन दिन के लिए एक वणिक् की अङ्कशायिनी बनी थी, किन्तु इसी अन्तराल में उस वणिक् की मृत्यु हो जाने की स्थिति में वह उसके साथ अग्नि-प्रवेश के लिए उद्यत हो गयी थी। जैनग्रन्थ विवागसुयं (१।६।६८) से भी यह सूचित होता है कि रखैल की तरह रखी हुई गणिका से भी यह आशा की जाती थी कि वह परपुरुष से सम्बन्ध न करे। वात्स्यायन ने (कामसूत्र ६।२।१ में) वेश्या के लिए नायक विशेष से संयुक्त होने पर एकचारिणी व्रत का पालन विहित किया है। पद्मपुराण १।६१।६६ में ऐसी पतिव्रतपरायणा वेश्या भी स्वर्ग की अधिकारिणी बतलायी गयी है। विज्ञानेश्वर ने कहा है कि किसी नियत पुरुष के साथ विवाह सूत्र में आबद्ध न होने के कारण वेश्याओं को सजातीय अथवा उत्कृष्ट जाति के पुरुष के साथ रमण में कोई दोष नहीं लगता और ऐसा करने पर वे दण्ड की भी भागी नहीं होती (याज्ञ० २।२९० पर मिता०)। विज्ञानेश्वर के इन वचनों तथा ऊपर पिछले अनुच्छेद में नारद-स्मृति (स्त्रीपुंस० १२।७८) के आनुलोम्येन वेश्यागमन की अनुमति के वचनों से विदित होता है कि वेश्याओं का अस्तित्व वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत ही था और उनके लिए निम्न वर्ण के पुरुष का तथा निम्नवर्णज के लिए उत्तम वर्ण की वेश्या का सेवन धर्मसम्मत नहीं माना जाता था, किन्तु सम्भवतः यह कोई व्यावहारिक नियम नहीं था। मृच्छकटिक के विट की दृष्टि में वेश्या का शरीर ऐसी पण्य वस्तु है जिसका भोग कोई भी पुरुष धन देकर कर सकता है अथवा कोई भी पुरुष उसका ग्राहक बन सकता है (मृच्छ० १।३१-२)। गरुड पुराण (पू० ११४।१२) में गणिका के कठिन जीवन का यथार्थ चित्रण करते हुए कहा गया है कि उसकी निद्रा ग्राहक पुरुष के आधीन रहती है और उसे उसी के इशारे पर चलना पड़ता है। उसे शोक और कष्ट की स्थिति में भी अपने ग्राहक के आगे प्रसन्न मुख और हंसते-खिलखिलाते रहना पड़ता है, उसका शरीर पण पर बिका हुआ है, विट जन उसका गला चांपे रहते हैं तथा अनेक पुरुषों के संसर्ग से ही उसकी वृत्ति चल पाती है। मृच्छकटिकम् (४।१७) में वेश्याओं को अशुचि बतलाया गया है (न वेशजाता शुचयस्तथाङ्गनाः)। पद्मपुराण (१।६१।६८) में बतलाया गया है कि अनेक पुरुषों के साथ संसर्ग के कारण उसे योनिरोग भी हो जाते हैं तथा वह मलिनता एवं दुर्गति को प्राप्त होती है। क्षेमेन्द्र ने समयमातृका (८।१०३) में बतलाया है कि वेश्याओं के लिए वृद्धावस्था में भीख माँगने की स्थिति आ जाती है। समयमातृका (८।१२) में वेश्या के वृद्धावस्था में भिक्षुणी बनने का भी उल्लेख है। वेश्या जीवन के कष्टों के ऐसे वर्णन नारी को व्यभिचार की प्रवृत्ति और अनेकों पुरुषों के संसर्ग की कामना से निवारित करने में प्रेरणाप्रद बनते हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

५. नारीकृत अतिचार—

सामान्यतः पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अपनी चारित्रिक शुद्धि के प्रति अधिक सजग रहती थी। वे यथासम्भव परपुरुष के स्पर्श से भी बचती थी। कामशास्त्र में जिस प्रकार दुराचारी पुरुषों की तुष्टि हेतु परस्त्री-प्राप्ति विषयक उपाय बतलाये गये हैं उस प्रकार कामार्त स्त्रियों के लिए परपुरुष की प्राप्ति के विषय में कोई विशेष निर्देश नहीं हैं। तथापि यदि कुछ कामुक पुरुष समस्त नैतिक सीमाओं का अतिक्रमण करके परायी स्त्रियों के रसिक बन सकते थे तो उन्हीं के समान दैहिक-क्षुधा की वृत्तियों से अभिभूत होने वाली चञ्चल स्वभाव की कुछ स्त्रियाँ भी वासना के विषम उन्माद में प्रमत्त होकर अथवा अनैतिक पुरुषों के जाल में फँस कर दुराचार के प्रस्थान में अग्रसर हो सकती थी। व्यभिचार की प्रवृत्ति की सम्भावना युवावस्था में अविवाहित रहने वाली कन्या, विवाहित होने पर भी सहवास सुख से वञ्चित प्रोषितपतिका, पितृगृहस्था या परित्यक्ता स्त्री अथवा पति से विरक्त या असन्तुष्ट होने के कारण परपुरुष में आसक्त स्त्री, युवती विधवा या युवती भिक्षुणी के विषय में की जा सकती थी। प्राचीन भारत में वैदिक काल से ही कन्याओं में यौनाचार विषयक सम्भावना नहीं के समान थी। इसका कारण अपने कौमार्य की रक्षा के प्रति उनकी सचेष्टता, दूषित वातावरण या दुष्ट-संसर्ग का अभाव तथा पारिवारिक जनों के द्वारा समुचित संरक्षण में से कुछ भी हो सकता था। वैदिक काल के पश्चात् अल्पवय में विवाह होने के कारण कन्याओं के चरित्र विषयक कोई समस्या नहीं रह गयी थी। विवाहिता सधवा स्त्रियाँ चारित्रिक दृष्टि से मुख्यतः तीन प्रकार की हो सकती हैं[1]—(१) नितान्त शुद्ध चरित्र वाली पतिव्रता स्त्रियाँ,[2] (२) पारिवारिक जनों द्वारा संरक्षित और नियन्त्रित रखी जाने के कारण दुराचार के अवसर के अभाव में मर्यादा का पालन करने वाली मध्यम कोटि की स्त्रियाँ[3] और (३) स्वभावतः पुंश्चली प्रवृत्ति की अधम स्त्रियाँ। प्राचीन साहित्य में नारी के चरित्र विषयक आक्षेप प्रायः इन्हीं के विषय में हैं।[4] ऐसी स्त्रियों के चारित्रिक दोषों के वर्णनों में बहुवचनान्त संज्ञाओं या सर्वनामों को देख कर यह कल्पना करना असंगत होगा कि प्राचीन लेखक सभी स्त्रियों को एक ही दृष्टि से देखते थे। ब्रह्मवैवर्त पुराण (१।२४।१२) में स्पष्टतः यह कहा गया है कि चारित्रिक दृष्टि से सभी स्त्रियाँ दुष्ट नहीं होती, केवल स्वर्वेश्याओं (अप्सराओं) के अंश से उत्पन्न तथा असद्वंश में उत्पन्न स्त्रियाँ ही दुष्ट होती हैं। एक अन्य प्रसंग में भी पुराणकार ने माना है कि असद्वंश में उत्पन्न स्त्रियाँ प्रायः अपने माता-पिता के आनुवंशिक दोष के दुष्प्रभाव से ही परपुरुष

---

१. उत्तम, मध्यम एवं अधम (ब्रह्मवै० १।२३।२८; ४।८४।२६) या साध्वी, भोग्या और कुलटा (वही, १।२३।२१)। २. द्र०-पीछे, पृ० १७६-७।
३. द्र०-पीछे, पृ० १७७ टि० ३-५। ४. द्र०-पीछे, पृ० १७८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संसर्ग करती हैं (ब्रह्मवै० १।६।३६-४०)। प्रायः इसी तथ्य को लक्ष्य करके शूद्रक ने भी एक उपमा में यह भाव व्यक्त किया है कि नीचकुल में उत्पन्न स्त्री एकपत्नी-व्रत का निर्वाह नहीं कर पाती।[1] इन प्रसङ्गों में आनुवंशिक या माता-पिता के चारित्रिक दोष के प्रभाव से किसी नारी के चरित्र के प्रभावित होने का तात्पर्य यह नहीं कि कोई स्त्री जन्मना ही दुष्ट होती है। जैसा कि पीछे (पृ० १७९-८० में) कहा जा चुका है कि किसी स्त्री के शीलनाश में अनेक परिस्थितयाँ कारण बनती हैं। सदाचारी परिवार में जन्मी और अच्छे संस्कारों में ढली हुई नारी प्रतिकूल स्थितियों में भी अपनी चारित्रिक निधि की रक्षा कर सकती है जब कि सामान्य नारी और विशेषतः दूषित पारिवारिक परिवेष में पली हुई स्त्री कदाचित् भावावेश में प्रवाहित हो जाने से ऐसा नहीं कर पाती।

पति के सहवास से वञ्चित युवती स्त्रियों, यथा—पितृगृहस्था, प्रोषितपतिका तथा युवती विधवाओं के लिए मर्यादा का पालन कठिन होने के कारण उनके विषय में कुछ विशेष व्यवस्था देखी जाती है। विवाहिता स्त्री के पितृगृह में निवास को अप्रशस्त बतलाया गया है।[2] प्रोषितपतिकाओं के लिए विशेष स्थितियों में तथा अवधि विशेष के पश्चात् पुनर्विवाह की स्वीकृति दी गयी थी।[3] विधवा के लिए ब्रह्मचर्य पालन का सामान्य नियम था।[4] पुत्रहीन विधवा के लिए नियोग व्यवस्था से पुत्रप्राप्ति की भी अनुमति थी।[5] एकाकी जीवन निर्वाह में असमर्थ होने पर पुनर्विवाह कर लेने वाली विधवा को धर्मशास्त्रों में पुनर्भू के रूप में मान्यता दी गयी थी।[6] पाँच विपत्तियों— पति के नष्ट (विलुप्त), दिवङ्गत, प्रव्रजित, नपुंसक या पतित हो जाने की स्थिति में स्त्री को पुनर्विवाह की अनुमति दी गयीं थी।[7] इस तरह की समाज-व्यवस्था में इन

---

१. विद्युन्नीचकुलोद्गतेव युवतिर्नैकत्र संतिष्ठते। मृच्छ० ५।१४।

२. द्र० आदिपर्व ७४।१२; मार्क० ७४।१८-२१; नारद उ० १३।१६; पद्म २।४७।५८-६; अभि० शा० ५।१७।

३. द्र०—मनु० ६।७६; अर्थ० ३।४।३१-४१; नारद स्मृ० (स्त्रीपुंस०) १२।१००-१०४; वसिष्ठ ध० सू० १७।७५-८०।

४. मनु ५।१५७-१६०; विष्णु स्मृ० २५।१४, १७; बृह० स्मृ० (व्य० अ०) २५।१५; पराशर स्मृ० ४।२६।

५. द्र०—बौ० ध० सू० २।२।४।६; मनु ६।५६; नारद (स्मृ० स्त्री पुं०) १२।८०। यहां उल्लेखनीय है कि मनु नियोग व्यवस्था को अनुचित मानते थे (द्र० मनु ६।६५-८)। उनकी अलोचना के फलस्वरूप परवर्ती आचार्यों ने इसे वर्जित कर दिया था। द्र०—बृहस्पति (कृत्यकल्पतरु, व्य का० पृ० ६४३-४); नारद-पुराण पू० २४।१४-६; ब्रह्मवै० ४।११५।११३।

६. द्र०—मनु ६।१७५-६; वसिष्ठ ध० सू० १७।७२, ७४।

७. नारद स्मृ० (स्त्रीपुंस०) १२।६७,६६; परा० स्मृ० ४।२८; अग्नि १५४।५-६; तु० वसिष्ठ ध० सू० १७।१९-२०; अर्थ० ३।४।३७-४१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्त्रियों के लिए दुराचार के अवसर प्रायः नहीं रह गये थे। युवती भिक्षुणियों के व्यभिचार में लिप्त होने के उल्लेख बौद्ध साहित्य में हैं।[1] सनातन संस्कृति में स्त्रियों को कभी भी प्रव्रज्या की अनुमति नहीं दी गयी थी,[2] अतः तद्विषयक अनाचार की भी कोई नैतिक समस्या नहीं थी। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा कामुकता की भावना आठ गुना अधिक मानी गयी है।[3] किन्तु तब भी वे परपुरुष संसर्ग से गर्भधारण होने की आशंका के कारण यथासम्भव बचा करती थी। यद्यपि व्यभिचारिणी स्त्रियाँ अपने प्रच्छन्न पाप को प्रकट न होने देने के ध्येय से गर्भपात भी कराती थी,[4] किन्तु यह सम्भवतः सर्वसुलभ और सरल उपाय नहीं था। व्यभिचारिणी स्त्री का पाप उसके गर्भ के रूप में प्रतिफलित हो जाने से उसका परिवार और कुल भी कलंकित होता था। अश्वघोष ने माना है कि कुरु, हैहय और वृष्णिवंश भी स्त्रियों के चारित्रिक दोष से आविल हुए हैं (सौन्दरनन्द ८।४५)। यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि व्यभिचार की आपराधिक प्रवृत्ति का समारम्भ पुरुष ही करता है, अतः अधिक दोषी वही होता है।[5] किन्तु उसका दोष गुप्त रह सकता है, जबकि व्यभिचारिणी स्त्री का दोष उसके गर्भ के रूप में प्रकट हो जाता है और इसी के परिणाम स्वरूप वह समाज एवं साहित्य में भी पुरुष की अपेक्षा अधिक आक्षेप एवं आक्रोश का भाजन बनती रही है।

प्रस्तुत प्रक्रम में सर्वप्रथम दिव्य-सृष्टि की नारियों (देवियों) के चरित्र पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में उनकी स्वेच्छाचारिता की प्रवृत्ति नहीं लक्षित होती। कतिपय पुराणों में लक्ष्मी आदि नौ देवियों के अपने पतियों को छोड़कर राजा सोम के पास जाने तथा उसके द्वारा उनके उपभोग की जो चर्चा है

---

१. द्र०—विनयपिटक, पृ० ५३७, ५४०।

२. स्त्रियाः श्रुतौ वा शास्त्रे वा प्रव्रज्या न विधीयते। यम (स्मृ० च०, व्य० का०, पृ० ५९६)।

३. बृहत्परा० स्मृ० ६।५२ चाणक्यनीति १।१७; हितोपदेश, सुहृद्भेद ११९, सन्धि ६; गरुड पू० १०६।३३; ब्रह्मवै० १।२३।३२।

४. बौद्ध साहित्य में भिक्षु-भिक्षुणियों की सहायता से गर्भपात किये जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। द्र०—बुद्धकालीन धर्म और समाज, पृ० ५९; नलविलासनाटकम्, अङ्क २ में एक कापालिक की स्त्री को गर्भपात कराने वाली बतलाया गया है।

५. (क) एवं स्त्री नापराध्नोति नर एवापराध्यति।
व्युच्चरंश्च महादोषं नर एवापराध्यति॥ शान्तिपर्व २६६।३८।

(ख) नापराधोऽस्ति नारीणां नर एवापराध्यति।
सर्वकार्यापराध्यत्वान्नापराध्यन्ति चाङ्गनाः॥ शान्तिपर्व २६६।४०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(द्र० पीछे, पृ० २०६, टि० २) वह स्पष्टतः अतिमानवीय धरातल की है और उसका कोई सम्बन्ध मानव इतिहास से नहीं जोड़ा जा सकता। इसे एक प्रतीकात्मक आख्यान कहा जा सकता है, जिसका तात्पर्य राजसूय यज्ञ करने वाले राजा की अपराजेयता तथा श्रीसम्पन्नता आदि नाना गुणों की उपलब्धि को ख्यापित करना है। स्वेच्छाचारिता की प्रवृत्ति कुछ अंशों तक अप्सराओं में पायी जाती है, किन्तु वे स्वर्वेश्या मानी जाती थी। अतः किसी एक पुरुष का आजीवन सहवास उनकी नियति में नहीं देखा जाता। कुछ राक्षसियों में स्वैराचारिता की प्रवृत्ति लक्षित होती है, किन्तु उनके प्रपञ्च को चरित्र के धनी आर्य सहन नहीं करते थे। रामायण से विदित होता है कि राम ने शूर्पणखा को कोई प्रश्रय नहीं दिया[1] और लक्ष्मण ने नाक-कान काट कर उसे विरूप बना दिया था।[2] राक्षसी अयोमुखी के द्वारा लक्ष्मण से रमण का प्रस्ताव करते हुए उनका हाथ पकड़े जाने पर उन्होंने उसके भी नाक-कान और स्तन काट लिये थे।[3] इस तरह अतिमानवीय स्तर की नारियों में अतिचार की प्रवृत्ति के जो दृष्टान्त प्राप्त होते हैं वे नगण्यप्राय हैं।

परवर्ती साहित्य की अपेक्षा वैदिक साहित्य में स्त्रियों के अमर्यादित आचरण के उल्लेख आनुपातिक दृष्टि से अत्यल्प हैं। ऋग्वेद की एक उपमा में एक युवती के द्वारा अपने जार (प्रेमी) की प्रशंसा करने[4] तथा एक अन्य उपमा में एक युवती के लुक-छिप कर चलने में उसके अभिसार[5] का संकेत है। जारिणी स्त्री के 'निष्कृत' (अर्थात् संकेत-स्थान) में जाने की उपमा से उसके जार के पास जाने का बोध होता है (निष्कृतं जारिणीव। ऋ० १०।३४।५)। मनुस्मृति (९।२०) में उद्धृत कृष्णयजुर्वेद के एक मन्त्र में एक यजमान ने अपनी जननी के परपुरुष-स्पृहा-जनित दोष के दूर होने की आशंसा की है (द्र० पीछे, पृ० १७-८), इसमें क्रियापद 'प्रलुलुभे' से मात्र किसी एक नारी की परपुरुष-संसर्ग-लालसा की संभावना व्यक्त होती है, शारीरिक-सम्बन्ध का स्फुट बोध नहीं होता। वैदिक साहित्य के कुछ अन्य प्रसंगों को भी स्त्रियों के दुराचार के उदाहरण रूप में उद्धृत किया गया है। यथा-मैत्रायणी संहिता (१।१०।११), शतपथ ब्राह्मण (२।५।२।२०), तैत्तिरीयब्राह्मण (१।६।५।२) तथा कात्यायन श्रौतसूत्र (५।५।१०) के अनुसार वरुणप्रघास नामक यज्ञ में यजमान की पत्नी से प्रतिप्रस्थाता यह पूछता है कि उसके प्रेमी या जार कौन हैं? इन स्थलों की समीक्षा करके मैक्डोनल तथा कीथ ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ऐसे वचनों का उद्देश्य पतनोन्मुख पत्नी से प्रायश्चित्त कराना[5] तथा परिवार की संभावित विपत्ति का निराकरण कराना था[6] और प्रो०

१. रामा० ३।१७।२५-६। २. वही ३।१८।६-७। ३. वही ३।६९।१४-७।
४. अभि गावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम्। ऋ० ९।३२।५।
५. गुहा चरन्ती मनुषो न योषा। ऋ० १।१६७।३।
६. वैदिक इण्डेक्स, १, पृ० ४८०। ७. वही, पृ० ३९६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अल्टेकर (पोजीसन आफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० ३१३) के अनुसार पत्नी को यज्ञ में सम्मिलित होने की अधिकारिणी बनाना था। वस्तुतः यहाँ ऐसे प्रश्नों का उद्देश्य उसे पाप से शुद्ध करना ही था।[1] वैदिक साहित्य के ऐसे अत्यल्प उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि मात्र कुछ गिनी चुनी स्त्रियां वैवाहिक जीवन में काम-भावना की सम्यक् सन्तुष्टि के अभाव में परपुरुष से शारीरिक सम्पर्क कर लेती थीं। तैत्तिरीय आरण्यक (२।१७) में कुमारियों तथा जारिणी स्त्रियों के गर्भधारण के उल्लेख से भी उनके अपने प्रेमियों के साथ अनैतिक सम्बन्ध का बोध होता है। वाजसनेयि संहिता (२३।३०-३१ शत०ब्रा० १३।२।९।८) में शूद्रा के लिए प्रयुक्त अर्यजारा जैसे विशेषण में इस जार सम्बन्ध में कर्तृत्व शूद्रा का बतलाया गया है, तात्पर्य यह कि शूद्रा को ही इसका प्रवर्तक माना गया है, जबकि अर्य-पत्नी के साथ जार-सम्बन्ध के स्थापन में कर्ता शूद्र को बतलाया गया है। बौधायन (ध० सू० १।११।१४) ने कृषि एवं शुश्रूषा कर्म में संलग्न वैश्यों एवं शूद्रों की स्त्रियों को अनियन्त्रित बतलाया है, जिससे क्वचित् उनके अमर्यादित होने की संभावना की जा सकती है।

रामायण तथा महाभारत जैसे ऐतिहासिक महाकाव्यों में कुछ स्त्रियों की स्वच्छन्द-चारिता के उल्लेख नाममात्र को ही हैं।[2] यद्यपि दुष्ट स्त्रियों की चारित्रिक शिथिलता विषयक सामान्य वचन महाभारत में पर्याप्त मात्रा में हैं, किन्तु उसमें ऐसा कोई उल्लेखनीय कथानक नहीं है जिसमें पुरुष की अपेक्षा व्यभिचार में किसी नारी की प्रमुख भूमिका लक्षित होती हो। कुछ स्त्रियों की चारित्रिक शिथिलता विषयक जो कथाएँ पुराणों तथा बौद्ध साहित्य में दी गयी हैं उनका उद्देश्य उनके दुराचरण की प्रवृत्ति की निन्दा अथवा पुरुषों को मोह-पाश में डालने के उनके स्वभाव की चर्चा के द्वारा कोई धार्मिक उपदेश या चारित्रिक शिक्षा देना ही रहा है। कथा-ग्रन्थों में उनकी परपुरुषरति का वर्णन भी उनके दुराचार की निन्दा के ध्येय से किया गया है। रुद्रट जैसे प्राचीन साहित्यशास्त्रियों ने यह निर्देश दिया है कि कवि को परस्त्री की न तो कामना करनी चाहिए, न इसका उपदेश देना चाहिए, किं वा किसी पात्र (नायक, प्रतिनायक आदि) की परस्त्रीविषयक रति का निबन्धन भी अपने काव्य में नहीं करना चाहिए।[3] अतः काव्यों में भी अनैतिक प्रणय-सम्बन्ध के वर्णन अपेक्षानुरूप नहीं मिल सकते। जैसे किसी युवती परनारी के दैहिक सान्निध्य में दुराचारी पुरुष की वासना

१. द्र०—मेध्यामेवैनां करोति। मै० सं० १।१०।११; निरुक्तं वा एनः कनीयो भवति। शत० ब्रा० २।५।२।२०।

२. स्वच्छन्द यौनाचार की समीक्षा हेतु द्र० पीछे, अध्याय १, पृ० ६-१८।

३. न हि कविना परदारा एष्टव्या नापि चोपदेष्टव्या।
कर्तव्यतयाऽन्येषां न च तदुपायोऽभिधातव्यः॥ काव्यालङ्कार १४।१२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उद्दीप्त हो सकती है, तद्वत् कोई कामोन्मत्त युवती भी परपुरुष की कामना या उसके साहचर्य से मदनपीडा का अनुभव कर सकती है। यद्यपि प्राचीन साहित्य में कुछ कथाओं में कुछ निर्लज्ज और धृष्ट स्त्रियों के द्वारा पुरुषों से रति याचना के भी उल्लेख मिलते हैं, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें कितना अंश यथार्थ है और कितना काल्पनिक। ब्रह्मवैवर्तपुराण में यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य बतलाया गया है कि प्रायः पुरुष ही स्त्री से समागम की याचना करता है और यदि अपवादपूर्ण स्थिति में किसी नारी के द्वारा पुरुष से रति-प्रस्ताव किया भी गया तो उसे प्रकृति-विरुद्ध तथा विडम्बनापूर्ण ही कहा जायेगा।[1] अतः सामाजिक दृष्टि से व्यभिचार का प्रमुख अपराधी पुरुष ही रहा है। किन्तु नारी में मनोवेगों की तीव्रता पुरुष की अपेक्षा अधिक रहती है, अतः परपुरुष में आसक्त नारी उसके प्रति हृदय से समर्पित हो जाती है।[2] यही कारण है कि कभी-कभी ऐसी नारी पति की हत्या तक कर देती थी (द्र०-पीछे पृ० १८५ टि० १-२) अथवा अपने जार के साथ पलायित हो जाती थी।[3] जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि परपुरुष में आसक्त स्त्री नृशंसता तथा दुःसाहस में पारदारिक पुरुष से भी आगे हो सकती थी। महाभारत (अनु० पर्व १९।८७-८) में कहा गया है कि स्वच्छन्द नारी अपने प्रेमी से मिलने के लिए तपी हुई बालू पर भी नंगे पाँव चल देती है। भोजप्रबन्ध के अनुसार दिन में कौवे की काँव-काँव से भी भयभीत होने वाली एक नारी रात्रि में अपने प्रेमी (जार) से मिलने के लिए नर्मदा नदी को भी पार कर लेती थी।[4] इससे विदित होता है कि स्त्रियाँ अपने प्रेमियों से मिलने के लिए जिस तरह और जितने संकट सहती रही हैं उस तरह कोई पुरुष अपनी प्रेमिका परस्त्री के लिए अपने शरीर को संकट में नहीं डालता था। भरत (नाट्यशास्त्र २४।२०-१) प्रभृति आचार्यों ने नायिकाओं के भेदों में अभिसारिका को भी गिनाया है। प्राचीन काव्यों में रात्रि के अन्धकार में अभिसार करने वाली कुछ स्त्रियों के विषय में जो वर्णन मिलते हैं उनसे विदित होता है कि सम्भवतः इनमें से कुछ (अभिसारिकाएँ) परपुरुष के

---

१. सदा सम्भोगविषये स्त्रियं प्रार्थयते पुमान्।
स्त्री चेत् प्रयाति पुरुषं विपरीतं विडम्बनम् ॥ ब्रह्मवै० ४।३२।२२-३।

२. द्र०-ब्रह्मवै० ४।८४।३४; वही २।१६।५३; देवीभाग० ६।१८।४२।

३. द्र० कुट्टनीमतम्, श्लोक, ५०८। जातक २ पृ० ११६-८ में एक ऐसी नारी की कथा है जिसकी प्यास बुझाने के लिए उसके पति ने अपना रक्त तक दे दिया था, किन्तु तब भी वह उसे छोड़कर एक दस्यु के साथ चली गयी थी। द्र० बुद्धकालीन समाज और धर्म, पृ० ५९।

४. दिवा काकरुता भीता रात्रौ तरति नर्मदाम्।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पास ही जाती थी[1] अपने घर में आये हुए जार की रक्षा की भी यथासम्भव चेष्टा व्यभिचारिणी स्त्री करती थी। हाल ने लिखा है कि ऐसी नारी सहसा उपस्थित पति के समक्ष अपने जार को शरणागत (गाथा० ३।६७) अथवा अपने पितृकुल से आया हुआ पुरुष (गाथा० ४।१) बतलाती है। कथासरित्सागर १२।१।३७-४८ के अनुसार एक ब्राह्मणी ने शाकिनीसिद्धिसंवरा विद्या सिद्ध की थी। वह महिषपाल (ग्वाले) के साथ रमण करती थी। उसके पति ने उन दोनों को आपत्तिजनक स्थिति में देख कर मार डालने का उद्यम किया तो उसने उस (पति) के ऊपर अभिमन्त्रित धूल फेंक कर उसको भैंस बनाकर महिषपाल से ताडित करवाया और फिर बेच दिया था। इस कथा का तात्पर्य यह है कि परपुरुष में आसक्त स्त्री पति के प्रति किसी भी तरह का छल कर सकती थी।

बृहस्पति ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों की विलक्षण आचार-परम्पराओं के निर्देश के प्रसङ्ग में पूर्वी भारत की स्त्रियों को व्यभिचाररत बतलाया है। यह स्पष्ट है कि यदि व्यभिचारी पुरुषों का साथ नहीं होगा तो स्त्रियाँ भी व्यभिचारिणी नहीं हो सकती। तथापि यह संभव है कि बृहस्पति ने पूर्वी भारत के जलवायु या भोजन के प्रभाव से स्त्रियों में काम-विकार की प्रबलता या उनके द्वारा अनैतिक पुरुषों को क्वचित् स्वयमेव सङ्केत या अवसर दिये जाने या ऐसे पुरुषों के प्रस्ताव पर अनायास सहमत होने की उनकी प्रवृत्ति को देखकर ऐसे वचन कहे होंगे। वात्स्यायन ने (कामसूत्र ५।५।५ में) ग्रामीण स्त्रियों की यह प्रवृत्ति बतलायी है कि वे ग्राम के अधिकारियों या उनके युवा पुत्रों को अनायास शरीर-समर्पण करती हैं। यहाँ यह नहीं कहा गया है कि ऐसी प्रवृत्ति किस क्षेत्र, जाति या वर्ग की स्त्रियों में होती है। सर्वत्र और सभी ग्रामीण स्त्रियों में ऐसी प्रवृत्ति कदापि नहीं मानी जा सकती। इसी प्रसंग में आगे वात्स्यायन ने (कामसूत्र ५।५।६-१० में) विभिन्न व्यवसायों से सम्बद्ध कर्मचारियों तथा अधिकारियों, यथा-गवाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, नागर अधिकारी, पण्याध्यक्ष आदि के अपने कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित स्त्रियों के साथ संभोग की सुविधा पर प्रकाश डाला है। इससे स्पष्ट है कि पारिवारिक वातावरण के बाहर परपुरुषों के सम्पर्क के दुष्प्रभाव से अनेक स्त्रियों में चारित्रिक शिथिलता आ जाती थी। कामसूत्र ५।५।३२-६ में आन्ध्र, वात्सगुल्म, विदर्भ, अपरान्त तथा सौराष्ट्र की स्त्रियों के किसी निमित्त विशेष से राजकुल में प्रवेश तथा उनके साथ राजा के रमण की जो प्रवृत्ति बतलायी गयी है (द्र० पीछे, पृ० २१५) उसमें सहयोग के लिए वहाँ की कुछ स्त्रियों को भी दोषी माना जा सकता है।

लौकिक संस्कृत साहित्य में असाध्वी स्त्रियों के लिए पुंश्चली, कुलटा, स्वैरिणी,

---

१. अभिसारिकाभिरभिहतनिविडतमो निन्द्यते शितांशुरपि। रुद्रट : काव्यालं० ८।८३। अभिसारिकाणां विघ्नं करोष्यन्यासामपि...। व्यक्तिविवेक, विमर्श ३, पृ० ४७१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बन्धकी, वृषली, महिषी और वेश्या जैसे शब्दों का भी प्रयोग देखा जाता है। बहुपुरुषाकांक्षिणी अथवा किसी भी पुरुष को देखकर उसके प्रति आकृष्ट हो जाने वाली नारी को पुंश्चली (पुमासं पुमासं प्रति चलतीति पुंश्चली) कहा गया है। पद्मपुराण २।५०।४५ में पति को छोड़कर अन्य पुरुष का आश्रय लेने वाली नारी को पुंश्चली कहा गया है। महाभारत (आदिपर्व १२२।७७) के अनुसार चार पुरुषों से यौन सम्बन्ध कर लेने वाली नारी को स्वैरिणी[1] एवं पाँच पुरुषों से संसर्ग कर चुकने पर उसे बन्धकी कहा जाता है। इसी में एक अन्य स्थल पर अनेक पुरुषों से संसर्ग करने वाली नारी को बन्धकी कहा गया है (सभापर्व ६८।३५), जब कि कथासरित्सागर (६।८।४) में तृतीय पुरुष के संसर्ग में आने वाली नारी को बन्धकी कहा गया है। पति को छोड़कर परपुरुषसमागम करने वाली नारी को वृषली भी कहा जाता था (स्कन्दपुराण ४।४०।६३)। व्यभिचारिणी नारी को ही अनेकत्र महिषी भी कहा गया है।[2] लघ्वाश्वलायन स्मृति (२१।४) के अनुसार भग-विक्रय करके धनार्जन करने वाली नारी महिषी कहलाती है। ब्रह्मवैवर्तपुराण (२।३११४-५) के अनुसार पातिव्रत्य छोड़कर जब नारी दूसरे पुरुष से संसर्ग करती है तो उसकी कुलटा संज्ञा होती है। वह तीसरे पुरुष के संसर्ग में आने पर धर्षिणी, चौथे पुरुष से संसर्ग करने पर पुंश्चली, पाँचवें पुरुष से संसर्ग करने पर वेश्या और छठे पुरुष के संसर्ग में आने पर युग्मी (युंगी) कहलाती है। इससे अधिक पुरुषों से शारीरिक सम्पर्क करने वाली नारी को महावेश्या कहा गया है। नारदस्मृति (स्त्रीपुंस० १२।४९-५२, तु० बृहत्पराशर स्मृ० ७।३६६-३७१, द्र०-वसिष्ठ ध० सू० १७।१९-२०) में स्वैरिणी स्त्री के चार भेद बतलाये गये हैं। यथा—(१) पति के जीते जी कामार्त होकर अन्य पुरुष के पास जाने वाली, (२) पति को छोड़कर अन्य पुरुष का आश्रय लेकर पुनः पतिगृह में लौट आने वाली, (३) पति की मृत्यु हो जाने पर देवरों के होते हुए भी कामात् परपुरुष के पास जाने वाली और (४) भटकी हुई प्राप्त या धनक्रीत अथवा भूख-प्यास से पीडित होकर आत्मदान करने वाली। नारद तथा पराशर जैसे स्मृतिकारों के द्वारा स्वैरिणी के इन भेदों के निरूपण से विदित होता है कि तत्कालीन समाज में ऐसी स्त्रियों की उल्लेखनीय संख्या रही होगी।

धर्मशास्त्रों में द्वादशविध पुत्रों में उल्लिखित गूढज, सहोढ एवं कानीन पुत्रों के जन्म में कामुक पुरुष की आपराधिक प्रवृत्ति के अतिरिक्त कभी-कभी नारी की अपनी दुराचार की प्रवृत्ति भी कारण बन सकती थी। किसी स्त्री के प्रच्छन्न व्यभिचार के

---

१. द्र०-स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत्। याज्ञ० १।६७।

२. महिषीत्युच्यते पत्नी या च स्याद् व्यभिचारिणी। यमस्मृ० श्लो० ३६; बृहद्-यमस्मृ० ३।१७; प्रजापतिस्मृ० श्लो० ८६; द्र०-स्कन्द ४।४०।६२ इसमें पत्नी के स्थान पर प्रयुक्त 'नारी' पाठ उचित है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

फलस्वरूप उत्पन्न पुत्र के जनकका ज्ञान न होने पर उसे उस स्त्री के पति का गूढज पुत्र कहा जाता था।[1] मेधातिथि (मनु ९।१७०) के अनुसार सजातीय या उत्तम वर्ण के पुरुष के संसर्ग से उत्पन्न पुत्र को ही गूढज कहा जायेगा। हीन वर्ण के पुरुष के संसर्ग से उत्पन्न पुत्र प्रतिलोमज होने के कारण पुत्रोचित कृत्यों को करने का अनधिकारी होता है, अतः उसे गूढज नहीं कहा जायेगा। प्राचीन समाज में प्रतिलोम विवाह को धर्मसम्मत नहीं माना जाता था। अतः यह सम्भव है कि कभी-कभी कुछ स्त्रियों के द्वारा हीन वर्ण के पुरुषों के साथ व्यभिचार से गर्भधारण के फलस्वरूप भी कुछ प्रतिलोमज सन्तानों का जन्म होता रहा होगा। महाभारत (अनु० पर्व २७।१७) में एक ब्राह्मणी में शूद्र के वीर्य से मतङ्ग मुनि के जन्म का उल्लेख इसका एक उदाहरण है। स्कन्दपुराण ७।१।२९०।५-८ में देवशर्मा नामक प्रवासी ब्राह्मण की स्वच्छन्द-चारिणी स्त्री के द्वारा एक शूद्र से गर्भधारण करके सन्तानोत्पादन का उल्लेख भी उक्त तथ्य का अन्यतम दृष्टान्त है। यह उल्लेखनीय है कि कामान्ध स्त्री-पुरुष व्यभिचार में प्रवृत्त होने पर गम्यागम्य और ऊँच-नीच का कोई विचार नहीं करते थे। अश्वघोष ने स्त्रियों की काम-पिपासा तथा चारित्रिक शिथिलता की चर्चा करते हुए बतलाया है कि राजा सेनजित की पुत्री ने चाण्डाल के साथ, कुमुद्वती ने धीवर के साथ एवं बृहद्रथा ने सिंह के साथ रमण किया था (सौन्दरनन्द ८।४४)।

स्त्रियों के परपुरुष में आसक्त होने के अनेक कारण माने जा सकते हैं। वृद्ध, कुरूप एवं रति-शक्ति-रहित पुरुष की पत्नी परपुरुष के प्रति आकर्षित हो सकती थी। रामायण १।४८।१९-२१ के अनुसार गौतम के वेश में आये हुए इन्द्र को अहल्या ने पहचानते हुए भी उसके साथ रमण की इच्छा की थी और उसके साथ रति से स्वयं को कृतार्थ समझा था। गाथासप्तशती से यह संकेत मिलता है कि कुरूप पति वाली युवतियाँ सुन्दर युवक के सान्निध्य में सतीत्व से विचलित हो सकती थीं।[2] राजतरङ्गिणी ७।१२४९-७ के अनुसार लक्ष्मीधर नामक मन्त्री की कुरूपता के कारण उसकी विरक्ता पत्नी अपने प्रातिवेशिक राजकुमार सुस्सल पर आसक्त हुई थी। जराजीर्ण तथा शिथिल-सामर्थ्य पुरुष से उसकी युवती पत्नी विरक्त हो सकती थी। राजतरङ्गिणी ७।१२३ के अनुसार राजा सङ्ग्रामराज के शिथिल-सामर्थ्य हो जाने पर उसकी रानी स्वैरिणी बन गयी थी। विलासितापूर्ण जीवन बिताने वाली स्त्रियाँ पति के सहवास का यथेष्ट अवसर न पा सकने पर व्यभिचार में प्रवृत्त हो सकती थी। इसका एक उदा-

---

१. बौ० ध० सू० २।२।३।२२; बौ० स्मृ० २।२।२६; अर्थ० ३।७।८; मनु ९।१७०; याज्ञ० २।१३२; लोहित स्मृ० १७१-४।

२. द्र०-गाथा० ३।२८ (की संस्कृत छाया)—यत्तव सतो जाया असत्यो यच्च सुभगा वयमपि। तत् किं स्फुटतु बीजं तव समानो युवा नास्ति॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हरण बन्धमोक्ख जातक (सं० १२०) में है, जहाँ ६४ सेवकों के साथ एक रानी के अनैतिक सम्बन्ध का उल्लेख है। प्राचीन काल के कुछ राजा इन्द्रियलौल्यवश अनेकानेक सुन्दरियों से विवाह तो कर लेते थे, किन्तु उन्हें सहवास का यथेष्ट अवसर नहीं दे पाते थे। अतः वे स्त्रियाँ अपनी वासना की शान्ति हेतु प्रच्छन्न रूप से युवा पुरुषों को प्रायः स्त्रीवेश में अन्तःपुर में बुलवा लेती थी (द्र० कामसूत्र ५।६।६-८)। कथासरित्सागर की एक कथा से भी यह विदित होता है कि ऐसे पुरुष प्रायः स्त्रीवेश में ही अन्तःपुर में रहते थे।[1] राजतरङ्गिणी ८।१६५३-७ से यह भी विदित होता है कि कुछ राजपरिवारों की स्त्रियाँ अपने साथ रमण करने वाले जारों को धन-सम्पत्ति भी देती थीं। इसके विपरीत कुछ स्त्रियाँ धनोपार्जन के लिए भी व्यभिचार कर सकती थी। लध्वाश्वलायन स्मृति २१।४ में भगविक्रय करके धनार्जन करने वाली पत्नी को महिषी कहा गया है। स्वैरिणी युवतियों को इच्छित वस्त्राभूषण की प्राप्ति की बात महाभारत में भी कही गयी है।[2] पति के सहवास से वञ्चित पितृगृहवासिनी स्त्रियाँ, युवती प्रोषितपतिकाएं एवं कभी-कभी युवती विधवाएं भी उन्मार्गवर्तिनी हो सकती थी। पितृगृह में निवास करने वाली युवतियों के दुराचारी पुरुषों के संसर्ग में व्यभिचारिणी होने के उल्लेख प्राचीन साहित्य में अनेकत्र हैं।[3] प्रोषितपतिकाओं के अनाचार के तो अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं। गाथा सप्तशती ७।६७ (जो व्यक्तिविवेक विमर्श ३ एवं काव्यप्रकाश उल्लास ५ में भी उद्धृत है) की एक गाथा एवं ध्वन्यालोक २।२३ तथा रुद्रट के काव्यालङ्कार ७।४१ में उद्धृत श्लोकों में भी प्रोषितपतिका द्वारा पथिक को रात्रि में अपनी शय्या में आने का संकेत दिया गया है। चुल्लवग्ग (पृ० ३८८) में जार के साथ सहवास करने वाली एक प्रोषितपतिका के द्वारा गर्भपात कराये जाने का उल्लेख है। शूद्र से पुत्र उत्पन्न करने वाली एक प्रोषितपतिका ब्राह्मणी की कथा स्कन्दपुराण ७।१।२९०।५-८ में दी गयी है (द्र० पीछे, पृ० २४३)। कथासरित्सागर (१०।८।६८-१५०) में जारों के साथ रमण करने वाली तीन प्रोषितपतिकाओं की कथा दी गयी है। दुराचारी पुरुषों के संसर्ग में आने पर कुछ युवती विधवाओं के व्यभिचारिणी होने के भी उल्लेख मिलते हैं।[4] प्राचीन काल की विभिन्न अवधियों में विभिन्न सामाजिक वर्गों की असंख्य और अप्रमेय पतिव्रता नारियों में से मात्र कुछ स्त्रियों के दुराचार को प्रदर्शित करने वाले इन उदाहरणों का अनुपात संभवतः एक प्रतिशत से भी अत्यन्त न्यून रहा होगा। अतः इनके आधार पर स्त्रीजाति के विषय में कोई अप्रिय निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए।

१. द्र०-सर्वत्रान्तः पुरे ह्यत्र स्त्रीरूपाः पुरुषाः स्थिताः। कथा० १।५।२४।

२. द्र०-यौवने वर्तमानानामिष्टाभरणवाससाम्।
नारीणां स्वैरवृत्तीनां स्पृहयन्ति कुलस्त्रियः॥ अनु० ३८।१६; शिव ५।२४।२३।

३. पद्म २।४३।२८-३९; राज० ३।४६५-८; कथा० १०।२।८५; १२।१०।५२-४।

४. द्र० पाराजिक पृ० १९०; शिव ४।९।८; स्कन्द ३।३।३६-४२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इतिहास-पुराण तथा कथाग्रन्थों में स्त्रियों की अतिचार की प्रवृत्ति के अतिरञ्जना पूर्ण वर्णन भी हैं।[१] कथासरित्सागर (७।२।९-४०) के अनुसार एक राजा के मूर्छित हाथी को उठाने के लिए अशरीरिणी वाणी के द्वारा पतिव्रता का कर-स्पर्श कराने को कहे जाने पर उस राजा ने अपनी सभी रानियों तथा पुर की समस्त स्त्रियों से उसका स्पर्श करवाया, किन्तु हाथी अन्त में एक वणिक् की कर्मकरी के स्पर्श से उठा। इसी तरह राजतरङ्गिणी (१।१३८-३२२) में कहा गया है कि राजा मिहिरकुल के द्वारा बनवायी जा रही एक नहर के मध्य एक शिला बाधक बनी थी। देवों ने राजा को स्वप्न में बतलाया कि वह शिला एक यक्ष के द्वारा अधिष्ठित है और उसे पतिव्रता नारी के स्पर्शपूर्वक हटाने में वह बाधक नहीं बनेगा। तब राजा ने क्रमशः अनेक स्त्रियों के कर-स्पर्श का सहयोग लिया, किन्तु वह नहीं हट पायी। अन्त में एक कुम्हारिन् के कर-स्पर्श के पश्चात् वह शिला सरलतया हटायी जा सकी थी। अतः राजा ने शेष स्त्रियों को असाध्वी समझ कर उन्हें उनके पति, भ्राता एवं पुत्रों सहित मरवा दिया था। यह कथा राजतरङ्गिणी जैसे इतिहास-ग्रन्थ में होने पर भी विश्वसनीय नहीं लगती। ऐसी कथाओं का उद्देश्य सच्ची पतिव्रताओं की विरलता एवं उनकी अप्रतिम क्षमता और शुद्धता को संकेतित करना एवं सामान्य नारी में वैसे गुणों का अभाव द्योतित करना हो सकता है। यदि कहीं किसी समाज की नारियाँ असाध्वी हों तो उसके लिए वहाँ का पुरुषवर्ग भी समान रूप से दोषी कहा जायेगा।

प्राचीन समाज को चारित्रिक दृष्टि से निर्दोष ख्यापित करने की भारतीय संस्कृति और इससे अनुप्रेरित साहित्य की अपनी एक विशेषता रही है। आरम्भिक समाज की स्त्रियों को भी विशुद्ध चरित्र वाली माना गया है। महाभारत अनु० पर्व ४०।८ (तु० ब्रह्मवै० ४।८४।२३-४) के अनुसार पूर्वसर्ग में सभी स्त्रियाँ साध्वी थी। ब्रह्मवैवर्त पुराण (४।८४।२५) के अनुसार एक केदारकन्या के शाप से स्त्रियों का वह स्वरूप नष्ट हो गया और तब विधाता ने कृत्या स्त्री की सृष्टि की थी। महाभारत (अनु० पर्व ४०।६) के अनुसार भी प्रजापति के कृत्या सर्ग से ही असाध्वी स्त्रियों का प्रादुर्भाव हुआ था। ऐसी स्त्रियों के विषय में कहा गया है कि वे केवल एक पुरुष के सहवास से सन्तुष्ट नहीं होती (अनु० पर्व ४३।२४)। इसके साथ ही महाभारत एवं पुराणों में युगापकर्ष की कल्पनानुरूप कलियुग में स्त्रियों के चारित्रिक गुणों में भी ह्रास की कल्पना की गयी है। उदाहरणार्थ-भविष्यपुराण ३।३।३१।२८-६ में कहा गया है कि सत्ययुग की नारी उत्तम और पतिव्रता थी, त्रेतायुग में वह मध्यम कोटि की तथा द्वापर में उससे भी निकृष्ट हो गयी थी एवं कलियुग में वह उससे भी अधम और परपुरुषगामिनी हो जाती है। भविष्यपुराण में संकलित ये वचन इसके अन्य कई वचनों की भाँति ही अतिप्राचीन परम्परा

---

१. द्र०-अनु० पर्व १९।९२-३; कथा० ७।३।२; १२।१०।९३-४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के ही व्यापक हैं। महाभारत के अनुसार कलियुग की स्त्रियाँ पति के जीते जी दूसरों के साथ व्यभिचार करेंगी (वनपर्व १८८।६४)। वे अपने योग्य पतियों को भी धोखा देकर दासों (नौकरों) एवं पशुओं के साथ भी रमण करेंगी (वनपर्व १८८।६३)। पुराणों के अनुसार भी कलियुग की स्त्रियाँ शीलहीन, अनृतवादिनी, मद्य-मांसप्रिय तथा मायाविनी हो जावेंगी।[१] वे स्वैरिणी,[२] दुश्चरित्र[३] एवं जार-सेवन में तत्पर[४] हो जावेंगी। इस युग में घर-घर में स्त्रियाँ पुंश्चली हो जावेंगी।[५] वे धनहीन पति को त्याग देंगी।[६] कलियुग की स्त्रियों में व्यभिचार की प्रवृत्ति के उद्रेक का एक कारण पञ्चमकारोपासना वाली तान्त्रिक परम्परा का प्रवर्तन भी हो सकता है। इसका एक सङ्केत लिङ्गपुराण (पू० ७१।८४-५) में है, जिसके अनुसार नारद ने त्रिपुर की स्त्रियों को पतिव्रता धर्म से च्युत करने के लिए उनको व्यभिचार में प्रवृत्त किया था और उससे प्रभावित होकर आज भी कलियुग की अधम प्रकृति की नारियाँ अपने पतियों को त्याग कर व्यभिचार करती हैं। शिवपुराण (२।५।५।५५) के अनुसार अरिहन् के द्वारा त्रिपुर में वेदविरुद्ध धर्म के प्रचार के फलस्वरूप वहाँ की नारियों ने पतिव्रता धर्म को छोड़ा था (द्र० पीछे पृ० २१७)। श्रीमद्भागवत (५।२४।१६) में मय के पुत्र बल नामक असुर के जँभाई लेते समय उसके मुख से स्वैरिणी, कामिनी तथा पुंश्चली स्त्रियों के प्रादुर्भाव के उल्लेख से यह संकेत मिलता है कि स्त्रियों में व्यभिचार की प्रवृत्ति का उद्रेक आसुरी शक्तियों के द्वारा किया गया था। इस तरह सनातन संस्कृति के साहित्य के अनुशीलन से यह विदित होता है कि भारतवर्ष में आरम्भिक युगों में स्त्रियाँ सच्चरित्र थी। उनमें चारित्रिक विकार कालान्तर में आया। कलियुग के वर्णनों में सभी नारियों को चारित्रिक दोष देना अतिशयोक्ति पूर्ण है। संभवतः पुराणकारों के ऐसे वचनों का उद्देश्य स्त्रियों को उक्त दोष से जन्य निन्दा और लोकापवाद का भय दिखला कर उन्हें शील-रक्षा तथा मर्यादा के अनुपालन हेतु प्रेरित करके समाज को विशुद्ध बनाये रखना ही था।

हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि प्राचीन साहित्य के लेखकों ने पक्षपातपूर्वक केवल स्त्रियों के चरित्र के विषय में ही दोषोद्भावना की है। उन्होंने अनेकत्र दुश्चरित्र पुरुषों को भी उसी तरह दोषी बतलाया है। महाभारत में कहा गया है कि पुरुष पाणिग्रहण करके और सहधर्माचरण का वचन देकर जब स्वयं उसका निर्वाह नहीं करता तो वैसा ही आचरण करने पर स्त्री को भी दोष नहीं दिया जा सकता।[७] श्रीमद्भागवत

---

१. ब्रह्माण्ड २।३१।४४; तु० वायु पू० ४०।४३।

२. विष्णु६।१।२१, ब्रह्म१२२।११। ३. विष्णु६।१।३१। ४. ब्रह्मवै०४।१२८।१७।

५. वही २।७।२०; ४।९०।३८; देवीभाग० ६।८।१६। ६. विष्णु ६।१।१८।

७. पाणिबन्धं स्वयं कृत्वा सहधर्ममुपेत्य च।
यदा यास्यन्ति पुरुषाः स्त्रियो नार्हन्ति वाच्यताम्॥ शान्तिपर्व २६६।३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में यह स्वीकार किया गया है कि स्त्री जो भी अतिक्रम करती है वह सब अपने स्वभाववश करती है। अतः अपने स्वभाव का अनुसरण करने के कारण उसके आचारातिक्रम को दोषयुक्त नहीं कहा जा सकता।[1] एकतरफा स्त्रीजाति की निन्दा करने वाले पुरुषों पर तीव्र प्रहार करते हुए वराहमिहिर ने कहा है कि मनुष्य की कामेच्छा की सन्तुष्टि सौ वर्षों में भी नहीं हो सकती। पुरुष अपनी अशक्तिवश ही इससे विरत होते हैं, जबकि स्त्रियाँ धैर्य धारण करके इस पर नियन्त्रण रखती हैं।[2] वे मानते हैं कि पुरुष को अपनी पत्नी से उतना सच्चा और एकनिष्ठ प्रेम नहीं होता जितना कि स्त्री को अपने पति से होता है। पुरुष आरम्भ में स्त्रियों से जैसे चाटुकारितापूर्ण वचन बोलते हैं वैसे वचन बाद में नहीं बोलते, किन्तु स्त्रियाँ इतनी कृतज्ञ होती हैं कि पति की मृत्यु हो जाने पर वे उसके शव का आलिङ्गन करके अग्नि में प्रवेश कर जाती हैं। अतः स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक निर्दोष होती हैं। उनकी निन्दा करने वाले असत्पुरुष स्वयं चोरी करके दूसरों पर उसका आरोप लगाने वाले चोरों के समान हैं।[3] धर्मशास्त्रों में स्त्री के द्वारा किये गये सारे दोष या पाप का भागी उसका पति माना गया है (द्र०—पीछे, पृ० १३५ टि० २)। इसका कारण यह है कि नारी की चारित्रिक रक्षा का दायित्व उसके पति का था। उसके अपने कर्तव्य से च्युत होने पर ही उसकी स्त्री में चारित्रिक विकार आ सकता था।

६—अतिचार की अनुमति के प्रसङ्ग—

परस्त्रीगमन को इसके सामाजिक दुष्परिणामों के परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक पुरुष के लिए वर्जित किया गया था, किन्तु कुछ अपरिहार्य परिस्थितियों, यथा—पुत्रहीन स्त्री में वंश रक्षा के ध्येय से क्षेत्रज सन्तान की उत्पत्ति हेतु नियुक्त पुरुष को नियोग के नियमों के अनुसार उसके साथ समागम की अनुमति दी गयी थी। नियोग की यह व्यवस्था वैदिक काल से ही प्रचलित थी।[4] महाभारत के अनुसार किसी नारी या उसके संरक्षक के द्वारा वंश-रक्षा हेतु नियोग का आग्रह किये जाने पर परस्त्रीगमन (नियुक्त स्त्री के साथ समागम) से धर्म दूषित (नष्ट) नहीं होता।[5] ऐसे वचन निश्चयमेव नियोग में सदाचारी एवं पापभीरु पुरुष का सहयोग प्राप्त करने के ध्येय से कहे गये होंगे, किसी असदाचारी पुरुष को व्यभिचार में प्रवृत्त करने के लिए नहीं। नियोग प्रथा में असंयम की दुष्प्रवृत्ति के उन्मेष की संभावना के कारण ही इसे कलियुग के लिए वर्जित किया गया था।[6] इसके अतिरिक्त प्राचीन आचार्यों ने कहीं-कहीं परित्यक्ता, निराश्रिता, असाध्वी अथवा कामार्त

१. कोऽतिक्रमोऽनुवर्तन्त्याः स्वभावमिह योषितः। भाग० ६।१८।४०।
२. बृहत्संहिता ७६।११-४। ३. द्र०-वही ७६।१६-७।
४. द्र०-हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग २, खण्ड १, पृ० ६१९।
५. भिक्षिते पारदार्यं च न तद् धर्मस्य दूषकम्। शान्तिपर्व ३४।२७।
६. नारद पू० २४।१४; ब्रह्मवै० ४।११५।१३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होकर स्वेच्छया उपस्थित स्त्री के साथ भी संभोग की स्वीकृति व्यक्त की है। उदाहरणार्थ-कौटिल्य ने (अर्थ० ४।१२।३६ तथा ३८-९ में) कहा है कि शत्रुसेना या वनवासियों या चोरों के द्वारा अपहृत, बाढ़ में बहकर आयी हुई, वन में त्यागी या खोयी हुई, दुर्भिक्ष काल या देशविप्लव में त्यागी हुई अथवा मृत समझकर त्यागी हुई परस्त्री का उद्धार करने वाला उसकी सहमति से उसके साथ रमण कर सकता है। किन्तु कौटिल्य (अर्थ० ४।१२।३७, ३९-४०) ने यह भी कहा है कि राजा या स्वजनों द्वारा परित्यक्त स्त्री तथा उपर्युक्त परिस्थितियों में पायी गयी स्त्री यदि उत्तम वर्ण की हो अथवा सहवास की अनिच्छुक हो या सन्तानवती हो तो उसका उद्धार करने वाला उसके स्वजनों से निष्क्रय लेकर उसे उनको लौटा दे। नारद (स्मृति स्त्रीपुंस० १२।९१) के अनुसार जिसने अपनी स्त्री में दोषारोप करके उसे त्याग दिया हो, जो नपुंसक हो या [उसे सन्तुष्ट रखने में] अक्षम हो, उसकी स्त्री स्वेच्छया किसी पुरुष के पास आये तो वह उसके साथ सहवास करने पर दोष का भागी नहीं होता। मत्स्यपुराण (२२७।१३०-१) तथा विष्णुधर्मोत्तर (२।७२।११४) के अनुसार निर्धन विधवा का संग्रहण करने वाला कोई अपराध नहीं करता, किन्तु यदि वह धनी हो तो उसका संग्रहण करने वाला दण्डनीय होता है।[1] विष्णुधर्मोत्तर में इस अपराध पर उत्तमसाहस दण्ड विहित किया गया है।[2] इससे प्रतीत होता है कि आर्थिक संसाधन रहित विधवा यदि अगम्या न हो तो उसका भरण-पोषण करने वाला उसकी सहमति से उसके साथ सहवास कर सकता था। चारणों तथा रङ्गकर्मियों (रङ्गमञ्च में काम करने वालों) की स्त्रियों के साथ व्यभिचार में दण्ड का निषेध किया गया है (द्र० पीछे, पृ० २१९),[3] जिसका तात्पर्य व्यभिचारी पुरुषों की उनके संसर्ग की अनुमति देना ही है। वेश्यागमन के लिए केवल ब्राह्मण ही दण्डनीय था (द्र० पीछे, पृ० २३३ टि० १) अर्थात् दूसरे वर्णों के दुराचारी पुरुष वेश्यागमन कर सकते थे। दासीगमन भी निषिद्ध नहीं था, किन्तु केवल उसके साथ बलात्कार दण्डनीय अपराध था (द्र० याज्ञ० २।२९१)। नारदस्मृति (स्त्रीपुंस० १२।७८) में उच्च वर्णों के पुरुषों को अपने से हीनवर्ण की स्वैरिणी स्त्री, वेश्या तथा दासी के भोग की अनुमति दी गयी है। कात्यायन ने कहा है कि यदि कोई कामार्त स्वैरिणी स्वयं ही किसी पुरुष को प्रलोभित करे तो वह राजाज्ञानुसार जनता में घोषणा करके उसका

---

१. अद्रव्यां मृतपत्नीं तु संगृह्णन्नापराध्यति।
सद्रव्यां तां संगृहीता दण्डं तु क्षिप्रमर्हति॥

२. सार्थां वै तां च गृह्णानो दण्डमुत्तममर्हति॥

—विष्णुधर्मो० २।७२।११४।

३. बौ० ध० सू० २।२।४।३; मनु ८।३६२; मत्स्य २२७।१२३-४; विष्णुधर्मो० २।७२।१०४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भोग कर सकता है।[1] नारद[2] एवं कात्यायन[3] के अनुसार स्वेच्छया अपने घर में आयी हुई कामिनी का भोग करने वाला पुरुष स्त्रीसंग्रहण के अपराध का दोषी नहीं होता। इन सभी वचनों का मुख्य उद्देश्य उक्त स्त्रियों के संग्रहण या सहवास को अनिन्दनीय या सदाचार-सम्मत घोषित करना नहीं, अपितु इस पर दण्ड का निषेध करना मात्र था।

स्वयं उपस्थित कामिनी को सन्तुष्ट करने के विषय में स्पष्टतः कोई धर्मशास्त्रीय निर्देश न होने पर भी इतिहास-पुराण में अनेक वचनों से यह ख्यापित किया गया है कि यदि ऐसी स्त्री गम्या हो तो उसे सन्तुष्ट किया जा सकता है। ब्रह्मवैवर्तपुराण (४।३५।२८) के अनुसार स्वयं उपस्थित स्त्री के त्याग में महान् दोष होता है। किन्तु ऐसी स्त्री को केवल गृहस्थ पुरुष ही स्वीकार करे, तपस्वी नहीं। उसका त्याग करने में गृहस्थ को दोष एवं पाप लगता है तथा वह उसके शाप का भी भागी बनता है (ब्रह्मवै० ४।३०।८८)। इसी पुराण में अन्यत्र यह कहा गया है कि कोई भी पुरुष चाहे गृहस्थ या तपस्वी या कामी—जो भी हो, वह स्वयं उपस्थित स्त्री का त्याग न करे, अन्यथा वह परलोक में नरक में गिरता है तथा इहलोक में उस स्त्री के शाप से अपूज्य, श्रीहीन, रूपहीन, भ्रष्टबुद्धि तथा नपुंसक हो जाता है (ब्रह्मवै० ४।३३।६–७)। उपर्युक्त वाक्यों से स्वयं उपस्थित स्त्री को पुनर्भू के रूप में आश्रय देकर उसे रतिदान से सन्तुष्ट करने का भी अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। देवीभागवतपुराण ९।१४।१२-३ में स्वयं उपस्थित कन्या को भी ग्रहण करने की संस्तुति की गयी है। इसके अनुसार उसे ग्रहण न करने वाले पुरुष से महालक्ष्मी रूठ कर उसे छोड़कर चली जाती है। अतः पण्डित पुरुष को ऐसी कन्या को निराश करके प्रकृति का अपमान नहीं करना चाहिए। स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति में कोई पुरुष गम्यात्व का विचार करके ही ऐसी कन्या को पत्नी के रूप में स्वीकार कर सकता था। किन्तु इतिहास-पुराण के कुछ अन्य उद्धरणों से स्वयं उपस्थित स्त्री की तात्कालिक सन्तुष्टि का ही अर्थ प्रकट होता है। साभिलाष होकर (ऋतुकामना से) आयी हुई स्त्री के गम्या होने पर भी उसे निरास करने वाले पुरुष को महाभारत में भ्रूणहा[4] तथा पुराणों में ब्रह्महत्या का भागी बतलाया गया है।[5] देवीभागवत ४।६।५२-३ के अनुसार भी कामार्त स्त्रियों को निराश करना उनकी हिंसा के समान है। ब्रह्मवैवर्तपुराण ४।३३।५०-५४ के अनुसार स्त्रियाँ प्रकृति की अंश हैं। उनके अनादर से प्रकृति का अनादर होता है। अतः कामार्त होकर एकान्त में उपस्थित स्त्री का त्याग जितेन्द्रिय पुरुष को भी नहीं करना चाहिए, अन्यथा वह नरक

१. द्र० कृत्यकल्पतरु व्य० का०, पृ० ५९८ एवं विवादरत्नाकर, पृ० ४०५ में कात्यायन के वचन।
२. ....दृष्टं संग्रहणं तज्ज्ञैर्नागतायाः स्वयं गृहे। नारद स्मृ० (स्त्रीपुं०) १२।६०।
३. स्वयमेवागतायान्तु पुंगृहे न तु दोषभाक्। कृत्यकल्पतरु, व्य०का० पृ० ५८२।
४. आदिपर्व ८३।३४। ५. मत्स्य ३२।३३; वराह २८।११-२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में गिरता है और उसके व्यवहार से दुःखी होकर वह स्त्री भी उसे शाप देती है। इस तरह कामिनी को निराश करने वाला पुरुष उसके वध का भागी होता है और उसके शाप से नष्ट हो जाता है। मोहिनी को सन्तुष्ट न करने पर उसके शाप से ब्रह्मा अपूज्य हो गये थे (ब्रह्मवै० ४।३०।७८)। कतिपय कामार्त अप्सराओं के मनोरथ को पूरा न करने के परिणाम स्वरूप ब्रह्मा आदि देवताओं को उनके शाप से अपूज्यता या अन्य किसी बाधा या दुर्गति का भागी बनना पड़ा था (ब्रह्मवै० ४।६२।४१-४)। इस तरह के विचार प्राचीन कथाओं में वक्ताओं ने अपनी मनःस्थिति के अनुसार व्यक्त किये हैं अथवा पुराणकारों ने कुछ कामुक पुरुषों को चारित्रिक लाञ्छन से बचाने के लिए इनका संकलन किया है। पूरे साहित्य में परिमाण की दृष्टि से नगण्य होने पर भी केवल इतने थोड़े से वचन भी अर्थ की दृष्टि से समाज के लिए अनर्थकर ही हैं। यद्यपि ऐसे वचनों के सन्दर्भ में कामशास्त्रीय दृष्टिकोण से सहानुभूति पूर्वक विचार किया गया है और कल्याणमल्ल ने वात्स्यायन के विचारों के आधार पर अपना यह मत व्यक्त किया है कि युवती नारी अभीष्ट पति के अभाव में काम-बाणों से विकल होकर उन्माद एवं मरण की अवस्था को प्राप्त होने लगती है। अतः स्वेच्छया उपस्थित पर-नारी के गम्या होने पर नीतिमान् पुरुष यदा-कदा उसे सन्तुष्ट कर सकता है, किन्तु सर्वदा नहीं (अनङ्गरङ्ग ८।१३)। धर्मशास्त्रीय दृष्टि से ऐसे वचनों की कोई मीमांसा नहीं की गयी है। किन्तु ऐसे वचनों को दुराचारी स्त्री-पुरुषों के दुराचार के औचित्य के प्रमाण रूप में कदापि उद्धृत नहीं करना चाहिए, अन्यथा समाज के लिए ऐसे वचन नैतिक संकट का कारण बन सकते हैं।

कामशास्त्र में कामार्त पुरुष के काम की दश अवस्थाओं[1] में से अन्तिम (चरम) अवस्थाओं को प्राप्त हो जाने की स्थिति में उसकी प्राणरक्षा के मानवीय आधार पर उसके लिए परस्त्रीगमन की स्वीकृति दी गयी है।[2] ज्योतिरीश्वर (११वीं शताब्दी के अन्त में) ने अपने ग्रन्थ पञ्चसायक (४।१६) में कहा है कि नवयौवन में अविवाहित रह जाने के कारण जिस पुरुष को कामिनी सुलभ न हो और जो स्वेच्छाचारी हो, वह यदि काम की उन्माद, मूर्च्छा और मरण जैसी अन्तिम घातक दशाओं को प्राप्त होने लगे, तो उसकी रक्षा हेतु ही कश्यप, मरु, क्षेमेन्द्र और वात्स्यायन जैसे आचार्यों ने परस्त्रीगमन का विधान किया है। यद्यपि यह आचरण नितान्त अधर्मपूर्ण है, किन्तु कामशास्त्रियों ने कामुकाधम पुरुषों की प्राणरक्षा के ध्येय से ही इसे विहित किया है। कोक्काक ने कहा

१. काम की १० अवस्थाएं हैं—नेत्रानुराग, अनुरागपात्र के प्रति आसक्ति, उसकी प्राप्ति विषयक सङ्कल्प, अनिद्रा, कृशता, अन्य विषयों के भोग के प्रति वितृष्णा, लज्जाबोध का त्याग, उन्माद, मूर्च्छा और मरण।—कामसूत्र ५।१।५; रतिरहस्य १३।२-३०; अनङ्गरङ्ग ८।११; रुद्रट : काव्यालं० १४।४-५।

२. कामसूत्र ५।१।३; पञ्चसायक ४।१६; रतिरहस्य १३।१-४; अनङ्गरङ्ग ८।१२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है कि स्त्री, धन, भूमि तथा पुण्यकर्म पुनः भी हो सकते हैं, किन्तु शरीर पुनः नहीं मिल सकता (रतिरहस्य १३।४)। अतः काम की विषम दशाओं को प्राप्त पुरुष के लिए ही ऐसा विधान है, सबके लिए नहीं, क्योंकि यह आयु और यश का नाशक एवं अधर्मजनक है (रतिरहस्य १३।१)। कामशास्त्र में कुछ अन्य परिस्थितियों में कतिपय स्त्रियों से निहित स्वार्थों की सिद्धि हेतु भी समागम की अनुमति दी गयी है।[1] किन्तु ऐसे आचरण को कभी भी धर्मसम्मत नहीं कहा गया है। कामशास्त्रियों के अनुसार भी परस्त्री की सुसाध्यता, उसकी निर्विघ्न प्राप्ति, गम्यता, आयति (भावी परिणाम) एवं वृत्ति आदि के विषय में सम्यक् रूप से विचार करने के पश्चात् ही परस्त्रीगमन में प्रवृत्त होना चाहिए, अन्यथा नहीं।[2] वात्स्यायन (कामसूत्र १।५।३) का कथन है कि हीनवर्ण की परस्त्री, वेश्या एवं पुनर्भू के साथ रमण की न तो धर्मशास्त्रों में अनुमति दी गयी है और न उसका निषेध ही किया गया है। तात्पर्य यह है कि वात्स्यायन के अनुसार अपरिहार्य स्थिति में ऐसी स्त्रियों के साथ रमण किया जा सकता है। कोक्कोक (रतिरहस्य १३।६) ने अपरिहार्य अवस्था में द्विजेतर वर्ण की ऐसी स्त्री से रमण की संस्तुति की है जिसका संसर्ग पाँच पुरुषों से हो चुका हो। कामसूत्र (१।५।६, तु० अनङ्गरङ्ग ८।१४) के अनुसार यदि कोई उत्तम वर्ण की स्त्री स्वैरिणी हो तथा अन्य पुरुषों के संसर्ग से अपना चरित्र नष्ट कर चुकी हो तो उसके साथ समागम वेश्यागमन के समान होने से धर्मपीडाकर नहीं होता। कामशास्त्र में यह भी निर्देश प्राप्त होता है कि कैसी स्त्रियाँ सरलता से सिद्ध हो सकती हैं।[3] किन्तु ऐसी स्त्रियों में से भी वात्स्यायन (कामसूत्र १।५।३२; तु० रतिरहस्य १३।६-७) ने कुष्ठिनी, उन्मत्ता, पतिता, रहस्योद्घाटन करने वाली, प्रकाशतः (जनसमक्ष में) प्रस्ताव करने वाली, गतयौवना, अतिश्वेत या अतिकृष्ण वर्ण की, दुर्गन्धयुक्त, सखी, प्रव्रजिता तथा अपने किसी सम्बन्धी, मित्र, श्रोत्रिय ब्राह्मण एवं राजा की स्त्रियों को अगम्या बतलाया है। ज्योतिरीश्वर (पञ्चसायक ४।२४) के अनुसार भी कामी पुरुषों के लिए अज्ञात स्त्री, शिष्या, गर्भिणी भ्रूणघातिनी, मृतवत्सा, दुष्ट स्वभाव वाली, अस्पृश्या तथा सगोत्रा स्त्रियाँ भी सर्वथा अगम्या हैं। परस्त्री के शीलविध्वंस की कुछ युक्तियाँ क्षेमेन्द्र ने भी नर्ममाला (२।१४-६) में बतलायी हैं, किन्तु उन्होंने ऐसी चर्चाएं वस्तुतः समाज को नैतिक पतन से उबारने एवं चरित्र रक्षा के प्रति सचेष्ट करने के ध्येय से ही की हैं।

परस्त्री में आसक्ति के कारण मरणोन्मुख कामावस्था को प्राप्त होने वाले कामी पुरुषों के एक दो उदाहरण भी प्राचीन साहित्य में प्राप्त होते हैं। राजतरङ्गिणी ४।१७-

---

१. कामसूत्र १।५।६-२६; रतिरहस्य १३।८-११।
२. वही ५।१।२; रतिरहस्य १३।१३।
३. वही ५।१।५२; रतिरहस्य १३।२९-३४; अनङ्गरङ्ग ८।१७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

३८ के अनुसार प्रतापादित्य विरुद (उपनाम) वाला राजा दुर्लभक अनेक रानियों के होते हुए भी एक सेठ की पत्नी में आसक्त होकर कामज्वर से मरणासन्न हो गया तो उस सेठ ने राजा से अनुरोध किया कि आप अपने प्राणों की रक्षा हेतु धर्माधर्म तथा यश-अपयश का विचार छोड़कर मेरी पत्नी को ग्रहण करें, अन्यथा में उसे नर्तकी रूप में देवमन्दिर में अर्पित कर देता हूँ, जहां से आप उसे ग्रहण कर सकेंगे। इस तरह सेठ के आग्रह पर राजा ने उसे ग्रहण कर लिया था और कालान्तर में उसे राजमहिषी बनाया था। किन्तु सभी पुरुष ऐसे नहीं थे। मरणासन्न कामावस्था में भी परस्त्रीगमन से विरत रहने वाले शिवि नरेश सदृश पुरुष भी प्राचीन समाज में थे (द्र० पीछे, पृ० १५८ टि० ४)। यह उल्लेखनीय है कि घातक कामदशाओं में भी कामी पुरुष की रक्षा हेतु परस्त्रीगमन की स्वीकृति कामशास्त्रियों ने अपने दृष्टिकोण से दी है। उनका अपने शास्त्र तथा उसके प्रयोक्ता कामुक जनों के प्रति विशेष पक्षपात स्वाभाविक ही है। भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्य अपनी एक गौरवमयी दार्शनिक विचारधारा की वैज्ञानिक कसौटी में परीक्षित होने के पश्चात् स्थापित हुए हैं। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार युवास्था में स्त्रीसम्बन्धी कष्ट अथवा परस्त्री में आसक्ति या तद्विषयक कामज्वर से अज्ञानी, असदाचारी तथा पापात्मा पुरुष ही पीडित हो सकते हैं। ऐसे पुरुषों के लिए परस्त्रीगमन की स्वीकृति सामाजिक हित की दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती। आयुर्वेद और धर्मशास्त्र में कामी पुरुषों को इतनी छूट नहीं दी गयी है।

अतिचार की प्रवृत्ति विषयक उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर प्राचीन समाज को नैतिकता की दृष्टि से अविकसित या अनैतिकता के प्रति सहिष्णु मान लेना नितान्त अनुचित होगा। ये उदाहरण प्राचीन काल के बृहत्तर भारत के सहस्राधिक वर्षों के साहित्य से संकलित हैं और उसमें वर्णित दाम्पत्य के उच्च आदर्शों एवं स्पृहणीय निदर्शनों के समक्ष पूर्णचन्द्र की कलाओं के मध्य उसके कलंक के समान धूमिल, अपवाद स्वरूप तथा आनुपातिक दृष्टि से अत्यल्प हैं। वैदिक साहित्य में अनैतिकता के उदाहरण गिने-चुने ही हैं। रामायण और महाभारत में भी ऐसे उदाहरण अधिक नहीं हैं। इतिहास-पुराण, बौद्ध और जैन साहित्य तथा काव्यग्रंथों में व्यभिचार के जो उल्लेख हैं उनका उद्देश्य इसको गर्हित बतलाते हुए मर्यादित दाम्पत्य के आदर्शों को गौरवान्वित करना ही है। इतिहास-पुराण जैसे महनीय साहित्य के प्रणेता ऋषियों के अनुसार आरम्भिक युगों में दुराचार की दुष्प्रवृत्ति प्रायः नहीं के समान थी। वे मानते हैं कि युगापकर्ष के साथ इसका दुष्प्रचार होता है और कलियुग में यह दुष्प्रवृत्ति चरम सीमा तक बढ जाती है। अतः हमें पूर्वजों के चरित्र पर कीचड़ उछालने की अपेक्षा वर्तमान पीढियों की चारित्रिक विकृति के निवारणार्थ ऐतिहासिक साहित्य से नैतिकता और मर्यादा की यथासंभव शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अष्टम अध्याय

अतिचार का दुष्परिणाम

अतिचार विषयक जो भी उदाहरण प्राचीन साहित्य में जहाँ भी हैं वहाँ उनकी चर्चा गर्हित दृष्टि से ही की गयी है। प्राचीन साहित्य में ऐसे असंख्य वचन हैं जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि—(१) इसे समाज में सहन नहीं किया जाता था, (२) व्यभिचारी स्त्री पुरुषों का सामाजिक बहिष्कार किया जाता था। (३) व्यभिचार के घातक दुष्परिणाम बतलाये गये हैं। इसके अतिरिक्त इसे (४) पापपूर्ण बतलाया गया है और यह कल्पना की गयी है कि (५) इसके फलस्वरूप नरक में तथा (६) पुनर्जन्म में भी कष्ट भोगना पड़ता है।

१–अतिचार की अक्षम्यता—

धर्मशास्त्रों में नियोग व्यवस्था के अतिरिक्त परस्त्रीगमन की स्वीकृति कथञ्चिदपि और किसी को भी नहीं दी गयी है। नियोग के भी जो प्रमुख उदाहरण प्राचीन साहित्य में हैं वे अंगुलियों में गिनाने से अधिक नहीं हैं। कुशजातक में बाँझ रानियों को सन्तान लाभ हेतु परपुरुष समागम की छूट के उल्लेख को भी नियोग व्यवस्था का ही एक शिथिल रूप माना जा सकता है। महाभारत (अनु० पर्व २।४२-७१) एवं लिङ्गपुराण (पू० २९।४८-६३) में विप्र सुदर्शन की पत्नी के द्वारा अतिथि को आत्मदान विषयक कथा का तात्पर्य अतिचार की सहिष्णुता को द्योतित करना नहीं, अपितु अतिथि सेवा रूप धर्म का उपदेश देना है। वहाँ अतिथि वेश में आये धर्म ने सुदर्शन से यह स्पष्ट कहा है कि उसकी पतिव्रता पत्नी को वासना की दृष्टि से देखने में कोई भी पुरुष समर्थ नहीं है, क्योंकि वह पातिव्रत्य के गुणों से स्वयं संरक्षित है। अतः उसे कोई धर्षित नहीं कर सकता (अनु०पर्व २।८१-२)। इसी प्रसङ्ग में लिङ्गपुराण (पू० २९।६२-३) में धर्म ने कहा है कि उसने मन से भी उसके साथ संसर्ग नहीं किया है। वह तो केवल उसके श्रद्धाभाव की परीक्षा लेने आया था। श्रीमद्भागवत ७।१४।११ में अतिथि की निष्पाप भाव से सेवा में पत्नी को भी नियोजित करने के उल्लेख में भी पत्नी का अतिथि को शरीर-समर्पण विधेय नहीं है। परस्त्रीगमन अधर्मजनक होने से अतिथि के लिए भी विहित नहीं है। शुक्रनीति १।३२४ में भार्या-पुत्र आदि सहित स्वयं अपने को भी अदेय न मानने वाले को ही वास्तविक दाता कहा गया है। यहाँ भी दान-भावना की प्रशंसा ही मुख्य उद्देश्य है। पत्नी के दान-विषयक कुछ उदाहरण प्राचीन साहित्य में प्राप्त होते हैं। स्कन्दपुराण ३।३।१४।६-६४ में एक ब्राह्मण की

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पत्नी की सिंह से रक्षा करने में विफल राजा भद्रायु के द्वारा उस ब्राह्मण के निर्बन्ध पर उसे अपनी रानी का दान देने को उद्यत होने की कथा के अन्त में शिव के द्वारा उस ब्राह्मण के वेश में उसकी दान-भावना की परीक्षा लिये जाने का ही उल्लेख है। किन्तु कुछ पुरुष वास्तव में अपनी पत्नी का दान करते थे। अङ्गुत्तर निकाय ३।३१६ में एक पति के द्वारा प्रव्रज्याग्रहण के पूर्व अपनी पत्नी का दान उसके इच्छित पुरुष को किये जाने का उल्लेख है (द्र०-बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन, पृ० १००)। गुप्त नरेश रामगुप्त ने प्रबल शत्रु शकराज के प्रस्ताव पर अपनी रानी ध्रुवदेवी को उसे देना स्वीकार कर लिया था, किन्तु चन्द्रगुप्त ने उस रानी के छद्मवेश में जाकर उसका वध किया था और कालान्तर में सिंहासनारूढ होने पर ध्रुवदेवी को राजमहिषी बनाया था (द्र० पीछे पृ० २०७)। राजतरङ्गिणी (४।२५-३७) के अनुसार एक सेठ ने अपनी पत्नी राजा प्रतापादित्य को दे दी थी, क्योंकि वह उस पर अत्यासक्तिवश अतिकृश हो गया था। पति द्वारा पत्नी को अन्य पुरुष के उपभोग हेतु देने की प्रवृत्ति कुछ स्त्रियों को क्षम्य नहीं थी। कथासरित्सागर ७।९।७३-१३० के अनुसार एक पति ने अपनी पत्नी को एक सहस्र वस्त्रों तथा पाँच सौ अश्वों के वदले एक रात के लिए एक वणिक् को दिया तो वह सदा के लिए पति को छोड़ कर उसी की पत्नी वन गयी थी। नैतिक आदर्शों के पक्षपाती समाज में किसी पति का अपनी पत्नी को दूसरे को देना कदापि प्रशंसनीय नहीं माना जा सकता था। धर्मशास्त्रों में पत्नी का दान आपत्काल में भी वर्जित बतलाया गया है।[1]

रामायण (७।३४।४१) में रावण के द्वारा बाली के साथ सन्धि में परस्पर अपने स्त्री-पुत्रों आदि को भी अविभक्त कहना अदूरदर्शितापूर्ण, अव्यावहारिक, परम्परागत मूल्यों के विरुद्ध और आसुरी प्रवृत्ति का परिचायक है। ऐसी सन्धि का कभी व्यवहार में पालन भी नहीं हुआ था। जातकों में दो कथाएँ ऐसी हैं जिनमें स्त्री के व्यभिचार के प्रति सहिष्णुता व्यक्त की गयी है। अपनी पत्नी के व्यभिचार दोष से खिन्न एक शिष्य को सान्त्वना देने के ध्येय से उसके आचार्य ने कहा है कि नदी, मार्ग, पानागार (मदिरालय) तथा प्रपा (प्याऊ) के समान स्त्रियों का भी उपयोग सभी जन कर सकते हैं (जातक, ६५)। इसी तरह एक अमात्य के द्वारा रानी को दूषित किये जाने पर क्रुद्ध राजा से उसके दूसरे अमात्य ने उसे क्षमादान का परामर्श देते हुए कहा है कि महानदी का जल सभी प्राणी पीते हैं, उससे वह अनदी नहीं होती (जातक सं० १९५)। श्री हरदत्त वेदालङ्कार ने केवल इन दो जातकों के आधार पर यह कहा है कि "ईसा की पहली शतियों.................तक सतीत्व का आदर्श सर्वमान्य नहीं हुआ था"— (हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० १२८)। उनका यह निष्कर्ष स्वीकरणीय नहीं

---

१. याज्ञ० स्मृ० २।१७५; नारद स्मृ० ४।४५; अग्नि २२७।२६; स्क०१।२।४।५२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। जातक कालीन अनेक नारियाँ भी सतीत्व के आदर्शों का पूर्णतः पालन करती थीं (द्र०—पीछे, पृ० १७०)। तत्कालीन पुरुष भी अपनी स्त्रियों से सतीत्व-पालन की पूर्ण अपेक्षा रखते थे। इसी कारण उपर्युक्त दो दृष्टान्तों में से प्रथम में शिष्य को दुःखी तथा दूसरे में राजा को क्रुद्ध देखा जाता है। जातकों में कथाओं के माध्यम से प्रदत्त उपदेश का ही प्रमुख महत्त्व है और वही उनका सत्य है। उनकी कथाएँ तो काल्पनिक होती ही थीं। अतः उनमें वर्णित घटनाओं को सत्य या प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। वसिष्ठ धर्मसूत्र (१७।१९), नारदस्मृति (स्त्रीपुंस १२।५०) तथा बृहत्पराशरस्मृति (७।३६३) में कौमार पति को त्याग कर अन्य पुरुष से सहवास करने के पश्चात् पुनः उसी (कौमार पति) के पास लौट आने वाली पुनर्भू के उल्लेख से यह विदित होता है कि कुछ पुरुष ऐसे भी थे जो परपुरुष के साथ रह चुकी अपनी व्यभिचारिणी पत्नी को पुनः स्वीकार कर लेते थे। स्कन्दपुराण (३।३।२२।५०-६२) के अनुसार एक वेश्यागामी ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को भी जारों से धन लेकर रतिदान करने की अनुमति दी थी। राजतरङ्गिणी ३।४९७-५२२ के अनुसार बालादित्य के गृहजामाता दुर्लभवर्धन ने मन्त्री खङ्ख के साथ अपनी पत्नी अनङ्गलेखा (जिसमें विरक्ता के सभी लक्षण थे) के अवैध सम्बन्ध को देख कर भी स्त्री को सर्वसामान्य इन्द्रिय विषय मानते हुए चुपचाप सहन कर लिया था। राजतरङ्गिणी ८।२५७१-४ में षष्ठचन्द्र के साथ अपनी पत्नी के सम्बन्ध विषयक बातें जानकर भी क्षमाशील बने रहने वाले अलङ्कारचक्र की निन्दा व्यञ्जित की गयी है। प्राचीन समाज में ऐसे पुरुषों को कभी भी प्रशंसनीय नहीं समझा जाता था। कश्मीर के राजा यशस्कर ने जिस वेश्या पर अनुरक्त होकर उसे राजमहिषी बनाया था, वह रात में पहरा देने वाले एक चाण्डाल युवक में आसक्त हो गयी थी। इससे अभिज्ञ होने पर भी राजा ने उसे वध दण्ड से दण्डित नहीं किया। अतः वह निन्दा का पात्र बना था (राज० ६।७४-८३)। क्षेमेन्द्र ने परपुरुष से अनुराग रखने वाली और पति से विमुख रहने वाली स्त्री में आसक्ति रखने वाले पति को पशु कोटि का माना है (कलाविलास ३।५०)। सामान्यतः कोई भी मनस्वी पुरुष अपनी पत्नी का परपुरुष के साथ सम्बन्ध सहन नहीं करता था।

वैदिक साहित्य में व्यभिचार की स्वीकृति अथवा उसकी तितिक्षा का उल्लेख नहीं मिलता। ऋग्वेद में 'रहसू' तथा 'अग्रू' के पुत्र-त्याग के उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि प्रच्छन्न दुराचार का रहस्योद्घाटन होने पर समाज इसे सहन नहीं करता था।[1] अथर्ववेद ६।११८।३ में एक दुराचारी पुरुष ने अप्सराओं से यह प्रार्थना की है कि मैं जिसकी जाया के साथ रमण करूँ वह मुझसे कटु वचन न कहने पाये। उसके इन वचनों से स्पष्ट है कि दुराचारी पुरुष को सदा भय बना रहता था और समाज उस पर अंगुली उठाने से चूकता नहीं था। शतपथ ब्राह्मण (१।३।१।२१) में

१. द्र०—पीछे, पृ०, २२०-२२१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यजमान की पत्नी के लिए 'परःपुंसा' आदि शब्दों के प्रयोग के आधार पर पत्नी की पवित्रता पर ध्यान न देने की कुछ आरम्भिक लेखकों की कल्पना का खण्डन करते हुए वैदिक इण्डेक्स (१, पृ० ३६६-७, तथा वैदिककोश पृ० २१७, २६२) के लेखकों ने बतलाया है कि उसका तात्पर्य यज्ञ में पत्नी के पुरुष से परे होने पर ध्यान न देने से ही है। रामायण काल में आर्यों को अपने परिवार की किसी नारी का परपुरुष के द्वारा स्पर्श भी असह्य था। विराध के द्वारा सीता को पकड़े जाने पर राम ने स्वीकार किया था कि यह उनके लिए बड़े दुःख की बात थी।[1] प्राचीनकाल के कुछ पुरुष यह भी मान बैठे थे कि परपुरुष के स्पर्श से भी नारी अशुद्ध हो जाती है (ब्रह्मवै० ४।१८।११०)। ऐसे पुरुषों को यह समझाने की भी चेष्टा की गयी है कि आपत्काल में परपुरुष के स्पर्श मात्र से स्त्रियाँ दूषित नहीं होती।[2] प्राचीन समाज के पुरुष अपनी पत्नी की शील-विच्युति की आशङ्का मात्र से क्षुब्ध हो उठते थे। अनेक पुरुषों को अपनी पत्नी के तन या मन में भी परपुरुष-प्रेक्षण जन्य किसी प्रकार का भी विकार सह्य नहीं था। जमदग्नि ने चित्ररथ गन्धर्व की जलकेलि को देखने से किञ्चित् विकारयुक्त रेणुका का परशुराम के हाथों शिरश्छेदन करवाया था।[3] हरिवंशपुराण ३।५।२१-३ के अनुसार राजा जनमेजय ने अपनी रानी वपुष्टमा को अश्वमेध में मारे गये अश्व में प्रविष्ट इन्द्र के द्वारा दूषित किये जाने पर यह कहा था कि इस असती को घर से निकाल दो। इसने मेरा शौण्डीर्य (स्वाभिमान), यश और सम्मान नष्ट कर दिया है। मैं इसे देखना तक नहीं चाहता। उसने यह मनोवैज्ञानिक तथ्य उद्घाटित किया है कि जिसकी पत्नी परपुरुष के द्वारा धर्षित की गयी हो उसे न तो भोजन स्वादिष्ट लगता है और न वह एकान्त में सुख से सो पाता है। उसने कहा है कि कुत्ते के द्वारा चाटी गयी आहुति के समान ऐसी स्त्री का पुनः भोग नहीं करना चाहिए। हरिवंशपुराण २।९६।६४ में ही नारी का परपुरुष के द्वारा धर्षण उसके पति के लिए मृत्यु से भी अधिक कष्टप्रद बतलाया गया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार व्यभिचारिणी स्त्री का पति जीवित होते हुए भी मृतक के समान, अशुचि तथा दुःखी हो जाता है।[4] ऐसी स्त्री का आलिङ्गन करने वाला पति श्रीविहीन और तेजहीन हो जाता है।[5] पुंश्चली स्त्री के पति से सहानुभूति रखने वाले पुराणकार ने कहा है कि उसे वन में चले जाना चाहिए, क्योंकि उसके लिए घर वन से भी कष्टदायक होता है (द्र०-पृ० २३० टि० २)। कथासरित्सागर

---

१. परस्पर्शात् तु वैदेह्या न दुःखतरमस्ति मे। रामा० ३।२।२१।
२. न परस्पर्शमात्रं हि स्त्रीणामापदि दूषणम्। कथा० ५।२।१४६।
३. वनपर्व ११६।६-१४; भाग० ९।१६।३-७।
४. जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखी दुःशीलापतिरेव यः। ब्रह्मवै० २।६।६७।
५. तस्या आलिङ्गने भर्ता भ्रष्टश्रीस्तेजसा हतः। ब्रह्मवै० ४।१८।१०६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१०।८।९८-१५२ के अनुसार प्रवास से लौटे हुए तीन पुरुष अपनी पत्नियों को व्यभिचार में लिप्त पाने पर विरक्त होकर वन को चले गये थे। पद्मपुराण (६।२२३।९-१४) के अनुसार अपनी पत्नी के व्यभिचारिणी हो जाने पर दुःखी एवं उपहासास्पद होने तथा उस (पत्नी) की भी अवज्ञा का पात्र हो जाने से खिन्न होने पर एक ब्राह्मण विष खाकर मर गया था। किन्तु अधिकांश पुरुष व्यभिचारिणी स्त्री को ही त्याग देते थे।

अपनी पत्नी के परपुरुष में अनुरक्त होने या व्यभिचारिणी हो जाने की जानकारी हो जाने पर भी कुछ पुरुष उसे अपने चरित्र को सुधारने (पुनः सदाचारिणी होने) का अवसर देने के लिए अथवा परिवार एवं दाम्पत्य जीवन की गाड़ी किसी तरह चलते रहने देने की भावना से क्षमा कर देते थे अथवा उसके दुराचार के प्रति उपेक्षाशील हो जाते थे। किन्तु अधिकांश पुरुष दाम्पत्य जीवन के विघटन की चिन्ता किये बिना अपनी व्यभिचारिणी पत्नी को त्यागने में कोई संकोच नहीं करते थे। यह प्रवृत्ति संभवतः वैदिक काल में भी रही होगी। अथर्ववेद १०।१।३ में पति के द्वारा निष्कासित पत्नी के अपने पिता या बान्धवों के घर जाने के उल्लेख से यह सूचित होता है कि कभी-कभी कोई पति अपनी पत्नी के दोषों को नहीं सह पाता था और उसे त्याग देता था। महाकाव्यों और पुराणों में यह उल्लेख है कि गौतम ने इन्द्र के द्वारा दूषित की गयी अपनी पत्नी अहल्या को शिला होने का शाप दिया था।[1] कहीं-कहीं गौतम के द्वारा उसे त्यागे जाने का भी उल्लेख है।[2] कभी-कभी कोई नारी चारित्रिक लाञ्छन के मिथ्यारोप के कारण भी पति के द्वारा त्याग दी जाती थी। राम ने सीता को चारित्रिक दृष्टि से शुद्ध होने पर भी लोकापवाद के भय से निर्वासित कर दिया था,[3] क्योंकि रावण के द्वारा अपहृत सीता को राम के द्वारा स्वीकार किये जाने पर राज्य की प्रजा ने प्रतिकूल प्रतिक्रिया व्यक्त की थी।[4] राम ने स्वयं भी यह मान लिया था कि परगृह में रही हुई नारी को पुनः ग्रहण करना कुलीन पुरुषों के लिए उचित नहीं है।[5] वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती के अतिरिक्त शेष छः ऋषि-पत्नियों ने अग्नि में से शिव के वीर्य को धारण किया और उसके असह्य होने पर जब वे उसे गङ्गा में त्याग कर घर लौटी तो उनकी विकृत आकृतियों को देखकर उनके पतियों ने उन्हें स्वैरिणी कहकर घर से निकाल दिया था।[6] एक अन्य कथा के अनुसार कामार्त अग्नि के द्वारा अपनी शिखाओं से उन ऋषि-पत्नियों का स्पर्श मात्र किये जाने पर भी उन्हें उनके पतियों ने त्याग दिया था।[7] पद्मपुराण(२।८६।२-८, द्र०वही, ५।९२।६१-७०) के अनुसार वाराणसी के सुवीर

---

१. रामा० १।४८।२९-३१; ७।३०।३६; ब्रह्मवै० ४।६१।४७, ५५।

२. ब्रह्मवै० ४।६१।५०।

३. रामा० ७।४५।१०-१३; रघु० १४।८४।

४. रामा० ७।४३।१६-२०।

५. वही, ६।११५।१६; द्र०वही, श्लोक १७-२०।

६. ब्रह्म गौ० १२।२-८।

७. ब्रह्मवै० ४।१८।७७-१२३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नामक वैश्य ने अपनी अनाचारिणी, स्वैरिणी, कलहकारिणी एवं परगृह में रहने वाली पत्नी को त्याग दिया था। पुराणों के अनेक वचनों से विदित होता है कि अनेक आचार्यों को यह अभीष्ट नहीं था कि पुरुष अपनी पत्नी के चारित्रिक दोषों को क्षमा करे। स्त्रियों के दोषों को क्षमा करने वाले पुरुष के विषय में कहा गया है कि वह अपने पितरों सहित रौरव नरक में यातना पाता है।[१] व्यभिचारिणी स्त्रियों के त्याग की संस्तुति अनेकत्र की गयी है।[२] पुराणों में परपुरुष के द्वारा संभुक्त स्त्री को पुनः ग्रहण करने का एक प्रसिद्ध उदाहरण बृहस्पति के द्वारा सोम से तारा को पुनः ग्रहण करने का ही है, किन्तु उसे ग्रहण करने के पूर्व बृहस्पति ने उसे चन्द्रमा के द्वारा स्थापित गर्भ को गिराने को कहा था।[३] एक जातक में एक पुरुष के अपनी व्यभिचारिणी पत्नी को त्यागने को उद्यत न होने की कथा अपवादपूर्ण मनःस्थिति की बोधक मानी जा सकती है।[४]

शारीरिक दृष्टि से अबला तथा आर्थिक दृष्टि से अस्वतन्त्र होने के कारण प्राचीन समाज की नारी अपने व्यभिचारी पति का यथोचित प्रतीकार नहीं कर पाती थी। इसमें सन्देह नहीं है कि सामान्यतः भारतीय नारी वैदिक काल से ही अपने पति का परस्त्री के साथ सम्बन्ध सहन नहीं करती थी। अथर्ववेद के मन्त्रौषध के कुछ प्रयोगों में पत्नी यह कामना करती है कि उसका पति केवल उसी का बना रहे, अन्य नारियों का नाम भी न ले।[५] कूर्मपुराण (पू० २३।४-२३) के अनुसार उर्वशी के साथ रमण करने वाले राजा दुर्जय से उसकी रानी ने प्रायश्चित्त करने को कहा था। सामान्यतः किसी भी मनस्विनी स्त्री को अपने दाम्पत्य जीवन में सपत्नी का नाम तक सह्य नहीं होता था।[६] किन्तु बहुविवाह (बहुपत्नीप्रथा) के प्रचलन वाले प्राचीन समाज में अनेक स्त्रियों की नियति से सपत्नी भी बँधी रहती थी। अनेक स्त्रियों को सपत्नी से कोई द्वेष नहीं रहता था। अपने पति का दासी या रखैल के साथ भी अवैध सम्बन्ध उन्हें सहना पड़ता

---

१. द्र० - ज्ञात्वैव योषितां दोषं क्षमते यो नराधमः।
स तिष्ठेन्नरके घोरे रौरवे पितृभिः सह ॥ पद्म १।५४।२६।

२. कूर्म उ० ३८।२९; गरुड पू० ११५।१; पद्म १।५४।२८; ४।१८।२३-४; भविष्य १।८।७०; द्र० याज्ञ० १।७२।

३. ब्रह्म ७।२६; ब्रह्माण्ड ३।६५।३७-८; भाग० ६।१४।६; वायु उ० २८।३६-७; विष्णु ४।६।२०-४; शिव ४।१४।२८-९; हरिवंश १।२५।३८।

४. द्र०-बुद्धकालीन धर्म और समाज, पृ० ५८, ६०।

५. अथर्व० ७।३८(३७)।१; ७।३९(३८)।४।

६. परं स्त्रीणां स्वभावोऽयं सर्वासां सुरसत्तमाः।
अपि सह्यो वज्रपातः सपत्न्या न पुनः कथा ॥ स्कन्द ६।१९३।६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

था। कुछ स्त्रियाँ अपने हृदय में पत्थर रख कर पति को उसकी प्रेमिका के पास जाने देती थी।[1] हाल ने गाथासप्तशती १।८४ में एक ऐसी नारी का वर्णन किया है जो अपने पति को उसकी प्रेमिका से मिलाने हेतु दूतीकर्म करती है। पुराणों में एक ऐसी नारी का भी उल्लेख है जो अपने घर में वेश्या को रख लेने वाले पति की भी सेवा करती थी।[2] 'अपने कोढ़ी पति की इच्छानुसार उसे पीठ में बैठा' कर वेश्या के घर को प्रस्थान करने वाली एक पतिव्रता की कथा भी पुराणों में प्राप्त होती है।[3] अपने पति को देवतातुल्य मानने और उसकी इच्छा में व्याघात न करने की भावना से ही ये पतिव्रताएँ उसकी व्यभिचार की प्रवृत्ति को भी सहन कर लेती थी।

किसी नारी को दूषित करने वाले व्यभिचारी पुरुष को उसके पति, संरक्षक तथा समाज के भी आक्रोश और प्रतिशोध का भाजन बनना पड़ता था। प्राचीन काल में किसी नारी के पति या संरक्षक का ही यह प्रथम कर्तव्य माना जाता था कि वह उसे दूषित करने वाले को दण्डित करे अथवा अन्य किसी तरह से उसका प्रतीकार करे। किसी नारी को दूषित करने या उसका अपहरण करके ले जाने वाले अपराधी की उपेक्षा करना एवं उस नारी का उद्धार न करना उसके पति या संरक्षक पुरुष के लिए प्रशंसनीय नहीं माना जाता था।[4] संभवतः इसीलिए बृहस्पति ने अपनी पत्नी तारा के उद्धार हेतु उसके अपहर्ता सोम से युद्ध किया था और उसके द्वारा तारा में स्थापित गर्भ का त्याग करवानेके पश्चात् ही उसे स्वीकार किया था (द्र० पीछे पृ० २५८ टि० ३)। राम ने रावण का वध करके यह निदर्शन प्रस्तुत किया था कि पत्नी का धर्षण या अपहरण करने वाले के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए।[5] धर्मशास्त्रों में पत्नी का हरण करने वाले को आततायियों में गिनाते हुए उसके तात्कालिक वध की अनुमति दी गयी है।[6] किसी की पत्नी के साथ व्यभिचार करने वाले (पत्न्यभिगामी) को वध्य आततायियों में गिनाया गया है।[7] प्रत्येक पुरुष को स्पष्टतः यह अधिकार दिया गया है

---

१. व्रज ममैवैकस्या भवन्तु निःश्वास रोदितव्यानि। मा तवापि तया विना
दाक्षिण्यहतस्य जायन्ताम्॥ ध्वन्या० १।४ में उद्धृत गाथा की संस्कृत छाया।

२. नारद उ० १६।५९-८९; स्कन्द २।७।१८।४०-६३।

३. गरुड पू० १४२।१६-२६; पद्म १।५३।८-१४; मार्कं० १६।१४-८४;
स्कन्द ५।३।१७१।४०-६०; ५।३।१७२।२१-३१।

४. परग्रस्तां स्त्रियं त्यक्त्वा न प्रशंस्यं तपो मुने। ब्रह्मवै० २।६०।८५।

५. यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणं प्रतिमार्जता।
तत्कृतं रावणं हत्वा मयेदं मानकाङ्क्षिणा॥ रामा० ६।११५।१३।

६. वसिष्ठ ध० सू० ३।१५-६; विष्णुस्मृ० ५।१९१; नारद स्मृ० १८।८८;
पद्म १।५०।५८-९। ७. विष्णुधर्मो० २।७२।१०२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कि वह अपनी पत्नी के साथ व्यभिचार करने वाले अपराधी का तत्काल वध कर दे।[१] यही नहीं, परस्त्री के साथ बलात्कार करने वाले को भी वध्य आततायियों में गिनाया गया है।[२] तात्पर्य यह कि प्रत्येक पुरुष को यह भी अधिकार था कि वह परस्त्री के साथ बलात्कार करने वाले अपराधी का भी घटनास्थल पर ही तत्काल वध कर सकता था। वस्तुतः प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी को धर्षित अथवा अपहृत करने वाले अपराधी का शस्त्र से अथवा शाप से प्रतीकार करता था। अहल्या को दूषित करने वाले इन्द्र को गौतम ने विफल होने का शाप दिया था, जिससे उसके वृषण भूमि में गिर पड़े थे (रामा० १।४८।१७-२८)। गौतम के द्वारा इन्द्र को अन्य प्रकार के शाप दिये जाने के विषय में अन्य कथाएं भी प्राचीन साहित्य में हैं। राम ने रावण के वध के अतिरिक्त सीता को पकड़ने वाले विराध का संहार किया था (रामा० अरण्यकाण्ड अध्याय ४) तथा सीता के चरण में चञ्चु-प्रहार करने वाले जयन्त की एक आँख की दृष्टि समाप्त कर दी थी (रामा० ५।३८।१२-३५)। महाभारत से विदित होता है कि भीम ने भरी सभा में द्रौपदी के वस्त्र उतारने वाले दुःशासन का वक्षःस्थल विदीर्ण करके रुधिर-पान की जो प्रतिज्ञा की थी (सभापर्व ६८।५२-३), उसे पूरा किया था (कर्णपर्व ८३।२८-९)। दुर्योधन के द्वारा अधोवस्त्र उठाकर अपनी नंगी बाँयी जाँघ को द्रौपदी को दिखाये जाने पर भीम ने उस (जाँघ) को तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी (सभा पर्व ७१।१२-४) और उसे पूरा भी किया था [शल्यपर्व ५८।४७]। उतथ्य ने अपनी पत्नी भद्रा का वरुण के द्वारा अपहरण किये जाने पर प्रतिशोध रूप में सम्पूर्ण समुद्र का जल पी लिया था (अनु० पर्व १५४।२२-८)। च्यवन के पुत्र प्रमति के द्वारा अपनी पत्नी का बलात् हरण करने वाले राजा नल (धूम्राश्व के पुत्र) को भस्म होने का शाप दिये जाने पर वह तत्क्षण भस्मीभूत हो गया था।[४] गालव की भार्या का अपहरण करने वाला एक दुराचारी शिष्य उसके शाप से बकयोनि को प्राप्त हुआ था।[५]

सदाचारी पुरुष अपनी ही नहीं परायी स्त्रियों का धर्षण करने वाले दुराचारियों का भी यथाशक्ति प्रतीकार करते रहे हैं। रामायण का सन्देश है कि परपुरुष के प्रधर्षण से अपनी ही नहीं, दूसरों की स्त्रियों की भी रक्षा करनी चाहिए।[६] इसी भावना से जटायु ने रावण से सीता के उद्धार के असफल प्रयास में प्राणोत्सर्ग किया था।[७] पुञ्जिकस्थला के साथ बलात्कार करने वाले रावण को ब्रह्मा ने यह शाप दिया था कि अब से किसी भी नारी के साथ बलात्कार करने पर उसके शिर के फटकर सौ टुकड़े

---

१. अग्नि २२७।३६। २. विष्णुस्मृ० ५।१९३।
३. शान्तिपर्व ३४२।२३। ४. मार्क० ११२।१-३।
५. स्कन्द १।२।७८७-९४। ६. यथाऽऽत्मनस्तथाऽन्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात्। रामा० ३।५०।८।
७. वही, ३।६७।१५-१६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हो जावेंगे।[1] रम्भा के साथ बलात्कार करने पर भी रावण को नलकूबर से यह शाप मिला था कि किसी अनिच्छुक स्त्री के साथ बलात्कार करने पर उसके शिर के फटकर सात टुकड़े हो जावेंगे।[2] इसीलिए तब से उसने न तो किसी अन्य अनिच्छुक स्त्री[3] और न सीता[4] के साथ ही बलात्कार किया था। महाभारत (वनपर्व १३६ अध्याय) के अनुसार रैभ्य मुनि ने अपनी पुत्रवधू का घर्षण करने वाले यवक्रीत का वध अपनी एक जटा के अग्नि में हवन से उत्पन्न पुरुष से करवाया था। देवशर्मा के शिष्य विपुल ने अपने योगबल से उसकी पत्नी की इन्द्र के घर्षण से रक्षा की थी और इन्द्र को अपूज्य होने का शाप दिया था (द्र० पीछे पृ० २०८)। प्राचीन साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यभिचार को स्त्री-पुरुषों का आपसी मामला मानकर उन्हें इसका अवसर देने की कोई प्रवृत्ति समाज में नहीं थी।

२–व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों का सामाजिक बहिष्कार—

गुरुतल्पगमन एवं अगम्यागमन जैसे दुष्कर्म (पाप) को धर्मसूत्रों के समय से ही पतन का हेतु माना जाता था और पतित को त्याज्य समझा जाता था। गौतम (ध०सू० ३।३।१) के अनुसार पिता तथा आचार्य की पत्नी, मातृपक्ष से पाँच पीढी एवं पितृपक्ष से सात पीढी के भीतर के सम्बन्ध की स्त्री तथा भगिनी आदि के साथ मैथुन करने वाले पुरुष का पतन हो जाता है। आपस्तम्ब (ध० सू० १।७।२१।८-६) के अनुसार माता-पिता के योनि-सम्बन्ध की स्त्री, पुत्री, माता की सखी, गुरु (पिता) की सखी तथा अन्य परस्त्रियों के साथ मैथुन करने वाले का पतन हो जाता है। यम (दण्डविवेक पृ० १८० में उद्धृत) का कथन है कि मौसी, माता की सखी, पुत्री, बुआ, मामी, भगिनी एवं सास के साथ मैथुन करने वाले का सद्यः पतन हो जाता है। पुराणों में भी गुरुतल्पगमन को पतन का हेतु माना गया है। ब्रह्मपुराण (२२३।३१) में कहा गया है कि गुरुतल्पी ब्राह्मण का ब्रह्मयोनि (ब्राह्मणत्व) से पतन हो जाता है। गरुडपुराण (१०७।६) में अगम्यागमन को पतन का हेतु बतलाया गया है। गौतम (ध० सू० ३।३।८) तथा आपस्तम्ब (ध० सू० १।७।२१।१०) के अनुसार जिन स्त्रियों के साथ व्यभिचार गुरुतल्पगमन की श्रेणी में नहीं आता उनके साथ अनैतिक सम्बन्ध को कुछ प्राचीन आचार्य पतन का हेतु नहीं मानते थे। किन्तु आपस्तम्ब (ध० सू० २।१०।२७।११-३) का अपना मत यह है कि किसी अन्य पुरुष की सवर्णा स्त्री के साथ एक बार रमण करने पर एक चौथाई, दूसरी बार में आधा, तीसरी बार तीन चौथाई तथा चौथी बार रमण करने पर पूर्णतः पतन हो जाता है। ब्रह्मवैवर्तपुराण (४।३३।५४-५) के अनुसार परस्त्रीगमन करने वाला अपनी दश पूर्व पीढियों के पितरों एवं दश आगामी पीढियों के पुरुषों सहित स्वयं अपना भी पतन

१. रामा० ६।१३।११-४। २. वही, ७।२६।५३-६।
३. वही, ७।२६।५९। ४. वही, ५।२०।६; ६।१३।१५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कराता है। स्कन्दपुराण (६।४४।४५) में भी परायी स्त्रियों के संसर्ग को अधःपतन का कारण माना गया है (सक्ताः स्त्रीषु पतन्त्यधः)। मनु (६।५८, तु०-नारद स्मृ० १२।८५) के अनुसार आपत्काल के अतिरिक्त किसी अन्य काल में ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ भ्राता की पत्नी के साथ नियोग धर्मानुसार समागम करने वाला भी पतित हो जाता है। बौधायन (ध० सू० २।२।४।१४) के अनुसार अज्ञान में चाण्डालीगमन करने पर ब्राह्मण का पतन होता है और ज्ञानपूर्वक ऐसा करने पर वह उसी के समान हो जाता है (तु०-चाण्डालीगमने तत्साम्यमवाप्नुयात्। विष्णुस्मृ० ५३।५)।

पतितों के सामाजिक बहिष्कार की प्रवृत्ति सर्वप्रथम धर्मसूत्रों में ही लक्षित होती है जहाँ उनके साथ किसी भी प्रकार का व्यवहार वर्जित बतलाया गया है।[1] बौधायन ने तो पतित तथा उससे उत्पन्न सन्तान का भरण-पोषण तक वर्जित बतलाया है।[2] महाभारत में स्पष्टतः यह निर्देश दिया गया है कि गुरुतल्पग को धर्म नहीं बतलाना चाहिए[3] और यहाँ तक कि उससे वार्तालाप भी नहीं करना चाहिए।[4] मनु (९।२३८-९) ने गुरुतल्पग जैसे महापातकियों को अभोज्य, अयाज्य, अपाठ्य तथा अविवाह्य बतलाया है, तात्पर्य यह है कि उनको एक पंक्ति में अपने साथ भोजन न करावे, न उनका यज्ञादि कर्म करावे, न उन्हें विद्या पढ़ावे और न उनका विवाह करे। वे सर्वधर्मबहिष्कृत होकर तथा हीन बन कर घूमा करें। उनके ज्ञाति-बान्धव तथा अन्य सम्बन्धी उन्हें त्याग दें। वे न तो दया के पात्र हैं और न अभिवादन के योग्य रह जाते हैं। मत्स्यपुराण २२७।६२-३ में यह निर्देश दिया गया है कि पतित के बान्धव उसके साथ घटोत्सर्गपूर्वक सम्बन्ध-विच्छेद करके अहोरात्र पर्यन्त अशौच मनावें और तत्पश्चात् उसके साथ वार्तालाप, उठना-बैठना, दाय-भाग तथा अन्य कोई भी लोक-व्यवहार न करें। विष्णुधर्मोत्तरपुराण २।७२।१४९-१५० में भी पतितों के ज्ञाति-सम्बन्धियों और बान्धवों को यह निर्देश दिया गया है कि वे उनके साथ वार्तालाप तथा अन्य किसी प्रकार का व्यवहार न करें। पुराणों में गुरुतल्पग को सर्वधर्मबहिष्कृत,[5] श्राद्ध में अपाङ्क्तेय[6] तथा श्राद्ध में उसका दर्शन भी वर्जित[7] बतलाया गया है। उसे ऐसे पापियों में गिनाया गया है जिनके दर्शन से भी पाप लगता है।[8] गुरुपत्नी आदि अगम्या स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने वाले पुरुष को धार्मिक कृत्यों के अयोग्य, अस्पृश्य एवं लोक तथा वेद में भी निन्दनीय बतलाया गया है।[9]

---

१. आप० ध० सू० १।७।२१।५; बौ० ध० सू० २।२।३।४२।
२. बौ० ध० सू० २।२।३।४१। ३. अनु० पर्व ३०।५। ४. वही ३०।४०।
५. स्कन्द ३।१।११।६६। ६. ब्रह्माण्ड ३।१९।३४; वायु उ० २१।३६; स्कन्द ३।२।१७।१६। ७. वायु उ० १६।३४।
८. ब्रह्मवै० ४।७८।५१। ९. वही २।३०।२०६-७; देवीभाग० ६।२४।७७-८१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वदारनिरत पुरुष को ऐसे सुपात्रों में गिनाया गया है जिनको प्रदत्त दान अक्षय होता है (द्र० स्कन्द १।२।५।१६), किन्तु परस्त्रीगामी को दान का अपात्र बतलाया गया है।[१] उसे श्राद्ध में अपाङ्क्तेय[२] एवं अभोजनीय[३] बतलाया गया है। परस्त्रीगामी पुरुष का स्पर्श नहीं करना चाहिए और यदि उसका स्पर्श हो जाय तो शुद्धि हेतु स्नान करना चाहिए।[४] परदाररत पुरुष को देखने पर शुद्धि हेतु सूर्य का दर्शन करना चाहिए।[५] परस्त्री में आसक्त चित्त वाला पुरुष सभी कर्मों (धार्मिक कृत्यों) के लिए अशुचि [होने से उनके सम्पादन के अयोग्य] है। वह शुभकर्मों के फल का भागी नहीं होता और सर्वत्र निन्दा का पात्र होता है।[६] परस्त्री-कामुक पुरुष के लिए काशी में निवास वर्जित बतलाया गया है।[७] वामनपुराण (१४।८४) के अनुसार यदि कोई ब्राह्मणी परस्त्री अन्य ब्राह्मण के साथ उसकी पत्नी के रूप में रहने लगती है तो वे दोनों सूतकी (अशौचयुक्त) हो जाते हैं और उनका अन्न गर्हणीय (अभोज्य) होता है।[८] परस्त्रीगामी शूद्र को भी उसके ज्ञातियों के द्वारा त्यागे जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[९] कन्यादूषक को मनु (स्मृ० ३।१६४) ने श्राद्ध में अपाङ्क्तेय बतलाया है। पुराणों में भी उसे श्राद्ध में निमन्त्रण के अयोग्य[१०] एवं श्राद्ध में वर्जित[११] बतलाने के साथ ही विवाह और दान में भी वर्जित बतलाया गया है।[१२] ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा गया है कि कन्या, पुत्रवधू, सास, भ्राता की पत्नी एवं भगिनी के साथ मैथुन करने वाला चाण्डालतुल्य एवं अस्पृश्य होता है। वह सूर्यमण्डल के दर्शन का अधिकारी नहीं रह जाता। वह शालग्राम, शालग्राम शिला का जल, तुलसी, तुलसीदल युक्त जल, सभी तीर्थों का जल तथा ब्राह्मणों के चरणों (के धोवन) के जल को छूने का भी अधिकारी नहीं रह जाता। वह देवता, गुरु एवं ब्राह्मण को नमस्कार करने योग्य नहीं रहता। उसका अन्न विष्ठा से भी अधिक अशुद्ध तथा जल मूत्र से भी अधिक अपवित्र होता है, जिसे देवता, पितर और ब्राह्मण नहीं ग्रहण करते। उसके अङ्गस्पर्श की हवा लगने से तीर्थ भी जैसे अङ्गारे से युक्त हो जाते हैं। उसके भार को वहन करने में पृथिवी अक्षम हो जाती है। उसके पाप से समस्त देश ही पतित हो जाता है, क्योंकि उसके स्पर्श

१. नारदपू० १२।५; स्कन्द २।१।२२।६।
२. वायु उ० २१।३६; ब्रह्माण्ड ३।१६।३५।
३. ब्रह्माण्ड ३।५३।५३-४; वायु उ० १७।८१; स्कन्द ६।२१७।१५।
४. पद्म १।१५।१४६-८; तु०-नारद पू० २३-२८। ५. ब्रह्म २२१।१४२।
६. ब्रह्मवै० २।५८।३०। ७. स्कन्द ४।२२।९७।
८. ब्राह्मणी ब्राह्मणस्यैव याऽवरोधत्वमागता।
तावुभौ सूतिकेत्युक्तौ तयोरन्नं विगर्हितम् ॥ वामन १४।८४।
९. पद्म ४।२३।१८-२२; ७।१९६; ७।२३।२९। १०. विष्णु ३।१५।५-८।
११. स्कन्द ५।३।५०।१०; ७।१।२०५।६६। १२. वही ५।३।५०।१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तथा उसके साथ वार्तालाप, शयन, आश्रय (निवास) और भोजन करने वाले मनुष्यों को उसी के समान पाप लगता है।[१] इसी पुराण में अन्यत्र कहा गया है कि जो ब्राह्मण शूद्रागमन करता है वह वृषलीपति कहलाता है और ब्राह्मण जाति से भ्रष्ट तथा चण्डाल से भी अधम हो जाता है। उसके द्वारा पितरों को प्रदत्त पिण्ड विष्ठा के समान तथा तर्पण मूत्र के समान होता है।[२] इस तरह धर्मसूत्रों, स्मृतियों तथा इतिहास-पुराण आदि में व्यभिचारी पुरुषों को प्रत्येक शुभकार्य के लिए अयोग्य और वर्जनीय बतला कर उनके सामाजिक बहिष्कार की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गयी थी। पराशर ने तो यहाँ तक कहा है कि जिस देश में अगम्यागमन होता हो उस देश (की यात्रा या उसमें निवास) को भी वर्जित करे।[3] व्यभिचारियों के सामाजिक बहिष्कार की ऐसी मनोवृत्ति निश्चयमेव किसी समाज को चारित्रिक दृष्टि से शुद्ध रखने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

स्त्रियों के लिए भी व्यभिचार पतन और परिणामस्वरूप सामाजिक तिरस्कार का कारण बनता है। धर्मसूत्रों के समय से ही यह भी मान्यता चली आ रही है कि हीनवर्ण के पुरुष के साथ समागम से स्त्री का पतन हो जाता है।[४] आपस्तम्ब के अनुसार त्रैवर्णिकों की स्त्रियों के लिए शूद्र के साथ मैथुन अशुचिकर होता है।[५] उन्होंने यह भी कहा है कि कुछ आचार्यों के मत से यह पतनीय कर्म है।[६] वृद्धहारीत (स्मृ० ६।१८७-८) ने भी हीनवर्ण के पुरुष के सेवन को स्त्रियों के विशेष पतनीय दोषों में गिनाया है। महाभारत में दीर्घतमा ने कहा है कि परपुरुष समागम से नारी का पतन हो जायेगा।[७] ब्रह्मवैवर्तपुराण ४।३३।५६ में भी यह कहा गया है कि पति का त्याग करके परपुरुषगमन करने वाली नारी दूषित हो जाती है। यद्यपि अनिच्छुक स्त्री को कोई जार[८] अथवा कोई बलिष्ठ पुरुष[९] बलात्कार से दूषित करे तो वह दूषित नहीं होती, किन्तु स्वेच्छया व्यभिचार में प्रवृत्त होने पर वह निश्चित रूप से दूषित (दुष्ट) हो जाती है।[१०] विज्ञानेश्वर ने (याज्ञ० ३।२६० में) स्वेच्छया (सकामभाव से) व्यभिचार में प्रवृत्त होने वाली नारी को पुरुष के तुल्य दोषी बतलाते हुए अपने मत के समर्थन

१. ब्रह्मवै० २।५२।२५।३४। २. वही २।३१।१६६-७।
३. अगम्यागामिता यत्र तं देशं परिवर्जयेत्। बृहत्परा० स्मृ० १।४६।
४. गौ० ध० सू० ३।३।८। ५. आप० ध० सू० १।७।२१।१२-३।
६. वही, १।७।२१।१८।
७. अभिगम्य परं नारी पतिष्यति न संशयः। आदिपर्व १०४।३६ (पूना सं०)।
८. अनिच्छया च शृङ्गारे स्त्री जारेण न दुष्यति। ब्रह्मवै० ४।६१।५३; ४।८१।५८
९. अकामा या बलिष्ठेन न स्त्री जारेण दुष्यति। ब्रह्मवै० २।५८।१०६।
१०. दुष्टा स्त्री निश्चितं साध्वी स्वेच्छा-शृङ्गारकर्मणि। ब्रह्मवै० ४।६१।५२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में कात्यायन के एक वचन को उद्धृत किया है, जिसमें समान दुष्कर्म के लिए पतित पुरुषों की भाँति ही स्त्रियों को भी पतन और दोष-प्राप्ति एवं शुद्धि का भागी बतलाया गया है।[१] ब्रह्मवैवर्तपुराण (१।१०।५६) के अनुसार गुरुपत्नी-समागम करने वाले को जितना दोष लगता है उतना ही दोष सकाम भाव से प्रवृत्त होने वाली गुरुपत्नी को भी लगता है।

वसिष्ठ के अनुसार परपुरुष के साथ शारीरिक संसर्ग करने पर स्त्री (जब तक प्रायश्चित करके शुद्ध नहीं हो जाती तब तक) पति के साथ सम्भोग, तीर्थयात्रा तथा धर्मकार्यों में भाग लेने की अधिकारिणी नहीं रहती।[२] कर्मप्रदीप १।८।७ में उद्धृत कात्यायन के एक वचन के अनुसार यज्ञ में अग्निमन्थन आदि कृत्यों में व्यभिचारिणी पत्नी सहयोगिनी नहीं बन सकती। ब्रह्मवैवर्तपुराण में परपुरुष के द्वारा भोग्य स्त्री को सभी शुभकर्मों के लिए अशुद्ध बतलाया गया है।[३] वह दैव एवं पितृकार्य के लिए पकवान बनाने योग्य नहीं होती।[४] पुंश्चली स्त्री के द्वारा पकाया हुआ अन्न सभी पातकों से मिश्रित रहता है अतः उसे दैवकर्म (पूजा) और पितृकर्म (श्राद्ध) में देवों और पितरों को प्रदान न करे और उसके हाथ का जल भी उन्हें न दे।[५] पुंश्चली के हाथ का बना या उसके द्वारा स्पर्श किया गया अन्न विष्ठा के समान तथा उसके हाथ का जल मूत्र के समान होता है। उसे पितरों एवं देवों को देकर अथवा स्वयं खाकर भी मनुष्य नरक में गिरता है।[६]

वसिष्ठ ने पुंश्चली[७] एवं कुलटा[८] का अन्न अभोज्य बतलाया है। पराशर ने भी पति का अतिक्रमण करके परपुरुष से काम-वासना की सन्तुष्टि करने वाली नारी के हाथ का भोजन वर्जित बतलाया है।[९] ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा गया है कि कामतः जार का सेवन करने वाली नारी का अन्न विष्ठा और जल मूत्र के समान होता है और उसका स्पर्श भी सर्वपापप्रद होता है।[१०] पुंश्चली के अन्न को खाने वाले के सात

---

१. स्त्रीणामपि प्रसक्तानामेष एव विधिः स्मृतः। मिता०(याज्ञ०३।२६०)में उद्धृत।
२. व्यवाये तीर्थगमने धर्मेभ्यस्तु निवर्तते। वसिष्ठ ध० सू० २१।८।
३. परभोग्या च या कान्ता साऽशुद्धा सर्वकर्मसु। ब्रह्मवै० ४।६१।५१।
४. न सा दैवे न सा पैत्र्ये पाकार्हा पापसंयुता। ब्रह्मवै० ४।१८।१०६।
५. पुंश्चली परिपक्वान्नं सर्वपातकमिश्रितम्।
दैवे कर्मणि पैत्र्ये च न देयं च तथा जलम्॥ ब्रह्मवै० ४।२३।३६।
६. अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं पुंश्चलीनाञ्च निश्चितम्।
दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो भुक्त्वा च नरकं व्रजेत्॥ ब्रह्मवै० ४।२३।३७।
७. वसिष्ठ ध० सू० १४।२। ८. वही, १४।१९।
९. बृहत्परा० स्मृ० ७।३६६। १०. ब्रह्मवै० २।६१।८३; ४।६१।५२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जन्मों का पुण्य नष्ट हो जाता है[1] तथा वह अपने शरीरस्थ लोमों की संख्या के समान वर्षों तक नरक में लालाकुण्ड में यातना पाता है और पुनर्जन्म में नेत्ररोग एवं शूलरोग से ग्रस्त होता है।[2] पुंश्चली एवं वेश्या के अन्न को खाने वाला एवं उसके साथ समागम करने वाला द्विज एक सौ वर्ष तक कालसूत्र नरक में रहने के बाद शूद्र का जन्म पाकर जीवन भर रोगी होने के पश्चात् शुद्ध होता है।[3] जैसा कि पीछे (द्र० पृ० २६३ टि० ८) में कहा जा चुका है वामन पुराण (१४।८४) के अनुसार यदि कोई ब्राह्मणी परस्त्री अन्य ब्राह्मण की पत्नी की भाँति उसके घर में रहने लगती है तो वे दोनों ही सूतकी (के समान) हो जाते हैं और उनका अन्न गर्हित होता है। वृद्धहारीतस्मृति (८।१२९-१३०) में पुंश्चली स्त्रियों तथा वृषली-पतियों के द्वारा देखे गये, स्पर्श किये गये, दिये गये एवं उनके भोजन के पश्चात् शेष बचे हुए अन्न को संसर्ग-दोष से दुष्ट बतला कर उसकी अभोज्यता संकेतित की गयी है। व्यभिचारिणी स्त्री के तिरस्कार की प्रवृत्ति अन्य प्रकार से भी प्रकट हुई है। ब्रह्मचारी को यह निर्देश दिया गया है कि वह ऐसी स्त्री का अभिवादन न करे।[4] ब्रह्मवैवर्तपुराण ४।२३।४१ में व्यभिचारिणी स्त्री के स्पर्श से भी बचने की प्रेरणा देने के उद्देश्य से यह कहा गया है कि यद्यपि पुंश्चली का दर्शन शुभ एवं यात्रा-सिद्धि का सूचक है, किन्तु उसके स्पर्श से महापाप लगता है। उसका स्पर्श करने वाला तीर्थस्नान से शुद्ध होता है।

महाभारत में यह शिक्षा दी गयी है कि बुद्धिमान् पुरुष को सन्दिग्ध चरित्र वाली स्त्री के साथ समागम नहीं करना चाहिए।[5] ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा गया है कि पर-पुरुष के द्वारा जिस नारी का भोग किया गया हो उसके साथ रमण करने वाला पति नरक में यातना पाता है।[6] इस तरह के वचनों का उद्देश्य पति को ऐसी स्त्री के सहवास से विरत कराना अथवा उसे अपनी पत्नी को व्यभिचार में प्रवृत्ति से निवृत्त करने के लिए प्रेरित करना भी हो सकता है। व्यभिचारिणी स्त्री के पति के नरक में गिरने की कल्पना की पृष्ठभूमि में ही श्रीमद्भागवत (१०।६०।४८) में कहा गया है कि बुद्धिमान् पुरुष असती स्त्री को न रखे, क्योंकि उसको रखने से वह दोनों लोकों से च्युत हो जाता है। प्राचीन आचार्यों की व्यभिचारिणी स्त्रियों के प्रति किञ्चिदपि सहानुभूति नहीं थी। शुक्रनीति ४।१।१५ में व्यभिचारिणी पत्नी को पुरुष के स्वाभाविक शत्रुओं में गिनाया गया है। व्यभिचारिणी नारी को अभिशप्त जीवन बिताना पड़ता था। याज्ञवल्क्य प्रभृति आचार्यों ने उसे उसके अधिकारों (भोजन बनाना, (आदि) से वञ्चित, मलिन, पिण्डमात्रोपजीविनी, अपमानित एवं भूमि में शयन करने

१. ब्रह्मवै० ४।२३।३९। २. वही, २।३०।९४-५।
३. वही, २।३१।२-३। ४. नारद पू० २५।४०; स्कन्द २।१।२२।१९।
५. स्त्रियस्त्वाशङ्किताः पापा नोपगम्या विजानता। शान्तिपर्व ३५।३०।
६. ब्रह्मवै० ४।१८।१०५; ४।६१।५१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाली बनाकर रखने को कहा है।[1] नारद ने भी व्यभिचारिणी स्त्री का मुण्डन करके उसे भूमि में शयन कराने, भोजन के लिए कदन्न एवं पहनने के लिए कुत्सित वस्त्र देने तथा अवस्कर (कूड़ा) साफ कराने और अनाज के दाने बटोरने के काम में लगाने को कहा है।[2] हरिवंशपुराण २।२८।६६ के अनुसार सौभपति द्रुमिल के द्वारा दूषित की गयी राजा उग्रसेन की पत्नी ने कहा था कि अब मुझ कुलकलङ्किनी से रुष्ट बान्धव न जाने क्या-क्या कहेंगे और मुझे पति-पक्ष के द्वारा अपमानित होकर घृणित जीवन बिताना पड़ेगा। व्यभिचार में लिप्त पायी गयी प्रत्येक स्त्री की ऐसी ही नियति हो सकती थी। वात्स्यायन ने माना है कि स्वजनों से बहिष्कृत होने के भय से नारी परपुरुष-संसर्ग से विरत रहती है।[3] सामाजिक बहिष्कार, स्वजनों से तिरस्कार तथा परित्याग के भय का नारी को दुराचार से दूर रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है।

प्राचीन काल में व्यभिचारिणी के पति को समाज में अपमानित जीवन बिताना पड़ता था। पद्मपुराण (६।२१३।९-१०) में यह उल्लेख है कि एक व्यभिचारिणी स्त्री के पति का सभी लोग उपहास करते थे। अतः वह उनके उपहास के भय से घर से बाहर नहीं निकलता था। धर्मशास्त्रों में व्यभिचारिणी पत्नी (जिसको महिषी कहा गया है) के व्यभिचारदोष को सहन कर लेने वाले पुरुष को माहिषक[4] कहकर उसके प्रति निन्दा व्यक्त की गयी है। वसिष्ठ (ध० सू० १४।६) ने उपपति का तथा अपने घर में उपपति को रहने देने वाले पुरुष का अन्न अभोज्य बतलाया है और एक प्राचीन वचन उद्धृत किया है, जिसमें कहा गया है कि वृषलीपति, भार्याजित तथा अपने घर में उपपति रखने वाले का अन्न देवता ग्रहण नहीं करते।[5] व्यभिचारिणी के पति को धार्मिक दृष्टि से गर्हित एवं उपेक्षणीय बतलाने वाले अनेक वचन मिलते हैं। जिस पुरुष के घर में उपपति हो उसे श्राद्ध में वर्जनीय[6] तथा उसे प्रदत्त दान को वृथा[7] बतलाया गया है। श्राद्ध में व्यभिचारिणी के पति का दर्शन भी पितरों को निराश लौटाने वाला बतलाया गया है।[8] व्यभिचारिणी नारी के पति के द्वारा प्रदत्त हव्य से देवता तथा तर्पण [एवं पिण्डदान] से पितृगण सन्तुष्ट नहीं होते।[9] बृहत्पराशर स्मृति ७।२७२

---

१. याज्ञ० १।७०; गरुड पू० ९५।१८; मत्स्य २२७।१३४; विष्णुधर्मो० ३।७२।-११८; तु० हारीत श्लोक २४२। २. नारद स्मृ०, स्त्रीपुंस० १२।९३।
३. विदिता सती स्वजनबहिष्कृता भविष्यामीति भयम्। काम० ५।१।३९।
४. यमस्मृ० ३६; बृहद्यमस्मृ० ३।१७; प्रजापति स्मृ० ८६-७।
५. नाश्नन्ति श्ववतो देवा नाश्नन्ति वृषलीपतेः।
भार्याजितस्य नाश्नन्ति यस्य चोपपतिर्गृहे॥ इति। वसिष्ठ ध० सू० १४।११।
६. मनु ३।१५५; ब्रह्माण्ड ३।१९।३२; वायु उ० २१।३४।
७. स्कन्द ७।१।२०८।६-९। ८. प्रजापतिस्मृ० ९०।
९. ब्रह्मवै० ४।१८।१०५-७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में (चार प्रकार की) स्वैरिणी स्त्रियों के पतियों को भी हव्य-कव्य में वर्जनीय बतलाया गया है।

व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों को ही नहीं, उनकी सन्तानों को भी समाज में गर्हित और हेय समझा जाता था। केवल दुराचारी पुरुष ही उन्हें सहन करते थे। उग्रसेन का वेश धारण कर छल से उसकी पत्नी को दूषित करने के पश्चात् उसे अपना वास्तविक रूप दिखाकर द्रुमिल ने उसके रोष को शान्त करने के लिए कहा है कि बहुत सी स्त्रियों ने व्यभिचार के फलस्वरूप देवों के समान पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किये हैं।[1] किन्तु भारतीय संस्कृति में व्यभिचार से उत्पन्न पुत्रों को कभी भी प्रशस्त नहीं माना गया है। श्रीमद्भगवद्गीता १।४१ में यह स्वीकार किया गया है कि स्त्रियों में चारित्रिक दोष आने पर वर्णसंकर सन्तान का जन्म होता है। भविष्यपुराण ३।४।२४।३४-५ में कहा गया है कि पतिव्रता स्त्री में उत्पन्न पुत्र आर्य और देवों के प्रिय होते हैं, जब कि परपुरुष के द्वारा दूषित स्त्री में उत्पन्न पुत्र वर्णसंकर होते हैं। बौधायन (ध० सू० १।६।१५) के अनुसार वर्णसंकर से उत्पन्न सन्तान को विद्वानों ने व्रात्य कहा है। स्पष्ट है कि वर्णाश्रम व्यवस्था का पूर्ण निष्ठा के साथ पालन करने वाले समाज में वर्णसंकरों और उनकी सन्तानों को हेय दृष्टि से देखा जाता था और उसमें उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। वसिष्ठ ने प्राचीन विद्वानों का यह मत उद्धृत किया है कि व्यभिचार से उत्पन्न सन्तान गुण और आचार से हीन होते हैं।[2] देवीभागवत पुराण ६।२५।२७-८ में यह भाव व्यक्त किया गया है कि परस्त्री में उत्पन्न पुत्र अपने जनक के श्राद्ध के भी योग्य नहीं होते और उनके जन्म से पिता सुखी नहीं होता। स्कन्दपुराण (६।२२३।३, १७-८) के अनुसार जारजात पुत्र के द्वारा किया गया श्राद्ध व्यर्थ हो जाता है। जिस नारी का अधरपान एवं स्तनमर्दन अन्य पुरुष ने किया हो उससे उत्पन्न पुत्र अपना और अपनी पूर्ववर्ती एवं भावी पीढियों के दश-दश पुरुषों (पितरों) के पतन का कारण बनता है (स्कन्द ६।१६८।५-७)। बृहत्पराशर स्मृति (७।३६७-३७१) में स्वैरिणी स्त्रियों के चार भेदों को गिनाने के पश्चात् यह कहा गया है कि उनमें उत्पन्न पुत्र हव्य-कव्य में वर्जनीय हैं।[3] इसी तरह उपपति से तथा परपूर्वा (पुनर्भू) के पति से उत्पन्न पुत्रों को भी हव्य-कव्य में वर्जनीय बतलाया गया है (बृहत्परा० ७।३७४-५)। कृत्यकल्पतरु (व्य० का० पृ० ६४६) में उद्धृत हारीत के वचनानुसार स्वैरिणी, पुनर्भू

---

१. श्रूयन्ते हि स्त्रियो बह्वयो व्यभिचारव्यतिक्रमैः।
प्रसूता देवसंकाशान् पुत्रान् निश्चलविक्रमान् ॥ हरिवंश २।२८।१०१।

२. अथाप्युदाहरन्ति–छन्नोत्पन्नाश्च ये केचित् प्रातिलोम्यगुणाश्रिताः। गुणाचार-परिभ्रंशात् कर्मभिस्तान् विजानीयुरिति ॥ वसिष्ठ ध० सू० १८।७।

३. आसु पुत्रास्तु ये जाता वर्ज्यास्ते हव्यकव्ययोः। बृहत्परा० स्मृ० ७।३७२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रेतोधा, कामचारिणी तथा सर्वभक्ष्या स्त्रियाँ शूद्र योनि (अर्थात् शूद्रवत् स्वभाव वाली) होती हैं और इनसे उत्पन्न पुत्र अपाङ्क्तेय कहे गये हैं, अतः उन्हें [सामूहिक भोज में अन्य भोक्ताओं के साथ] एक पंक्ति में भोजन न करावे। इस तरह के वचनों से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि जिस समाज में व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों को ही नहीं उनकी सन्तानों को भी तिरस्कृत और बहिष्कृत किया जायेगा उसमें व्यभिचार की प्रवृत्ति स्वाभाविकरूपेण हतोत्साहित हो जावेगी।

३ व्यभिचार के दुष्परिणाम—

व्यभिचार की दुष्प्रवृत्ति को हतोत्साहित करने तथा समाज को इसके दुष्प्रभाव से सावधान करने के लिए भारतीय साहित्य में इसके दुष्परिणामों की प्रभूत चर्चा की गयी है। ऋग्वेद (१०।१०९।२-५) तथा अथर्ववेद (५।१७।२-७) में ब्रह्मजाया विषयक वर्णन से यह सूचित होता है कि किसी एक दुराचारी के द्वारा किये गये ब्राह्मण की जाया के अपहरण का घातक दुष्परिणाम समूचे राष्ट्र को भोगना पड़ता था। अथर्ववेद (१।१७।१२-८) में कई दृष्टान्तों द्वारा यह समझाया गया है कि ब्राह्मण की पत्नी के अपहरण, धर्षण या उसे अवरुद्ध करने से राष्ट्र की कल्याण परम्परा ही नष्ट हो जाती है। श्रीमद्भगवद्गीता (१।४१-४) में स्वीकार किया गया है कि स्त्रियों में चारित्रिक दोष आ जाने के फलस्वरूप वर्णसंकर सन्तान का जन्म होता है, जो कुल के पितरों के नरक में पतन का कारण बनता है, क्योंकि उन्हें उसके हाथ का पिण्ड और जल नहीं मिल पाता। इसके अतिरिक्त वर्णसंकर सन्तानों के जन्म से जातिधर्म और कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं और कुलधर्मों का पालन न करने वालों को अनन्त काल तक नरक में रहना पड़ता है। मनु (स्मृ० ८।३५३) ने भी यह माना है कि व्यभिचार से वर्णसंकर सन्तानों का जन्म होता है और तब अधर्म की वृद्धि होती है, जो कि लोक के सर्वनाश का कारण बनता है। महाभारत में व्यभिचार को प्रजाओं के भय (संकट) का एक हेतु बतलाया गया है।[१] पद्मपुराण १।५८।२० के अनुसार परस्त्रीहरण करने से राजा को युद्ध में पराजय, दैन्य, शोक तथा पुत्रनाश जैसे दुष्परिणाम झेलने पड़ते हैं। वराहपुराण (३२।१०) में सोम के द्वारा भ्राता अङ्गिरस् की पत्नी के हरण से धर्म के पीडित होने की चर्चा की गयी है और यह कहा गया है कि इस तरह मर्यादा का लोप होने तथा धर्म का नाश होने पर सोम के दोष से कुपित देवों का [उसके पक्षधर] असुरों के साथ युद्ध हुआ था (वराह ३२।१३-४)। शुक्राचार्य की कन्या अरजा के धर्षण के कारण राजा दण्डक शुक्र के शाप के फलस्वरूप सप्ताहव्यापी पांशुवर्षा (या उपलवृष्टि) से अपने बन्धु-बान्धवों और राज्य की समस्त प्रजा सहित नष्ट हो गया था।[२]

१. नारीणां व्यभिचाराच्च अन्यायाच्च महीक्षिताम्।
विप्राणां कर्मदोषाच्च प्रजानां जायते भयम्॥ शान्ति० ७७।२८-२९ के मध्य।

२. रामा० ७।८१।७-१०; काम० १।२।४३-४; पद्म १।३६।२०१५२; वामन ६६।१-१७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आधुनिक समाज की अपेक्षा प्राचीन समाज में व्यभिचार की प्रवृत्ति का अनुपात सम्भवतः अत्यल्प था। अतः व्यभिचार से होने वाले विभिन्न यौनरोगों का कोई भी भय उस समय नहीं था। व्यभिचारी पुरुषों को इस जन्म में अथवा पुनर्जन्म में भी कुष्ठ और क्षय जैसे रोग हो सकते थे, जिनकी चर्चा आगे इसी अध्याय में 'कर्मविपाक' के प्रकरण में की जायेगी। ऐसे रोगों के अतिरिक्त भी व्यभिचारी पुरुष के कुकृत्य से उसका व्यक्तिगत जीवन अनेकधा दुष्प्रभावित होता था। ब्रह्मवैवर्तपुराण ४।७८।५५ में कहा गया है कि अगम्या स्त्रियों को कामभाव से देखने वाले निन्दा के पात्र होते हैं। अगम्यागमन को दुःखजनक,[1] श्रीहीनता का हेतु[2] तथा आयुक्षीण करने वाला[3] बतलाया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण २।३८।४० में कहा गया है कि अगम्यागामी विप्र के घर में लक्ष्मी नहीं रहती। महाभारत (शान्तिपर्व २८८।७८) के अनुसार लक्ष्मी ने असुरों को उनके गुरुपत्नीगमन आदि दोषों के कारण त्याग दिया था। वराहपुराण ९३।११ में कहा गया है कि अगम्यागमन एवं गुरुपत्नी की कामना से राजा भी नष्ट हो जाता है। स्कन्दपुराण (१।१।१५।२७) में कहा गया है कि गुरुपत्नी के सेवन से इन्द्र राज्य भ्रष्ट हुआ था और चन्द्रमा गुरु (बृहस्पति) की पत्नी के सेवन से शत्रुविजय में असमर्थ हो गया था (स्क० १।१।८।५८-९)। वामनपुराण में परस्त्री में आसक्ति को पराभव का कारण (६६।१६, ४०) तथा उसके प्रति अभिलाषा-मात्र को भी कुलविनाशिनी (५९।२६-७) बतलाया गया है और यह कहा गया है कि यह प्रवृत्ति केवल सदाचारी पुरुषों के द्वारा ही नहीं, अपितु असदाचारी पुरुषों के द्वारा भी कुत्सित बतलायी गयी है (वामन ५९।२७)। अभिज्ञानशाकुन्तलम् (५।२९) में सूचित किया गया है कि परस्त्री के स्पर्श (संसर्ग) से भी पुरुष के चरित्र में कलङ्क लगता है। स्कन्दपुराण २।२।३८।३१ में धर्मपत्नी की अवज्ञा करके परस्त्री में आसक्त होने वाले कलियुग के पुरुष पशुओं के समान चेष्टा (आचरण) वाले बतलाये गये हैं।

गरुडपुराण में परस्त्री-संसर्ग को अस्थिर (अस्थायी) भावों में गिनाया गया है,[4] जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि परस्त्री संसर्ग से पुरुष को स्थायी सुख सम्भव नहीं है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार परस्त्रीसेवन, जिसे दुर्भाग्य से ग्रस्त मूढ पुरुष

---

१. ब्रह्मवै० ४।८६।८८। २. भाग० १।१४।४२; विष्णु ५।३८।३८।

२. अभक्ष्यभक्षणं कृत्वा अगम्यागमनं तथा।
अपेयं चैव पीत्वा च किं जीवेच्छरदां शतम्॥ नारद उ०२६।६;पद्म१।३५।५३।

३. धर्मलब्धां स्त्रियं रम्यामवज्ञाय स्ववेश्मनि।
परयोषिति निन्द्यायां प्रसक्ताः पशुचेष्टिताः॥ स्कन्द २।२।३८।३१।

४. अभ्रच्छाया खले प्रीतिः परनारीषु सङ्गतिः।
पञ्चैते ह्यस्थिरा भावा यौवनानि धनानि च॥ गरुड पु० ११५।२५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सुख पूर्ण समझते हैं, वास्तव में दुःखों का ही कारण है।[1] पद्मपुराण (७१५।४४) के अनुसार परस्त्री के आलिङ्गन से क्षण भर ही सुख का अनुभव होता है, किन्तु इस (पापकर्म) के फलस्वरूप शेष सारे जीवन में अपकीर्ति और कल्पशत से भी अधिक काल तक दुःख मिलता है। परस्त्रीगामी पुरुष न तो इहलोक में और न परलोक में ही सुख पा सकता है।[2] मृत्यु के बाद वह नरक में यातना पाता है और जीवितावस्था में उसे ईश्वर (स्वामी) से भय रहता है।[3] इस तरह परस्त्रीरति इहलोक तथा परलोक में भी भय का कारण बनती है।[4] परस्त्री में आसक्त पुरुष के सारे प्रयास व्यर्थ जाते हैं।[5] उसकी आँखों की निद्रा समाप्त हो जाती है।[6] परस्त्रीगामी पुरुष का जन्म ही वृथा हो जाता है।[7] स्कन्दस्वामी ने (ऋ० १।६५।१ के भाष्य में) यह उल्लेख किया है कि यमी और वरुणानी के प्रति कामभावना के कारण अग्नि परदाराभिमर्षण के पाप का भागी तथा जराग्रस्त हुआ था। वैखानस (गृ०सू० १०।१; धर्मप्रश्न ३।१।७) में परदारा को आयु, श्री तथा ब्रह्मतेज का नाशक बतलाते हुए इसे वर्जित किया गया है।[8] रामायण ३।६।४ में तो परस्त्री की अभिलाषा मात्र को भी धर्मनाशक कहा गया है। धार्मिक ग्रन्थों में यह बतलाया गया है कि जिस पुरुष का मन परस्त्री विषयक चिन्तन में लगा हो उसके द्वारा किया गया संकल्प अथवा कोई भी काम्य अनुष्ठान सिद्ध नहीं हो सकता। ब्रह्मवैवर्तपुराण (२।३१।६८) में कहा गया है कि ब्राह्मण के द्वारा कोटि जन्मों में सन्ध्या, पूजा और तपस्या से अर्जित पुण्य वृषली (शूद्री) का सेवन करने से नष्ट हो जाता है। प्राचीन समाज में परस्त्री मात्र के संसर्ग को पुण्य-नाश का हेतु माना जाता था। इसके अतिरिक्त प्राचीन साहित्य में यह स्वीकार किया गया है कि परस्त्रीगमन आयुष्य को नष्ट करता है।[9] यह बतलाया गया है कि इसके समान अनायुष्य (आयु नाश) करने वाला अन्य कुछ भी नहीं है।[10] इस तरह परस्त्रीगमन मनुष्य के इष्ट और

---

१. दुःखबीजं सुखं मत्वा मूढाश्च दैवदोषतः।
परस्त्रीसेवनं प्रीत्या कुर्वन्ति सततं मुदा ॥ ब्रह्मवै० ४।३५।६०।

२. वामन ६६।३० : परार्थदारेप्सुरवर्णसङ्गमी सुखं न विन्देत परत्र चेह।

३. मृतस्य निरये वासो जीवतश्चेश्वराद्भयम्। स्कन्द १।२।११।२८।

४. परदाररतिः पुंसामिह चामुत्र भीतिदा। विष्णु ३।११।१२४।

५. ब्रह्मवै० ४।६१।४१। ६. गरुड पू० ११५।६८। ७. स्क० ७।१।२०८।५-६।

८. परदारान्न संगच्छेत् परदारगमनादायुः श्री ब्रह्मवर्चसं विनश्यति।

९. अनु० पर्व १०४।१२,१३६; गरुड उ० १३।७; ब्रह्म २२१।६१; मार्क० ३१।६३; विष्णु ३।११।१२४; राजमार्तण्ड ८८; कुलार्णवतन्त्र ११४७।

१०. न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते। यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥
अनु० पर्व १०४।२१; मनु ४।१३४; भविष्य ४।२०५।७३;
स्कन्द १।२।७।९६; तु० मार्क० ३१।६३-४; ब्रह्म २२१।६१-२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पूर्त धर्म (या तज्जनित पुण्य) के साथ ही उसके आयुष्य का नाशक[1] अपयशजनक[2] अस्वर्ग्य (स्वर्ग से वञ्चित कराने वाला) तथा अयशस्य (यश नष्ट करनेवाला)[3] एवं दोनों लोकों को बिगाड़ने वाला कहा गया है।[4] परस्त्री इन्द्र की भी श्री का हरण करने वाली बतलायी गयी है।[5] उसकी अभिलाषा मात्र से भी सम्पत्ति नष्ट होने लगती है।[6] परस्त्री सेवन करने वाला ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य जो भी हो उसके घर से लक्ष्मी रूठ कर चली जाती है।[7]

रामायण (७।२५।१८) में विभीषण ने रावण के परस्त्रीहरण जैसे कुकृत्यों को उसके यश, धन और कुल का नाशक बतलाया है। महाभारत (उद्योगपर्व ३३।६५) में भी परदारगमन को क्षयावह दोषों में गिनाया गया है। इसे कुलनाशक कुकृत्य माना जाता था।[8] बौद्ध साहित्य में भी व्यभिचार को मनुष्य को नष्ट करने वाले दोषों में गिनाया गया है।[9] पुराणों में परस्त्रीगमन के अधिकाधिक दोषों को गिनाने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में बतलाया गया है कि [अपनी या परायी] स्त्रियों के साथ सम्भोग से तेज नष्ट होता है, उनके साथ वार्तालाप से यश नष्ट होता है, उनसे अधिक प्रेम करने पर धन नष्ट होता है, उनमें अधिक आसक्ति रखने पर शरीर नष्ट होता है, उनके साहचर्य में निरन्तर रहने से पौरुष नष्ट होता है, उनसे कलह करने पर मान नष्ट होता है तथा उन पर विश्वास करना सर्वनाश का कारण बनता है।[10] इसी पुराण में यह भी कहा गया है कि परस्त्रीनिरत पुरुष की श्री-सम्पदा और यश का तो नाममात्र भी शेष नहीं रहता। वह पापी सर्वत्र सभाओं में निन्दनीय होता है (ब्रह्मवै० ३।२१।१०) इसके अतिरिक्त वह अपने कर्म (धर्म) का भी अधिकारी नहीं रह जाता (वही ४।३०।८६-७)। इसमें अन्यत्र भी यह कहा गया है कि अपनी पत्नी को त्याग कर परस्त्री को ग्रहण करने वाले पुरुष के यश, धन तथा आयुष्य की हानि होती

१. (क) इष्टापूर्तायुषां हन्त्री परदारप्रधर्षणा। स्कन्द १।२।११।२६।
(ख) इष्टापूर्तायुषां हन्त्री परदारगतिर्नृणाम्। ब्रह्म २२१।६१; मार्क० ३१।६३।
२. ब्रह्मवै० ४।६१।४१। ३. स्कन्द ३।३।१४।३२।
४. एवं लोकद्वयं हन्त्री परदारप्रधर्षणा। स्कन्द १।२।११।२६।
५. गरुड पू० ११५।५; शंखलिखितस्मृ० १७। ६. नारद० पू० ७।२०।
७. ब्रह्मवै० ४।३०।८६। ८. पद्म ३।५५।१८ (क्षिप्रं नश्यति वै कुलम्)।
९. द्र०-वूमेन अण्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, पृ० ६४।
१०. तेजः प्रनष्टं सम्भोगे दिवालापे यशः क्षयः।
धनक्षयोऽतिप्रीतौ चात्यासक्तौ च वपुःक्षयः॥
साहित्ये पौरुषं नष्टं कलहे माननाशनम्।
सर्वनाशश्च विश्वासे ब्रह्मन्नारीषु किं सुखम्॥ ब्रह्मवै० १।२३।३४-५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है (वही ४।३०।६०)। स्कन्दपुराण में कहा गया है कि परस्त्री में आसक्ति से आयु, कीर्ति, बल तथा सुख नष्ट हो जाता है और स्वर्ग की प्राप्ति भी नहीं हो पाती।[1] परदा-रप्रधर्षण से आयु, तप (पुण्य), कीर्ति, तेज, यश तथा श्री (शोभा-सम्पत्ति) नष्ट होती है।[2] कामशास्त्र के आचार्यों की दृष्टि में भी सुख-प्राप्ति की भ्रान्त धारणा से परस्त्री-गमन करने वाले पुरुष समाज में अश्रद्धेय, उपहासास्पद तथा मलिनता को प्राप्त हो जाते हैं, उनका धन नष्ट हो जाता है, उन्हें हेय समझा जाता है, वे गर्हणीय हो जाते हैं, स्वयं भी वे ग्लानि का अनुभव करते हैं, अधोगति को प्राप्त होते हैं, आजीवन विकल रहते हैं, उनकी आयु क्षीण हो जाती है, वे दुर्गति को प्राप्त करते हैं, तीनों लोकों में निन्दित होते हैं और परम आपत्तियों को प्राप्त करते हैं।[3]

परस्त्री की कामना भी विनाशकारी मानी गयी है। राजा नहुष परस्त्री (इन्द्राणी) की कामना के कारण ही नष्ट हुआ था।[4] परस्त्री में आसक्ति को मृत्यु का एक हेतु कहा गया है।[5] इसीलिए भारतीय विधिशास्त्र में अविज्ञात हंत (जिसकी हत्या करने वाले का ज्ञान न हो) मनुष्य के हत्यारे का ज्ञान करने के लिए यह भी ज्ञात करने को कहा गया है कि उसका प्रच्छन्न प्रेम-सम्बन्ध किसी अन्य की स्त्री के साथ तो नहीं था।[6] वात्स्यायन ने (कामसूत्र १।२।४३-५ में) काम के वशीभूत होने के कारण ही दण्डक, इन्द्र, कीचक और रावण के नष्ट होने का उल्लेख किया है। कामशास्त्र के अन्य आचार्यों ने भी परस्त्रीगमन के घातक दुष्परिणामों की चेतावनी देते हुए बतलाया है कि रावण, बाली और कीचक जैसे वीर परस्त्रीगमन के कारण ही मारे गये थे।[7] परस्त्रीहरण एवं अन्य दुष्कर्मों के कारण ही राजा वेन ऋषियों के शाप से मृत्यु को प्राप्त हुआ था।[8] रावण को उसके द्वारा अपहृत युवतियों ने यह शाप दिया था कि परस्त्री के कारण ही उसकी मृत्यु होगी।[9] वेदवती ने रावण को यह शाप दिया था कि वह सीता के रूप में पुनर्जन्म ग्रहण करके उसके वध का कारण बनेगी।[10] रावण की मृत्यु वस्तुतः सीताहरण के कारण ही हुई थी।[11] सुग्रीव की पत्नी रुमा का हरण करने के कारण बाली श्रीराम के हाथों मारा गया था।[12] सोलह हजार रमणियों का हरण करने के कारण ही नरकासुर कृष्ण के हाथों मारा गया था।[13] परस्त्रीगमन के कारण

---

१. स्कन्द ४।७६।८१; ५।२।४५।७३। २. वही, १।२।११।२५-६।
३. पञ्चसायक ४।१६; तु० अनङ्गरङ्ग ८।६। ४. वामन ६६।३३।
५. वही १४।४४। ६. द्र० याज्ञ० २।२८१ पर मिता०।
७. पञ्चसायक ४।१७; अनङ्गरङ्ग ८।१०। ८. पद्म १।८।५-६।
९. रामा० ७।२४।२०-२१। १०. वही ७।१७।३१-२; देवीभाग० ७।१६।१८।
११. रामा० ६।११०।१८; ६।१११।२१-३।
१२. वही ४।१०।२७-३३; ४।१८।१८-२३।
१३. भाग० १०।५८।५८; १०।५९।१-२२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ही कनकासुर[१] एवं अन्धकासुर[२] आदि राक्षस मारे गये थे। वात्स्यायन (कामसूत्र ५।५।२६) के अनुसार काशिराज जयसेन अपनी एक प्रेमिका के घर में उसके पशुपालक अधिकारी के हाथों मारा गया था और गुजरात के आभीर मण्डल का कोट्टराज नामक राजा अपने एक सरदार के घर में धोबी के हाथों मारा गया था।

उपर्युक्त दुष्परिणामों के परिप्रेक्ष्य में ही भारतीय महर्षियों ने परस्त्रीगमन को वर्जित किया था। उनके विचारों के समालोचन से ज्ञात होता है कि उनकी यह वर्जना निराधार और निष्कारण नहीं थी, अपितु परस्त्री के साथ व्यभिचार के फलस्वरूप मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में जो अनैतिकता, अमर्यादा तथा विघटन और विनाश की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं उनको दृष्टि में रखते हुए और तद्विषयक दृष्टान्तों से शिक्षा देते हुए ही उन्होंने निष्कर्ष रूप में परस्त्रीगमन वर्जित करने की चेतावनी दी है[३]।

नारी के लिए भी परपुरुषगमन में गम्भीर दुष्परिणाम बतलाये गये हैं। महाभारत में कहा गया है कि पति का अतिक्रमण करने पर स्त्रियों को अधर्म की प्राप्ति होती है।[४] असुरों की पत्नियों के द्वारा अपने पतियों का अतिक्रमण किये जाने पर लक्ष्मी ने उन (असुर-स्त्रियों) को त्याग दिया था (शान्तिपर्व २८८।५५)। दूसरों के घर में आवागमन करने वाली, निर्लज्ज नारी को भी लक्ष्मी त्याग देती है (अनु० पर्व ११।१२)। मनु के अनुसार व्यभिचारिणी स्त्री लोक में निन्दनीय हो जाती है।[५] अपने निकृष्ट पति का त्याग करके उत्कृष्ट पुरुष का सेवन करने पर भी वह निन्दनीय होती है एवं परपूर्वा (पुनर्भू) कहलाती है।[६] सन्तान लाभ के उद्देश्य से भी यदि कोई नारी परपुरुष समागम करती है तो वह इस लोक में निन्दा की पात्र तो होती ही है, मृत्यु के पश्चात् भी वह पति का सालोक्य नहीं पाती।[७] ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी यह स्वीकार किया गया है कि अनैतिक यौनसम्बन्ध सभी स्त्री पुरुषों के लिए अकीर्तिजनक होता है।[८] पद्मपुराण (६।२०६।३६-७) के अनुसार पति को छोड़कर सुखप्राप्ति की इच्छा से परपुरुष के साथ रमण करने वाली नारी लोकापवाद की पात्र होने के साथ ही घोर दुर्गति

---

१. पद्म १।४८।६। २. वही १।४८।१५।

३. ब्रह्म २२१।६०; पद्म ३।३१।८८ वामन ६६।४०; पञ्चसायक ४।१७।

४. स्त्रीणामधर्मः सुमहान् भर्तुः पूर्वस्य लङ्घने। आदि पर्व १५७।३६।

५. व्यभिचारात् तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्। मनु ५।१६४; ९।३०।

६. पतिं हित्वाऽपकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते।
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते॥ मनु ५।१६३।

७. अपत्यलोभात् या तु स्त्री भर्तारमति वर्तते।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते॥ मनु ५।१६१।

८. अकीर्तिजनकः पुंसां योषितां च विशेषतः। ब्रह्मवै० १।१०।१६६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को प्राप्त करती है। श्रीमद्भागवत में भी यह स्वीकार किया गया है कि पति को छोड़कर जार का सेवन करने वाली असती नारी कभी कल्याण-भाजन नहीं बनती।[1] उपपति के साथ संसर्ग कुलीन स्त्री को स्वर्गलाभ से वञ्चित करने वाला, यश नाशक, निरर्थक, कष्टदायक, भयप्रद एवं घृणित होता है।[2] कथासरित्सागर (१०।८।१६२) में परपुरुषों के साथ व्यभिचार करने वाली स्त्रियों के शीघ्र नष्ट होने तथा दोनों लोकों से भ्रष्ट होने का उल्लेख है। व्यभिचारिणी नारी को पति या पति-पक्ष के बान्धवों के द्वारा त्यागे जाने का भय तो पदे-पदे रहता ही था। वे उसका निग्रह कर सकते थे। पुराणों में विधवा स्त्रियों के व्यभिचारिणी होने पर उनके गोत्र के पुरुषों (बन्धु-बान्धवों) के द्वारा उन्हें दूर ले जाकर त्यागे जाने के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं।[3]

प्राचीन आचार्यों की मान्यता थी कि व्यभिचारिणी स्त्री के द्वारा सम्पादित धार्मिक कृत्य निष्फल हो जाते हैं, उनका कोई शुभ फल उसे नहीं मिलता। ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा गया है कि भारतवर्ष में पुंश्चली स्त्रियों के द्वारा किये गये तीर्थस्नान या पर्वकाल का स्नान, दान, व्रत, जप एवं देवपूजन का कोई फल उन्हें नहीं मिलता। उनका जीवन वृथा हो जाता है।[4] प्राचीन साहित्य में प्राप्त ऐसे वचनों से स्पष्ट है कि व्यभिचारिणी नारी को अपने चरित्र को दूषित करने से तात्कालिक सुखाभास को छोड़कर शेष पूरे जीवन में अप्रतिष्ठा और कष्ट के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलता था।

४. व्यभिचार जन्यपाप—

मनुष्य के ऐसे दुष्कर्म को पाप-संज्ञा दी गयी है जो धर्म, सामाजिक सद्व्यवस्था या सदाचार के विरुद्ध होता है, जिसे करने से उसका शारीरिक ह्रास होता है, मनोबल टूटता है, आध्यात्मिक शक्ति क्षीण होती है, पुण्य नष्ट होता है, हृदय में असन्तोष, अशान्ति, भय या उद्वेग उत्पन्न होता है और उसके सूक्ष्म शरीर या आत्मा में भी ऐसा दुष्प्रभाव पड़ता है कि उसके फलस्वरूप उसे परलोक और पुनर्जन्म में भी पीडित होना पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पाप-पुण्य की भावना से परिचित ऋग्वेद कालीन समाज में पत्नी के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्त्री के साथ सहवास को पापजनक माना जाता रहा होगा। अगम्यागमन में पाप की कल्पना का स्पष्ट प्रमाण ऋग्वेद के यमयमी

---

१. न तस्माद् विन्दते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥ भाग० १०।२४।१९।

२. अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गुकृच्छ्रं भयावहम्।
जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥ भाग० १०।२९।२६।

३. शिव ४।१६।८-६; स्कन्द ३।३।३।४२-८।

४. स्नानं दानं व्रतं चैव जपश्च देवपूजनम्।
निष्फलं पुंश्चलीनां च भारते जीवनं वृथा ॥ ब्रह्मवै० ४।२३।४२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सूक्त में है, जहाँ भगिनीगमन में पाप बतलाया गया है।[१] अथर्ववेद में भगिनीगमन को अधःपतन का कारण माना गया है।[२] ऋग्वेद के खिलसूक्त में वृषली, गुरुपत्नी एवं सभी वर्णों की परस्त्रियों के साथ अनैतिक संसर्ग जन्य पाप को पावमानी ऋचाओं से दूर करने का उल्लेख है।[३] व्यभिचार के प्रायश्चित्त विषयक जो उल्लेख उत्तर वैदिक साहित्य में हैं[४], उनसे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में इसे गम्भीर पाप माना जाता था। व्यभिचार जन्य पाप की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए इसके कई भेद किये गये हैं। बौधायन धर्मसूत्र (२।२।४।१५) में पिता, गुरु (आचार्य) एवं राजा की पत्नी के साथ प्रसादतः (अज्ञान में) समागम करने वाले को गुरुतल्पी (गुरुतल्पग) कहा गया है। याज्ञवल्क्य ने बुआ, मौसी, मामी, पुत्रवधू, विमाता, भगिनी, आचार्य की पत्नी के साथ यौनाचार करने वाले को गुरुतल्पग कहा है (याज्ञ० स्मृ० ३।२३२-३)। नारद ने माता, मौसी, सास, मामी, बुआ, चाची, मित्र की पत्नी, शिष्य की पत्नी, भगिनी, उसकी सखी, पुत्रवधू, पुत्री, आचार्य की पुत्री, सगोत्रा स्त्री, शरणागत स्त्री, राजा की पत्नी, प्रव्रजिता नारी, धाय, पतिव्रता परस्त्री एवं अपने से उत्कृष्ट वर्ण की स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले को गुरुतल्पग कहा है (नारद स्मृ० स्त्रीपुंस० १२।७३-५)। मूलतः गुरु शब्द पिता का, गुरुतल्प या गुरुपत्नी माता का तथा गुरुतल्पग शब्द मातृगामी का बोधक है[५] और इस शब्द का प्रयोग अतिदेश नियम से विमाता, आचार्य की पत्नी, सास एवं मातृवत् सम्माननीय या तत्समकक्षस्त्री अथवा निकट-सम्बन्ध की किसी भी अगम्या स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले पुरुष के लिए किया गया है। कुछ अन्य स्मृतियों एवं पुराणों में भी गुरुतल्पग शब्द का आतिदेशिक प्रयोग लगभग ऊपरि कथित तथा कुछ अन्य स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने वाले पुरुष के लिए किया गया है।[६] नारदस्मृति (स्त्रीपुंस० १२।८५) में नियोग के बिना ज्येष्ठ या कनिष्ठ भ्राता की पत्नी के साथ दुराचार करने वाले भाई को आतिदेशिक अर्थ में ही गुरुतल्पग कहा गया है। वस्तुतः माता, विमाता, गुरुपत्नी, सास आदि कुछ अति निकट-सम्बन्ध की स्त्रियों के साथ दुष्कर्म को गुरुतल्पगमन कहा जा

---

१. पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्। ऋ० १०।१०।१२।
२. (क) जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात्। अथर्व० ६।१२०।२।
 (ख) यो जाम्या अमेथ""""तद् आहुरघराग इति। अथर्व० २०।१२८।२।
३. ऋ० खिलसूक्त १८।१०-११।
४. द्र०-वैदिककोश, पृ० ३२७ में 'प्रायश्चित्त' शब्द की टिप्पणी; धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग ३, पृ० १०१५ एवं आगे।
५. द्र० धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग ३, पृ० १०२६-७।
६. वृद्धहारीतस्मृति ६।१८१-६; अग्नि १७३।४७; गरुड पू० १०५।१०-११; नारद उ० २६।४; स्कन्द ३।१।१।६५-६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सकता है तथा अन्य सम्मान्य या निकट-सम्बन्ध की स्त्रियों के साथ दुराचार को गुरुतल्पगमन के समान कहा जा सकता है। इसीलिए गौतम धर्मसूत्र ३।५।१२ में सखी, सोदरा भगिनी, सगोत्रा स्त्री, शिष्य की पत्नी, पुत्रवधू एवं गौ के साथ रमण को गुरुतल्पसम पाप कहा गया है। मनु तथा याज्ञवल्क्य प्रभृति आचार्यों ने कुमारी कन्या, अन्त्यजा, मित्र की पत्नी तथा पुत्रवधू के साथ व्यभिचार को गुरुतल्पसम कहा है।[1] विष्णुस्मृति ३६।४-७ में गुरुदारगमन के समान पाप में चाची आदि अनेक स्त्रियों के साथ व्यभिचार को सम्मिलित किया गया है। विष्णु (स्मृति ३४।१) तथा हारीत[2] ने मातृगमन, पुत्रीगमन तथा पुत्रवधूगमन को अतिपातक बतलाया है और कात्यायन ने भगिनीगमन को भी अतिपातकों की सूची में सम्मिलित किया है।[3] जबकि धर्मशास्त्रीय परम्परा में सामान्यतः माता एवं उसके तुल्य सम्माननीय एवं निकट सम्बन्ध की स्त्रियों के साथ दुराचार को गुरुतल्पगमन कहा गया है और इसे पाँच महापातकों में सम्मिलित किया गया है[4] तथा गुरुतल्पगामी[5] एवं क्वचित् अगम्यागामी[6] मात्र को पञ्च महापातकियों में गिनाया गया है।

बौधायन ध० सू० २।१।२।४-५ में अगम्यागमन[7] तथा माता की सखी, गुरु (पिता) की सखी, अपपात्रा (मैथुन के अयोग्य) स्त्री तथा पतित स्त्री के साथ व्यभिचार को उपपातकों में गिनाया गया है। परस्त्रीगमन को रामायण तथा क्वचित् पुराणों में भी सबसे बड़ा पाप,[8] महाभारत आदिपर्व (पू० सं० ११३।१८-९) में भ्रूणहत्या तुल्य पाप तथा

---

१. मनु ११।५९; याज्ञ० ३।२३१; अग्नि १६८।२८ गरुड पू०१०५।६; तु० भविष्य १।१९०।७-८; ४।५।२४-५; शिव ५।५।३९-४०; स्कन्द १।२।४१।४३-४

२. वैजयन्ती (विष्णुस्मृति ३४।१) में उद्धृत। ३. तत्रैव।

४. विष्णुस्मृ० ३५।१; मनु ११।५५; अग्नि १६८।२४; स्क० २।१।११।६४; द्र० वृद्धहारीत स्मृ० ६।१६८; स्क० ५।३।११८।७।

५. मनु ९।२३५; याज्ञ० ३।२२७; लिखितस्मृ० ७६; कूर्म उ० ३०।८; गरुड पू० ५२।१; १०५।६; नारद पू० १५।२२; ३०।५; पद्म २।६७।४६; ५।६४।३५-७; ब्रह्मवै० ३।४४।४८; भविष्य १।१८९।३६; ४।५।९; मत्स्य २२७।१६२; वराह १७६।४५; शिव ५।५।२३; स्कन्द १।२।४१।२७।

६. पद्म २।९०।४५; द्र० वामन ६१।२२।

७. गोविन्दस्वामी ने (बौ० ध० सू० २।१।२।४-५ के विवरण में) अगम्या का तात्पर्य मौसी, बुआ आदि बतलाते हुए इसके उदाहरण रूप में नारद स्मृति (१२।७३-५) के वचन (द्र० पीछे, पृ० २७६) उद्धृत किये हैं।

८. (क) परदाराभिमर्शात् तु नान्यत् पापतरं महत्। रामा० ३।३८।४०।
(ख) एकतः सर्वपापानि परदारास्तथैकतः। स्कन्द ७।१।२९।५२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्मृतियों एवं पुराणों में उपपातक[१] और शरीर से किये जाने वाले त्रिविध पापों में से एक[२] बतलाया गया है। परस्त्री के विषय में कामुक होकर चिन्तन करना (परस्त्रीसङ्कल्प) को चार प्रकार के मानस पापों में गिनाया गया है।[३] कन्यादूषण को उपपातकों में गिना गया है।[४] इतिहास-पुराण में मान्यता व्यक्त की गयी है कि परिणीता स्त्री को छोड़कर अन्य किसी भी स्त्री के साथ यौनाचार पापजनक होता है।[५] परस्त्रीगमन जनित पाप की गम्भीरता के ख्यापन हेतु ही अनेकत्र यह भी कहा गया है कि यह प्रायश्चित्त-शत से भी दूर नहीं हो सकता।[६] वराहपुराण (६८।१३-५) में अगम्या स्त्रियों का निर्देश करते हुए कहा गया है कि अगम्यागमन पापजनक है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पुरुष के लिए अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य प्रत्येक स्त्री अगम्या बतलायी गयी है। पञ्चतन्त्र (मित्रसम्प्राप्ति, श्लोक ११२) में गुरु की पुत्री, मित्र की पत्नी, स्वामी की पत्नी तथा सेवक की पत्नी के साथ दुराचार करने वाले को ब्रह्मघातक कहा गया है। तात्पर्य यह कि वह ब्रह्महत्या के समान महापातक प्राप्त करता है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में अष्टादश अगम्या स्त्रियों को गिना कर यह कहा गया है कि उनको कामभाव से देखने या स्पर्श करने वाला भी आतिदेशिक ब्रह्महत्या को प्राप्त करता है।[७] इसमें अन्यत्र भी कहा गया है कि इन अगम्या स्त्रियों में से किसी को भी दूषित करने वाला मातृगमन एवं सैकड़ों (आतिदेशिक) ब्रह्महत्याओं के पाप को प्राप्त करता है।[८] कुलटा-विप्रपत्नीगमन में ब्रह्महत्या का षोडशांश और यदि वह स्वेच्छया उपस्थित हुई हो तो तब ब्रह्महत्या का चतुर्थांश पाप लगता है और सती (पतिव्रता) विप्रपत्नी के साथ बलात्कार में ब्रह्महत्या-शत के तुल्य पाप लगता है।[९] अन्यत्र यह कहा गया है कि किसी भो वर्ण की पतिव्रता स्त्री के साथ बलात्कार करने वाला मातृगामी के तुल्य पापी होता है और एक सौ ब्रह्म-हत्याओं के (तुल्य) पाप को प्राप्त करता है।[१०] ब्राह्मणीगामी शूद्र को भी एक सौ ब्रह्महत्याओं के पाप का भागी बतलाया गया है।[११] गुरुतल्पगमन जैसे पाप को त्रैवर्णिकों

---

२. मनु ११।५९; विष्णु ३७।६; याज्ञ० ३।२३५; वृद्धहारीत स्मृ० ६।१९२; अग्नि १६८।२६; गरुड पू० १०५।१३; शिव ५।६।२।

३. मनु १२।७; नारद उ० ४३।६१; विष्णुधर्मो० ३।२५३।७।

४. भविष्य ४।५।४; शिव ५।५।३; स्कन्द १।२।४१।१६।

५. बौ० ध० सू० २।१।२।४-५; मनु ११।६१; याज्ञ० ३।२३८; वृद्धहारीत स्मृ० ६।१९४; अग्नि १६८।३१; शिव ५।६।२।

६. द्र०—आदिपर्व ११३।१८-९ (पुना सं०); वराह ६८।१५; शिव ४।४०।४५।

७. शिव ३।२७।३६; स्कन्द ३।३।१४।३४।

८. ब्रह्मवै० ४।७८।५४; द्र० वही २।३०।२००-२०२। ९. वही, २।३०।२०३।

१. वही, २।५८।५३-५। २. वही ४।८६।८५। ३. २।३१।१६५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के पतन का हेतु माना जाता था, जिसके कारण उन्हें बन्धु-बान्धवों के द्वारा त्याग दिया जाता था (द्र०-पीछे, पृ० २६१-५)। व्यभिचारी पुरुष लोक-बहिष्कृत होने के साथ ही परलोक में भी अपने दुष्कर्म के फल को भोगता था।

व्यभिचार से पुरुषों को पाप की प्राप्ति विषयक वचनों की अपेक्षा स्त्रियों की पाप-प्राप्ति विषयक वचनों का अनुपात प्राचीन साहित्य में आश्चर्यजनक रूप से अत्यल्प है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि व्यभिचारिणी स्त्रियों को पाप नहीं लगता। वैदिक काल से ही यह मान्यता चली आ रही है कि पति का अतिक्रमण करके परपुरुष समागम करने पर नारी को पाप लगता है। मैत्रायणी संहिता तथा शतपथ ब्राह्मण में यह स्वीकार किया गया है कि पति के होते हुए अन्य पुरुष-संसर्ग करने पर स्त्री अनृत[1] (असदाचरण) या वरुण्य[2] (वरुण के प्रति अपराध या पाप) करती है। महाभारत में श्वेतकेतु ने भी यह कहा है कि अद्यप्रभृति पति के अतिक्रमण से नारी को भ्रूणहत्या के समान घोर कष्टप्रद पातक लगेगा।[3] इसमें अन्यत्र भी यह कहा गया है कि पति के अतिक्रमण से स्त्रियों को महान् अधर्म (जो कि पापसूचक है) प्राप्त होगा।[4] विज्ञानेश्वर ने अगम्य पुरुष के साथ कामतः रमण करने वाली स्त्री को लक्ष्य करके कहा है कि जिस दुष्ककर्म से पुरुष महापातकी होता है उसी दुष्कर्म से कामतः प्रवृत्त होनेपर स्त्रियाँ भी महापातकी होती हैं।[5] इस प्रसंग में ब्रह्मवैवर्तपुराण १।१०।५६ का यह वचन भी उल्लेखनीय है कि गुरुपत्नी के साथ व्यभिचार करने वाले को जितना दोष लगता है उतना ही दोष उसके साथ कामतः प्रवृत्त होने वाली गुरुपत्नी को भी लगता है। इसी तरह ब्रह्मपुराण में भी यह स्वीकार किया गया है कि जिस दुष्कर्म से पुरुषों को पाप लगता है उस दुष्कर्म को उसी भावना से करने पर स्त्रियों को भी पाप लगता है।[6] पति का अतिक्रमण करके परपुरुषगमन करने वाली नारी को पाप की भागिन बतलाने वाले अनेक उल्लेख पुराणों में देखे जा सकते हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा गया है कि पृथिवी में जितने भी पाप हैं वे पुंश्चली स्त्रियों को लगते हैं और उनसे बढ़कर पापी अन्य कोई नहीं होता।[7] इसी तरह अन्यत्र यह कहा गया है कि ब्राह्मणीगामी शूद्र के

१. अनृतं वा एषा करोति या पत्युः क्रीता सत्यथान्यैश्चरति। मै०सं० १।१०।११।
२. वरुण्यं वा एतत् स्त्री करोति यदन्यस्य सत्यन्येन चरति। शत०ब्रा० २।५।२।२०।
३. व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्या अद्य प्रभृति पातकम्।
भ्रूणहत्यासमं घोरं भविष्यत्यसुखावहम्॥ आदिपर्व ११३।१७-८।
४. स्त्रीणामधर्मः सुमहान् भर्तुः पूर्वस्य लङ्घने। आदिपर्व १५७।३६।
५. ···पुरुषवच्च स्त्रीणामप्यत्र महापातकित्वमविशिष्टम्। मिता० (याज्ञ०३।२६०)।
६. द्र०"स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन कृत्वा पापमवाप्नुयुः। ब्रह्म २१७।११४ (प्रयाग सं)।
७. पृथिव्यां यानि पापानि पुंश्चलीस्वेव भारते।
तिष्ठन्ति ताभ्यो न पराः पापिष्ठाः सन्ति केचन॥ ब्रह्मवै० ४।२३।३५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साथ ही उसके साथ कामतः रमण करने पर वह ब्राह्मणी भी ब्रह्महत्याशत को प्राप्त करती है (ब्रह्मवै० २।३१।१९५)। स्त्री को व्यभिचार का दुष्परिणाम पुरुष की अपेक्षा अधिक भुगतना पड़ता था। अगम्यपुरुषगमन जनित पाप उसके पतन, परित्याग तथा सामाजिक बहिष्कार का हेतु बनता था। अपने प्रच्छन्न पाप के फलस्वरूप पुरुषों के समान ही स्त्रियों के विषय में भी नरक में और पुनर्जन्म में भी कष्ट भोगने की कल्पना की गयी है।

५. व्यभिचार का फल नरकयातना—

प्राचीन समाज में यह धारणा बद्धमूल रही है कि पाप का दुष्परिणाम नरक में तथा पुनर्जन्म में भी भोगना पड़ता है। आधुनिक काल में वैज्ञानिक उपकरणों के आधार पर पृथिवी के अन्तस्तल और दिग्दिगन्त, समुद्र के गहन-गम्भीर तल तथा अनन्त आकाश के नाना ग्रह-नक्षत्रों के रहस्य के ज्ञाता मनुष्य को कहीं भी नरकों का अस्तित्व दृष्टिगत नहीं होता। देह-त्याग के पश्चात् मानव के सूक्ष्म शरीर की क्या गति होती है इस प्रश्न का सन्तोषप्रद समाधान अद्यावधि वैज्ञानिक-जगत् नहीं कर पाया है। किन्तु प्राचीन मनीषियों ने अपनी अध्यात्म बुद्धि से इस प्रश्न का यथासम्भव समीचीन उत्तर खोजने का प्रयास किया है। हमारे दार्शनिकों के अनुसार प्रत्यक्ष एवं अनुमान आदि प्रमाणों से जो तथ्य प्रमाणित नहीं हो पाते, उनके विषय में 'शब्द' या 'आप्तवचन को प्रमाण मानना चाहिए। नरक और पुनर्जन्म के विषय में हमारे लिए वेद, वेद-मूलक स्मृतियाँ और पुराणों के वचन ही आप्तवाक्य होने से प्रमाण-स्वरूप हैं। पापा-चरण से नरक में पतन की कल्पना ऋग्वेद से ही प्राप्त होने लगती है।[1] जैमिनि उपनिषद् ब्राह्मण (४।२५।६;४।२६।१) में यह स्वीकार किया गया है कि दश (तत्त्व या इन्द्रियाँ) स्वर्ग या नरक प्रद हैं। सदसत् आचरण वाले मन, वचन, प्राण, नेत्र आदि दश तत्त्व ही स्वर्ग या नरक के कारण बनते हैं। तात्पर्य यह है कि पाप कर्म के फलस्वरूप नरक में पतन की कल्पना का विकास वैदिक काल में हो चुका था।[2] किन्तु इस कल्पना का स्पष्ट और परिमार्जित स्वरूप पुराणों में ही दृष्टिगत होता है। पुराणों में कहा गया है कि पाप-कर्म के फलस्वरूप मनुष्य की आत्मा में जो कालुष्य आ जाता है उसी का शोधन नरक में किया जाता है।[3] नरक में भी वही पापी गिरता है जो अपने पापों का प्रायश्चित नहीं कर लेता।[4] अनेकत्र यह कहा गया है कि जो मनुष्य

१. जिह्मायन्तो नरकं पताम।-निरुक्त १।११ (संलक्ष्मणसरूप) की टिप्पणी २ में ऋग्वेद खिलसूक्त (१०।१०६।१) से उद्धृत।

२. इस विषय में विशेष विवरण हेतु द्र० धर्मशास्त्र का इतिहास, तृतीय भाग, पृ० १०६७ एवं आगे।

३. नारद पू० ३२।३८; शिव ५।६।२; पद्म ५।६७।३७-४०।

४. द्र० याज्ञ० ३।२२१; ब्रह्म २२।३४; विष्णु २।६।३४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आत्मानुशासन का पक्षधर है वह यदि कोई त्रुटि (पाप) कर बैठता है तो उसका गुरु उससे प्रायश्चित्त करवा कर उसे शुद्ध करता है। जो दुष्ट अपने पाप का प्रायश्चित स्वयं नहीं करता, उसे शुद्ध करने के लिए राजा दण्डित करता है। किन्तु जो प्रच्छन्न पापी हैं, उनको वैवस्वत यम के द्वारा नरक में दण्डित किया जाता है।[1] एक अन्य वचन के अनुसार भी पारदारिक चोरों तथा अन्यायी पुरुषों को राजा दण्डित करता है, किन्तु इनमें से जो प्रच्छन्न पापी हैं (जिनको उनके अपराध के छिपे रह जाने के कारण राजा दण्डित नहीं कर पाता) उन्हें यमराज दण्डित करते हैं।[2] पापियों की दुष्प्रवृत्ति यही होती है कि वे कोई भी दुष्कर्म तभी करते हैं जब उन्हें देखने और टोकने वाला कोई नहीं हो, जब उनके अपराध का कहीं कोई साक्षी न हो। किन्तु यह उनका भ्रम है। मनु ने कहा है कि पापी पुरुष यह समझते हैं कि उन्हें कोई नहीं देखता, किन्तु उनके शरीरस्थ देवताओं के सहित उनके हृदय में स्थित पुरुष उन्हें देखता रहता है।[3] श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु आदि के द्वारा अपराधी के अधर्म का ज्ञान करके इसकी सूचना दण्ड के समुचित अधिकारी (यम) को दे दी जाती है।[4] इस तरह के दैवी अनुशासन के कारण कोई भी पापी यमदण्ड से मुक्त नहीं रह पाता।

व्यभिचार से नरक में पतन का विश्वास वैदिक काल से ही प्रचलित रहा है।[5] अथर्ववेद ६।१२०।२ में 'जामि' (भगिनी या अन्य निकट-सम्बन्ध की स्त्री) के साथ अनैतिक आचरण से लोक से पतन की जो कल्पना की गयी है, उसका तात्पर्य नरक में गिरने से ही लगाया जा सकता है और यह तथ्य निरुक्त १।११ से भी प्रमाणित हो जाता है, जहाँ कि नरक का तात्पर्य अधोगमन से लिया गया है और यह बतलाया गया है कि उसमें रमण के लिए कोई स्थान नहीं होता। दाम्पत्य-मर्यादा का अतिक्रमण करने वाला न तो पुरुष क्षम्य था और न स्त्री ही। आपस्तम्ब ने कहा है कि वैवाहिक जीवन की मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले स्त्री-पुरुष दोनों ही नरक के भागी होते हैं।[6] रामायण ३।५०।७ में परस्त्रीहरण (धर्षण) को अधोगति (नीचा गति) का कारण माना गया है। महाभारत और पुराणों में गुरुतल्पग,[7] अगम्यागामी[8] तथा

---

१. उद्योगपर्व ३५।७१; वसिष्ठ ध० सू० २०।३; गरुड उ० ३४।८।
२. पद्म २।६७।१०८-९; शिव ५।६।५६; भविष्य १।१९१।२६; ४।५।८१।
३. मनु ८।८५; तु० स्कन्द १।२।४४।७। ४. द्र०—भाग० ६।१।४२-३।
५. द्र० पीछे, पृ० २८० टि० १।
६. तद् व्यतिक्रमे खलु पुनरुभयोर्नरकः ॥ आप० ध० सू० २।१०।२७।६।
७. अनु० पर्व १३०।३८-९; गरुड पु० १०५।६; स्कन्द १।१।१७।१६३।
८. पद्म ६।२५३।१२१-३; ब्रह्मवै० २।३०।१३८-१४५; वामन ६१।२२-५; विष्णु २।६।१३; ३।११।१२४; स्कन्द १।२।११।२८-९; २।४।६।६८ विष्णुधर्मो० २।११८।१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परस्त्रीगामी[1] के नरक में पतन के उल्लेख अनेकत्र प्राप्त होते हैं। पुराणों में गुरुपत्नीगामी के अवटोद,[2] अवीचिमान्,[3] असिपत्रवन,[4] कालसूत्र,[5] कुम्भीपाक,[6] तप्तकुम्भ,[7] ताल,[8] रौरव[9], महारौरव[10] जैसे नरकों में पतन के उल्लेख प्राप्त होते हैं। निकट-सम्बन्ध की अन्य स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने वाले व्यभिचारियों के भी विभिन्न नरकों में पतन के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[11] परस्त्रीगामी पुरुष के भी अन्धकूप,[12] कषायतप्तोद,[13] कालसूत्र[14], रौरव[15] आदि नरकों एवं वैतरणी[16] में पतन के उल्लेख प्राप्त होते हैं। नरकों की संख्या कतिपय स्थलों में इक्कीस भी बतलायी गयी है[17] और अनेकत्र यह कहा गया है कि परस्त्रीगामी पुरुष क्रमशः इन सभी इक्कीस नरकों में गिरकर यातना पाते हैं।[18] पुंश्चलीगामी एवं वेश्यागामी द्विज के कालसूत्र[19] तथा शूद्रस्त्रीगामी ब्राह्मण के कृमिदंष्ट्र[20] नामक नरककुण्ड में यातना पाने का उल्लेख है। रजस्वलागमन, दासीगमन, वियोनिगमन अथवा किसी अन्य प्रकार से अप्राकृतिक दुष्कर्म करने वाले के भी नरक में पतन की कल्पना की गयी है।[21] निर्दोष पत्नी के त्याग,[22] अकारण अधिवेदन[23] (दूसरा विवाह करने) तथा बहुभार्य पुरुष के द्वारा पत्नियों के प्रति विषम व्यवहार[24] का दुष्परिणाम भी नरक में भोगना पड़ता है। मानसिक व्यभिचार के लिए भी नरक में पतन की कल्पना की गयी है। यथा-गुरुपत्नी के काम-भावना से चिन्तन एवं वासनापूर्ण दृष्टि से उसका दर्शन करने

१. अनु० पर्व १०४।२२; भाग० ५।१४।२२; पद्म १।५४।३६; ३।३१।८६; ब्रह्मवै० २।३१।६-८, १९५; २।५८।६६; ४।६१।४०; ४।८६।६४; वामन ६६।३७; विष्णुधर्मो० २।११८।१-२, ६६; राजमार्तण्ड ८८।

२. ब्रह्मवै० २।३१।६ ३. स्कन्द ४।८।७३। ४. स्क० १।३।२।५।६-७।

५. ब्रह्मवै० ३।४४।४८। ६. वही, १।१०।५३-५।

७. ब्रह्म २२।१०; ब्रह्माण्ड ४।२।१५५; वायु उ० ३६।१५३-४; स्कन्द १।२।३९।१५। ८. विष्णु २।६।१०।

९. पद्म १।५०।३८-४०। १०. वामन १२।३८-४०; स्कन्द ६।२६।२२-३।

११. द्र० ब्रह्मवै० २।३०।२०३-६; २।५२।२५-६ १२. वही, ४।३०।८७।

१३. देवीभाग० ९।३५।२६-३२; ब्रह्मवै० २।३१।३०-३२।

१४. स्कन्द १।३।२।५।८। १५. ब्रह्मवै० ४।८६।९५। १६. गरुड उ० ३५।१८।

१७. भाग० ५।२६।७; द्र० याज्ञ० ३।२२२-४; विष्णु स्मृ० ४३।१-२२।

१८. नयन्ति परदारास्तु नरकानेकविंशतिम्। पद्म ३।३१।८६; वामन ६६।३७।

१९. ब्रह्मवै० २।३१।२-३। २०. वही, २।५१।७०-७२।

२१. विष्णुधर्मो० २।११८।१९-२०। २२. पद्म० १।५४।३५; ४।९६।६६; ब्रह्मवै० २।६।७३। २३. पद्म ५।९६।६६। २४. विष्णुधर्मो० २।११८।३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाले[1] तथा परस्त्री की कामना करने वाले[2] के नरक में पतन के उल्लेख प्राप्त होते हैं। सम्भवतः मनुष्य की चित्तवृत्ति को शुद्ध रखने और उसमें व्यभिचार की कल्पना का उदय न होने देने के ध्येय से भी ऐसी कल्पनाएँ की गयी थी। नरक यातना के स्वरूप की कल्पना प्राचीन समाज में व्यभिचारियों के लिए कल्पित प्रायश्चित्त एवं राजदण्ड के स्वरूप से क्वचित् मिलती जुलती है, किन्तु क्वचित् उससे भी भयावह एवं वीभत्स भी है,[3] जिसका वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है। नरक-यातना विषयक पौराणिक वर्णनों को पढने या सुनने से भी मनुष्य के चित्त में व्यभिचार से विरत रहने में मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। पुराणों में गुरुतल्पग एवं परस्त्रीगामी पुरुषों को नरक में अनेकविध यातनाएँ दिये जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। उनको यमदूत ताडित करते हैं।[4] मार्कण्डेयपुराण १४।६१-२ के अनुसार गुरुतल्पग आदि पापी नरक में सहस्रों वर्षों तक ऊपर, नीचे तथा चारों ओर से अग्नि से दग्ध किये जाते हैं। अग्निपुराण २०३।२२ के अनुसार माता, पुत्री आदि के साथ दुष्कर्म करने वाले पापियों को अङ्गारों की राशि के ऊपर झोंक दिया जाता है। वराहपुराण १९७।११-८ के अनुसार व्यभिचारी पुरुष के द्वारा घर्षित की गयी भगिनी, पुत्रवधू, मौसी, मामी, बुआ, गुरुपत्नी, भ्राता की पत्नी, मित्र की पत्नी, राजपत्नी, श्रोत्रिय ब्राह्मण की पत्नी आदि परस्त्रियाँ नरक में प्रतप्त लौह प्रतिमा के रूप में उसे आलिङ्गित करके पीडित करती हैं। पुराणों में अन्यत्र भी ऐसे उल्लेख हैं कि अगम्यागामी पुरुष को अग्नि में तपायी हुई लोहे की स्त्रीप्रतिमा से तथा अगम्यपुरुषगामिनी नारी को अग्नि में तपायी हुई लोहे की पुरुष प्रतिमा से आलिङ्गित कराया जाता है।[5] इसी तरह परस्त्रीगामी पुरुष को भी तप्तलौह की स्त्रीप्रतिमा से तथा परपुरुषगामिनी नारी को तप्तलौह की पुरुष-प्रतिमा से आलिङ्गित कराकर यातना दी जाती है।[6] पुराणों के अनुसार नरकों में पापियों को यातना देते समय उनके द्वारा पापकर्म में प्रयुक्त अङ्गों को भी शुद्ध किया जाता है।[7] वराह-

---

१. नारद उ०७।१२-३। २. वामन ६१।१७; ६६।३८।

३. भगं नरककुण्डं च लालामूत्रसमन्वितम्। दुर्गन्धियुक्तं पापञ्च यमदण्डस्य कारणम्॥
यथा लिङ्गं विशत्येव पापयोनौ च योषिताम्।
तथा पुमान् विशत्येव रौरवे च युगे युगे॥ ब्रह्मवै० ४।८६।६४-५।

४. ब्रह्मवै० २।३१।६। ५. भाग० ५।२६।२०।

६. स्कन्द ५।२।२७।२२-४; तु० अग्नि २०३।२१।

७ क. यैश्चाङ्गैः पतितं कर्म क्रियते पुरुषैर्भुवि।
तेषां तान्येव चाङ्गानि शोष्यन्ते यातनागतैः॥ स्कन्द ५।२।२७।१५।

ख. छिनत्ति पादौ गमने जिह्वाच्छेदं वचस्यपि।
आलिङ्गने हृदिच्छेदः कुचयोः पीडने करौ॥
चुम्बने दन्तघातः स्यात् तत्सङ्गे शिश्नमोक्षणम्।
एवं परोक्षे कुरुते यमो नास्त्यत्र संशयः॥
हेमाद्रि : चतुर्वर्गचिन्तामणि, प्रा० ख०, पृ० ३०५ में उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुराण २००।१२ के अनुसार कामाभिभूत होकर गम्यागम्य का विचार न करने वाले के लिङ्ग को काट कर उस (कटे हुए स्थान) में क्षार और आग लगायी जाती है। स्कन्दपुराण ४।८।६१ में परस्त्री के प्रति हाथ बढ़ाने वाले के हाथ तथा उसके पास जाने वाले के पैरों को नरक में काटे जाने का उल्लेख है। परस्त्री के वक्षःस्थल तथा श्रोणि प्रदेश (नितम्ब) को कामुक दृष्टि से देखने वाले की आँखों को काक-कुण्ड में कौओं के द्वारा फोड़ा जाता है।[1] ऐसा भी उल्लेख है कि परस्त्री को कामुक दृष्टि से देखने वाले की आँखों को यमकिङ्करों के द्वारा नाराचों से बींधा जाता है।[2] ऐसे पुरुष की आँखों को निकाले जाने के उल्लेख भी अन्यत्र प्राप्त होते हैं।[3] नरक में दी जाने वाली ऐसी भयावह यातनाओं की कल्पना से अनेक दुराचारियों को दुष्कर्म से विरत रहने की प्रेरणा प्राप्त होती रही होगी।

दाम्पत्य मर्यादा के अतिक्रमण के लिए पुरुष के समान ही स्त्री के भी नरक में पतन की कल्पना की गयी है।[4] कात्यायन के विचार से ऐसा कोई नरक नहीं है जिसमें कि पति का अतिक्रमण करने वाली नारी न जाती हो।[5] शीलभङ्ग के फलस्वरूप स्त्रियों को दारुण कष्टप्रद यमलोक की प्राप्ति की कल्पना अनेकत्र व्यक्त की गयी है।[6] व्यभिचारी पुरुष जिस स्त्री को दूषित करता है वह भी उसके दुष्कर्म में सहयोगिनी होने के कारण उसके साथ नरक में जाती है।[7] स्त्री का व्यभिचार उसके पति, तथा माता-पिता के कुल के पुरुषों के लिए भी पतन (नरक में पतन) का कारण माना गया है।[8] वराहपुराण १७४.२६-४० में एक स्त्री ने पश्चात्ताप व्यक्त करते हुए अपने दुष्कर्म को पिता तथा पति के भी इक्कीस (दश पूर्व पीढी, एक वर्तमान पीढी तथा दश भावी) पीढियों के पुरुषों के नरक में पतन का कारण बतलाया है। व्यभिचारिणी स्त्रियों के अन्धकूप,[9] अप्रतिष्ठ,[10] कुम्भीपाक[11] आदि विभिन्न नरकों में पतन की कल्पना

१. ब्रह्मवै० २।३०।८२-३। २. ब्रह्म २१५।९७-८।
३. भविष्य ४।६।१४३-४; स्कन्द ५।२।२७।१६।
४. आप० ध० सू० २।१०।२७।६; द्र० पीछे, पृ० २८१ टि० ६।
५. कात्या० स्मृ० १९।११। ६. वृद्धहारीतस्मृ० ८।१९५; पद्म ३।३१।९४।
७. द्र० स्ववर्णपरदारी च कथं याति तया सह। ब्रह्मवै० २।३१।३१।
८. शीलभङ्गेन दुर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम्।
पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्रापि दुःखिताः॥ शिव २।३ ५४।६०।
९. द्र०-या ब्राह्मणी शूद्रभोग्या सान्धकूप प्रयाति च। ब्रह्मवै० २।३१।२२।
१०. नारद उ० २४।४६-७; इसमें स्वेच्छाचारिणी नारी के अप्रतिष्ठ नरक में गिरने का उल्लेख है, तात्पर्य यह कि ऐसी नारी को उसके स्वच्छन्द विचरण के फल स्वरूप ऐसा नरक प्राप्त होता है जिसमें उसके लिए कहीं पर भी ठहरने के लिए कोई स्थान नहीं होता। ११. द्र०—ब्रह्मवै० ४।१८।१११; ४।६१।८३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की गयी है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में व्यभिचारिणी स्त्रियों के कुलटा, स्वैरिणी, धर्षिणी, वेश्या आदि भेद बतलाये गये हैं।[1] इसमें आगे यह बतलाया गया है कि वेश्या वेधन नामक नरककुण्ड में, युग्मी दण्डताडन में, महावेश्या जालबन्ध में, कुलटा देहचूर्णन में, स्वैरिणी दलनकुण्ड में तथा धृष्टा शोषण नामक नरककुण्ड में यातना पाती है।[2] व्यभिचारिणी स्त्रियों के दुष्कर्म के अनुसार उनके एक मन्वन्तर,[3] चतुर्दश इन्द्रों के काल,[4] एक कल्प[5] या चन्द्र और सूर्य की स्थिति पर्यन्त[6] अथवा एक सौ ब्रह्माओं के काल पर्यन्त[7] नरक में निवास की अवधि कल्पित की गयी है। मानसिक व्यभिचार के लिए भी पुरुषों के समान ही स्त्रियों के भी नरक में पतन की कल्पना की गयी है। बृहत्पराशर (स्मृति ६।५१) के अनुसार मन से भी अन्य पुरुष में आसक्त होने वाली नारी पतिद्रोह की भावना के कारण नरक में गिरती है। व्यभिचारिणी स्त्रियों को नरक में अनेकविध यातनाएं दिये जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। उन्हें यमदूत ताडित करते हैं।[8] कहीं पर उन्हें सर्प के आकार के कीड़ों के द्वारा काटा जाता है।[9] उन्हें अग्नि में प्रदीप्त लौह-कण्टकों,[10] जलती हुई आयसी (लौह)-शिला[11] या लोहे की बनी हुई और अग्नि में तपायी हुई पुरुष-प्रतिमा[12] से आलिङ्गित कराया जाता है। उनकी योनि में अग्नि-प्रतप्त लौह-परिघ डाले जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[13] उन्हें अन्य भी अनेक प्रकार की वीभत्स एवं भयावह यातनाएं दिये जाने के उल्लेख पुराणों में यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं।

दाम्पत्य सम्बन्ध का सामञ्जस्य पूर्ण विधि से निर्वाह न करने वाले स्त्री-पुरुषों के भी नरक में कष्ट-भोगने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा गया है कि दर्पवश पति के साथ सम्यक् व्यवहार न करने वाली तथा उसके प्रति अप्रिय आचरण करने वाली, उसका अपमान करने वाली, उसके प्रति अप्रिय वचन बोलने वाली तथा स्वतन्त्र होकर जो चाहे सो करने वाली स्त्रियाँ नरक में गिरती हैं।[14] ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा गया है कि पति के प्रति सदा कुपित रहने वाली, उसे क्रोधपूर्ण दृष्टि

---

१. ब्रह्मवै० २।३१।४-५। २. वही, २।३१।२७-८।
३. वही, २।३१।२७-६। ४. वही, २।३१।२३।
५. पद्म ६।२०६।३६-७।
६. ब्रह्मवै० ४।२८।१११; ४।२३।३२; ४।३३।५७; ४।६१।८३; ४।८२।५९; स्कन्द २।१।२६।८२। ७. ब्रह्मवै० ४।२४।४०।
८. वही, २।३१।२८। ९. वही, ४।१८।११२-३।
१०. ब्रह्म २१५।६५-६। ११. अग्नि २०३।२१।
१२. स्कन्द ५।२।२७।२२-४; अन्य सन्दर्भों के लिए द्र० पीछे पृ० २८४ टि० १-२।
१३. स्कन्द ३।२।२२।६८। १४. विष्णुधर्मो० २।११८।४-५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से देखने वाली तथा उससे कटु वचन कहने वाली नारी अपने लोमों की संख्या के तुल्य वर्षों तक उल्कामुख नरक में रहती है। वहाँ यमकिङ्कर उसके मुख में उल्का (जलती हुई मशाल) डालता है और उसके शिर पर दण्ड-प्रहार करता है।[1] पुराणों में अपने कर्तव्य से च्युत स्त्री-पुरुषों के लिए अनेकानेक नरकों में नाना यातनाओं के जो वर्णन हैं उन सबका विवरण दे पाना यहाँ सम्भव नहीं है। इस प्रसङ्ग में यही कहा जा सकता है कि मनुष्य के आचरण को नियन्त्रित करने में उसके मन की प्रमुख भूमिका रहती है। प्राचीन आचार्यों ने नरक यातना विषयक कल्पना के द्वारा मनुष्य की दुराचार की प्रवृत्ति को नियन्त्रित करने का एक मनोवैज्ञानिक प्रयास किया था। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्राचीन समाज के अधिकांश नर-नारी नरक में यातना पाने के भय से ही दुराचार में लिप्त नहीं होते थे। यदि किसी मनुष्य की दृष्टि में नरक या परलोक का कोई अस्तित्व ही न हो और उसके मन में अपने दुष्कर्म के लिए यम-दण्ड या नारकीय-यातना का कोई भी भय न हो तो कोरी नैतिकता का उपदेश या मात्र राजदण्ड का भय उसे दुष्कर्म में प्रवृत्त होने से रोकने में बहुत अधिक सहायक नहीं हो सकता।

६. अतिचार का कर्म विपाक—

तत्त्वान्वेषी मनीषियों के विचार से मनुष्य को अपने सदसत्कर्मों के फल इहलोक, परलोक एवं पुनर्जन्म में भी भोगने पड़ते है। इस विषय में याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट कहा है कि कुछ कर्मों का फल मृत्यु के पश्चात्, कुछ का इसी जन्म में तथा कुछ कर्मों का फल इहलोक और परलोक में उभयत्र भोगना पड़ता है।[2] पुराणों में कहा गया है कि देवता जिस शरीर से कर्म करते हैं उसी शरीर से उसका फल भी भोगते हैं, किन्तु मनुष्यों के साथ ऐसा नहीं भी हो सकता। देवताओं को कर्म के फल सद्यः प्राप्त होते हैं, किन्तु मनुष्यों को मृत्यु के पश्चात् (परलोक और पुनर्जन्म में) अपने कर्म के फल भोगने पड़ते हैं।[3] मनु ने कहा है कि कोई मनुष्य जिस भावना से जैसा कर्म करता है उसी प्रकार का शरीर धारण करके उसका फल भी भोगता है।[4] गरुडपुराण में कहा गया है कि अपने पाप का प्रायश्चित न करने वाले दुराचारी मनुष्य नरक यातना भोगने के बाद नाना कुत्सित योनियों में जन्म लेते हैं और तत्पश्चात् जब मनुष्य योनि

१. ब्रह्मवै० २।३१।१६-२०।

२. याज्ञ०स्मृ० ३।१३३; द्र० हारीत (परा०मा० प्रा०का०पृ० ४८६ में उद्धृत)।

३. यैः क्रियन्ते हि कर्माणि शरीरैरिह दैवतैः।
तैरेव तत्कर्मफलं प्राप्नुवन्तीह देवताः।
सद्यः फलन्ति कर्माणि देवत्वे, प्रेत्य मानुषे॥
ब्रह्माण्ड ३।१०।६२-३; मत्स्य १४।११-२; वायु उ० ११।५५-६।

४. मनु १२।८१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पाते हैं तो उनके शरीर में पूर्वजन्म के पापकर्म का ख्यापक कोई न कोई लक्षण-रोग या विकार रहता है।[1]

कर्मविपाक विषयक अध्ययन से विदित होता है कि गम्भीर दुष्कर्म करने वाले पापियों के क्रमशः प्रेतयोनि, स्थावरयोनि तथा तिर्यग्योनियों की प्राप्ति के पश्चात् अन्त्यज या शूद्र जैसी जातियों में रोगी मनुष्य के रूप में उत्पन्न होने की कल्पना की गयी है। गुरुतल्पग,[2] परस्त्रीगामी[3] अन्त्यजागामी,[4] आदि के प्रेतयोनि को प्राप्त होने के उल्लेख मिलते हैं। परस्त्रीगामी पुरुष के पिशाच[5] तथा क्वचित् ब्रह्मराक्षस[6] होने का भी उल्लेख है। पद्मपुराण ६।१२८।८४-६ में अगम्यागामी आदि पापियों के प्रेत, राक्षस, पिशाच, तिर्यक् (पशु), वृक्ष आदि कुत्सित योनियों को प्राप्त होने का उल्लेख है। प्रेतत्व निवृत्ति के पश्चात् गुरुतल्पग[7] एवं परस्त्रीगामी[8] के तृण, गुल्म, लतादि स्थावर योनियों को प्राप्त होने की कल्पना की गयी है। मनु (स्मृ०१२।५८) ने गुरुतल्पग के क्रमशः तृण,गुल्म,लता,क्रव्याद (मांसाशी) तथा दाढ वाले पशु एवं क्रूरकर्मा मनुष्यों की योनि को प्राप्त होने की कल्पना की है। गुरुतल्पग के सूकर[9] तथा कृकलास[10] जैसी योनियों को प्राप्त होने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। भ्राता की पत्नी को धर्षित करने वाले के पुंस्कोकिल (नर कोयल) तथा मित्र, गुरु एवं राजा या शिष्य की पत्नी को धर्षित करने वाले के क्रमशः सूकर, श्वावित् (शल्यक, साही), बिल्ली, कुक्कुट, पिपीलिका कीट एवं कृमि योनियों के पश्चात् मनुष्य योनि में जन्म के उल्लेख प्राप्त होते है।[11] ब्रह्मवैवर्तपुराण२।५२।३८-४० में कन्या, पुत्रवधू, सास, भ्राता की पत्नी, भगिनी जैसी निकट सम्बन्ध की स्त्रियों के साथ दुष्कर्म करने वाले पुरुष के विषय में कहा गया है कि वह साठ हजार वर्ष तक विष्ठा में कृमि (कीड़ा) होता है, तदनन्तर भार्याहीन, नपुंसक चाण्डाल एवं तदनन्तर सात जन्मों तक गलत्कुष्ठ-युक्त नपुंसक शूद्र और तदनन्तर सात जन्मों तक कुष्ठव्याधियुक्त नपुंसक ब्राह्मण होने के पश्चात् शुद्ध होता है। परदाराभिमर्षण करने वाला पुनर्जन्म में वृक (भेड़िया), कुत्ता, सियार, गीध, सर्प, कङ्क (या काक) तथा बक (बगुला) की योनियों को प्राप्त करता है।[12] ब्रह्मवैवर्तपुराण २।३१।१०-११ में कहा

१. गरुड उ० ३४।६-१०।
२. गरुड पू० १२।६६; पद्म १।३२।५; १।६२।८८; स्कन्द ६।१८।३६।
३. विष्णुस्मृ० ४४।४३; गरुड उ०१२।६८; पद्म ६।६९।५१; भविष्य ४।७५।५५।
४. मनु १२।५६। ५. स्कन्द ५।२।६८।२८। ६. मनु १२।६०।
७. मनु १२।५८; याज्ञ० ३।२०८; अग्नि ३७१।३१; गरुड पू० १०४।२।
८. याज्ञ० ३।१३६। ९. गरुड पू० २१७।१६; तु० मार्क १५।११-२।
१०. गरुड उ० ३४।१९।
११. अनु० पर्व १११।७६-८०; तु० ब्रह्म २१७।६७-७१; द्र० मार्क० १५।१०-१२।
१२. अनु० पर्व १११।७५; द्र० ब्रह्म २१७।६६; मार्क० १५।९-१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गया है कि कुलटागामी पुरुष तित्तिर, धृष्टागामी वायस (कौआ), पुंश्चलीगामी कोयल, वेश्यागामी वृक (भेड़िया), युग्मीगामी सूकर तथा महावेश्यागामी पुरुष श्मशान में शाल्मली (सेमर) का वृक्ष होता है। पराशरमाधव के प्रायश्चित्तकाण्ड (पृ० ५१८) में उद्धृत गौतम के वचनों के अनुसार चाण्डालीगामी और पुल्कसीगामी पुरुष अजगर, प्रव्रजितागामी मरुपिशाच, शूद्रागामी द्विज दीर्घकीट, सवर्णागामी दरिद्र तथा गोगामी पुरुष मण्डूक की योनि पाता है। शूद्रस्त्रीगामी ब्राह्मण के पुनर्जन्म में पुंश्चली स्त्रियों की योनि में कीट (कीड़े) के रूप में उत्पन्न होने की कल्पना की गयी है।[1] ब्राह्मणीगामी शूद्र के क्रमशः कृमि, सूकर, श्वान, कृकलास आदि की योनियों को प्राप्त होने का उल्लेख है।[2] मानसिक दुष्कर्म के लिए भी कुत्सित योनियों में जन्म तथा मनुष्य योनि पाने पर रोगी या अङ्गविकार युक्त होने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। यथा-महाभारत (अनु० पर्व १११।५४-६) में कहा गया है कि जो शिष्य अपने मन में भी गुरुभार्यागमन की कामना करता है वह मृत्यु के बाद तीन वर्षों तक कुक्कुर तथा एक वर्ष तक कृमि की योनि में रहने के पश्चात् ब्राह्मण का जन्म पाता है। मार्कण्डेयपुराण १५।२-३ में कहा गया है कि उपाध्याय की पत्नी की मन से भी कामना करने वाला गधा होता है। कामुक होकर नग्ना परस्त्री को देखने वाले पुरुष के रोगार्त,[3] अन्धा[4] या नेत्ररोगी[5] एवं नपुंसक[6] होने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

गुरुतल्पग नाना कुत्सित योनियों के पश्चात् जब मनुष्य योनि में जन्म लेता है तो वह नपुंसक होता है।[7] मातृगामी पुरुष लिङ्गरहित होता है।[8] विष्णुस्मृति ४५।२ के अनुसार अतिपातकी (माता आदि के साथ दुष्कर्म करने वाला) पुनर्जन्म में कुष्ठी होता है। मार्कण्डेयपुराण १४।६१-४ के अनुसार गुरुतल्पग नरक-यातना के पश्चात् मनुष्य योनि पाने पर कुष्ठ और क्षयरोग से ग्रस्त होता है तथा मृत्यु के अनन्तर पुनः नरक भोगता है और पुनर्जन्म में पुनः उसी व्याधि से ग्रस्त होता है। उसका यही चक्र कल्पान्त पर्यन्त चलता है। गुरुतल्पग के दुश्चर्मा (चर्मरोग से युक्त) होने का उल्लेख

---

१. ब्रह्मवै० २।५१।७०-७३; द्र० पीछे, पृ० २६६, टि० ३ की विषय-वस्तु।
२. ब्रह्म २१७।७७-८०; तु० मार्क० १५।१५-६।
३. अनु० पर्व० १४५।५१; ब्रह्म ११७।५०। ४. अनु० पर्व १४५।५०; ब्रह्म ११७।४६; ब्रह्मवै० २।३०।८२-४; ३।४२।१४। विष्णुधर्मो० ३।२५३।२३।
५. स्कन्द १।२।५१।१२; वृद्धगौतम (नेत्ररोगी भवेत् प्रेक्ष्य नितरां परयोषितः। — परा० मा०, प्रा० का०, पृ० ५२३ में उद्धृत)।
६. परा० मा० प्रा० का० पृ० ५२४ में उत्धृत ब्रह्मपुराण का वचन।
७. अनु० पर्व १४५।५३; स्कन्द १।३।२।५।७; द्र०-वही, १।२।५१।३२।
८. पद्म ५।४८।५४; तु० शातातप स्मृ० ५।१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अनेकत्र प्राप्त होता है।[1] शातातप स्मृति ५।८ में कहा गया है कि गुरुदारगमन से मूत्रकृच्छ्र रोग होता है। वृद्धगौतम के एक वचनानुसार गुरुदारगामी पुनर्जन्म में प्रमेह रोग से ग्रस्त हो जाता है।[2] पद्मपुराण के एक वचन के अनुसार गुरुपत्नीगामी उदर-व्याधि से ग्रस्त तथा आचार्यपत्नीगामी भगन्दर रोग से युक्त होता है।[3] वृद्धगौतम के अनुसार परस्त्रीगामी पुरुष पुनर्जन्म में प्रमेह (मधुमेह) रोग से ग्रस्त होता है[4] और अपनी जाति की परस्त्री के साथ व्यभिचार करने वाला कोढ़ी होता है।[5] पद्म-पुराण ६।१३४।११८ के अनुसार भी परस्त्रीगामी पुरुष कोढ़ी होता है। परस्त्रीगामी के पङ्गु[6] एवं अपनी पत्नी का अतिक्रमण करने वाले पुरुष के नपुंसक[7] होने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। परनारी (इन्द्राणी) की कामना करने के फलस्वरूप नहुष को ऋषियों के शाप से सर्पयोनि प्राप्त हुई थी।[8] विधवागामी पुरुष के पुनर्जन्म में विधुर[9] और वेश्यागामी के खल्वाट[10] (गञ्जी खोपड़ी वाला) होने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। वियोनिगमन करने वाले के नपुंसक[11] या लिङ्गसम्बन्धी रोगों से ग्रस्त[12] होने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

इस विषय में पद्मपुराण एवं शातातप स्मृति में विस्तार से यह प्रतिपादित किया गया है कि मातृगामी मनुष्य पुनर्जन्म में लिङ्गरहित (नपुंसक) होता है, गुरुपत्नीगमन करने वाले को पुनर्जन्म में मूत्रकृच्छ्र, भगिनीगमन करने से पुनर्जन्म में पीतकुष्ठ, पुत्री-गमन से रक्तकुष्ठ तथा भ्रातृभार्यागमन से गलत्कुष्ठ होता है। अपने स्वामी आदि की पत्नी के साथ दुराचार से पुरुष पुनर्जन्म में दद्रुमण्डल (दाद) से युक्त होता है। विश्वस्त पुरुष की पत्नी को दूषित करने से हाथी के समान चमड़े वाला, पितृष्वसागमन करने से दाहिने अङ्ग में व्रण वाला, मामी के साथ दुष्कर्म से वामाङ्ग में व्रण वाला, चाची के साथ दुराचार करने से कटि में कुष्ठ रोग वाला, मित्र की पत्नी के साथ दुराचार से

---

१. मनु ११।४९; विष्णु स्मृ० ४५।६; वसिष्ठ ध० सू० २०।४४; याज्ञ० स्मृ० ३।२०६; शंखलिखित (परा० मा०, प्रा० का०, पृ० ५२२ में उद्धृत); अग्नि ३०१।३२; गरुड उ० ३४।१२; स्कन्द १।२।५१।५, ३१; १।३।२।५।१८।
२. परा० मा०, प्रा० का० पृ० ५२३ में उद्धृत।
३. द्र० वही, पृ० ५२१। ४. द्र० वही, पृ० ५२३।
५. द्र०—वही०, पृ० ५२३। ६. स्कन्द १।३।२।५।२०।
७. षण्डश्च जायते लोके दारातिक्रमकारकः। विष्णुधर्मो० ३।२५३।१७।
८. द्र० उद्योगपर्व १७।१४-८; हर्षचरितम् उ० ३, पृ० १४६।
९. शाता० स्मृ० ५।३२। १०. स्कन्द १।२।५१।१९।
११. अनु० पर्व १४५।५२; तु० प्रकीर्णमैथुनो जन्तुः क्लीबो भवति वै द्विजाः। विष्णुधर्मो० ३।२५३।३६। १२. विष्णुधर्मो० ३।२५३।१९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मृतभार्य (विधुर), सगोत्र स्त्री-गमन करने से भगन्दर रोग से युक्त, तपस्विनी के साथ दुराचार करने से प्रमेह रोग से ग्रस्त, श्रोत्रिय की स्त्री को दूषित करने पर नासिका में व्रण युक्त, दीक्षित की पत्नी को दूषित करने से दूषित रक्त का स्राव करने वाला, स्वजातीया स्त्री के साथ दुष्कर्म करने से हृदय में व्रण वाला, अपने से ऊँची जाति की स्त्री के साथ दुराचार से मस्तक में व्रण (घाव) वाला, पशु-योनि गमन से मूत्रघात (मूत्रकृच्छ्र रोग) से ग्रस्त होता है। ये दोष ऐसा करने वाले पुरुषों में नरकयातना भोगने के बाद पुनर्जन्म में उत्पन्न होते हैं और उन पुरुषों के साथ समागम करने वाली स्त्रियों को भी उन्हीं के समान ये दोष (रोग) नरक भोगने के बाद पुनर्जन्म में उत्पन्न होते हैं।[1] किन्तु मनु के एक वचन में यह भी स्वीकार किया गया है कि कुछ दुष्कर्मी पुरुषों की अङ्ग-विकृति उनके इस जन्म के दुष्कर्म के फलस्वरूप भी हो सकती है और अन्य की उनके पूर्वजन्म के दुष्कर्म का परिणाम हो सकती है।[2] निर्दोष पत्नी का त्याग करने वाले पुरुष के पुनर्जन्म में दुश्चर्मा और दुर्भग (दुर्भाग्यग्रस्त) होने का उल्लेख प्राप्त होता है (स्क० ५।३।१५५।८९)। ऐसा करने वाले पुरुष के सात जन्मों तक क्लीवत्व और बाल-वैधव्य को प्राप्त करने का भी उल्लेख है (गरुड १०७।२४)। इस तरह पत्नी के त्याग और परस्त्री के साथ अनैतिक सम्बन्ध के दुष्परिणाम को नरक में और जन्मान्तर पर्यन्त भोगने की कल्पना का दाम्पत्य सम्बन्ध के विघटन को रोकने और समाज को मर्यादित रखने में उल्लेखनीय योगदान रहा है।

दुराचारिणी नारी के कर्मविपाक में बतलाया गया है कि वह नरक-यातना भोगने के पश्चात् स्थावर (तृण, गुल्म, लता, वृक्षादि) योनियों में तथा तत्पश्चात् पशु-योनियों में जन्म पाती है और अन्त में मनुष्य योनि पाने पर शारीरिक विकृतियों से युक्त होती है।[3] मनु एवं वसिष्ठ ने माना है कि व्यभिचारिणी स्त्री शृगाल योनि को प्राप्त करती है और तत्पश्चात् मनुष्य योनि पाने पर विभिन्न पापरोगों (=पाप-जनित रोगों-कुष्ठ आदि) से ग्रस्त होती है।[4] पापरोगों में देवल ने उन्माद, चर्मरोग, राजयक्ष्मा, श्वास (दमा), मधुमेह, भगन्दर और अश्मरी (पथरी) को गिनाया है।[5]

---

१. पद्म ५।४८।५५-६४; तु० शाता० स्मृ० ५।८-३९; द्र० परा० मा०, प्रा० का० पृ० ५२२-४ में उद्धृत शङ्खलिखित एवं वृद्धगौतम के वचन।

२. इह दुश्चरितैः केचित् केचित्पूर्वकृतैस्तथा।
प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम्॥
मनु० ११।४८; यम (परा० मा०, प्रा० का०, पृ० ५०७ में उद्धृत)।

३. द्र०-पद्म ६।२०६।३८-६।

४. मनु स्मृ० ५।१६४; ६।३०; तु० वसिष्ठ ध० सू० २१।१४।

५. परा० मा०, आ० का०, पृ० ६८६ में उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शिव एवं स्कन्दपुराण में कहा गया है कि व्यभिचारिणी नारी उलूकी होती है।[१] वराहपुराण (२००।६६-७) में कहा गया है कि ऐसी स्त्री क्रमशः शुनी (कुतिया) तथा सूकरी की योनि के पश्चात् कुत्सित जाति की स्त्री के रूप में जन्म ग्रहण करती है और दुःखी रहती है। ब्रह्मवैवर्तपुराण २।३१।२२-६ में शूद्र के द्वारा सेवित ब्राह्मणी के विषय में कहा गया है कि वह नरक भोगने के अनन्तर क्रमशः काकी, सूकरी, कुक्कुटी, शृगाली, पारावती (कपोती) तथा वानरी की योनि में रहने के पश्चात् मनुष्य योनि में क्रमशः चाण्डाली, यक्ष्मरोग से ग्रस्त रजकी (धोबिन) तथा कुष्ठरोग से ग्रस्त तैलकारी (तेलिन) होती है। पद्मपुराण १।५४।८४-५ में कहा गया है कि मैथुन सेवन करने वाली विधवा नरक भोगने के पश्चात् क्रमशः दश जन्मों तक गृध्रिणी (गिद्धिन), दो जन्मों तक फेरवा (सियारिन) होने के पश्चात् मानुष योनि पाने पर बाल-विधवा और दासी होती है। पुराणों के अनुसार परपुरुष के साथ शारीरिक-सम्बन्ध ही नहीं इसकी इच्छा या चेष्टा करने वाली नारी को भी अपने दुष्कर्म के फल को भोगना पड़ता है। यथा—अपने पति की दृष्टि बचा कर किसी अन्य पुरुष को देखने वाली स्त्री पुनर्जन्म में कानी, विमुखी और कुरूप होती है।[२] इसी तरह परपुरुष को कटाक्ष करने वाली नारी के पुनर्जन्म में केकराक्षी होने का उल्लेख है।[३] ब्रह्मवैवर्तपुराण २।३?।१९-२१ में पति के प्रति कुपित (क्रुद्ध) रहने वाली नारी के विषय में कहा गया है कि वह नरक भोगने के अनन्तर सात जन्मों तक विधवा और व्याधियुक्त रहने के पश्चात् शुद्ध होती है। ये कुछ उदाहरण इस तथ्य को प्रकट करने के लिए पर्याप्त हैं कि अपने कर्तव्य से च्युत अमर्यादित आचरण वाली नारी को अपने दुष्कर्म का फल जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त भोगना पड़ता है। ब्रह्मपुराण (२१७।११५ तु० विष्णुधर्मो० ३।२५३।१७-८) में यह स्वीकार किया गया है कि पापी पुरुषों के साथ दुराचार में लिप्त होने वाली स्त्रियाँ पुनर्जन्म में उन्हीं की भार्या बन कर उन्हीं के समान फल भोगती हैं।[४] शातातप स्मृति (५।३९) तथा पद्मपुराण (५।४८।६४) के अनुसार नरकयातना भोगने के पश्चात् पुनर्जन्म पाने पर दुराचारी पुरुषों के शरीर में जो दोष (रोग अथवा अङ्गविकार) होते हैं वे ही उनके साथ दुष्कर्म करने वाली स्त्रियों को भी नरक भोगने के पश्चात् पुनर्जन्म में होते हैं।

अतिचार के कर्मफल विषयक ऐसे जीवन्त वर्णनों से प्राचीन काल के मनुष्य को मर्यादित तथा संयमित रहने की प्रेरणा मिलती रही है। कर्मविपाक सम्बन्धी कल्पना

१. शिव २।३।५४।५२; स्कन्द ३।२।७।४२; ४।४।४०।
२. शिव २।३।५४।५६; स्कन्द ३।२।७।४५-६; ४।४।४४।
३. शिव २।३।५४।५३; स्कन्द ३।२।७।४३; ४।४।४१।
४. प्रायः यही तथ्य मनुस्मृति १२।६९ तथा विष्णु स्मृति ४३।४५ में चोरी करने वाली स्त्रियों के विषय में कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का यथार्थ आधार क्या रहा है इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। किसी अध्यात्मवेत्ता और योग-निष्ठ पुरुष को कर्म-विपाक की धारणा काल्पनिक नहीं लग सकती। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में कहा गया है कि जीवात्मा के नाना योनियों में विचरण को सिद्ध योगी अपने दिव्य-चक्षुओं से देखते हैं।[1] इतिहास का कान्दिशीक लेखक इस तरह की बातों का कोई वैज्ञानिक प्रमाण न देख पाने के कारण इस विषय में कुछ नहीं लिखना चाहता। अस्तु, जो भी हो, व्यभिचार के कर्म-विपाक विषयक ये कुछ उदाहरण प्राचीन मनीषियों के उस वैज्ञानिक चिन्तन के द्योतक हैं, जिसका उद्देश्य दुष्कर्मों के अवश्यम्भावी दुष्परिणाम को अनेक जन्मों तक जीवात्मा के द्वारा भोगे जाने के तथ्य को उद्घाटित करने के साथ ही यौन-अपराधों की प्रवृत्ति पर मनोवैज्ञानिक विधि से अङ्कुश लगाकर अखण्ड दाम्पत्य भाव को प्रोत्साहित करके समाज को नैतिक मनोबल-युक्त और सदाचारी बनाये रखना था।

श्रुति-स्मृति-पुराणादि सत्साहित्य के द्वारा प्रतिपादित तथा लोकसंग्रह की दृष्टि से कर्म करने वाले मनीषियों के द्वारा स्थापित सदाचार का पालन करने वाले प्राचीन समाज में चारित्रिक शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया जाता था। दाम्पत्य-मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले कामान्ध स्त्री-पुरुषों को क्षमा नहीं किया जाता था। प्रत्येक व्यक्ति को यह छूट थी कि वह दुराचारी पुरुष का घटना-स्थल पर ही वध कर दे। प्राचीन समाज में, जहाँ एक जाति या कुल के लोग प्रायः एक साथ रहते थे, व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों को सामाजिक सत्कार और सुविधाओं से वञ्चित, अपमानित और निकटाभिगमन (गुरुतल्पगमन) जैसे दुष्कर्म के कारण पतित हो जाने पर जातिच्युत या घट-स्फोट पूर्वक जाति-बहिष्कृत भी किया जा सकता था। अनेक सहस्राब्दियों के साहित्य में व्यभिचार विषयक कुछ कथाओं के बार-बार उद्धरण के पीछे प्राचीन मनीषियों की यह मनोवैज्ञानिक धारणा निहित है कि अधर्माचरण का बार-बार गर्हणापूर्ण बखान करने से मनुष्य का मन उससे विमुख होता है[2] और जैसे-जैसे वह अपने मन से दुष्कर्म की गर्हणा करता है वैसे-वैसे उससे कर्मणा विरत होता जाता है।[3] व्यभिचार के अनेक तरह से दुष्परिणामजनक, पाप जनक, नारकीय यातना और पुनर्जन्म में भी दुर्गति का हेतु बतलाने वाले सनातन संस्कृति के साहित्य से आस्तिक और धर्मभीरु मनुष्यों को मर्यादित रहने की प्रेरणा सदैव मिलती रही है।

---

१. च्यवन्तं जायमानं वा प्रविशन्तं च योनिषु।
पश्यन्त्येवं विधं सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुषा ॥ विष्णुधर्मो० २।११६।१०।

२. यथा यथा नरः सम्यगधर्ममनुभाषते।
समाहितेन मनसा विमुञ्चति तथा तथा ॥ ब्रह्म २१८।७

३. यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते।
तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ ब्रह्म२१८।५; विष्णुधर्मो० २।७३।२३४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नवम अध्याय

अतिचार का प्रायश्चित्त एवं दण्ड

दुष्कर्म के दुष्प्रभाव के शोधन हेतु प्रायश्चित्त[1] एवं राजदण्ड दोनों साधनों का प्रयोग प्राचीन समाज में होता था। स्थूल दृष्टि से उद्देश्यगत समानता होने के कारण कहीं-कहीं इनमें स्वरूपगत समानता भी लक्षित होती है।[2] इनमें अन्तर यह है कि प्रायश्चित्त में पापी की आत्मिक शुद्धि की भावना प्रधान रही है, जबकि राजदण्ड के मूल में अपराधी के चरित्र को सुधारने के साथ ही समाज को अपराध-मुक्त रखने की भावना ही प्रमुख रही है। दूसरे, प्रायश्चित्त करना या न करना अपराधी की इच्छा पर निर्भर था और प्रायश्चित्त से बचने के लिए वह समाज से दूर जा सकता था, किन्तु अपराध के विदित हो जाने पर और पकड़े जाने पर वह राजदण्ड से बच नहीं सकता था। यद्यपि प्रायश्चित्त और राजदण्ड को परस्पर एक दूसरे का विकल्प या स्थानापन्न कहीं नहीं कहा गया है, किन्तु अपने पाप का प्रायश्चित्त कर लेने वाले अपराधी को प्राय: राजा द्वारा दण्डित नहीं किया जाता था। राजदण्ड प्राय: उन्हीं अपराधियों को भुगतना पड़ता था जो अपने पाप का प्रायश्चित्त स्वयं नहीं करते थे। अस्तु, प्रस्तुत प्रकरण में हम पहले अतिचार के प्रायश्चित्त और तदनन्तर इसके लिए विहित राजदण्ड पर विचार करेंगे।

१–अतिचार का प्रायश्चित्त—

ऋग्वेद के खिलसूक्तों, ब्राह्मणग्रन्थों तथा सूत्रसाहित्य में प्राप्त प्रायश्चित्त-विधानों से प्रकट होता है कि पाप-शोधन के लिए प्रायश्चित्त करने की प्रवृत्ति भारत में सुदूर अतीत से ही प्रचलित रही है। पुराणों से विदित होता है कि प्राचीन समाज के मनुष्य प्रमादवश या मोहवश पाप कर बैठने पर बाद में पश्चात्ताप-युक्त होकर प्रायश्चित्त करने में सङ्कोच नहीं करते थे।[3] प्रायश्चित्त को पापनाशक माना

---

१. प्रायश्चित्त शब्द तथा कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, पराक, प्राजापत्य, चान्द्रायण आदि प्रायश्चित्तों (व्रतों) के लक्षण हेतु द्र० धर्मशास्त्र का इतिहास, तृतीय भाग, पृ० १०४३-५ तथा १०८१-९५।

२. प्राय: अनेकत्र सुवर्णस्तेयी, गुरुतल्पग एवं ब्राह्मणोगामी शूद्र के लिए प्रायश्चित्त और दण्ड में समानता पायी जाती है।

३. इसके उदाहरणरूप में शङ्खलिखित की प्रसिद्ध कथा की चर्चा की जा सकती है (द्र० स्कन्द ६।११।३०-३१)। इसके अतिरिक्त स्कन्दपुराण (३।१।३५।६-३५)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गया है।[१] इसे अपराध से मुक्ति दिलाने वाला भी कहा गया है।[२] इस प्रसङ्ग में यह उल्लेखनीय है कि एक ही दुष्कर्म को आत्मपतन, नरकयातना या प्रायश्चित्त के प्रसङ्ग में पाप की संज्ञा दी गयी है तो राजदण्ड के प्रसङ्ग में अपराध संज्ञा दी गयी है। अनेकत्र यह कहा गया है कि प्रायश्चित्त से पापक्षय हो जाने के कारण नरक-यातना नहीं भोगनी पड़ती।[३] प्रायश्चित्त व्यवस्था के सामाजिक उपयोग के कारण ही इसको राजकीय संरक्षण प्राप्त था। राजा का यह कर्तव्य था कि वह दुष्कृत्य करने वालों से प्रायश्चित्त करवाये[४] और प्रायश्चित्त न करने वाले पापियों को दण्डित करे।[५] प्रायश्चित्त-व्यवस्था देने वाले ब्राह्मणों के लिए भी धर्मशास्त्रों में नियम-निर्देश प्राप्त होते हैं।[६] इसके अतिरिक्त राजा को यह निर्देश दिया गया है कि वह श्रुति-स्मृति-विरुद्ध प्रायश्चित्त बतलाने वाले ब्राह्मणों को दण्डित करे।[७]

ऋग्वेद काल में व्यभिचार के लिए प्रायश्चित्त रूप में विहित कृत्यों का स्पष्ट निर्देश कहीं नहीं मिलता। ऋग्वेद के खिलसूक्त (१८।१०-११) में वृषलीगमन, गुरुदारगमन एवं किसी भी वर्ण की परस्त्री के साथ व्यभिचार से जनित पाप को दूर करने के लिए पावमानी ऋचाओं के पाठ (पारायण) का विधान प्राप्त होता है। यह कल्पना की जा सकती है कि संभवतः उस काल में पाप की गम्भीरता के अनुरूप किसी प्रायश्चित्तचर्या (कृच्छ्र, चान्द्रायण जैसे व्रत) की कालावधि में ही उक्त ऋचाओं का भी पारायण किया जाता होगा। सामविधान ब्राह्मण (१।६।३-७) में गुरुपत्नीगामी के लिए सुरापान का प्रायश्चित्त विहित करते हुए 'अक्रान्त्समुद्रः०' इत्यादि सामवेदोक्त मन्त्र का परायण, किसी ब्राह्मण की पत्नी के साथ व्यभिचार पर तीन कृच्छ्रों के साथ-साथ 'ब्रह्म जज्ञानम्०' इत्यादि मन्त्र का पारायण, किसी अन्य पुरुष की स्त्री के साथ व्यभिचार करने पर कृच्छ्र करते हुए 'अरण्योर्निहितोः०' इत्यादि मन्त्र का पारायण, शूद्रागमन पर त्रिरात्र व्रत करते हुए 'इडामग्ने०' इत्यादि मन्त्र का पारायण और निषिद्ध-

---

में दुर्विनीत नामक द्विज के द्वारा ब्राह्मणों को अपना मातृगमन रूप दुष्कर्म बतलाने तथा अन्ततः व्यास से पूछ कर प्रायश्चित्त करने एवं कूर्मपुराण (पू० २३।४-४३) में राजा सञ्जय के द्वारा कण्व ऋषि से पूछ कर परस्त्री गमन का प्रायश्चित्त करने की चर्चा की जा सकती है।

१. द्र० आङ्गिरसस्मृ० (उ०) २१६; अग्नि १७२।३१; विष्णुधर्मो० २।७३।३; तु० वसिष्ठ ध० सू० २५।३। २. कृतेऽपराधे मुच्येत प्रायश्चित्ते कृते नरः। पद्म ६।३५।४८। ३. पद्म २।६७।१०७-८; शिव ५।६।५५।
४. मत्स्य २२७।३४। ५. अग्नि १६८।१; विष्णुधर्मो० २।७३।१।
६. बौ० ध० सू० १।१।१।१५; शङ्ख स्मृ० १७।६६; पद्म ५।११४,४७६; द्र०— आङ्गिरसस्मृ० उ० ६।१२-५; ७।१-२, ५-६; नारद उ० २५।२०-२१; स्कन्द ६।१६७।३२। ७. नारद पू० १४।५५-६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

काल में पत्नीगमन करने पर तीन प्राणायाम करके 'कया नश्चित्र०' इत्यादि मन्त्र का पारायण विहित किया गया है। दुष्कर्म की गम्भीरता के अनुसार प्रायश्चित्त-निर्देश धर्मसूत्रों, स्मृतियों और पुराणों में प्राप्त होता है और तद्विषयक वचनों के वैषम्य या विसङ्गतियों की व्याख्या का प्रयास निबन्ध-ग्रन्थों में प्राप्त होता है। दाम्पत्य-मर्यादा के अतिक्रमण के लिए प्रायश्चित्त का निर्देश सर्वप्रथम धर्मसूत्रों में प्राप्त होता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (१।१०।२८।१६) में कहा गया है कि दारव्यतिक्रमी (पत्नी का अतिक्रमण करने वाला, उसे त्यागने वाला या उसके होते हुए किसी भी रूप में अन्य स्त्री के साथ सम्बन्ध करने वाला) गधे की खाल को, बालों वाली परत बाहर की ओर रखते हुए पहन कर प्रतिदिन सात घरों से 'दारव्यतिक्रमी को भिक्षा दो' ऐसा कहते हुए भिक्षा माँग कर उसी पर निर्भर रहे। वह इस वृत्ति को छः मास तक करे। इस व्रत को हरदत्त ने (आप० ध० सू० १।१०।२८।१९ की टीका उज्ज्वला में) और गौतम (हेमाद्रि : प्रायश्चित्त खण्ड, ३ पृ० ३६७ में उद्धृत) ने अकारण (व्यभिचारिणी न होने पर भी) पत्नी के त्याग पर विहित बतलाया है। शातातप के (परा० मा०, प्रा०का०पृ० ४२७ में उद्धृत) एक वचन में कौमारदार (पत्नी) का त्याग करने वाले के लिए दूध पर निर्भर रहने का व्रत विहित किया गया हैं। पति का अतिक्रमण करने वाली नारी के लिए आपस्तम्ब (ध० सू० १।१०।२८।२०) ने छः मास तक क्रमशः द्वादश-रात्र-व्यापी कृच्छ्र करते रहने का विधान किया है। इस प्रसंग में भी हरदत्त ने 'व्यतिक्रम' का अर्थ परित्याग बतलाया है। अतः यह कहा जा सकता है कि आपस्तम्ब ने उपर्युक्त प्रायश्चित्त दम्पती के लिए एक दूसरे के त्याग पर विहित किया है। व्यभिचार के प्रायश्चित्त की व्यवस्था पृथक् दी गयी है। अब हम क्रमशः अतिचारी पुरुष के लिए गुरुतल्पग, अगम्यागमन, परस्त्रीगमन, कन्यागमन, वेश्यागमन आदि तथा अतिचारिणी नारी के लिए अगम्यपुरुषगमन आदि पर विहित प्रायश्चित्त-विधियों की यथासम्भव संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

क. गुरुतल्पग एवं अगम्यागामी का प्रायश्चित्त—

गुरुतल्पगमन के महापातक होने के कारण इसके लिए कठोर प्रायश्चित्त विहित किया गया था। धर्मसूत्रों एवं आगे की धर्मशास्त्रीय परम्परा में गुरुतल्पग के लिए अग्नि में प्रतप्त लोहे की शय्या में शयन या अग्नि-प्रतप्त लोह-प्रतिमा के आलिङ्गन या वृषणों सहित लिङ्ग को काट कर दक्षिण (या नैर्ऋत) दिशा को प्रस्थान करते हुए मृत्यु को प्राप्त होने से ही शुद्धि विहित की गयी है।[1] हरदत्त ने इस प्रसङ्ग में यह स्पष्ट किया

१. आप० ध० सू० १।९।२५।१-२; १।१०।२८।१५; बौ० ध० सू० २।१।१।१२-४; गौ० ध० सू० ३।५।८-११; वसिष्ठ ध० सू० २०।१३-५; शान्तिपर्व १६५।५०-५२; मनु ११।१०३-४; याज्ञ० ३।२५९; अग्नि १६९।२२; १७३।४८; कूर्म उ० ३२।१२-३; गरुड पू० ५२।१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है कि ये तीनों विकल्प अज्ञान में अथवा अपनी पत्नी की भ्रान्ति में जननीगमन पर एवं ज्ञानपूर्वक विमातागमन पर विहित हैं।[१] कुछ आचार्यों के द्वारा गुरुतल्पग के लिए विहित द्वादश वार्षिक व्रत को हरदत्त ने (गौ० ध० सू० ३।५।११ की मिताक्षरा टीका में) सवर्णा विमाता या उत्कृष्ट वर्ण की विमाता के साथ दुष्कर्म के अभ्यास (पुनरावृत्ति) पर विहित माना है। गुरुतल्पग के लिए जहाँ कुछ आचार्यों ने एक वर्ष तक चीरवस्त्र धारण कर वन में जाकर ब्रह्मघ्न के लिए विहित व्रत का पालन[२] या एक वर्ष तक प्राजापत्य कृच्छ्र[३] का विधान किया है वह पाप की गुरुता को देखते हुए अत्यल्प है। अतः विज्ञानेश्वर ने उसे अमतिपूर्वक शूद्रा गुरुपत्नी-गमन पर विहित बतलाया है,[४] किन्तु मेधातिथि ने उसे अबुद्धिपूर्वक एवं स्वभार्या की भ्रान्ति में सजातीया गुरुपत्नीगमन में या बुद्धिपूर्वक विजातीया गुरुपत्नीगमन में विहित माना है और यह कहा है कि सजातीया किन्तु व्यभिचारिणी गुरुपत्नी के साथ दुष्कर्म में भी लघुप्रायश्चित्त होगा।[५] गुरुतल्पग के लिए जहाँ त्रैवार्षिक व्रत अथवा अश्वमेधावभृथ में स्नान का विधान किया गया है[६] उसकी उपपत्ति भी इसी विधि से लगानी चाहिए। विज्ञानेश्वर ने इसे अबुद्धिपूर्वक क्षत्रिया गुरुभार्यागमन पर विहित माना है।[७] आपाततः असङ्गत प्रतीत होने वाले ऐसे अन्य वचनों की सङ्गति हेतु निबन्धकारों के द्वारा प्रदत्त व्यवस्था का अवलोकन करना चाहिए।[८] गुरुतल्पग के लिए विहित मरणान्त प्रायश्चित्त के प्रमाण के प्रसङ्ग में षट्त्रिंशन्मत से इस आशय का श्लोक उद्धृत किया गया है कि पिता की सवर्णा भार्या (अर्थात् जननी की सवर्णा सपत्नी) के साथ बुद्धिपूर्वक तथा जननी के साथ अबुद्धिपूर्वक (अज्ञान में) दुष्कर्म कर बैठने वाला मरणान्त प्रायश्चित्त के बिना शुद्ध नहीं होता।[९]

विष्णु (स्मृ० ३४।१-२) के अनुसार जननी, पुत्री तथा पुत्रवधू के साथ व्यभिचार करने वाले अतिपातकी के लिए अग्निप्रवेश ही एकमात्र प्रायश्चित्त है। चतुर्विंशतिमत में उक्त स्त्रियों में भगिनी को भी सम्मिलित करते हुए यह कहा गया है कि उनके साथ व्यभिचार करने वाला अग्निप्रवेश करे, क्योंकि इसके अतिरिक्त उसकी शुद्धि का कोई

१. त्रितयमप्येतज्जननीगमने स्वभार्याबुद्ध्याऽबुद्धिपूर्वं तत्सपत्न्याञ्च।
मिता० गौ० ध० सू० ३।५।११।
२. मनु ११।१०४; विष्णुस्मृ० ५३।१। ३. याज्ञ० ३।२६०।
४. मिता० (याज्ञ० ३।२६०)। ५. मेधा० (मनु० ११।१०४)।
६. मिता० (याज्ञ० ३।२६०) में उद्धृत यम के वचन तथा कूर्मउ० ३२।१६-७।
७. मिता० (याज्ञ० ३।२६०)।
८. द्र०-मिता (याज्ञ० ३।२६०; मिता० (गौ०ध०सू० ३।५।११)।
९. मिता० (गौ० ध० सू० ३।५।११) तथा वैजयन्ती (विष्णु स्मृ० ३४।२; ५३।१ की टीका) में उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्य विधान नहीं है।[1] उशना-जैसे आचार्य यह मानते थे कि कोई भी पुरुष जननी के साथ बुद्धिपूर्वक दुष्कर्म नहीं कर सकता, अतः उन्होंने इस सूची में उसे सम्मिलित नहीं किया है। उनका कथन है कि बुद्धिपूर्वक पुत्री, भगिनी एवं पुत्रवधू के साथ दुष्कर्म करने वाला धधकती हुई अग्नि में प्रवेश कर जाय।[2] लघुयमस्मृति श्लोक ३५ तथा वराहपुराण १७४।३६ में कहा गया है कि माता, गुरु (आचार्य) की पत्नी, भगिनी, पुत्री तथा पुत्रवधू के साथ दुष्कर्म करने वाले की अग्निप्रवेश के अतिरिक्त कोई शुद्धि नहीं है। स्कन्दपुराण ६।१५३।४४-५ में प्रमादवश जननी, भगिनी अथवा पुत्री के साथ दुष्कर्म करने वाले की शुद्धि के लिए तिङ्गिनी-साधन का विधान किया गया है तथा इसकी यह विधि बतलायी है कि ऐसा पुरुष अपनी लम्बाई के बराबर एक गड्ढा खुदवा कर उसे गोमय चूर्ण से पूरित कर उसके ऊपर शयन करे और अपने मुख को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण शरीर के ऊपर भी गोमय चूर्ण का ढेर लगवा कर पैरों की ओर से आग लगवा दे। इस तरह शनैः शनैः अपने शरीर को दग्ध होने दे। इस अवधि में अङ्गसञ्चालन और आक्रन्दन न करे, केवल भगवान् विष्णु का ध्यान करे। इस प्रकार आत्मदहन से उसकी शुद्धि हो जाती है। इतने कठोर विधान से यह स्पष्ट होता है कि अज्ञान में या प्रमादवश किये गये निकटाभिगमन के लिए भी पुराणकारों को प्रायश्चित्त का कोई मृदु विकल्प अभीष्ट नहीं था। स्कन्दपुराण[3] में मातृगामी दुर्विनीत के लिए व्यास ने धनुष्कोटि तीर्थ में मकरसंक्रान्ति से प्रारम्भ कर तीन मास पर्यन्त व्रती रहते हुए [त्रिषवण] स्नान का जो प्रायश्चित्त बतलाया है वह अत्यल्प प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ ऐसी कथा की कल्पना करके धनुष्कोटि तीर्थ का माहात्म्य प्रदर्शित करना ही पुराणकार का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति के प्रायश्चित्ताध्याय में बुआ, मौसी, मामी, पुत्रवधू, माता की सपत्नी (विमाता), भगिनी, आचार्य की पुत्री, आचार्य की पत्नी तथा अपनी पुत्री के साथ दुष्कर्म करने वाले के लिङ्गच्छेद पूर्वक वध का जो विधान किया है (याज्ञ० ३।२३२-३) उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनको निकट-सम्बन्ध की अगम्या स्त्रियों के साथ बुद्धिपूर्वक दुष्कर्म करने वाले के लिए प्रायश्चित्त का कोई मृदु विकल्प अभीष्ट नहीं था। गुरुतल्पग के लिए विहित प्रायश्चित्त अन्य स्त्रियों के साथ व्यभिचार पर भी करना पड़ सकता था। उदाहरणार्थ—मनु (स्मृ० ११।१७०) ने सोदरा भगिनी, मित्र की पत्नी, पुत्रवधू, कुमारी तथा अन्त्यजा स्त्री में रेतःसेक के प्रायश्चित्त रूप में गुरुतल्पव्रत का विधान किया है। संवर्त (स्मृ० श्लोक १५८) ने कहा है कि चाची तथा भ्राता की पत्नी के साथ व्यभिचार करने वाला गुरुतल्पव्रत करे, इसके अतिरिक्त उसके लिए अन्य कोई निष्कृति सम्भव नहीं है। पराशरस्मृति १०।८-९

१. वैजयन्ती (विष्णुस्मृ० ३४.२) में उद्धृत।
२. औशनसस्मृ० ६।१। ३. स्कन्द ३।१।२५।६-३५; द्र० पोछे, पृ० १९८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में माता, भगिनी एवं पुत्री के साथ दुष्कर्म के प्रायश्चित्त रूप में तीन कृच्छ्र, तीन चान्द्रायण तथा शिश्नच्छेद का जो विधान है उसके विषय में पराशरमाधव (प्रा० का०, पृ० २५२) में कहा गया है कि निकट सम्बन्ध की इन स्त्रियों के कामभाव से स्मरण, कीर्तन आदि पर तीन कृच्छ्र, इनके साथ रमण के सङ्कल्प या अध्यवसाय पर तीन चान्द्रायण तथा क्रियानिष्पत्ति पर शिश्नच्छेद विहित है। मौसी के साथ दुष्कर्म के लिए शिश्नच्छेद का विधान करने वाले पराशरस्मृति १०।९ के वचन की समीक्षा करते हुए पराशरमाधव (प्रा० का० पृ० २५६) में कहा गया है कि माता के साथ अज्ञान में और मौसी के साथ ज्ञानपूर्वक दुष्कर्म का एक समान प्रायश्चित्त होगा। पराशर (स्मृ० १०।१०) ने अज्ञान में मौसी के साथ दुष्कर्म करने पर दो चान्द्रायण करके दश जोड़े गायों का दान विहित किया है। इसी तरह पराशर (स्मृ० १०।११-२) ने विमाता, माता की सखी, भ्राता की पुत्री, आचार्य की पत्नी, पुत्रवधू, भ्राता की पत्नी, मामी तथा सगोत्रा स्त्री के साथ अकामतः एक बार के व्यभिचार पर तीन प्राजापत्य करके गोमिथुन के दान से शुद्धि बतलायी है। संवर्तस्मृति (श्लोक १५९) में विमाता, भगिनी, मामा की पुत्री तथा सौतेली बहिन के साथ दुष्कर्म के प्रायश्चित्त रूप में तप्तकृच्छ्र का विधान किया गया है। पराशरमाधव (प्रा० का०, पृ० २६०) में कहा गया है कि संवर्त के द्वारा विमाता आदि के गमन पर विहित यह प्रायश्चित्त हीन वर्ण की गुरुपत्नी में रेतःसेक से पूर्व निवृत्त होने पर विहित मानना चाहिए। इसी तरह सुमन्तु ने मौसी, बुआ, पुत्रवधू, भगिनी, भानजी, गौ एवं चाण्डाली के साथ दुष्कम के प्रायश्चित्त रूप में जो तप्तकृच्छ्र का विधान किया है उसे भी पराशरमाधव (प्रा० का०, पृ० २४९) में रेतःसेक के पूर्व निवृत्त होने पर विहित बतलाया गया है। विष्णुस्मृति ३६।४-८ में कुछ निकट-सम्बन्ध की स्त्रियों, जिनमें चाची, मामी आदि को गिनाया गया है, तथा कुछ अन्य सम्मान्य स्त्रियों यथा—राजा की पत्नी, श्रोत्रिय ब्राह्मण की पत्नी, उपाध्याय की पत्नी, मित्र की पत्नी, उत्तम वर्ण की स्त्री और कुमारी तथा कुछ हेय स्त्रियों, यथा–अन्त्यजा, रजस्वला, शरणागता, प्रव्रजिता, निक्षिप्ता आदि के साथ व्यभिचार को गुरुदारगमन के तुल्य बतलाते हुए इसमें लिप्त अनुपातकी की शुद्धि हेतु अश्वमेध [के अवभृथ में स्नान] या तीर्थयात्रा का विधान किया गया है।

अगम्यागमन विषयक प्रायश्चित्त-वचनों के बाहुल्य के कारण उनका एकत्र विवेचन सम्भव न होने पर भी यहाँ पर उदाहरण रूप में कुछ वचनों का उल्लेख किया जा रहा है। बौधायन धर्मसूत्र (२।२।४।११-२) में मौसी, बुआ, भगिनी, भानजी, पुत्रवधू, मामी, मित्र की पत्नी को अगम्या बतला कर अगम्यागमन पर कृच्छ्रातिकृच्छ्र और चान्द्रायण का विधान किया गया है। गोविन्दस्वामी ने इसे अमतिपूर्वक गमन पर विहित माना है (बौ० ध० सू० २।२।४।१२ पर विवरण)। यही प्रायश्चित्त बौधायन

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(ध० सू० २।२।४।१५) ने विमाता एवं गुरु तथा राजा की पत्नी के साथ प्रमाद (अज्ञान) में दुष्कर्म करने पर भी विहित किया है। औशनसस्मृति (६।२-३) में मौसी, मामी, बुआ एवं भानजी के साथ दुष्कर्म के प्रायश्चित्त रूप में कृच्छ्र करके चार या पाँच चान्द्रायण विहित किये गये हैं। लघुयम स्मृति (श्लोक ३६) में राजा की पत्नी, प्रव्रजिता नारी, धाय, उत्तम वर्ण की नारी तथा सगोत्रा नारी के साथ दुष्कर्म के लिए दो कृच्छ्र विहित किये गये हैं। फुफेरी, मौसेरी तथा ममेरी बहिन के साथ यौन-सम्बन्ध के प्रायश्चित्त रूप में चान्द्रायण का विधान प्राप्त होता है।[1] पत्नी की सखी तथा साली के साथ समागम के प्रायश्चित्त रूप में औशनस स्मृति (६।४-५) में एक अहोरात्र पर्यन्त उपवास के पश्चात् तप्तकृच्छ्र का विधान किया गया है। नियोग के विना भ्राता की पत्नी के साथ समागम करने वाले के लिए याज्ञवल्क्य (स्मृ० ३।२८७) ने चान्द्रायण का विधान किया है। पराशरस्मृति १०।१-३ (द्र० आप० स्मृ० १०।१३) में अगम्यागामी की शुद्धि हेतु चान्द्रायण करके [प्रायश्चित्त के सामान्य नियम की भाँति ही] ब्राह्मणों को भोजन, एक गोमिथुन का दान, एक जोड़ा वस्त्रदान और ब्राह्मणों के लिए दक्षिणा दान का विधान किया गया है। रजस्वलागमन, गर्भिणीगमन तथा पतितागमन के प्रायश्चित्त रूप में संवर्त (स्मृ०, १६३) ने अतिकृच्छ्र का विधान किया है। अगम्यागमन के विषय में धर्मसूत्रों के काल से लेकर पूर्वमध्य काल तक विभिन्न आचार्यों ने अपने-अपने देश, काल, परिस्थिति तथा विशेष दृष्टिकोण के अनुसार प्रायश्चित्त विहित किये हैं। अतः किसी एक आचार्य के वचनों का सामञ्जस्य दूसरों के वचनों से नहीं भी हो सकता।

गुरुतल्पगमन, अगम्यागमन आदि पापों के प्रायश्चित्त-विधान में जहाँ एक ही पाप के लिए कहीं पर अत्यन्त कठोर, कहीं पर मध्यम तथा कहीं पर अल्प या मृदु प्रायश्चित्त विहित किया गया है उसकी सङ्गति यद्यपि धर्मसूत्रों, स्मृतियों एवं पुराणों में नहीं बतलायी गयी है, तथापि विज्ञानेश्वर, हरदत्त, माधव, शूलपाणि एवं नन्दपण्डित प्रभृति निबन्धकारों ने बतलाया है कि अधिक कठोर प्रायश्चित्त प्रायः निकट-सम्बन्ध की महिला के साथ या अनिच्छुक महिला के साथ दुराचार पर या क्रियानिवृत्ति पर्यन्त प्रसक्त होने अथवा पापकर्म की बहुधा पुनरावृत्ति पर विहित हैं, मध्यमकोटि के प्रायश्चित्त दोनों की सहमति से समागम पर या क्रिया-निवृत्ति के पूर्व ही विरत हो जाने पर विहित हैं और स्वल्प प्रायश्चित्त प्रायः नारी के साथ कोई निकट का सम्बन्ध न होने या उस नारी के दुराचारिणी होने या नारी द्वारा प्रेरित किये जाने या अकामतः प्रवृत्ति पर अथवा आरोहण करते ही निवृत्त हो जाने पर विहित हैं।[2]

१. मनु ११।१७१; औशनस स्मृ० ६।३-४ तु० संवर्त स्मृ० श्लोक १५६।
२. द्र०—मिता० (याज्ञ० ३।२५६); मिता० (गौ० ध० सू० ३।५।११); परा० मा०, प्रा० का०, पृ० २६०—२६७; प्रायश्चित्तविवेक, पृ० १८४; वैजयन्ती (विष्णु स्मृति ५३।१)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गुरुतल्पग के रहस्य प्रायश्चित्तों का निर्देश करते हुए मनु (स्मृ० ११।२५१) ने कहा है कि वह 'हविष्पान्तमजरं०' (ऋ० ८।४।१०-१३) इत्यादि मन्त्रों या 'इति वा इति मे मनः' (ऋ० ८।६।२७) इत्यादि मन्त्रों या 'सहस्रशीर्षा' इत्यादिक पुरुषसूक्त के मन्त्रों के जप से पापमुक्त होता है। विष्णुस्मृति के अनुसार गुरुतल्पग तीन रात्रियों तक उपवास करके पुरुषसूक्त के जप एवं होम करने पर पाप-मुक्त होता है।[1] इसी ओर संकेत करते हुए याज्ञवल्क्य (स्मृ० ३।३०४; गरुडपुराण पू० १०५।५३) ने भी कहा है कि गुरुतल्पग सहस्रशीर्षा आदि मन्त्रों के जप से पाप-मुक्त होता है। याज्ञवल्क्य ने इस जप-कर्म के अन्त में गोदान भी विहित किया है।[2] अत्रिस्मृति में गुरुदारगामी पुरुष के लिए 'वृषभ' से प्रारम्भ होने वाले द्वादश मन्त्रों की आवृत्ति(?) को पाप-मुक्ति का साधन कहा गया है।[3] गरुड पुराण में ब्रह्मघ्न, सुराप, स्तेयी, गुरुतल्पग एवं इन पापियों का संसर्ग करने वाले की शुद्धि ऋक्ष के दर्शन करके तदनन्तर एक सौ गायों का दान एवं ब्राह्मणों को भोजन कराने से बतलायी गयी है।[4] अत्रिस्मृति में प्राणायाम को ब्रह्मघ्न एवं गुरुतल्पग जैसे पापियों की शुद्धि का हेतु बतलाया गया है।[5] शङ्खस्मृति १८।१६-७ में गुरुतल्पग के एक लाख गायत्री जप से पाप-मुक्त होने का उल्लेख है। वैदिक मन्त्रों के जप सम्बन्धी रहस्य प्रायश्चित्तों को प्रायः इनके ज्ञाता ब्राह्मण ही कर सकते थे। सर्वसाधारण को तो अपने पाप का प्रायश्चित्त उनसे पूछ कर ही करना पड़ता था।

ख. परस्त्रीगमन का प्रायश्चित्त—

प्रायश्चित्त-प्रकरण में सवर्णा अथवा इतर वर्ण की उस नारी को परस्त्री कहा गया है जिसके साथ अपने पिता या माता के कुल का कोई निकट का सम्बन्ध न हो। ऋग्वेद (खिलसूक्त १८।११) में सवर्णागमन जनित पाप को पावमानी ऋचाओं के पारायण से दूर करने का उल्लेख है। सामविधान ब्राह्मण १।६।४-५ में ब्राह्मणस्त्री-गमन करने वाले [ब्राह्मण] के लिए तीन कृच्छ्र करते हुए 'ब्रह्म जज्ञानम्०' इत्यादि साम [मन्त्र] का तथा अन्य वर्ण के पुरुष की स्त्री के साथ व्यभिचार के प्रायश्चित्त रूप में त्रिरात्र पर्यन्त उपवास करते हुए 'इडामग्न०' इत्यादि मन्त्र का जप विहित किया गया है। धर्मसूत्रों में परस्त्रीगामी ब्राह्मण के लिए उपर्युक्त की अपेक्षा कठोर प्रायश्चित्त की व्यवस्था प्राप्त होती है। गौतम (ध० सू० ३।४।२६-३०) तथा यम (प्रायश्चित्त मयूख, पृ० १५७ में उद्धृत) ने ब्राह्मण के लिए ब्राह्मणी परस्त्री के साथ कामतः समागम पर दो वर्ष तक ब्रह्मचर्य-पालन तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण की पत्नी के साथ कामतः समागम पर तीन वर्ष तक ब्रह्मचर्य-पालन विहित किया है। हरदत्त (गौ० ध० सू०

१. त्रिरात्रोपोषितः पुरुषसूक्तजपहोमाभ्यां गुरुतल्पगः। विष्णु ५५।६।
२. गौर्देया कर्मणोऽस्यान्ते पृथगेभिः पयस्विनी। याज्ञ० ३।३०४।
३. गुरुदारान् गत्वा वृषभ-द्वादशावृत्या शुद्धयति। अत्रिस्मृति ४।२-३।
४. गरुड पू० २१४।५०-५१। ५. अत्रिस्मृति ४।४-७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

३।४।२९ पर मिता०) के अनुसार यह प्रायश्चित्त ऋतुकाल में कामतः समागम पर विहित है और पराशरमाधव (प्रा० का०, पृ० २६८) में यह प्रायश्चित्त गर्भधारण पर्यन्त समागम पर विहित बतलाया गया है। बौधायन (ध० सू० २।२।३।५२) ने सजातीय परस्त्री के साथ समागम करने वाले ब्राह्मण आदि वर्णों के पुरुषों के लिए एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यव्रत का पालन विहित किया है। गोविन्दस्वामी (बौ० ध० सू० २।२।३।५२ पर विवरण) के अनुसार इसका तात्पर्य एक वर्ष तक प्राजापत्य करने से है। हरदत्त (गौ० ध० सू० ३।४।२९) ने इस प्रायश्चित्त को सजातीय स्त्री के साथ अकामतः (अबुद्धिपूर्वक) समागम पर विहित माना है तो शूलपाणि (प्रायश्चित्त विवेक, पृ० ३५२) के अनुसार यह प्रायश्चित्त ब्राह्मण के लिए अत्यन्त निर्गुण ब्राह्मण की पत्नी के साथ व्यभिचार पर विहित है। शङ्ख ने क्रमशः एक, दो और तीन वर्ष के ब्रह्मचर्यव्रत की व्यवस्था को ब्राह्मण की वैश्या, क्षत्रिया एवं ब्राह्मणी पत्नी के साथ दुष्कर्म पर विहित माना है। उनके अनुसार ब्राह्मण के लिए अन्य ब्राह्मण की वैश्या पत्नी के साथ दुष्कर्म के प्रायश्चित्त रूप में एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य और दिन में तीन बार स्नान का विधान है एवं उसकी क्षत्रिया पत्नी के साथ समागम करने पर दो वर्ष तथा ब्राह्मणी पत्नी के साथ दुराचार करने पर तीन वर्ष तक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन [तथा प्रतिदिन तीन बार स्नान] विहित है। उसकी शूद्रा पत्नी के साथ दुष्कर्म का प्रायश्चित्त वही है जो उसकी वैश्या पत्नी के साथ व्यभिचार पर विहित है।[1] नन्दपण्डित ने (विष्णुस्मृति ५३।२, पृ० ६०५ पर वैजयन्ती में) कहा है कि यह प्रायश्चित्त केवल ब्राह्मण के लिए उक्त स्त्रियों के साथ कामतः संभोग पर विहित है, अकामतः संभोग पर इसका आधा प्रायश्चित्त होगा। उक्त स्त्रियों के साथ मैथुन के अभ्यास (अनेक बार के मैथुन) पर उपर्युक्त का दुगना प्रायश्चित्त होगा। पराशरमाधव में उद्धृत ब्रह्मपुराण के वचनों के अनुसार अनिच्छुक ब्राह्मणी के साथ कामतः मैथुन करने पर ब्राह्मण कृच्छ्र एवं चान्द्रायण करे तथा अज्ञान में ऐसा करने पर इसका आधा प्रायश्चित्त करे। यदि स्त्री स्वयं इच्छुक हो तो तब भी आधा प्रायश्चित्त करे। यह प्रायश्चित्त मैथुन के अभ्यास पर है। केवल एक बार समागम के प्रायश्चित्त रूप में तप्तकृच्छ्र करे। क्षत्रिय की पत्नी के साथ मैथुन पर ब्राह्मण ब्राह्मणीगमन के लिए विहित प्रायश्चित्त का आधा प्रायश्चित्त करे। श्रोत्रिय ब्राह्मण की पत्नी के साथ दुराचार करने वाला ब्राह्मण ब्राह्मणीगमन पर विहित प्रायश्चित्त का डेढ़ गुना प्रायश्चित्त करे। यदि अश्रोत्रिय ब्राह्मण श्रोत्रिय ब्राह्मण की पत्नी के साथ व्यभिचार करता है तो वह द्विगुणित प्रायश्चित्त करे। जिस ब्राह्मणी का कोई संरक्षक न हो उसके साथ व्यभिचार पर आधा प्रायश्चित्त करे।[2] वसिष्ठ

१. वैजयन्ती (विष्णुस्मृ० ५३।२; पृ० ६०५) में उद्धृत।

२. ब्रह्मपुराण (परा०मा०,प्रा०का०,पृ०२६७)। ये ही वचन परा०मा०,प्रा०का०, पृ०३६ एवं वैजयन्ती (विष्णु०स्मृ०५३।२) में व्याघ्र के नाम से उद्धृत हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(ध॰ सू॰ २१।१६) ने ब्राह्मण के लिए अकामतः या अज्ञान में धर्मकर्म से निवृत्त (विरत) ब्राह्मण की स्त्री के साथ व्यभिचार पर कृच्छ्र तथा धर्मकर्म में संलग्न ब्राह्मण की स्त्री के साथ व्यभिचारपर अतिकृच्छ्र का विधान किया है। कूर्मपुराण(उ० ३३।६)में ब्राह्मणीगामी ब्राह्मण के लिए कृच्छ्रसान्तपन विहित किया गया है। यही प्रायश्चित्त यम स्मृति (श्लोक, ३७) में पिता के गोत्र की एवं माता के गोत्र की स्त्री तथा अपने वर्ण की परस्त्री के साथ व्यभिचार पर विहित किया गया है।[१] संवर्तस्मृति (श्लोक १६५) में ब्राह्मणीगामी ब्राह्मण के लिए एक कृच्छ्र का विधान किया गया है। एक अन्य वचन में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय के लिए सवर्णा परस्त्री के साथ व्यभिचार के प्रायश्चित्त रूप में प्राजापत्य का विधान किया गया है।[२] परस्त्री के साथ व्यभिचार की अपेक्षा उसके गर्भिणी हो जाने पर अधिक प्रायश्चित्त करना पड़ता था। चतुर्विंशति मत में इसकी व्यवस्था वर्ण विशेष की स्त्री के अनुसार भिन्न-भिन्न दी गयी है।[३] उशना ने वर्णविशेष की स्त्री के साथ व्यभिचार के प्रायश्चित्त का द्विगुणित प्रायश्चित्त उसके गर्भिणी होने की स्थिति में विहित किया है।[४] व्यभिचारिणीगमन का प्रायश्चित्त अपेक्षाकृत कम होता था। नीलकण्ठ ने (प्रा० मयूख पृ० १५८-९) में चारों वर्णों की स्वैरिणी और बन्धकी स्त्रियों के साथ व्यभिचार के प्रायश्चित्त रूप में विभिन्न वस्तुओं के दान विषयक यम, शङ्खलिखित, षट्त्रिंशन्मत और प्रचेता के मत को उद्धृत किया है। पुराणों में प्रायश्चित्त की भावना के साथ पापशोधक व्रतों के अतिरिक्त कुछ समाजोपयोगी और रचनात्मक कार्यों को भी जोड़ने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। यथा—स्कन्दपुराण ५।३।६८।३२ में यह कहा गया है कि परस्त्रीसेवन, अपनी पत्नी के त्याग एवं परस्त्री की कामना करने का पाप कन्यादान से दूर होता है। परस्त्रीगमन पाप के प्रायश्चित्तशत से भी दूर न होने का जो वचन शिव (३।२७।३६) तथा स्कन्द पुराण (३।३।१४।३४) में है उसका तात्पर्य परस्त्रीगमन पाप की गम्भीरता ख्यापित करना है, न कि उसके प्रायश्चित्त की असम्भाव्यता। पुराणों में परस्त्री के प्रति मन में आसक्ति होने पर भी प्रायश्चित्त विहित है। अग्निपुराण (१७२।१) के अनुसार परस्त्री में चित्त आसक्त होने पर प्रायश्चित्त स्वरूप ईश्वर की स्तुति करे। वामनपुराण (८५।६६) में परस्त्री की कामना आदि विभिन्न पापों को दूर करने के लिए विष्णु की स्तुति की गयी है। परस्त्रीगमन के रहस्य प्रायश्चित्तों का निर्देश करते हुए अत्रिस्मृति (स्मृ० सं० भाग० १ पृ० ३४२) में कहा गया है कि ब्राह्मण ब्राह्मणीगमन पर स्नान करके जलकुम्भ दान करे, क्षत्रियागमन एवं

---

१. द्र०—पराङ्गनां यदा गच्छेत् कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्। पद्म ४।१८।७।

२. संवर्त स्मृ० श्लोक १५४; द्र० बृहत्परा० स्मृ० ८।२४३।

३. प्रायश्चित्तमयूख, पृ० १५६ में उद्धृत।

४. गमने तु व्रतं यत् स्याद् गर्भे तु द्विगुणं भवेत्। वही, पृ० १५६; परा० मा०, प्रा० का०, पृ० २७०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वैश्यागमन पर तीन बार 'तापसां' (?) की आवृत्ति करे, शूद्रागमन पर तीन बार अघमर्षण करे। जो पुरुष प्रायश्चित्त करने में असमर्थ हो वह सारी रात पश्चात्ताप करता रहे। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि परस्त्रीगमन विषयक प्रायश्चित्त के विधान अधिकांशतः ब्राह्मण को लक्ष्य में रखकर ही प्रस्तुत किये गये हैं, क्योंकि अन्य वर्णों की अपेक्षा ब्राह्मण से चारित्रिक शुद्धि की अधिक अपेक्षा की जाती थी।

ग. हीनवर्णागमन का प्रायश्चित्त—

हीनवर्ण की स्त्रियों के साथ व्यभिचार के प्रायश्चित्त का तारतम्य-निर्देश कुछ ही आचार्यों ने किया है। प्रचेता[1] और व्याघ्र[2] जैसे आचार्यों के अनुसार आनुलोम्य-क्रम से परस्त्री (क्षत्रिय आदि की स्त्री) के साथ व्यभिचार पर सवर्णागमन का क्रमशः एक चौथाई कम प्रायश्चित्त होगा। निबन्धकारों ने भी यही व्यवस्था दी है।[3] पद्मपुराण (४।१८।१८) में वर्णबाह्या तथा नीच जाति की स्त्री के साथ एक बार समागम करने वाले पुरुष की शुद्धि हेतु प्राजापत्य कृच्छ्र विहित है। बृहत्पराशरस्मृति में विप्र के लिए क्षत्रियादि वर्णों की स्त्रियों के साथ व्यभिचार पर चान्द्रायण का विधान किया गया है।[4] इसके एक दूसरे वचन में कामतः एवं बुद्धिपूर्वक क्षत्रिय अथवा वैश्य की स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले विप्र के लिए पाप-मुक्ति हेतु सान्तपन का विधान किया गया है।[5] वृषलीगमन (शूद्रीगमन) की शुद्धि हेतु ऋग्वेद (परि० १८।१०) में पावमानी ऋचाओं का पाठ और सामविधान ब्राह्मण (१।६।६) में त्रिरात्रोपवास के सहित 'इडामग्न०' इत्यादि साम (मन्त्र) का पारायण विहित है। संवर्त एवं पराशर ने ब्राह्मण के लिए एक बार शूद्रीगमन पर पन्द्रह दिन तक तथा इस दुष्कर्म के अभ्यास (पुनरावृत्ति) पर एक मास पर्यन्त गोमूत्र में पकाये हुए यावक का भोजन विहित किया है।[6] क्षत्रिय के लिए वैश्य की स्त्री के साथ व्यभिचार पर सान्तपन का विधान किया गया है।[7] एक अन्य वचन में वैश्यस्त्रीगामी क्षत्रिय तथा शूद्रस्त्रीगामी वैश्य के लिए प्राजापत्य का विधान किया गया है।[8] शूद्र की स्त्री के साथ दुष्कर्म करने वाले क्षत्रिय एवं वैश्य दोनों के लिए दश दिनों तक गोमूत्र में पकाये हुए यावक का आहार विहित किया गया है।[9]

---

१. आनुलोम्येन विहितं कृच्छ्रं पादावरोपितम्। प्रचेता (प्रायश्चित्तविवेक पृ० ३५२ में उद्धृत)। २. क्रमेण पादशो हीनं व्रतन्तासु गतश्चरेत्। व्याघ्र (परा०मा०, प्रा० का०, पृ० २६८ में)। ३. द्र०—ब्राह्मणस्य ब्राह्मणीगमने यदुक्तं तदेव पादहीनं क्षत्रियादिगमने। परा० मा०, प्रा० का०, पृ० २६७।

४. बृहत्परा० स्मृ० ८।१८४। ५. वही, ८।२३८।

६. संवर्त स्मृ० श्लो० १५३; बृहत्परा० स्मृ० ८।२४२।

७. बृहत्परा० स्मृ० ८।२४३। ८. वही ८।२३६। ९. वही, ८।२४४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्राह्मण के लिए वर्णबाह्य स्त्री या अन्त्यजा के साथ व्यभिचार पतनकारक होने के कारण इससे शुद्धि के लिए कठोर प्रायश्चित्त की व्यवस्था धर्मसूत्रों के समय से ही प्रचलित रही है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (१।६।२७।१०-११) में अनार्य स्त्री के साथ समागम पर ब्राह्मण के लिए उदय से अस्त काल तक सूर्य की ओर पीठ करके तृणों पर बैठे रहने का विधान किया गया है और यह कहा गया है कि कुछ आचार्यों के मतानुसार शूद्रा स्त्री के साथ एक रात बिताने वाला ब्राह्मण तीन वर्षों तक चतुर्थकाल (दिन के चौथे प्रहर में) एक बार भोजन एवं प्रतिदिन तीन बार स्नान के व्रत से शुद्ध होता है। गौतम धर्मसूत्र (३।५।३२) में अन्त्यावसायिनीगामी द्विज के लिए एक वर्ष तक कृच्छ्र का विधान किया गया है। यह प्रायश्चित्त हरदत्त (गौ० ध० सू० ३।५।३२ पर मिता०) के अनुसार बुद्धिपूर्वकगमन पर और शूलपाणि (प्रायश्चित्तविवेक, पृ० १६१-२) के अनुसार कामतः और ज्ञानपूर्वक अन्त्यजागमन के अभ्यास (पुनरावृत्ति) पर विहित है। मनु (११।१७८) एवं विष्णु (स्मृ० ५३।६) ने कहा है कि एक रात वृषली (चाण्डाली) का सेवन करने वाला द्विज भिक्षाटन पर निर्भर रहते हुए और वैदिक मन्त्रों का जप करते हुए तीन वर्षों में शुद्ध होता है। मेधातिथि (मनु ११।१७८) तथा पराशरमाधव (प्रा० का०, पृ० २५१) के अनुसार यह प्रायश्चित्त बुद्धिपूर्वक मैथुन की पुनरावृत्ति पर विहित है। गौतम धर्मसूत्र (३।५।३३) में अकामतः अन्त्यजागमन करने वाले द्विज के लिए द्वादशरात्र का व्रत (टीकाकार हरदत्त के अनुसार पराक) का विधान किया गया है। पद्मपुराण (४।१८।१८) में वर्णबाह्या तथा नीच स्त्री के साथ एक बार समागम करने वाले द्विज की शुद्धि के लिए विहित प्राजापत्य कृच्छ्र को अकामतः गमन पर मानना चाहिए। प्रायश्चित्तमयूख (पृ० १५९) में उद्धृत आपस्तम्ब के एक वचनानुसार चाण्डाल, मेद, श्वपच और कापालिक की स्त्री के साथ अकामतः गमन पर पराक व्रत करना चाहिए। लघुयम स्मृति (श्लोक ३३-४ तु० नारदपुराण पू० १४।३१-२) में द्विज के लिए अन्त्यजों की सातों जातियों—रजक, चर्मकार, नट, बुरुड, कैवर्त, मेद और भिल्ल में से किसी की भी स्त्री के साथ ज्ञानपूर्वक समागम पर एक वर्ष तक कृच्छ्र तथा अज्ञान में समागम करने पर प्रायश्चित्त रूप में दो चान्द्रायण विहित किये गये हैं। नारद पुराण (पू० २१४।२७) तथा यम (परा० मा०, प्रा० का० पृ० २५० में उद्धृत) ने भी चाण्डाल तथा पुल्कस की स्त्री के साथ ज्ञानपूर्वक समागम पर एक वर्ष तक कृच्छ्र तथा अज्ञान में समागम पर दो चान्द्रायण विहित किये हैं। पराशरमाधव (प्रा० का०, पृ०, २५०) के अनुसार ये दोनों प्रायश्चित्त रेतःसेक पर्यन्त एक बार समागम पर विहित हैं। इस तरह के दुष्कृत्य के लिए पराशर (स्मृति १०।४-५), सुमन्तु[1], शङ्ख[2] एवं संवर्त (श्लोक १४६-१५१) आदि आचार्यों ने कुछ मृदु प्रायश्चित्त भी विहित किये हैं। पराशर माधव (प्रा० का०, पृ० २४६) के अनुसार ऐसे प्रायश्चित्तों को रेतःसेक से पूर्व

१. परा० मा०, प्रा० का० पृ० २४६। २. वही, पृ० २५०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

निवृत्त होने पर विहित माना जा सकता है। मनु (११।१७०)ने जहाँ अन्त्यजागमन पर गुरुतल्पग का प्रायश्चित्त विहित किया है उसे चतुर्विंशतिमत आदि में प्राप्त वचनों के आधार पर गर्भाधान की स्थिति पर विहित माना जा सकता है।[1] किन्तु पराशर-माधव (प्रा० का०, पृ० २५२) में उक्त प्रायश्चित्त को एक मास तक चाण्डालीगमन पर विहित बतलाया गया है। शूलपाणि के द्वारा (प्रायश्चित्तविवेक, पृ० १६१ में) आपस्तम्ब के नाम से उद्धृत एक श्लोक में यह कहा गया है कि अन्त्यजा में गर्भाधान करने वाले द्विज की कोई निष्कृति नहीं होती। उसे भग के चिह्न से चिह्नित करके निर्वासित कर देना चाहिए। हेमाद्रि ने चतुर्वर्गचिन्तामणि के प्रायश्चित्तखण्ड (पृ० ३०८-३१०) में कामतः चाण्डालीगमन करने वाले द्विजाति के लिए मरणान्तिक प्रायश्चित्त के विषय में अनेक आचार्यों के मत उद्धृत किये हैं। ये बातें उस युग के विषय में हैं जब ब्राह्मण देशाटन, तीर्थाटन या विद्याध्ययन आदि निमित्तों से इधर-उधर विचरण करते थे। प्रवास की स्थिति में अथवा अपने घर में रहते हुए भी परिस्थितिवशात् चाण्डाली आदि के साथ संसर्ग कर बैठने पर बाद में विवेक जागृत होने पर मृदु, कठिन अथवा मरणान्तिक किसी भी प्रकार के प्रायश्चित्त को करने में वे सङ्कोच नहीं करते थे। ब्राह्मणों की अपेक्षा इतर वर्णों के पुरुषों के लिए अन्त्यजागमन में मृदु प्रायश्चित्त विहित है। उदाहरणार्थ—पराशरस्मृति (१०।६) तथा पद्मपुराण (४।१८।४) में क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए चाण्डालीगमन के प्रायश्चित्त रूप में दो प्राजापत्य और तदनन्तर दो जोड़े गायों का दान विहित किया गया है। श्वपाकीगामी तथा चाण्डालीगामी शूद्र के लिए एक प्राजापत्य तथा चार जोड़े गायों का दान विहित किया गया है (परा० स्मृ० १०।७; पद्म ४।१८।५)। इस तरह अन्त्यजागमन पर शूद्र के लिए दक्षिणा अधिक विहित की गयी है, किन्तु प्रायश्चित्त रूप में आचरणोय व्रत की मात्रा कम विहित की गयी है।

घ. उत्तमवर्णागमन का प्रायश्चित्त—

प्रायश्चित्त विधान के प्रसङ्ग में उत्तमवर्णागामी हीनवर्ण के पुरुष को गौतम ने वध्य बतलाया है।[2] वसिष्ठ ने अपने से उत्कृष्ट वर्ण की नारी को व्यभिचार से दूषित करने वाले किसी भी निम्न वर्ण के पुरुष को अग्नि में दग्ध करने का विधान किया है।[3] आपस्तम्ब ने आर्यागामी (त्रैवर्णिकस्त्रीगामी) शूद्र को वध्य बतलाया हैं।[4] बौधायन धर्मसूत्र में आर्यस्त्रीगमी शूद्र को कटाग्नि से दग्धव्य बतलाया गया है।[5] सम्भवतः इन आचार्यों ने

१. चाण्डाल्यां गर्भमारोप्य गुरुतल्पव्रतञ्चरेत्। चतुर्विंशतिमत (परा० मा० प्रा० का०, पृ० २७१ में उद्धृत)।

२. गौ० ध० सू० ३।५।१५। ३. वसिष्ठ ध० सू० २१।१-५।

४. आप० ध० सू० २।१०।२७।६।

५. बौ० ध० सू० २।२।३।५२; तु० बृहत्परा० स्मृ० ८।२४५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उच्चवर्ण की स्त्री को निम्न वर्ण के पुरुष की माता के तुल्य और उसके साथ व्यभिचार को महापराध मान कर ही उसके लिए मरणान्तिक प्रायश्चित्त के स्थान पर वधदण्ड का विधान किया है। उसके लिए मरणान्तिक प्रायश्चित्त के विकल्प के रूप में कामतः किये गये व्यभिचार पर २४ वर्षों तक तथा अकामतः किये गये व्यभिचार पर १२ वर्षों तक ब्रह्महत्याव्रत का पालन विहित किया जाता था।[१] यह प्रायश्चित्त प्रायः शूद्र के लिए विहित था। वृद्ध(बृहत्)प्रचेता के अनुसार मोहवश (अज्ञान में या प्रमाद से) ब्राह्मणीगमन करने वाला शूद्र यदि प्रायश्चित्त करना चाहे तो उससे सम्पूर्ण (द्वादशवार्षिक) व्रत का पालन करावे, क्योंकि वह उसकी माता है। इतर वर्णों के पुरुषों के लिए इसका क्रमशः एक चौथाई कम (वैश्य के लिए नौ वर्ष तथा क्षत्रिय के लिए छः वर्ष का) प्रायश्चित्त विहित है।[२] संवर्त (स्मृ०, श्लो० १६६) के अनुसार कथञ्चित् (प्रमादवश या अज्ञान में) ब्राह्मणीगमन कर बैठने वाला क्षत्रिय एवं वैश्य एक मास पर्यन्त गोमूत्र में पकाये हुए यावक के आहार पर निर्भर रहने पर शुद्ध होता है। निबन्धकारों की दृष्टि में ऐसा हल्का प्रायश्चित्त अत्यन्त व्यभिचारिणी ब्राह्मणी के साथ अकामतः गमन पर विहित किया जाता है।[३]

ङ. कन्यागमन का प्रायश्चित्त—

यम ने कुमारी में वीर्याधान करने वाले पुरुष के लिए मरणान्तिक प्रायश्चित्त (प्राणत्याग) का विधान किया है।[४] विज्ञानेश्वर ने (याज्ञ० ३।२६० पर मिता० में) इसे कामतः मैथुन के अत्यन्त अभ्यास पर विहित बतलाया है। मनु (११।१७०) ने कुमारीगमन के प्रायश्चित्त रूप में गुरुतल्पव्रत (द्वादशवार्षिक व्रत) का विधान किया है। पराशरमाधव (प्रा० का०, पृ० २५२) में इसे एक वर्ष के अभ्यास पर विहित बतलाया गया है। अपने से उच्च वर्ण की कन्या को दूषित करने वाले हीनवर्ण के पुरुष के लिए शङ्ख ने एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत विहित किया है।[५] हारीत ने भी इसके प्रायश्चित्त रूप में ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त में क्रमशः पञ्चतपा, भूशायी और जल में स्थित रहने तथा एक मास तक गोमूत्र में पकाये हुए यावक के आहार पर निर्भर रहने का विधान किया है।[६] पराशरमाधव (प्रा० का०, पृ० ४३६) के अनुसार शङ्ख और हारीत के द्वारा कथित ये प्रायश्चित्त प्रातिलोम्येन (निम्नवर्ण के पुरुष के द्वारा उच्च वर्ण की) कन्या के दूषण पर विहित हैं। चतुर्विंशति मत के एक वचन में कुमारीगमन करने वाले

१. द्र० प्रायश्चित्तविवेक, पृ० १८५ तथा ३५४।

२. वही, पृ० ४० तथा ३५५ एवं प्रायश्चित्तमयूख, पृ० १६१।

३. द्र० परा० मा०, प्रा० का, पृ० २६६; प्रायश्चित्तमयूख पृ० १६१।

४. मिता० (याज्ञ० ३।२६०) में उद्धृत।

५. शङ्ख (परा०मा०, प्रा०का०, पृ० ४३६)में उद्धृत। ६. हारीत (वहीं)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्राह्मण के लिए चान्द्रायण व्रत का विधान है।[1] संवर्तस्मृति (श्लोक १६२) में कन्यागामी द्विज के लिए प्राकृत कृच्छ्र करके पयस्विनी (दूध देने वाली) गौ का दान विहित किया गया है। हेमाद्रि ने (प्रायश्चित्त खण्ड, पृ० ३४८ में) ब्राह्मणकन्यागामी ब्राह्मण के लिए एक वर्ष तक पतित का प्रायश्चित्त विहित किया है तथा क्षत्रिय और वैश्य की कन्या के साथ व्यभिचार पर ब्राह्मणकन्या के दूषण की अपेक्षा क्रमशः एक चौथाई कम प्रायश्चित्त बतलाया है। मेधातिथि (मनु ११।१७०) ने कहा है कि प्रायश्चित्त की गुरुता और लघुता को देखते हुए इसे उच्च अथवा हीन जाति की कन्या के साथ व्यभिचार पर विहित मानना चाहिए। कन्यागमन को गम्भीर अपराध माना जाता था। अतः इसके लिए प्रायश्चित्त की अपेक्षा राजदण्ड के विधान अधिक प्राप्त होते हैं। कन्यादूषी के रहस्य प्रायश्चित्त में अत्रि स्मृति ४।३ (स्मृ० सं०, भाग० १, पृ० ३४२) में 'अग्नि सोम०' इत्यादि मन्त्रों का जप विहित किया गया है, जिसे प्रायः वैदिक मन्त्रों का ज्ञाता द्विजाति ही कर सकता था।

च. वेश्यागमन का प्रायश्चित्त--

प्रस्तुत प्रसङ्ग में 'वेश्या' शब्द का अर्थ है अपनी आजीविका हेतु भृति लेने वाली स्त्री।[2] कामतः वेश्यागमन के प्रायश्चित्त रूप में सामान्यतः प्राजापत्य का विधान किया गया है।[3] यह प्रायश्चित्त द्विज के लिए विहित था। यम के अनुसार वेश्यागमन करने पर द्विजाति पाँच[4] या सात[5] रात्रियों तक केवल एक बार अग्नि में प्रतप्त कुशोदक का पान करने पर शुद्ध होते हैं। यह प्रायश्चित्त अकामतः गमन पर विहित है।[6] अकामतः तथा कामतः गमन के अभ्यास पर लौगाक्षि आदि आचार्यों ने इस प्रायश्चित्त की मात्रा में वृद्धि विषयक अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।[7] हेमाद्रि के द्वारा प्रायश्चित्तखण्ड (पृ० ३४१) में उद्धृत देवल के एक वचन में वेश्यागमन के अभ्यास पर द्विज के लिए छः वर्ष तक कृच्छ्र करने के पश्चात् पुनः संस्कार विहित किया गया है। कण्व ने वेश्या में गर्भस्थापन करने वाले की शुद्धि भिक्षान्नभोजी तथा इन्द्रिय-संयमी रहते हुए एक लाख सावित्री (गायत्री) मन्त्र के जप से बतलायी है।[8] उपर्युक्त

१. चतुर्विंशतिमत (परा० मा०, प्रा० का, पृ० २६७ में उद्धृत)।
२. वेशो भृतिः तां जीवनहेतुतया अर्हतीति वेश्या। परा०मा०,प्रा०का०,पृ०२७४।
३. कूर्म उ० ३३।१२; विष्णुस्मृ० ५३।७; परा०स्मृ० १०।१३; संवर्त श्लो० १६१।
४. लघुयमस्मृति ३८। ५. वैजयन्ती (विष्णु स्मृ०) पृ० ६१० में उद्धृत।
६. वैजयन्ती (विष्णुस्मृति ५३।७) पृ० ६१०।
७. द्र० विष्णुस्मृति (५३।७) पर वैजयन्ती, पृ० ६१०-६११।
८. कण्व (परा० मा०, प्रा० का०, पृ० २७४ तथा विष्णुस्मृति ५३।७ की टीका वैजयन्ती, पृ० ६११ में उद्धृत)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रायश्चित्त प्रायः ब्राह्मण के लिए बतलाये गये हैं। क्षत्रियादि के लिये क्रमशः एक चौथाई कम की व्यवस्था समझनी चाहिए। शूद्र के लिए वेश्यागमन के प्रायश्चित्त के विषय में प्रमुख आचार्यों ने कुछ नहीं कहा है। वेश्यागमन प्रकरण के साथ ही पशुगमन[1] रजस्वलागमन[2] आदि के लिये भी प्रायः मृदु प्रायश्चित्त विहित किये गये हैं।

व्यभिचार में लिप्त होने वाले गृहस्थेतर आश्रमियों—ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यति (भिक्षु) के लिए भी प्रायश्चित्त बतलाये गये हैं।[3] ब्रह्मचारी स्त्रीगमन करने पर अवकीर्णी कहलाता था, जिसके प्रायश्चित्त की चर्चा हम पीछे (तृतीय अध्याय, पृ० ७७ में) कर चुके हैं। यति (भिक्षु) के विषय में यह कहा गया है कि वह कदाचित् स्त्री को देखकर इन्द्रिय-दौर्बल्यवश स्खलित हो जाय तो दश प्राणायाम करे।[4] कामार्त होकर स्त्रीसमागम करने वाला यति (भिक्षु) प्राणायाम सहित सान्तपन करे और तदनन्तर कृच्छ्र करे।[5] संवर्त (स्मृ०, श्लोक १६९) के अनुसार संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् यदि कोई मूर्ख पुत्रोत्पादन हेतु स्त्रीगमन करता है तो वह निरन्तर छः मास तक कृच्छ्र करे।

प्रायश्चित्त-विधानों के बाहुल्य से विदित होता है कि प्राचीन युग के ब्राह्मण राजदण्ड भुगतने की अपेक्षा प्रायश्चित्त को वरीयता देते थे, क्योंकि इससे वे न केवल राजदण्ड से, अपितु यमदण्ड (नरकयातना) और पुनर्जन्म में प्राप्त होने वाले कष्ट से भी मुक्त हो सकते थे। प्राचीन आचार्यों ने इतने सारे प्रायश्चित्त मनुष्य के दुष्कर्म की सम्भावना को देखते हुए कल्पित किये थे, अतः इनके आधार पर यह नहीं सोचना चाहिए कि दुष्कर्म करना और उसका प्रायश्चित्त करते रहना ही प्राचीन मनुष्य का काम था। इस युग में आधुनिकता से प्रभावित कुछ मनुष्य पर्याप्त दुष्कर्म करते हुए भी उसे न तो पापपूर्ण और न नरक-यातना आदि का ही कारण मानते हैं। तब उनकी दृष्टि में प्रायश्चित्त की धारणा तो उपहासास्पद ही होगी। किन्तु प्राचीन युग का मनुष्य अपने दुष्कर्मों के शोधन हेतु निःसङ्कोच होकर प्रायश्चित्त करता था।

छ. अतिचारिणी नारी का प्रायश्चित्त—

नारी कृत व्यभिचार तीन प्रकार का हो सकता है—मानस, वाचिक तथा कायिक। इन तीनों प्रकार के व्यभिचार के लिए धर्मसूत्रों के समय से ही प्रायश्चित्त की व्यवस्था दी गयी है। वसिष्ठ ने मानसिक रूप से पति का अतिक्रमण करने वाली नारी की शुद्धि हेतु तीन रात्रियों तक केवल यावक अथवा दूध-भात पर निर्भर रहते हुए भूमि पर शयन और चौथे दिन स्नान करके १०८ सावित्री मन्त्रों से हवन विहित किया है (वसिष्ठ ध० सू० २१।६)। पराशरमाधव (प्रा० का०, पृ० ११६) के अनुसार मानस व्यभिचार

१. द्र० परा० मा०, प्रा० का०, पृ० २७४-५; प्रायश्चित्तमयूख, पृ० १७२।
२. प्रायश्चित्तमयूख, पृ० १६१-२।
३. द्र० वही, पृ० १७६।
४. लिङ्ग पु० ८०।१७-८।
५. वही, ८०।७-६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का यह प्रायश्चित्त रजस्वला होने के पूर्व ही व्यवहार्य होता है, क्योंकि रजस्वला होने पर तो दूषित भावना वाली स्त्री की शुद्धि स्वतः (रजः स्राव से) हो जाती है। इसीलिए मनु (स्मृ० ५।१०८)ने भी यह माना है कि दूषित मन वाली अर्थात् मनसा परपुरुष के साथ व्यभिचार की कामना करने वाली नारी रजः स्राव से शुद्ध हो जाती है। वसिष्ठ (ध० सू० २१।७) के अनुसार वाचिक व्यभिचार के प्रायश्चित्त हेतु स्त्री एक मास पर्यन्त यावक एवं क्षीरोदन (दूध-भात) पर निर्भर रहकर बिताने के बाद जल में स्नान करके सावित्री मन्त्र से एक सौ आठ के चतुर्गुणित बार हवन करे। बौधायन ने अपने धर्मसूत्र (२।२।३।४६) में स्त्री के लिए पति के प्रति व्यतिक्रम (विश्वासघात) पर कृच्छ्र का विधान किया है। गोविन्दस्वामी ने इसके 'विवरण' में कहा है कि यहाँ व्यतिक्रम का तात्पर्य सजातीय परपुरुष की मन से इच्छा करना या उसके विषय में वार्तालाप करना है। बौधायन (ध० सू० २।२।३।५०) के द्वारा द्विजातीय स्त्री के शूद्रनिमित्तक व्यतिक्रम के लिए चान्द्रायण का विधान किया गया है। गोविन्दस्वामीकृत विवरण के अनुसार यह प्रायश्चित्त तीनों द्विजाति वर्णों की उस स्त्री के लिए विहित है जो अपने पति की भ्रान्ति में शूद्र के साथ मैथुन की कामना अपने मन में करती है अथवा तद्-विषयक विचार वाणी से व्यक्त करती है। नारी का कायिक व्यभिचार कामतः कृत अथवा अकामतः कृत, सवर्ण अथवा असवर्ण पुरुष के साथ या अन्त्यज आदि के साथ, गर्भधारण रहित अथवा गर्भधारण-पर्यवसायी आदि अनेकविध होने से उसके लिए प्रायश्चित्त भी तत्तत् परिस्थितियों पर भिन्न-भिन्न बतलाये गये हैं।

सामान्यतः स्त्री को चारित्रिक पतन के लिए पुरुष ही उकसाता है और उसकी सन्तुष्टि हेतु स्त्री को शरीर-समर्पण के लिए विवश होना पड़ता है। अतः जहाँ व्यभिचार में पुरुष की भूमिका प्रमुख रही हो, नारी को अकामतः प्रवृत्त होना पड़ा हो वहाँ उसके लिए मृदु प्रायश्चित्त विहित किया गया है। परपुरुष के द्वारा बलात् दूषित की गयी अनिच्छुक स्त्री के प्रति प्राचीन आचार्यों की पूर्ण सदाशयता रही है। याज्ञवल्क्य[1] एवं पराशर[2] ने कहा है कि यदि परपुरुष-समागम से नारी गर्भवती नहीं हुई हो तो वह दूषित नहीं होती। वह मासिक धर्म के अनन्तर शुद्ध हो जाती है। बौधायन और वसिष्ठ जैसे आचार्यों का भी यह मत रहा है कि स्त्रियाँ पवित्र होती हैं, वे कभी दूषित नहीं होती। मासिक रजःस्राव से उनके सारे दुष्कृत (पाप) दूर हो जाते हैं।[3] इसी

---

१. व्यभिचाराद् ऋतौ शुद्धिः गर्भे त्यागो विधीयते। याज्ञ० १।७२।

२. रजसा शुद्ध्यते नारी विकलं या न गच्छति। परा० स्मृ० ७।२।

३. स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित्।
मासि मासि रजो ह्यासां दुरितान्यपकर्षति॥
बौ० ध० सू० २।२।४।४; तु० वसिष्ठ ध० सू० २८।४; बृहस्पति स्मृ० ५।६६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिप्रेक्ष्य में वसिष्ठ, पराशर आदि आचार्यों ने कहा है कि स्त्री जार से दूषित नहीं होती।[१] वसिष्ठ, अत्रि एवं बृहस्पति जैसे आचार्यों के अनुसार स्वयं पथभ्रष्ट होने वाली या दूसरे के द्वारा पथभ्रष्ट की गयी या बलात् संभुक्त अथवा चोर के द्वारा अपहृत की गयी स्त्री दूषित होने पर भी त्याज्य नहीं है। उसकी शुद्धि हेतु उसके मासिक रजःस्राव तक प्रतीक्षा करनी चाहिए।[२] इन आचार्यों ने परपुरुष के द्वारा दूषित नारी के त्याग की निष्ठुर प्रवृत्ति को प्रतिबन्धित करने के ध्येय से ही ऐसे वचन कहे हैं। इनका तात्पर्य यह नहीं था कि परपुरुष के द्वारा दूषित नारी को विना प्रायश्चित्त के ही शुद्ध मान लिया जाय। चतुर्विंशतिमत के एक वचन में स्पष्टतः यह कहा गया है कि यद्यपि परपुरुष-समागम से [गर्भधारण न होने की स्थिति में] नारी रजःस्राव से शुद्ध हो जाती है, तथापि उसे मुनि-प्रोक्त प्रायश्चित्त करना ही चाहिए।[३]

ऋष्यश्रृङ्ग के एक वचन में सवर्ण पुरुष के द्वारा बलात् दूषित की गयी नारी की शुद्धि हेतु त्रिरात्र-व्रत विहित किया गया है।[४] यह प्रायश्चित्त बहुत कम है, अतः नीलकण्ठ ने इसे व्यभिचारी पुरुष के रेतःसेक से पूर्व निवृत्त होने पर विहित माना है (प्रायश्चित्तमयूख, पृ० १६६)। पराशरस्मृति (१०।२४) में कहा गया है कि जिस अनिच्छुक स्त्री के साथ पापी पुरुषों के द्वारा एक बार सम्भोग किया गया हो वह प्राजापत्य [कृच्छ्र] एवं मासिक रजःस्राव के पश्चात् शुद्ध होती है। बृहस्पति के अनुसार सवर्ण पुरुष के द्वारा दूषित अनिच्छुक नारी को पति घर में सुरक्षित, मलिनाङ्गी, अधःशायिनी, पिण्डमात्रोपजीविनी बनाकर रखे और उससे प्रायश्चित्त रूप में कृच्छ्र अथवा पराक करावे।[५] उशना ने भी व्यभिचारिणी भार्या के लिए कुचैल (मलिन वस्त्र) धारण, पिण्डमात्र भोजन, घर में नियन्त्रित रखने, अधिकारों से वञ्चित रखने तथा चान्द्रायण, पराक या प्राजापत्य कराने का विधान किया है।[६] नीलकण्ठ (प्रायश्चित्तमयूख, पृ० १६६) के अनुसार उशना द्वारा एक साथ कहे गये तीन प्रायश्चित्तों में से एक बार के व्यभिचार में कृच्छ्र, दूसरी बार प्रवृत्त होने पर पराक तथा अभ्यास पर चान्द्रायण

१. न स्त्री दुष्यति जारेण। वसिष्ठ ध० सू० २८।१; बृहत्परा० स्मृ० ६।३४५।

२. वसिष्ठध.सू.२८।२-३; अत्रि सं०, श्लोक १९५-७(स्मृ.स. १,पृ० ३७०);बृहस्पति स्मृ० ५।६४। ३. रजसा शुद्ध्यते नारी परपुंसाभिगामिनी।
तथापि मुनिना प्रोक्तं प्रायश्चितं समाचरेत्॥
चतुर्विंशतिमत (परा० मा०, प्रा० का०, पृ० ११६ में उद्धृत)।

४. बलेन कामिता नारी सवर्णेन कथञ्चन। प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं वै तस्याः शुद्ध्यर्थमादिशेत्॥ ऋष्यश्रृङ्ग (प्रायश्चित्तमयूख, पृ० १६६ में उद्धृत)।

५. बृहस्पति (प्रायश्चित्तमयूख, पृ० १६६ में उद्धृत)।

६. उशना प्रा० मयूख, पृ० १६६ में उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विहित है। अनेक निबन्धकारों के द्वारा उद्धृत एक स्मृतिवचन में कहा गया है कि यदि गर्भवती नारी को कोई सजातीय पुरुष बलात् दूषित कर दे तो वह गर्भ के प्रसव पर्यन्त कोई प्रायश्चित्त न करे, प्रसव के उपरान्त वह अपनी शुद्धि हेतु एक मास तक यावक भोजन पर निर्भर रहे।[१]

पद्मपुराण (४।१८।२२-३) में मोहवश (अकामतः) परपुरुषगमन करने वाली नारी के प्रायश्चित्त रूप में प्राजापत्य करके पञ्चगव्य पान तथा एक जोड़ा गोदान विहित किया गया है। यह प्रायश्चित्त लगभग वैसा ही है जैसा कि सवर्ण पुरुष के द्वारा दूषित-अनिच्छुक स्त्री के लिए भी विहित किया गया है। मनु (११।१७७) ने कहा है कि [एक बार प्रायश्चित्त करके शुद्ध हो चुकने पर भी] यदि कोई स्त्री किसी सवर्ण पुरुष के बहकावे में आकर पुनः प्रदूषित हो जाय तो कृच्छ्र करके चान्द्रायण करने पर ही वह शुद्ध होती है। यह प्रायश्चित्त अकामतः कृत व्यभिचार की पुनरावृत्ति पर माना जा सकता है।[२]

कामतः व्यभिचार में लिप्त होने वाली नारी के लिए अधिक कठोर प्रायश्चित्त का विधान प्राप्त होता है। वसिष्ठ (ध० सू० २१।८) के अनुसार कामतः परपुरुष के साथ व्यभिचार करने वाली नारी एक वर्ष पर्यन्त यावक और क्षीरौदन (जिसका विधान वसिष्ठ ध० सू० २१।६ में है) पर निर्भर रहते हुए घृतपट (घृतलेपयुक्तवस्त्र ?) धारण कर गोबर से भरे गढ्ढे में अथवा कुशास्तरण पर शयन करे। इस तरह एक वर्ष व्यतीत करने के पश्चात् सावित्री मन्त्र से आठ सौ आहुतियों का होम करने पर वह पवित्र होती है। गौतम ने अतिचारिणी नारी को घर में सुरक्षित रखने तथा उसे पिण्डमात्र भोजन देने को कहा है।[३] उनके पिछले सूत्र की अन्विति के अनुसार अतिचारिणी नारी के प्रायश्चित्त की यह अवधि एक वर्ष की होगी। इस अवधि में वह ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करेगी (द्र०-गौ०ध०सू० ३।४।२८)। हरदत्त (गौ०ध०सू० ३।४.३५ पर मिता०) के अनुसार यह प्रायश्चित्त बुद्धिपूर्वक एक बार गमन पर विहित है। महाभारत,[४] शङ्ख-लिखित[५] एवं बृहस्पति[६] के अनुसार स्वेच्छया व्यभिचार में प्रवृत्त होने वाली नारी से वही प्रायश्चित्त कराना चाहिए जो पुरुष के लिए परस्त्रीगमन में विहित है। मनुस्मृति (११।१७६), अग्निपुराण (१६६।३६; ३७१।५०) तथा मत्स्यपुराण (२२७।५६) में भी यही कहा

---

१. प्रायश्चित्तमयूख पृ० १६८; परा० मा०, प्रा० का०, पृ० २८१ एवं वैजयन्ती, (विष्णुस्मृ० पृ० ६१२) में उद्धृत।
२. द्र०-इदं चाकामतः। कामतस्तु द्विगुणम्। प्रा० मयूख, पृ० १६६।
३. स्त्री याऽतिचारिणी गुप्ता पिण्डं तु लभेत्। गौ० ध० सू० ३।४।३५।
४. शान्तिपर्व १६५।६३।
५. प्रायश्चित्तविवेक, पृ० १६७ तथा प्रा०मयूख पृ० १६८ में उद्धृत।
६. यत्पुंसः परदारेषु समानेषु व्रतं स्मृतम्।
व्यभिचारेऽपि भर्तुः स्त्री तदशेषं समाचरेत्॥ बृहस्पति स्मृ० ७।५६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गया है कि व्यभिचार से दूषित स्त्री को पति घर के एक कमरे में बन्द रख कर उससे वही व्रत करावे जो पुरुष के लिए परस्त्रीगमन पर विहित है।[1] अगम्यपुरुषगमन आदि से जो स्त्रियाँ पतित हो जायँ उनकी शुद्धि हेतु भी कात्यायन ने पतित पुरुष के समान ही प्रायश्चित्त कराने को कहा है।[2] अङ्गिरा ने भी यह कहा है कि पतित स्त्री के सेवन पर पुरुष से जो प्रायश्चित्त कराया जाता है वही पतित पुरुष का सेवन करने वाली नारी से भी कराया जाना चाहिए।[3] इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियों को अन्य पाप-कर्मों पर प्रायश्चित्त की जो आधी छूट दी जाती थी[4], वह उन्हें कामतः व्यभिचार में प्रवृत्त होने पर नहीं दी जाती थी। कामतः व्यभिचार में प्रवृत्त होने वाली नारी को पूरा प्रायश्चित्त करना पड़ता था। यह प्रायश्चित्त प्रायः वही होता था जो परस्त्रीगामी पुरुष के लिए विहित था। किन्तु अन्तर इतना ही था कि जहाँ निकट सम्बन्ध की स्त्री के साथ व्यभिचार या किसी भी रूप में अगम्यागमन के कारण पतित पुरुष को घर से बाहर निकाल दिया जाता था वहाँ स्त्री को घर में एक कोठरी में बन्द रखकर उससे प्रायश्चित्त करवाया जाता था। याज्ञवल्क्य स्मृति (३।२९६) में पतित स्त्री-पुरुषों के लिए समान प्रायश्चित्त विधि बतलाते हुए यह कहा गया है कि पतित स्त्रियों को प्रायश्चित्त काल में घर के समीप ही निवास, अन्न (पिण्डमात्र भोजन), वस्त्र (मलिनवस्त्र) तथा संरक्षण देना चाहिए।

कभी-कभी पापाचरण की बहुलता या तीक्ष्णता के अनुसार प्रायश्चित्त की तीक्ष्णता भी बढा दी गयी है। पद्मपुराण (५।१०६।६७-८)में कहा गया है कि नारी के द्वारा किये गये परपुरुष सेवन आदि सभी पापों का अग्निप्रवेश के अतिरिक्त अन्य कोई प्रायश्चित्त नहीं है। इसी तरह स्कन्दपुराण (६।२०८।७-८) में कहा गया है कि परपुरुष के द्वारा धर्मभ्रष्ट की गयी नारी की कोई शुद्धि नहीं होती। वह अग्नि में दग्ध होने पर ही शुद्ध होती है। ऐसे प्रायश्चित्त को नारी के द्वारा अनैतिक आचरण से अपने पति एवं परिवार को संकटग्रस्त कर देने एवं उसकी प्रतिष्ठा को समाप्त करने अथवा परपुरुष सेवन के अत्यन्त अभ्यास पर विहित माना जा सकता है।

बौधायन धर्मसूत्र (२।२।३।५१–वैश्यादिषु प्रतिलोमं कृच्छ्रातिकृच्छ्रादींश्चरेत्) का

---

१. विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुध्यादेकवेश्मनि। यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद् व्रतम्

२. एष दोषश्च शुद्धिश्च पतितानामुदाहृता। स्त्रीणामपि प्रसक्तानामेष एव विधिः स्मृतः॥ कात्या० (विष्णुस्मृ० ३४।२; ५३।२ की टीका वैजयन्ती में उद्धृत)।

३. व्रतं यच्चोदितं पुंसां पतितस्त्रीनिषेवणात्। तच्चापि कारयेन्मूढां पतितासेवनात् स्त्रियम्॥ अङ्गिरा (प्रा० मयूख पृ० १६७ में उद्धृत)।

४. अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः। प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च॥ विष्णुस्मृ० ५४।३३; अङ्गिरा(याज्ञ० ३।२४३ पर मिता०में उद्धृत)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जो विवरण उनके टीकाकार गोविन्दस्वामी ने प्रस्तुत किया है उसके अनुसार ब्राह्मणी वैश्य के साथ समागम पर कृच्छ्रातिकृच्छ्र, क्षत्रिय के साथ समागम पर अतिकृच्छ्र करे तथा क्षत्रिया स्त्री वैश्य के साथ समागम पर कृच्छ्र करे। इस विषय में षट्त्रिंशन्मत के ये वचन अधिक स्पष्ट हैं कि ब्राह्मणी क्षत्रिय का सेवन करने पर अतिकृच्छ्र और वैश्य का सेवन करने पर कृच्छ्रातिकृच्छ्र करे। क्षत्रिय की स्त्री ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के साथ रमण पर क्रमशः कृच्छ्रार्द्ध, प्राजापत्य तथा अतिकृच्छ्र करे। वैश्य की स्त्री ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य के सेवन पर क्रमशः कृच्छ्रपाद, कृच्छ्रार्द्ध तथा प्राजापत्य करे। शूद्रा शूद्र के सेवन में प्राजापत्य तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के सेवन पर क्रमशः एक अहोरात्र का व्रत, त्रिरात्र व्रत एवं कृच्छ्रार्द्ध करे।[1] प्रचेता के अनुसार शूद्र के साथ व्यभिचार करने वाली ब्राह्मणी यदि गर्भधारण न की हो तो वह प्रायश्चित्त रूप में एक कृच्छ्र और तीन चान्द्रायण करे। वह वैश्य के साथ व्यभिचार पर गर्भधारण न होने की स्थिति में एक कृच्छ्र और दो चान्द्रायण करे और क्षत्रिय के साथ समागम के प्रायश्चित्त रूप में (गर्भधारण न होने की स्थिति में) एक कृच्छ्र तथा एक चान्द्रायण करे। इसी तरह क्षत्रिया यदि शूद्र के साथ संभोग के फलस्वरूप गर्भिणी नहीं होती तो प्रायश्चित्त रूप में एक कृच्छ्र एवं दो चान्द्रायण करे तथा वैश्य के साथ संभोग पर (गर्भधारण न करे तो) एक कृच्छ्र एवं एक चान्द्रायण करे। वैश्या शूद्र के साथ संभोग से गर्भधारण न करने की स्थिति में कृच्छ्र और चान्द्रायण करे।[2] पराशरमाधव (प्रा० का०, पृ० ११६) के अनुसार यह प्रायश्चित्त ब्राह्मणी, क्षत्रिया एवं वैश्या के द्वारा क्रमशः हीन वर्ण के पुरुष के साथ समागम के अभ्यास पर विहित है। उनके अनुसार परपुरुष के साथ केवल एक बार अकामतः मैथुन करने वाली ब्राह्मणी यदि गर्भिणी न हुई हो तो उसके लिए चतुर्विंशति मत में यह प्रायश्चित्त विहित है कि वह ब्राह्मण के साथ रमण पर कृच्छ्रार्द्ध, क्षत्रिय के साथ रमण करने पर कृच्छ्र, वैश्य के साथ रमण पर सान्तपन एवं शूद्र के साथ रमण पर पराक व्रत करे।

देवल का कथन है कि 'असवर्ण' पुरुष के द्वारा दूषित स्त्री यदि गर्भवती न हुई हो तो वह गर्भत्याग अथवा प्रसव पर्यन्त अशुद्ध रहती है। गर्भ के निकल जाने पर अथवा [गर्भिणी न होने की स्थिति में] रजःस्राव हो जाने के पश्चात् वह शुद्ध हो जाती है।[3] किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उसे प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता था। सवर्ण, असवर्ण

१. षट्त्रिंशन्मत (प्रायश्चित्तमयूख, पृ० १६७ में उद्धृत)।

२. प्रचेता (परा० मा०, प्रा० का०, पृ० ११५-६; प्रायश्चित्तमयूख पृ० १६७ तथा विष्णुस्मृ० ५३.८ की टीका वैजयन्ती में उद्धृत)।

३. असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते। अशुद्धा सा भवेन्नारी यावच्छल्यं न मुञ्चति। विनिःसृते ततः शल्ये रजसो वापि दर्शने। तदा सा शुद्ध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा॥ देवलस्मृति ५०-५१ (स्मृतिसन्दर्भ भाग २, पृ० १६५९)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अथवा वर्णबाह्य किसी भी पुरुष के साथ व्यभिचार पर नारी को जो प्रायश्चित्त करना पड़ता था, उससे अधिक प्रायश्चित्त गर्भिणी होने पर उसे करना पड़ता था। किन्तु बलात्कार के फलस्वरूप गर्भिणी होने पर प्रायश्चित्त की मात्रा कुछ कम हो सकती थी। चतुर्विंशतिमत में कहा गया है कि ब्राह्मणी को विप्र के साथ व्यभिचार करके गर्भधारण करने पर प्रायश्चित्त रूप में पराक, क्षत्रिय के साथ व्यभिचार से गर्भधारण करने पर चान्द्रायण एवं वैश्य के साथ व्यभिचार से गर्भधारण करने पर चान्द्रायण के साथ ही पराक भी करना चाहिए। शूद्र के साथ व्यभिचार करके गर्भधारण करने पर उसे त्याग देना चाहिए, क्योंकि उससे उत्पन्न पुत्र चाण्डाल होता है।[1] उपर्युक्त प्रायश्चित्त को कामतः या बुद्धिपूर्वक किये गये व्यभिचार के फलस्वरूप गर्भधारण होने की स्थिति में विहित नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह पाप की गम्भीरता के अनुपात में कम प्रतीत होता है। अतः इसे अकामतः कृत व्यभिचार अथवा अनिच्छुक नारी के बलात् धर्षण के फलस्वरूप गर्भधारण होने की स्थिति में विहित माना जा सकता है। जैसा कि नीलकण्ठ ने भी कहा है कामतः व्यभिचार में प्रवृत्ति के फलस्वरूप गर्भधारण होने की स्थिति में इसका द्विगुणित प्रायश्चित्त होगा (द्र०—प्रा० मयूख, पृ० १६८)। ऐसी नारी से उत्पन्न शिशु के विषय में देवल ने कहा है कि उसे अपने पास नहीं रखना चाहिए, अपितु किसी अन्य को दे देना चाहिए। ऐसी सन्तान को अपनी जाति में नहीं मिलाना चाहिये। अन्यथा वर्णसङ्करता का दोष आ जाता है।[2] देवल जैसे आचार्यों ने यह व्यवस्था नारी के त्याग की निष्ठुर प्रवृत्ति को रोकने के उद्देश्य से दी है। वसिष्ठ (ध० सू० २१।१२) प्रभृति आचार्य यह मानते रहे हैं कि यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण की स्त्रियाँ शूद्र के साथ समागम से गर्भधारण नहीं करती तो वे प्रायश्चित्त से शुद्ध हो सकती हैं, किन्तु गर्भिणी हो जाने की स्थिति में वे प्रायश्चित्त से भी शुद्ध नहीं हो सकती।[3] याज्ञवल्क्य ने व्यभिचार के फलस्वरूप गर्भधारण न होने की स्थिति में मासिक रजःस्राव से नारी की शुद्धि बतलायी है, किन्तु गर्भधारण होने की स्थिति में उसके त्याग का जो विधान किया है[4] उसे विज्ञानेश्वर एवं माधव ने शूद्रकृत गर्भाधान विषयक बतलाया है।[5]

---

१. चतुर्विंशतिमत (परा० मा०, प्रा० का० पृ० ११५; प्रा० मयूख, पृ० १६८ में उद्धृत)।

२. स गर्भो दीयतेऽन्यस्मै स्वयं ग्राह्यो न कर्हिचित्। स्वजातौ वर्जयेद् यस्मात् सङ्करं स्यादतोऽन्यथा ॥ देवलस्मृ० श्लो० ५२ (स्मृ० सं० ३, पृ० १६६०)।

३. ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रियः शूद्रेण सङ्गताः।
अप्रजाता विशुध्यन्ति प्रायश्चित्तेन नेतराः ॥

४. व्यभिचाराद् ऋतौ शुद्धिः गर्भे त्यागो विधीयते। याज्ञ० १।७२।

५. मिता० (याज्ञ० १।७२); परा० मा०, प्रा० का० पृ० ११५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पराशरस्मृति १०।२३ के अनुसार जो नारी पापी पुरुषों के द्वारा वन्दी बना कर एवं मार-पीट कर और भय दिखा कर दूषित की गयी हो वह सान्तपन कृच्छ्र से शुद्ध होती है। यह प्रायश्चित्त गर्भधारण न होने की स्थिति में होगा। गौतम के एक वचन के अनुसार यदि वन्दीकृत नारी गर्भिणी होने के पश्चात् छोड़ दी गयी हो तो पति उसे प्रायश्चित्त के ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मणों की सभा में ले जाय, वहाँ वह (स्त्री) अपने साथ किये गये दुष्कर्म का सत्य वर्णन करे। तब सभा उससे साठ बार मृत्तिका के लेप-पूर्वक और तदनन्तर एक बार घृतलेप-पूर्वक शौच कराने के पश्चात् नदी के जल में स्नान करावे और तब पूर्ववत् [बलात्दूषिता अनिच्छुक नारी के लिए विहित] प्रायश्चित्त करावे।[1] मार्कण्डेय के एक वचनानुसार वन्दीकृत नारी बलात्कार के फलस्वरूप गर्भिणी हो गयी हो तो उसका त्याग कर देना चाहिए।[2]

संवर्तस्मृति (श्लोक १६८) में श्रेष्ठ [त्रैवर्णिक] स्त्रियों के लिए चाण्डाल, पुक्कश, श्वपाक तथा पतित के साथ समागम के प्रायश्चित्त रूप में तीन चान्द्रायण विहित किये गये हैं। नीलकण्ठ (प्रा० मयूख, पृ० १७०) के अनुसार यह प्रायश्चित्त इन स्त्रियों की अकामतः प्रवृत्ति में और रेतःसेक से पूर्व निवृत्त हो जाने पर विहित है। प्रायश्चित्त मयूख (पृ० १६६) में उद्धृत एक अन्य स्मृति-वचन में रजक, व्याध, शैलूष, वेणु-जीवी (बाँस से अपनी जीविका चलाने वाले) तथा चर्मकार के साथ अकामात् (अज्ञान में या अबुद्धिपूर्वक) समागम कर बैठने वाली ब्राह्मणी के लिए दो चान्द्रायण विहित किये गये हैं।[3] ऋष्यश्रृङ्ग के एक वचन में अन्त्यज के साथ समागम करने वाली नारी के लिए एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करते रहने का विधान किया गया है,[4] जिसे नीलकण्ठ ने (प्रा० मयूख, पृ० १६९ में) कामतः एक बार समागम पर विहित बतलाया है। उशना ने अन्त्यज के साथ सम्पर्क करने वाली नारी का प्रायश्चित्त बतलाते हुए यह कहा है कि वह धधकती हुई अग्नि में प्रविष्ट होकर मृत्यु को प्राप्त होने से शुद्ध होती है।[5] जैसा कि नीलकण्ठ ने भी (प्रा० मयूख, पृ० १६९ में) कहा है यह प्रायश्चित्त कामतः अत्यन्त सम्पर्क पर विहित है।

पराशरस्मृति (१०।१६-२१) में अज्ञान में चाण्डाल का संसर्ग करने वाली त्रैवर्णिक नारी की शुद्धि बतलाते हुए कहा गया है कि वह दश विद्वान् ब्राह्मणों के समक्ष अपने दोष का प्रकाशन करके अहोरात्र पर्यन्त गोमयोदककर्दम (पानी में घोले

---

१. चतुर्वर्गचिन्तामणि, प्रायश्चित्तखण्ड, पृ० ३७३-४ में उद्धृत।
२. तत्रैव, पृ० ३७३ में उद्धृत।
३. रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनः। ब्राह्मण्येतान् यदा गच्छेदकामादैन्दवद्वयम्॥
४. ऋष्यश्रृङ्ग (प्रायश्चित्तमयूख, पृ० १६६ में उद्धृत)।
५. उशना (प्रा० मयूख, पृ० १६६ में उद्धृत)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुए गोबर के कीचड़) से पूरित कूप में निराहार रहे। तब शिखा सहित समस्त शिर का मुण्डन करके यावक का भोजन करे और तब त्रिरात्र पर्यन्त उपवास करके एक रात जल में रहे। तदनन्तर शङ्खपुष्पी लता के मूल अथवा पत्र या पुष्प या फल तथा सुवर्ण एवं पञ्चगव्य का क्वाथ बना कर उसका पान करे। तब मासिक रजःस्राव होने तक अहोरात्र में एक बार भोजन करे और घर के बाहर निवास करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा एक जोड़ा गोदान और दक्षिणा दान करे। यही प्रायश्चित्त पराशरमाधव (प्रा० का०, पृ० २७८) में स्वायम्भुव मनु के द्वारा कथित बतलाया गया है। अङ्गिरा (प्रा० मयूख, पृ० १६६ में उद्धृत) ने इसे चाण्डाल-संसर्ग करने वाली ब्राह्मणी के लिए विहित किया है। अन्त्यज के द्वारा दूषित की गयी गर्भवती स्त्री के विषय में ऋष्यशृङ्ग के (प्रायश्चित्तमयूख, पृ० १७० में उद्धृत) एक वचन में कहा गया है कि वह प्रसव पर्यन्त न तो प्रायश्चित्त करे, न तब तक घर में प्रवेश करे, न तो अङ्ग-प्रसाधन करे, न पति के साथ शयन करे और न बान्धवों के साथ भोजन करे, किन्तु प्रसव के पश्चात् वह एक वर्ष तक प्रायश्चित्त करे तथा उसके अन्त में ब्राह्मणों को सुवर्ण या धेनु दान करे। यवनों के द्वारा स्त्रियों के अपहरण और उनके साथ बलात्कार की घटनाएँ मध्यकाल में अधिक होती थीं। प्राचीनकाल में यह आशङ्का कम थी। अतः तद्विषयक प्रायश्चित्त प्राचीन आचार्यों ने नहीं बतलाया है। किन्तु देवल ने इस विषय में भी प्रायश्चित्त विहित किया है। उनके अनुसार म्लेच्छों के द्वारा बलात्कार से दूषित स्त्री यदि गर्भवती हो जाय तो वह शुद्ध नहीं होती, किन्तु गर्भवती न होने की स्थिति में वह त्रिरात्रव्रत से शुद्ध हो जाती है।[1] इसके आगे म्लेच्छ के बलात्कार के फलस्वरूप गर्भधारण करनेवाली नारी की शुद्धि के विषय में प्रश्न उठाने के पश्चात् उन्होंने उसकी शुद्धि कृच्छ्रसान्तपन तथा योनि के [ईषदुष्ण] घृत से पाचन (अर्थात् लेप) से विहित की है।[2] जैसा कि पीछे कहा जा चुका है इस शुद्धि (प्रायश्चित्त) को वह स्त्री गर्भ के त्याग या प्रसव के पश्चात् ही कर सकती थी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि नारी को सवर्ण, असवर्ण अथवा अन्त्यज— किसी भी पुरुष के साथ अकामतः अथवा कामतः दुराचार कर बैठने पर उसका प्रायश्चित्त करना पड़ता था। प्रायश्चित्त पूरा होने तक जहाँ पुरुष को घर से निकाल दिया जाता था वहाँ नारी को घर में ही एक कमरे में अथवा घर के समीप आवास प्रदान किया जाता था। कामतः व्यभिचार में प्रवृत्त नारी को प्रायश्चित्त में कोई छूट नहीं दी जाती थी। शूद्र और अन्त्यज के साथ शारीरिक-सम्पर्क के फलस्वरूप गर्भिणी

---

१. गृहीता स्त्री बलादेव म्लेच्छैर्गुर्वीकृता यदि। गुर्वी न शुद्धिमाप्नोति त्रिरात्रेणेतरा शुचिः। देवलस्मृति, श्लोक ४७, (स्मृतिसन्दर्भ, भाग २, पृ० १६५६)।

२. वही, श्लोक ४८-६ (स्मृ० स०, भाग २, पृ० १६५६-१६६०)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होने पर त्रैवर्णिक नारी को त्याग दिया जाता था, अन्यथा (गर्भिणी न होने पर) वह प्रायश्चित्त से शुद्ध हो सकती थी। जैसा कि हरदत्त ने (गौ० ध० सू० ३।४।३५ पर मिता० में) कहा है कि दुष्टतावश प्रायश्चित्त न करने वाली नारी दण्डनीय होती थी।

प्राचीन युग में जहाँ मनुष्य अपने दुष्कर्म जनित पाप के शोधन हेतु वास्तव में प्रायश्चित्त करता था, वहीं आधुनिक युग में कुछ पाठकों को तद्विषयक ऐतिहासिक विवेचन भी अनुपयोगी और उबाऊ लग सकता है। किन्तु प्राचीन समाज में पाप-शोधन के लिए प्रायश्चित्त को परम उपयोगी माना जाता था। राजदण्ड का प्रयोग तभी होता था जब कि अपराधी या तो स्वयं प्रायश्चित्त नहीं करता था अथवा उससे प्रायश्चित्त कराना अनुपयोगी या अव्यावहारिक समझा जाता था। प्रायश्चित्त कर लेने वाला मनुष्य स्वयं को शुद्ध और नरक-यातना या यमदण्ड के भय से मुक्त समझ सकता था। इसे कर लेने पर वह राजदण्ड तथा सामाजिक बहिष्कार से भी बच सकता था। आपस्तम्ब ने कहा है कि प्रायश्चित्त कर लेने वाले स्त्री-पुरुषों से पूर्ववत् सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।[1] प्रायश्चित्त की अनेक विधियाँ या कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रत आधुनिक समाज के मनुष्य को दुष्कर प्रतीत हो सकते हैं। यदि प्राचीन युगों की भाँति आज भी किसी न किसी रूप में दुराचारियों से प्रायश्चित्त कराया जा सके तो उससे उनके व्यक्तिगत जीवन में सुधार के साथ ही समाज को भी मर्यादित रहने की प्रेरणा प्राप्त हो सकेगी।

२. अतिचार का दण्ड—

सर्वोच्च नैतिक आदर्शों, अगणित धार्मिक उपदेशों, पाप और नरक-यातना विषयक कल्पनाओं तथा प्रचुर प्रायश्चित्त-विधानों के अतिरिक्त राजदण्ड का भी सामाजिक जीवन को मर्यादित रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कामवासना से विवेक-भ्रष्ट होने पर मनुष्य गम्यागम्य का विचार और परलोक में प्राप्त होने वाले कष्ट (नरक-यातना) का भय भूल सकता है, किन्तु राजा को उसके अपराध के ज्ञात हो जाने और पकड़े जाने पर मिलने वाले राजदण्ड के भय को वह सहसा नहीं भूल सकता। यौन-सम्बन्धों को मर्यादित रखने के लिए राज्य (प्रशासन) का सहयोग आदि-काल से ही अपेक्षित रहा है। रामायण में कहा गया है कि यदि राजा न हो तो किसी मनुष्य के पास पत्नी भी नहीं रह सकती।[2] महाभारत (शान्तिपर्व ५७।४१), विष्णुधर्मोत्तरपुराण (२।२।१४) तथा हितोपदेश (मित्रलाभ १८९) में कहा गया है कि मनुष्य सर्वप्रथम राजा तत्पश्चात् पत्नी और तब धन को प्राप्त करे। क्योंकि यदि राजा

१. चरिते यथापुरं धर्माद्धि सम्बन्धः। आप० ध० सू० २।१०।२७।१।

२. अराजके धनं नास्ति नास्ति भार्याऽप्यराजके। रामा० २।६७।११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ही नहीं होगा तो कहाँ से कोई पुरुष पत्नी और कैसे धन को अपने पास रख सकेगा।[१] यद्यपि ये वचन राजा के महत्त्व को द्योतित करने के लिए कहे गये हैं, किन्तु इनमें निहित सत्य का अंश नकारा नहीं जा सकता। इस विषय में एक यथार्थ तथ्य प्रस्तुत करते हुए पुराणों में कहा गया है कि त्रेतायुग के अन्त में जब कुछ दस्यु दूसरों के पुत्र, पत्नी और धन का अपहरण करने लगे तो ब्रह्मा ने मर्यादा की प्रतिष्ठा हेतु तथा दुर्बलों को पीडित होने से बचाने के लिए क्षत्रियों की सृष्टि की थी।[२] महाभारत के अनुसार सभी मनुष्यों के धन और स्त्री की दस्युओं के अपहरण से रक्षा करना राजा का परम कर्तव्य है।[३] जिस राजा के राष्ट्र में स्त्रियों का बलात् हरण होने पर उनके पति और पुत्रों को रुदन करना पड़े वह जीते जी मृतक के समान है।[४] शङ्खलिखित के अनुसार जो राजा प्रजा की गौ, भूमि, स्त्री तथा सर्वस्व का अपहरण नहीं रोक पाता उसे ब्रह्मघातक कहा जाता है।[५] आरम्भिक युगों से ही प्रजा की स्त्री-धन आदि की रक्षा करना, प्रजा से सदाचार का पालन कराना तथा पूर्वतः स्थापित नैतिक मर्यादाओं का उल्लङ्घन रोकना राजा का कर्तव्य था। मनु एवं विष्णु ने कहा है कि जिस राजा के राष्ट्र में चोर, परस्त्रीगामी, दुर्वचन बोलने वाला, साहस (बलपूर्वक लूट मार आदि) और दण्डपारुष्य (मार-पीट आदि) करने वाला न हो वह स्वर्ग का भागी होता है।[६] इन अपराधियों के निग्रह से राजा का साम्राज्य सुदृढ होता है और उसके यश का प्रसार होता है।[७] मनु (स्मृ० ८।३५२) ने राजा को यह निर्देश दिया है कि वह परस्त्रीगामी पुरुषों को उद्वेगजनक (पीड़ाप्रद) तीक्ष्ण दण्ड दे, उन्हें अङ्गच्छेदन (या अङ्कन) पूर्वक निर्वासित करे।[८] उन्होंने चेतावनी दी है कि परस्त्रीगमन करने वाले ये अपराधी वर्णसङ्कर सन्तान को जन्म देते हैं, जो कि सर्वनाशक अधर्म का प्रसार करता है (मनु ८।३५३ द्र० पीछे, पृ० २६६)। नारदस्मृति (स्त्रीपुंस० १२।११८) में भी राजा को यह आदेश दिया गया है कि वह अपने राज्य में वर्णसङ्कर सन्तान का जन्म न होने दे तथा विशेषतः त्रैवर्णिकों को वर्णसाङ्कर्य दोष से बचावे।[९] इस तरह के वचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज में मर्यादा की स्थापना हेतु व्यभिचार की कुत्सित प्रवृत्ति को रोकना राजा का परम कर्तव्य रहा है। नारद ने अगम्यागामी पुरुषों

---

१. राजानं प्रथमं विन्देत् ततो भार्यां ततो धनम्।
राजन्यसति लोकस्य कुतो भार्या कुतो धनम्॥

२. द्र० लिङ्ग पू० ३९।४८-९।

३. अनु० पर्व ४७।४४।

४. वही, ६१।३१।

५. शङ्खलिखित स्मृ०, श्लोक २४।

६. मनु ८।३८६; विष्णुस्मृ० ५।१९७।

७. मनु ८।३८७।

८. परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नॄन् महीपतिः। उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत्॥

९. राज्ञा परीक्ष्यं न यथा जायते वर्णसङ्करः।
तस्माद् राज्ञा विशेषेण त्रयी रक्ष्या तु सङ्करात्॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का निग्रह राजदण्ड का अन्यतम प्रयोजन बतलाया है।[1] जातकमाला (पृ० २१०) के एक वचन से यह झलकता है कि किसी भी नारी के प्रति आपराधिक आचरण में संलग्न पुरुष राजा के क्रोध का भाजन बनता था। राजतरङ्गिणी (८।३३३६) में उल्लेख है कि राजा जयसिंह कृत दण्डप्रणयन से उसके राज्य में स्त्रियों के शीलभ्रंश की प्रवृत्ति समाप्त हो गयी थी। शुक्रनीति (१।२६२-३) में बतलाया गया है कि चोर और जार को निवृत्त करने के लिए रात्रि में राजमार्ग और प्रत्येक वीथी (गली) में यामिक (पहरेदार) पर्यटन करते रहें। इस तरह के विविध उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अतिचार की प्रवृत्ति के नियन्त्रण हेतु राजदण्ड को आवश्यक माना जाता था। अनेकत्र यह कहा गया है कि राजा ही परस्त्रीगामी एवं अन्यायी पुरुषों को दण्ड देता है (द्र० पीछे पृ० २८१, टि० २)। यह एक सार्वकालिक सत्य है कि परदाररत पुरुष राजदण्ड के भय से ही मर्यादा का पालन करते हैं।[2] महाभारत में कहा गया है कि स्त्री को भी यदि राजदण्ड का भय न रहे तो वह भी पातिव्रत्य धर्म का पालन न करे।[3] रामायण में यह स्वीकार किया गया है कि राजा के अभाव में पत्नी भी पति के वश में नहीं रहती।[4] नीतिवचनों में भी यह कहा गया है कि कुलीन स्त्री भी अपने कृश, विकल, व्याधिग्रस्त और निर्धन पति की सेवा दण्डभय से करती है।[5] स्त्रियों के विषय में प्राचीन आचार्यों की यह अवधारणा रही है कि उन्हें यदि राजा का अथवा गुरुजनों (पति आदि) का भय न हो तो वे मात्र परलोक में प्राप्त होने वाले [यमदण्ड या नारकीय यातना के] भय से मर्यादा का पालन कभी नहीं करती।[6] इस तरह के वचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल से ही स्त्री-पुरुषों को मर्यादित रखने में राजदण्ड का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। राजा के द्वारा अतिचारी स्त्री-पुरुषों को ही नहीं, अपितु अपने कर्तव्यों का सम्यक् निर्वाह न करने वाले दम्पती को भी दण्डित किया जाता था।

---

१. अगम्यागामिनः शास्ति दण्डो राज्ञः प्रचोदितः। नारदस्मृ०(स्त्रीपुंस०१२।७७)।

२. परदाररता ये च ये च तस्करवृत्तयः।
सर्वे राजभयाद् राजन् मर्यादां पालयन्ति वै॥ स्कन्द ६।१२८।१५।

३. न तिष्ठेद् युवती धर्मे यदि दण्डो न पालयेत्। शान्तिपर्व १५।४२।

४. नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे। रामा० २।६७।१०।

५. नियतविषयवर्ती प्रायशो दण्डयोगात्।
जगति परवशेऽस्मिन् दुर्लभः साधुवृत्तः।
कृशमपि विकलं वा व्याधितं वाऽधनं वा। पतिमपि कुलनारी दण्डभीत्याभ्युपैति॥
कामन्दक नीतिसार २।४३; हितो०, मित्रलाभ १६१।

६. न परत्र भयादेता मर्यादां व्यदधुः स्त्रियः।
मुक्त्वा भूपभयं चैकमथवा गुरुजं भयम्॥ स्कन्द ६।८१।३७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क. कर्तव्यच्युत दम्पती का दण्ड—

दाम्पत्य मर्यादा स्थापित रखने के लिए राजा यह भी ध्यान में रखता था कि दम्पती यथाकथञ्चित् एक दूसरे के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करें और एक दूसरे की उपेक्षा अथवा एक दूसरे का अकारण त्याग न करें, अन्यथा वह धर्मशास्त्रोक्त विधानों के अनुसार उन्हें दण्डित करता था। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार निर्दोष स्त्री के साथ सम्यक् व्यवहार न करने वाले पति को राजा दण्डित करके उससे उसके साथ यथोचित व्यवहार करावे।[1] निर्दोष स्त्री का त्याग करने वाले पति को धर्मशास्त्रों में दण्डनीय बतलाया गया है।[2] ऐसे पति के लिए अपराध की गम्भीरता के अनुसार कहीं उत्तमसाहस[3] तो कहीं एक सुवर्ण[4] का अर्थदण्ड विहित किया गया है। इस तरह दण्डित पति को राजाज्ञानुसार अपनी उसी पत्नी के साथ जीवन-निर्वाह करना पड़ता था।[5] याज्ञवल्क्य ने यह विधान किया है कि अपनी आज्ञाकारिणी, गृहकार्यदक्ष, पुत्रवती एवं प्रियवादिनी पत्नी का त्याग करने वाले पुरुष से उसके धन का तृतीयांश उसकी पत्नी को दिलवाया जाय और यदि वह निर्धन हो तो उससे उसका भरण-पोषण करवाया जाय।[6] अपरिहार्य स्थिति में अधिवेदन (एक पत्नी के रहते हुए दूसरा विवाह) करने वाले पुरुष को पूर्वपत्नी को धन (आधिवेदनिक धन) देकर सन्तुष्ट करना पड़ता था।[7] तब भी पूर्वपत्नी का भरण-पोषण करना उसका नैतिक कर्तव्य था।[8] बहुविवाह (एकाधिक विवाह) करने वाला पुरुष परिणीता स्त्रियों के प्रति विषम (पक्षपात पूर्ण) व्यवहार करने पर राजा के द्वारा एक सुवर्ण के अर्थदण्ड से दण्डनीय घोषित किया गया है।[9] सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए दम्पती का सहवास

---

१. विष्णुधर्मो० ३।३२९।१८; इसमें 'यस्तु दोषवतीं' पाठ के स्थान पर 'यस्त्वदोषवतीं' पाठ होना चाहिए। २. व्यासस्मृ० २।६; गरुड पू० ९५।१५।

३. द्र०-याज्ञ० १।६६ तथा इस पर मिता०।

४. यस्त्यजेच्च तथा भार्यामदुष्टां पुरुषाधमः।
स सुवर्णं भवेद् दण्ड्यो बिभृयातां तथा पुनः॥ विष्णुधर्मो० ३।३२९।२६।

५. अनुकूलामवाग्दुष्टां दक्षां साध्वीं प्रजावतीम्।
त्यजन् भार्यामवस्थाप्यो राज्ञा दण्डेन भूयसा॥ नारदस्मृ० (स्त्रीपुंस०) १२।९७।

६. आज्ञासम्पादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम्।
त्यजन् दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः। याज्ञ० १।७६; तु० गरुडपू० ९५।२३।

७. द्र०-याज्ञ० २।१४८; नारद उ० १८।३०-३३।

८. अधिविन्ना तु भर्तव्या महदेनोऽन्यथा भवेत्। याज्ञ० १।७४।

९. विषमं परिणीतासु वर्तते यस्तु मानवः।
सवर्णासु भवेद् दण्ड्यः सुवर्णं च महीक्षिता॥ विष्णुधर्मो० ३।३२९।२७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भी परम आवश्यक होने के कारण ऋतुकाल में पत्नी के पास न जाने वाले पुरुष को भी दण्डनीय बतलाया गया है।[1] कौटिल्य अर्थशास्त्र (३।२।४४) में उसके लिए ९६ पण अर्थदण्ड विहित है। क्वचित् ऐसे पुरुष के लिए दण्ड की मात्रा एक सुवर्ण माषक बतलायी गयी है।[2] इस तरह के दण्ड-विधानों से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में पुरुष यथेच्छाचारी होकर निर्दोष पत्नी का त्याग या उसकी अवज्ञा नहीं कर सकता था।

पति के प्रति अपने कर्तव्यों का सम्यक् निर्वाह न करने पर पत्नी भी दण्डनीय होती थी। ऐसी पत्नी को क्वचित् उसका पति भी दण्डित कर सकता था। यथा—धर्मशास्त्रों में पति को अप्रिय वचन बोलने वाली स्त्री के सद्यः त्याग की अनुमति दी गयी है।[3] नारद ने यह विधान किया है कि पति अपनी प्रगल्भ (ढीठ) और निर्गुण स्त्री का त्याग कर सकता है तथा जो नारी पति और पुत्रों के प्रति सर्वथा निष्ठुर हो, किन्तु दूसरों को अपने अनुकूल बना लेती हो, उसका भी वह सर्वथा त्याग कर सकता है।[4] ऋतुकाल में अपने समीप न आने वाली स्त्री को भी पति त्याग सकता था।[5] किन्तु गम्भीर अपराध करने वाली स्त्री को राजा ही दण्ड देता था। मनु प्रभृति आचार्यों ने कहा है कि अपने भ्रातादि ज्ञाति-बान्धवों के गुण के दर्पवश पति का अतिक्रमण करने वाली नारी को राजा बहुजन समक्ष[6] अथवा चाण्डालों के बीच[7] कुत्तों से नुचवा डाले। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि दूषित चरित्र वाली, पुरुष की हत्या करने वाली तथा सेतुभेदन करने वाली स्त्री यदि गर्भिणी न हो तो राजा उसको पत्थर से बँधवा कर जल में डुबो दे[8] तथा विष देने वाली, आग लगाने वाली और पति, गुरु (पिता, श्वशुर आदि) एवं पुत्र को मारने वाली स्त्री यदि गर्भिणी न हो तो उसके कान, हाथ, नाक और होंठ काट कर उसे बैलों (साँड़ों) से मरवा दे।[9]

(ख) समाज के द्वारा अतिचारी स्त्री-पुरुषों का निग्रह—

प्राचीन समाज के पास अतिचारी स्त्री-पुरुषों के निग्रह के अनेक हथकण्डे थे। राजा की अनुमति लिये बिना भी उनका त्याग[10] एवं घट-स्फोटपूर्वक कुल-गोत्र से पृथक्करण[11] किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त उन्हें पदे-पदे सामाजिक प्रतिष्ठा से वञ्चित तथा

---

१. बृहस्पतिस्मृ० २।४७८। २. विष्णुधर्मो० ३।३२६।२४।
३. बौ०ध०सू० २।२।४।६; मनु ९।८१। ४. नारद (स्त्रीपुंस०) १२।१३-४।
५. विष्णुधर्मो० ३।३२६।२५। ६. मनु० ८।३७१; विष्णुधर्मो० २।७२।११७।
७. अग्नि २२७।४२; मत्स्य २२७।१३२; विष्णुधर्मो० ३।३२९।१६।
८. याज्ञ० २।२७८; तु० अग्नि २५८।६५।
९. विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम्। विकर्णकरनासोष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत्॥ याज्ञ० २।२७९; तु०मत्स्य २२७।२००; अग्नि२२७।६१-२;२५८।९६।
१०. द्र० पीछे, पृ० २५७-८। ११. द्र०-धर्मशास्त्र का इतिहास भाग ३, पृ० १०५३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तिरस्कृत किया जा सकता था।[१] धर्मशास्त्रों में अगम्यागामी[२] एवं परस्त्रीगामी[३] पुरुष को वध्य आततायियों में गिनाया गया है, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि दण्डाधिकारी की दूरस्थता अथवा तात्कालिक अनुपलब्धि की स्थिति में ऐसे अपराधी को प्रतिशोध के भावावेश में वध दण्ड से दण्डित करने का नैतिक अधिकार जनसाधारण को भी प्राप्त था। कहीं-कहीं व्यभिचारी पुरुषों को ब्राह्मणों के आदेशानुसार भी दण्डित किया जाता था। यथा-स्कन्दपुराण के अनुसार धर्मारण्यस्थ ब्राह्मणों ने यह विधान किया था कि वहाँ का जो भी निवासी व्यभिचार[४] आदि दोषों से लिप्त होगा या अगम्यागमन[५] आदि दुष्कर्म करेगा उसे उनके द्वारा निर्दिष्ट दण्डानुसार दण्डित किया जायेगा। स्कन्दपुराण की एक अन्य कथा के अनुसार पार्वती के वरदान से एक बालविधवा ने स्वप्न में एक ब्राह्मण (जो उसके पूर्वजन्म का पति था) के साथ समागम से गर्भधारण किया तो उसके लिए ग्रामवृद्धों ने केशवपन करके तथा कान और नाक को काटकर और गोत्र से त्याग कर ग्राम से निर्वासित करने का दण्ड विहित किया था।[६] एक अन्य कथानक में जार से गर्भधारण करने वाली विधवा को उसके पति के भाई-बान्धवों आदि के द्वारा सकचग्रह (चोटी पकड़ कर) दूर ले जाकर घटोत्सर्गपूर्वक त्यागे जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[९] इस तरह के कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों को दण्डित करने के लिए राजा के आदेश की प्रतीक्षा अथवा सक्षम दण्डाधिकारी की मुखापेक्षिता ही सदैव आवश्यक नहीं थी, कभी-कभी समाज के प्रमुख जन भी उन्हें धर्मशास्त्र-सम्मत दण्ड दे सकते थे। किन्तु समस्त दण्ड-विधियों का प्रवर्तन प्रायेण राज-सत्ता के आविर्भाव के पश्चात् एवं राजा के प्रयोग के लिए ही किया गया है। अतः ऐसे अपराधियों को दण्डित करने का दायित्व नियमतः राजा का ही रहा है।

(ग) अतिचारी पुरुष के लिए विहित राजदण्ड—

राजा का यह कर्तव्य था कि वह न केवल व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों को अपितु व्यभिचार को प्रोत्साहित करने वालों को तथा दाम्पत्य जीवन में किसी भी प्रकार विघ्न या विघटन उपस्थित करने वालों को भी दण्डित करे। पाणिग्रहणमन्त्रों की निष्ठा (सप्तपदी)

---

१. द्र० पीछे, पृ० २६२-६। २. मत्स्य २२७।११७-६।

३. द्र० पीछे पृ० २५९, टि० ६-७ एवं पृ० २६०, टि० १-२।

४. येषां दोषाः सदाचारे व्यभिचारादयो यदि।
तेषां दण्डो विधेयस्तु य उक्तो विधिवद् द्विजैः॥ स्कन्द ३।२।४०।१०-११।

५. अगम्यागमनाद् यस्य दोष उत्पद्यते यदा।
तस्य दण्डः पुनः कार्य आर्यैस्त्रैविद्यजातिभिः॥ स्कन्द ३।२।४०।२२।

६. स्कन्द (मोर सं०) ३।४।१६।५१। ९. स्कन्द३।३।३।४२-८; तु० शिव ४।९।८-६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में विघ्न पहुँचा कर एक नववधू का अपहरण करने वाले अपने औरस पुत्र सत्यव्रत को भी राजा त्रय्यारुण ने त्याग दिया था।[१] व्यभिचार के लिए अवसर (स्थान और परामर्श) प्रदान करने वाले को भी राजा दण्डित करता था। ऐसे अपराधी के लिए परस्त्रीगामी के तुल्य दण्ड विहित किया गया है।[२] परस्त्रीगामी पुरुष को पकड़े विना या दण्डित किये विना छोड़ देने वाला उत्तमसाहस दण्ड का पात्र होता था।[३] [अपने परिवार की प्रतिष्ठा की रक्षा या अन्य किसी प्रलोभन की दृष्टि से किसी स्त्री के] जार को चोर बतलाने वाले को पाँच सौ पण अर्थदण्ड का भागी बतलाया गया है।[४] यद्यपि कुछ विशेष आपत्कालिक एवं विषम स्थितियों में कुछ परायी स्त्रियों के साथ सहवास में दण्ड का निषेध किया गया था,[५] किन्तु यह कोई नियम नहीं था। कौटिल्य (अर्थ० ३।४।७) ने सामान्य स्थिति में परायी स्त्री को अपने घर में आश्रय देने वाले के लिए एक सौ पण अर्थदण्ड विहित किया है।

अतिचार विषयक अपराधों के लिए छिट-पुट दण्डविधान धर्मसूत्रों में प्राप्त होते हैं, किन्तु इनका विस्तृत विवरण प्रायः स्मृतियों में 'स्त्रीसंग्रह' संज्ञक विवादपद के अन्तर्गत प्राप्त होता है और स्मृति-वचनों का सर्वेक्षणपूर्वक क्रमशः निबन्धन निबन्ध-ग्रन्थों (यथा—लक्ष्मीधरकृत कृत्यकल्पतरु के व्यवहारकाण्ड, चण्डेश्वरकृत विवादरत्नाकर आदि) में देखा जा सकता है।[६] प्राचीन आचार्यों ने परस्त्री के साथ यौन-सम्बन्ध को ही नहीं, किसी भी प्रकार के अनैतिकतापूर्ण और आपत्तिजनक आचरण को भी स्त्रीसंग्रहण में गिनाया है। उदाहरणार्थ मनु (स्मृ० ८।३५६-८) के अनुसार परस्त्री के साथ तीर्थ, वन, उपवन, नदी-सङ्गम आदि स्थानों में वार्तालाप, उसे शृङ्गार-प्रसाधन की वस्तुओं को उपहार रूप में प्रदान करना, उसके साथ केलि (क्रीडा, हास-परिहास), उसके आभूषणों या वस्त्रों का स्पर्श, उसके साथ एक खाट में बैठना, उसके स्तन आदि अङ्गों का स्पर्श और उसके द्वारा अपने गुह्याङ्ग आदि के स्पर्श पर आपत्ति (विरोध) न करना आदि भी स्त्रीसंग्रहण के अपराध में गिना जाता है। धर्मशास्त्रों में परस्त्री के साथ यौन-सम्बन्ध ही नहीं इसके उद्देश्य से वार्तालाप या कोई अश्लील चेष्टा करने पर भी दण्ड विहित किया गया है। रामायण (२।७२।४५) से यह विदित होता है

---

१. लिङ्ग० पू० ६६।२-४।
२. अर्थ ४।१२।२६; द्र० मत्स्य २२७।१२६-७; विष्णुधर्मो० २।७२।११०।
३. याज्ञ० २।२९८; अग्नि २२७।६४; मत्स्य २२७।२०२; विष्णुधर्मो० २।७२।१८६।
४. अर्थ० ४।१२।३४; याज्ञ० २।३०१। ५. द्र० पीछे पृ० २४७-२४९।
५. अर्थ० ३।४।७; द्र०-पीछे, पृ० २४८-९।
६. व्यभिचार सम्बन्धी अपराधों के वर्गीकरण हेतु द्र०—
दास, राममोहन : क्राइम एण्ड पनिस्मैण्ट इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० १११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कि परस्त्री की कामना करने वाले को भी दण्डित किया जा सकता था। आपस्तम्ब (ध० सू० २।१०।२६।१९) के अनुसार यदि कोई अलंकृत युवक अबुद्धिपूर्वक (अकामतः) परस्त्री अथवा कुमारी के पास पहुँच जाता है तो उसे मौखिक चेतावनी देते हुए रोका जाय (वाचा बाध्यः), किन्तु बुद्धिपूर्वक और दूषित मनोभाव से उसके पास जाने पर वह दण्डनीय होता है। कौटिल्य के अनुसार शारीरिक सम्पर्क साधन के उद्देश्य से कामुकतापूर्ण चेष्टाएँ अथवा एकान्त में अश्लील वार्तालाप करने पर स्त्री से चौबीस पण तथा पुरुष से इसका दुगुना (अठचालीस पण) अर्थदण्ड लिया जाय।[१] इसी उद्देश्य से केश, नीवी (अधोवस्त्र की ग्रन्थि), दाँत, नख आदि का स्पर्श करने पर स्त्री के लिए पूर्वसाहस एवं पुरुष के लिए इसका दुगुना अर्थदण्ड होगा।[२] शङ्कास्पद स्थान पर वार्तालाप करने वाले को अर्थदण्ड के स्थान पर प्रत्येक पण के लिए एक कोड़ा मारा जा सकता है।[३] स्त्री को इसी अपराध के लिए ग्राम के मध्य में चाण्डाल पाँच बार शिफा (कोड़े) से पीठ पर प्रहार करेगा[४] अथवा वह एक प्रहार के स्थान पर एक पण अर्थदण्ड दे सकती है।[५] प्रतिषिद्ध किये जाने पर भी एक दूसरे को प्रेमोपहार की वस्तुएँ प्रदान करने वाली स्त्री या पुरुष को छोटी वस्तुओं के उपहार पर १२ पण, बड़ी वस्तुओं के उपहार पर २४ पण तथा हिरण्य-सुवर्ण के उपहार पर ५४ पण अर्थदण्ड देना होगा और यदि ये स्त्री-पुरुष एक दूसरे के लिए अगम्य हों तो उपर्युक्त का आधा अर्थदण्ड देंगे।[६] चारित्रिक दूषण की आशङ्का वाले किसी भी आचरण को दण्डनीय माना जाता था। कौटिल्य के अनुसार यदि कोई स्त्री आशङ्कित चरित्र वाले या प्रतिषिद्ध पुरुष के साथ मार्ग से हट कर एकान्त स्थान की ओर चले तो उसे भी स्त्रीसंग्रहण के अपराध की आशङ्का में दण्डित किया जा सकता है।[७] मनु (स्मृ० ८।३५४) के अनुसार जो पुरुष पहले भी स्त्रीसंग्रहण का अपराध कर चुका हो उसे परस्त्री के साथ एकान्त में वार्तालाप करने पर प्रथमसाहस दण्ड दिया जाय। वर्जित किये जाने पर भी परस्त्री के साथ वार्तालाप करने वाले को एक सुवर्ण अर्थदण्ड का भागी बतलाया गया है।[८] याज्ञवल्क्य के अनुसार पति, पिता आदि के द्वारा वर्जित किये जाने पर भी किसी पुरुष के साथ वार्तालाप करने वाली स्त्री से एक सौ पण और वर्जित किये जाने पर भी किसी परस्त्री के साथ वार्तालाप करने वाले पुरुष से दो सौ पण अर्थदण्ड लिया जाय। यदि स्त्री और पुरुष दोनों को वर्जित किये जाने पर भी वे परस्पर मिलना और वार्तालाप करना नहीं छोड़ते तो उन्हें उनके वर्णानुसार व्यभिचार

---

१. अर्थ० ३।३।२५। २. वही ३।३।२६। ३. वही ३।३।२७।
४. वही ३।३।२८। ५. वही ३।३।२९।
६. वही ३।३।३०-३१। ७. वही ३।४।२१।
८. मनु ८।३६१; मत्स्य २२७।१२१-२; विष्णुधर्मो० २।७२।१०५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के लिए विहित दण्ड दिया जाय।[१] मनु ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जो पुरुष पहले से निर्दोष हो वह किसी अन्य कारणवश परस्त्री के साथ वार्तालाप करने पर अपराधी नहीं होता।[२] चारणों और नट-नर्तक आदि की स्त्रियों, दासियों तथा भिक्षुणियों के साथ आपत्तिजनक वार्तालाप करने वाले को अल्प दण्ड देने की संस्तुति की गयी है।[३] शङ्खलिखित ने यह विधान किया है कि कोई पुरुष अपने जिस अङ्ग से स्त्रीसंग्रहण का अपराध करे उसके उसी अङ्ग को काट लिया जाय या उससे आठ सौ पण अर्थदण्ड लिया जाय। उनके अनुसार यह दण्ड ब्राह्मण के लिए नहीं है, क्योंकि ब्राह्मण अदण्ड्य होता है।[४] वृद्धहारीत ने परस्त्री के बलात् स्पर्श पर हस्तच्छेदन का दण्ड विहित किया है।[५] उन्होंने उसके चुम्बन के अपराध पर तालु (अधरोष्ठ आदि) का छेदन, आलिङ्गन करने पर दोनों हाथों का छेदन, केश आदि पकड़ने पर हाथ की अङ्गुलियों का छेदन करके प्रतप्त तैल से दाहन तथा मुट्ठियों से ताडन, कामतः सुरतयाचना करने पर जिह्वा-च्छेदन, कामुकतापूर्ण चेष्टाएँ करने पर दोनों तालुओं का दाहन एवं कटाक्ष करने पर नेत्रों का स्फोटन (फोड़ना) विहित किया है।[६] किसी स्त्री को दूषित करने का दण्ड अपराध की गम्भीरता के अनुरूप वध, अङ्गच्छेदन, अङ्कन और अर्थदण्ड के भेद से अनेकविध हो सकता था। बौद्धसाहित्य के एक ग्रन्थ मिलिन्दपञ्हो (४।२।२८) से ज्ञात होता है कि व्यभिचारी पुरुष को अर्थदण्ड, ताडन, अङ्गच्छेदन, भेदन (हाथ-पैर तोड़ना) अथवा वध (प्राणदण्ड) में से अपराधानुसार कोई भी दण्ड दिया जा सकता था।[७] संयुत्तनिकाय (३, पृ० ३०३-४) से भी यह विदित होता है कि किसी स्त्री अथवा कन्या को दूषित करने वाले पुरुष के शिर का मुण्डन करके तथा दोनों हाथों को पीछे की ओर बाँध कर उसे पुर में घुमा कर दक्षिण द्वार से बाहर ले जाकर उसका शिरश्छेदन कर दिया जाता था। जैन आगम सूयगडो (१।४।१।२१-२) में परस्त्री में आसक्त पुरुष के हाथ पैर काटने, खाल उधेड़कर उसमें नमक छिड़कने, नाक-कान काटने तथा कण्ठच्छेदन किये जाने की भी संभावना की गयी है।[८] व्यभिचारी पुरुष के लिए दण्ड निश्चित करते समय उसके द्वारा दूषित स्त्री के साथ उसके सम्बन्ध की निकटता अथवा दूरी, गम्यात्व अथवा अगम्यात्व, वर्ण-जाति, चरित्र, पारस्परिक सहमति अथवा बलात्कार आदि अनेक तथ्यों को ध्यान में रखा जाता था।

---

१. याज्ञ० २।२८५। २. मनु ८।३५५।
३. वही ८।३६३।
४. शङ्खलिखित (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ५८३ में उद्धृत)।
५. वृद्धहारीतस्मृ० ४।१९१-२। ६. वही, ४।१९६-९।
७. द्र० वूमेन अण्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, पृ० ६६।
८. द्र० बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन, पृ० २२१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(१) गुरुतल्पग का दण्ड—जननी एवं विमाता के साथ यौनाचार के लिए धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में जो मरणान्तिक प्रायश्चित्त विहित है,[१] उसे राजदण्ड का भी स्थानापन्न कहा जा सकता है, क्योंकि उसके लिए पृथक् रूप से कोई दण्ड विहित नहीं है। कौटिल्य ने मौसी, बुआ, मामी, आचार्याणी, पुत्रवधू, पुत्री तथा भगिनी के साथ यौनाचार करने वाले के लिए सवृषण-लिङ्गच्छेदन पूर्वक वध दण्ड विहित किया है।[२] उपर्युक्त तथा कुछ अन्य निकट-सम्बन्ध की स्त्रियों के साथ सहवास करने वाले पुरुष को स्मृतियों और पुराणों में गुरुतल्पग बतलाया गया है[३] और उसके लिए लिङ्गच्छेदनपूर्वक वध दण्ड विहित किया गया है।[४] वृद्धहारीतस्मृति (४।२११-२) में भगिनी, माता, पुत्री, गुरुपत्नी, पुत्रवधू, पतिव्रता स्त्री तथा तपस्विनी को व्यभिचार से दूषित करने वाले को कटाग्नि से दग्ध करने का दण्ड विहित किया गया है। प्राचीन काल में निकटसम्बन्ध की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने वाले का वध ही एक मात्र दण्ड था। रामायण (४।१८।३३) में राम ने बाली से कहा है कि जैसा पाप तुमने किया है वैसा ही पाप करने वाले एक श्रमण का आदिकाल में सम्राट् मान्धाता ने वध कर दिया था। वह श्रमण संभवतः ऋषभदेव की परम्परा का रहा होगा। बाली के वध का औचित्य बतलाते हुए राम ने रामायण (४।१८।२२) में स्वयं भी यह कहा है कि जो पुरुष अपनी सगी बहिन अथवा भ्राता की पत्नी के साथ कामतः यौनाचार करता है उसका दण्ड वध ही है। किन्तु वध दण्ड का यह विधान ब्राह्मण के लिए नहीं था। बौधायन[५] एवं मनु[६] ने स्पष्ट कहा है कि स्त्रीसंग्रहण के अपराध में शारीरिक दण्ड (वधदण्ड) केवल ब्राह्मणेतर वर्ण के पुरुषों के लिए ही विहित है। मनु (स्मृ० ८।३७९) के अनुसार प्राणान्तिक दण्ड का विधान केवल इतर वर्णों के लिए है, ब्राह्मण के लिए मुण्डन ही प्राणान्तिक दण्ड का स्थानापन्न होता है। बौधायन धर्मसूत्र (१।१०।१८।१८) में गुरुतल्पगामी ब्राह्मण को ललाट में भग के चिह्न से चिह्नित करके निर्वासित कर देने का विधान किया गया है। स्मृतियों एवं पुराणों में प्रायश्चित्त न करने वाले गुरुतल्पग के लिए भगाकृति से अङ्कन का जो दण्ड विहित है,[७] उसे निर्वासन और अर्थदण्ड का सहगामी समझना चाहिए।

---

१. द्र०—पीछे, पृ० २६५। २. अर्थ० ४।१३।३०। ३. द्र०—पीछे, पृ० २७६।

४. याज्ञ० ३।२३२-३; नारदस्मृ० (स्त्रीपुंस०) १२।७३-५; मत्स्य २२७।१३६-१४२; गरुड पू० १०५।१०-११; द्र० वृद्धहारीतस्मृ० ४।१६३।

५. अब्राह्मणस्य शारीरो दण्डः संग्रहणे भवेत्। बौ० ध० सू० २।२।४।१; बौ०स्मृ० २।२।६१। ६. अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति। मनु ८।३५९।

७. गुरुतल्पे भगः कार्यः। मनु ९।२३७; नारद स्मृ० (प्रकीर्ण) १८।१०२; अग्नि २२७।५०; मत्स्य २२७।१६४; विष्णुधर्मो० २।७२।१४८; तु०—भगं गुरुतल्पगमने। शङ्खलिखित (कृत्यकल्पतरु, व्य० का० पृ० ५८३ में उद्धृत)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(२) परस्त्रीगमन का दण्ड—परस्त्रीगमन के लिए आपराधिक भावना की तीव्रतानुसार वध, अङ्गच्छेदन अथवा अर्थदण्ड के विधान प्राप्त होते हैं। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में परस्त्री में रेतःसेक के अपराध पर सवृषण-लिङ्गच्छेदन का दण्ड विहित किया गया है[1]। वृद्धहारीतस्मृति (४।१९२-३) में बलात् अथवा कामात् परस्त्रीगमन करने वाले के लिए सर्वस्वहरणपूर्वक लिङ्गच्छेदन विहित किया गया है, जबकि बृहस्पति ने परस्त्री के साथ बलात्कार करने वाले का सर्वस्वहरण और सवृषण-लिङ्गच्छेदन करके उसे गधे में बैठा कर घुमाने का दण्ड विहित किया है।[2] महाभारत (शान्तिपर्व १६५।६५) एवं मनुस्मृति (८।३७२) में यह विधान है कि परस्त्रीगामी पुरुष को अग्नि में तपा कर लाल की हुई लोहे की चादर पर लिटा कर ऊपर से लकड़ियाँ रख कर आग लगा कर जला दिया जाय। पुराणों एवं क्वचित् स्मृतियों में भी परस्त्री को बलात् दूषित करने वाले पुरुष के लिए वध दण्ड विहित किया गया है।[3] कौटिल्य (अर्थ० ४।१२।३३) ने प्रोषितपतिकागामी पुरुष के लिए वध दण्ड विहित किया है। परस्त्री के साथ उपाधि (छल-छद्म) पूर्वक व्यभिचार पर तीक्ष्ण दण्ड दिया जाता था। बृहस्पति (स्मृ०, व्य० का० २४।१४) के अनुसार जो पुरुष किसी स्त्री के साथ छद्मपूर्वक (यथा—उसे छलपूर्वक अपने घर में बुलाकर मद्यपान आदि से असामान्य मनःस्थिति को प्राप्त करा कर) व्यभिचार करता है उसका सर्वस्वहरण करके तथा उसे ललाट में भग के चिह्न से अङ्कित करके राजा अपने पुर से निर्वासित कर दे।

मनु (स्मृ० ८।३७८) ने ब्राह्मण के लिए अभिभावक के द्वारा संरक्षित ब्राह्मणी परस्त्री के साथ बलात् यौनाचार करने पर एक सहस्र पण (उत्तम साहस) तथा उसकी सहमति से ऐसा करने पर पाँच सौ पण अर्थदण्ड विहित किया है। अन्य स्मृतिकारों ने भी सवर्णा परस्त्री के साथ व्यभिचार पर उत्तमसाहस दण्ड विहित किया है।[4] मत्स्यपुराण (२२७।१३८-९ तु० विष्णुधर्मो० २।७२।१२२-३) में असंरक्षिता सवर्णा परस्त्री के साथ व्यभिचार पर शूद्र को एक सौ पण, वैश्य को इसका दुगुना, क्षत्रिय को तिगुना एवं ब्राह्मण को चौगुना अर्थदण्ड का पात्र बतलाया गया है तथा अभिभावक के द्वारा संरक्षित सवर्णा स्त्री के साथ व्यभिचार पर इससे अधिक दण्ड का सुझाव दिया गया है। व्यास ने इच्छुक होकर स्वयं उपस्थित हुई स्त्री के साथ यौनाचार करने वाले के लिए परस्त्रीगमन का आधा दण्ड विहित किया है।[5] बृहस्पति

१. सन्निपाते वृत्ते शिश्नस्य छेदनं सवृषणस्य। आप० ध० सू० २।१०।२६।२०।

२. बृहस्पतिस्मृ० २४।१३ (कृत्यकल्पतरु व्य० का०, पृ० ५८५, विवादरत्नाकर पृ० ३८८)। ३. मत्स्य २२७।१२६-७; विष्णुधर्मो० २।७२।१११।

४. यज्ञ: २।२८६; विष्णु स्मृ० ५।४०; नारद स्मृ० (स्त्रीपुंस०) १२।७०; अग्नि २५८।६८। ५. इच्छन्त्यामागतायां तु गच्छतोऽर्धं दमः स्मृतः। व्यास (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ५८८ में उद्धृत)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के अनुसार यदि कोई नारी किसी पुरुष के घर आकर अपने स्पर्श आदि से उसे प्रलोभित करके अपने साथ व्यभिचार में प्रवृत्त करती है तो वही दण्डनीय होती है, उस पुरुष को आधा दण्ड दिया जायेगा।[1] व्यास के अनुसार जिस नारी का भोग अनेक पुरुष कर चुके हों उसके साथ व्यभिचार करने वाले के लिए आचार्यों को परस्त्रीगामी की अपेक्षा वेश्यागामी के लिए विहित दण्ड ही अभिप्रेत है।[2] याज्ञवल्क्य स्मृति (२।२३७) में स्वच्छन्दविधवागामी (विज्ञानेश्वर के अनुसार स्वेच्छया विधवागमन करने वाला) के लिए एक सौ पण अर्थदण्ड विहित किया गया है। दण्ड की यह मात्रा कम होने के कारण इस प्रसंग में स्वच्छन्दविधवा का तात्पर्य असंरक्षिता और स्वेच्छाचारिणी विधवा से लगाया जा सकता है। राजपत्नीगामी पुरुष चाहे जो हो उसके लिए कौटिल्य (अर्थ० ४।१३।३३) ने कुम्भीपाक (खौलते हुए तेल में पकाकर मार डालने) का दण्ड और याज्ञवल्क्य आदि आचार्यों ने कटाग्नि (भूसे की आग) में दग्ध कर डालने का दण्ड विहित किया है।[3] स्त्रीसंग्रहण के अपराध में ब्राह्मण के लिए वध दण्ड का धर्मशास्त्रों में निषेध किया गया है, किन्तु तब भी प्राचीन साहित्य में कहीं-कहीं अन्तःपुर की महिलाओं के साथ व्यभिचार करने वाले ब्राह्मण का राजा के द्वारा वध किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। स्कन्दपुराण (६।६३।२७) के अनुसार राजा मेघवाहन ने अपने अन्तःपुर में प्रविष्ट होकर जार-कर्म करने वाले एक ब्राह्मण का वध करवा दिया था। जैन आगमों (द्र०-विवागसुयं १।५।११२) के अनुसार राजा उदयन ने अपने पुरोहित बृहस्पति को व्यभिचार के अपराध में विविध यातनाएँ देकर प्राणदण्ड देने का आदेश दिया था।[4]

(३) उत्कृष्टवर्णागमन का दण्ड—धर्मसूत्रों के काल से ही प्रायः सभी प्रमुख आचार्यों ने उत्कृष्ट वर्ण की नारी को व्यभिचार से दूषित करने वाले अवर वर्ण के पुरुष के लिए वध दण्ड विहित किया है।[5] हारीत ने यह विधान किया है कि राजा उसे

---

१. बृहस्पतिस्मृ० (व्य० का०) २४।१६।

२. बहुभिर्भुक्तपूर्वा या गच्छेद् यस्तां नराधमः। तस्य वेश्यावदिच्छन्ति दण्डनं न तु दारवत् ॥ व्यास (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ५६८)।

३. याज्ञ० २।२८२; मत्स्य २२७।२०१; अग्नि २५८।६७।

४. द्र० बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन, पृ० २२२।

५. गौ० ध० सू० ३।५।१५; याज्ञ० २।२८६; नारद स्मृ० (स्त्रीपुंस०) १२।७०; बृहस्पतिस्मृ० (व्य० का०) २४।१५; विष्णु स्मृति (कृत्यकल्पतरु, व्य० का० पृ० ५८६) : अग्नि २२७।४१; २५८।६९; मत्स्य २२७।१३१; विष्णुधर्मो० २।७२।११६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बाँध कर कुत्तों को खिला दे।[1] वसिष्ठ धर्मसूत्र (२१।२-३) में ब्राह्मणीगमन के अपराध में वैश्य को रक्त वर्ण के दर्भों से लपेट कर एवं उसी अपराध में क्षत्रिय को शरपत के तिनकों से लपेट कर अग्नि में झोंक कर मार डालने का दण्ड विहित किया गया है। मनु (८।३७७) ने अभिभावक के द्वारा संरक्षिता ब्राह्मणी के साथ व्यभिचार करने वाले क्षत्रिय एवं वैश्य को शूद्र की भाँति दण्डनीय अथवा कटाग्नि (भूसे में लगी अग्नि) से दग्धव्य घोषित किया है। क्षत्रियागामी वैश्य को भी वसिष्ठ (ध०सू० २१।४) ने अग्नि में झोंक कर मार डालने को कहा है। आर्य (त्रैवर्णिक) स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले शूद्र को आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।१०।२७।९) में वध्य घोषित किया गया है और बौधायन धर्मसूत्र (२।२।३।५३) में उसको कटाग्नि (भूसे की आग) में जलाने की विधान किया गया है। कौटिल्य ने असंरक्षित ब्राह्मणी के साथ व्यभिचार करने वाले क्षत्रिय के लिए उत्तमसाहस, वैश्य के लिए सर्वस्वहरण तथा शूद्र को कटाग्नि से दग्ध करने का विधान किया है।[2] वसिष्ठ धर्मसूत्र (२१।१) में ब्राह्मणीगामी शूद्र को वीरण [घास] के तिनकों से लपेट कर अग्नि में झोंक कर मार डालने का प्राणान्तिक दण्ड विहित किया गया है। यम ने ब्राह्मणीगामी शूद्र को अग्नि में प्रतप्त लोहे की चादर में लिटा कर ऊपर से लकड़ी, पत्ते और तिनके डाल कर जला कर मार डालने का दण्ड विहित किया है।[3] वसिष्ठ धर्मसूत्र (२१।५) में क्षत्रिया एवं वैश्या के साथ व्यभिचार के अपराधी शूद्र को अग्नि में झोंक कर मार डालने का प्राणान्तिक दण्ड विहित किया गया है। गौतम धर्मसूत्र (२।३।२-३) तथा मनुस्मृति (८ ३७४) में शूद्र के लिए त्रैवर्णिकों की असुरक्षित स्त्री के साथ व्यभिचार पर लिङ्गच्छेदन एवं सर्वस्वहरण का दण्ड तथा अभिभावक द्वारा सुरक्षित त्रैवर्णिक स्त्री के साथ व्यभिचार पर लिङ्गच्छेदन एवं सर्वस्वहरण पूर्वक वध दण्ड विहित किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अवर वर्ण के पुरुष के लिए उच्च वर्णों की सुरक्षित स्त्री की अपेक्षा असुरक्षित [और स्वतन्त्र] स्त्री के साथ व्यभिचार पर कम दण्ड विहित था। मनु ने जहाँ सुरक्षिता ब्राह्मणी के साथ व्यभिचार करने वाले क्षत्रिय एवं वैश्य को कटाग्नि से दग्धव्य बतलाया है (८।३७७) वहीं असुरक्षित ब्राह्मणी के साथ व्यभिचार के दोषी वैश्य के लिए पाँच सौ पण तथा क्षत्रिय के लिए एक हजार पण (उत्तमसाहस) अर्थदण्ड विहित किया है (मनुस्मृ० ८।३७६)। इसी तरह सुरक्षित क्षत्रिया के साथ व्यभिचार पर वैश्य को पाँच सौ पण तथा सुरक्षित वैश्या के साथ व्यभिचार के दोषी क्षत्रिय के लिए एक हजार पण का अर्थदण्ड विहित किया है (मनु० ८।३८२)। अरक्षित क्षत्रिया के साथ व्यभिचार पर भी वैश्य के लिए केवल पाँच सौ

१. हारीत (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ५६१ में उद्धृत)।
२. अर्थ० ४।१३।३२।
३. यम (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ५९०; विवादरत्नाकर, पृ० ३६५)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पण का अर्थदण्ड विहित किया है, किन्तु अरक्षिता क्षत्रियागामी क्षत्रिय के लिए गधे के मूत्र से मुण्डन अथवा उतना ही (पाँच सौ पण का) अर्थदण्ड विहित किया है (मनु ८।३८४) । क्षत्रिय का कर्तव्य था कि वह मर्यादा का पालन करावे, सतीत्व की रक्षा करे और अपराधियों को दण्डित करे। अपने इस दायित्व को भूलकर स्वयं परायी स्त्रियों का शील दूषित करने वाले क्षत्रिय के लिए मनु ने वैश्य की अपेक्षा अधिक दण्ड विहित किया है। त्रैवर्णिक स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले अन्त्यज (श्वपाक) के लिए एकमात्र वधदण्ड का विधान प्राप्त होता है।[१] पद, प्रतिष्ठा और जाति की दृष्टि से उत्कृष्ट पुरुष की स्त्री को हीन पुरुष के लिए मातृवत् सम्माननीय मान करके ही उसे व्यभिचार से दूषित करने के अपराध में उसके लिए कठोरतम और प्रायः प्राणान्तिक दण्ड विहित किया गया है।

(४) हीनवर्णागमन का दण्ड—आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।१०।२७।८) में शूद्र की स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले आर्य (त्रैवर्णिक) के लिए निर्वासन का दण्ड विहित किया गया है (नाश्य आर्यः शूद्रायाम्) । विष्णु, याज्ञवल्क्य एवं नारद प्रभृति आचार्यों ने अवर वर्ण की स्त्री के साथ व्यभिचार के दोषी उत्कृष्ट वर्ण के पुरुष के लिए मध्यम-साहस दण्ड विहित किया है।[२] मनु ने अभिभावक के द्वारा संरक्षित क्षत्रिया एवं वैश्या के साथ व्यभिचार के दोषी ब्राह्मण तथा (रक्षिता ?) शूद्रा के साथ दुष्कर्म के दोषी क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए एक सहस्र पण (उत्तमसाहस) का अर्थदण्ड विहित किया है।[३] ब्राह्मण के लिए असंरक्षिता क्षत्रिया, वैश्या तथा शूद्रा के साथ व्यभिचार पर पाँच सौ पण तथा अन्त्यजागमन पर एक सहस्रपण का अर्थदण्ड विहित किया गया है।[४] मत्स्यपुराण (२२७।१३६-७) तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण (२।७२।१२०-१२१) में ब्राह्मण के लिए क्षत्रियागमन, क्षत्रिय के लिए वैश्यागमन और वैश्य के लिए शूद्रागमन पर उत्तमसाहस दण्ड (एक सहस्रपण) तथा वैश्यागमन पर ब्राह्मण एवं शूद्रागमन पर क्षत्रिय के लिए मध्यमसाहस (पाँच सौ पण) अर्थदण्ड विहित किया गया है। अन्त्यजागामी[५] (कहीं पर स्पष्टतः उल्लिखित चाण्डालीगामी एवं श्वपाकीगामी)[६] द्विजाति के लिये जो वध दण्ड का विधान है वह स्पष्टतः क्षत्रिय और वैश्य विषयक ही है, क्योंकि ब्राह्मण के लिये वध दण्ड निषिद्ध था, उसके लिये वध के स्थान पर निर्वासन का दण्ड विहित था। कौटिल्य (अर्थ० ४।१३।३४) ने श्वपाकीगमन करने वाले द्विजाति को कबन्ध (शिर रहित शरीर) से अङ्कित करके राष्ट्र से निर्वासित करने का दण्ड विहित किया है। आपस्तम्ब के

१. अर्थ० ४।१३।३५; याज्ञ० २।२९४।

२. विष्णुस्मृ० ५।४१; याज्ञ० २।२८६; नारद स्मृ० (स्त्रीपुंस०) १२।७०; अग्नि २५८।६८।

३. मनु ८।३८३।

४. वही ८।३८५।

५. विष्णु ५।४३।

६. मत्स्य २२७।१४२; विष्णुधर्मो० २।७२।१२७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(प्रायश्चित्तविवेक, पृ० १६१ में उद्धृत) एक वचन[1] तथा याज्ञवल्क्यस्मृति (२।२९४) में अन्त्यजागामी द्विजाति के लिए भग के चिह्न से अङ्कनपूर्वक निर्वासन विहित किया गया है। विज्ञानेश्वर (याज्ञ० २।२९४ पर मिता०) के अनुसार ऐसे द्विजाति को मनु (८।३८५) के द्वारा विहित एक सहस्रपण के अर्थदण्ड से दण्डित करके ही अङ्कनपूर्वक निर्वासित किया जाय। त्रैवर्णिकों के लिये अन्त्यजागमन को अत्यन्त गर्हित अपराध मान कर ही इसके लिए कठोरतम दण्ड की व्यवस्था दी गयी है। नारदस्मृति (स्त्रीपुंस० १२।७६) में द्विजाति के लिए अन्त्यावसायिनीगमन पर मध्यमसाहस दण्ड का विधान संभवतः प्रमादवश या भ्रान्तिवश किये गये अपराध को दृष्टि में रख कर किया गया है। शूद्र के लिये अन्त्यजागमन विषयक दण्ड की कोई चर्चा प्रमुख आचार्यों ने नहीं की है। कौटिल्य (अर्थ० ४।१३।३४) के अनुसार श्वपाकीगामी शूद्र श्वपाक और याज्ञवल्क्य (स्मृ० २।२९४) के अनुसार भी अन्त्यजा (चाण्डालिनी आदि) गामी शूद्र अन्त्यज हो जाता है। इससे विदित होता है कि ये आचार्य ऐसे शूद्र को भी जातिच्युत करने के पक्षधर रहे हैं।

(५) कन्यादूषण का दण्ड—आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।१०।२६।२१) में कुमारी में रेतःसेक करने वाले अपराधी के लिए सर्वस्वहरण पूर्वक निर्वासन का दण्ड विहित किया गया है। अन्य धर्मसूत्रों में कन्यागमन के अपराध के लिए दण्डविधान की कोई चर्चा नहीं है, जिससे विदित होता है कि आरम्भिक युगों में ऐसे कुत्सित अपराध की विशेष आशङ्का नहीं रही होगी। कन्यादूषण सम्बन्धी अपराधों के लिए विशेष दण्ड-विधान कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा स्मृतियों में प्राप्त होते हैं। कन्या चाहे प्राप्तरजस्का हो या अप्राप्तरजस्का, सकामा हो या अकामा, उसे किसी भी रूप में क्षतयोनि करके उसके कौमार्य को नष्ट करने अथवा मिथ्याकलङ्कित करने की तथासंभावित परिस्थितियों के लिए भी इनमें दण्ड के विधान दिये गये हैं। कौटिल्य ने अप्राप्तरजस्का कन्या को [अङ्गुलि-प्रक्षेप आदि से] दूषित करने के अपराध के लिए हस्तच्छेदन अथवा चार सौ पण अर्थदण्ड, ऐसे दुष्कर्म के फलस्वरूप कन्या की मृत्यु हो जाने की स्थिति में वध तथा प्राप्तरजस्का कन्या को दूषित करने पर मध्यमा और प्रदेशिनी (तर्जनी) अङ्गुलियों का छेदन अथवा दो सौ पण अर्थदण्ड तथा उसके पिता को अपराधी पुरुष से क्षतिपूर्ति रूप में धन दिलाने का भी विधान किया है (अर्थ० ४।१२।१-४)। कौटिल्य (अर्थ० ४।१२।७) के अनुसार जिस कन्या का वरण या वाग्दान शुल्क लेकर किया जा चुका हो, उसे दूषित करने वाले पुरुष का हस्तच्छेदन किया जाय या उससे चार सौ पण अर्थदण्ड लिया जाय तथा वर पक्ष को उसी से शुल्क प्रदान कराया जाय। किसी कन्या (या स्त्री) को ग्राम

---

१. अन्त्यजायां प्रसूतस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते।
निर्वासनं कृताङ्कस्य तस्य कार्यं न संशयः॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से बाहर दूषित करने तथा उसके दूषित होने के विषय में मिथ्यापवाद फैलाने के अपराध में द्विगुणित दण्ड का विधान किया गया है (अर्थ० ४।१२।२३)। किसी कन्या के क्षतयोनि होने का मिथ्यापवाद फैलाने वाला एक सौ पण अर्थदण्ड देने के साथ ही वर-पक्ष के द्वारा प्रदत्त शुल्क भी अपने पास से लौटायेगा तथा कन्या के विवाह का व्यय भी वहन करेगा (अर्थ०४।१२।१७-८)। मनुस्मृति (८।३६४) मत्स्यपुराण (२२७।१२५) एवं विष्णुधर्मोत्तरपुराण (२।७२।१०८) में अकामा (अनिच्छुक) कन्या को दूषित करने वाले अपराधी के लिए वध दण्ड विहित किया गया है। मनु (८।३६७) ने बलपूर्वक अथवा अभिभावक की अवहेलनापूर्वक किसी कन्या को दूषित करने वाले अपराधी के लिए अङ्गुलि-छेदन के साथ ही छः सौ पण का अर्थदण्ड विहित किया है। शङ्खलिखित ने भी अकामा कन्या के दूषण पर दो अङगुलियों (अङगुष्ठ और प्रदेशिनी) के छेदन के साथ ही अर्थदण्ड का भी विधान किया है।[1] कन्यादूषण पर याज्ञवल्क्य (स्मृ० २।२८८) ने हस्तच्छेदन[2] तथा नारद (स्मृ०, स्त्रीपुंस० १२।७१) ने अनिच्छुक कन्या के दूषण पर दो अङ्गुलियों (अङ्गुष्ठ और प्रदेशिनी) को काट लेने का दण्ड विहित किया है। सकामा (साभिलाष) कन्या के दूषण में दण्ड की मात्रा कम होती थी। कौटिल्य (अर्थ० ४।१२।६) ने सकामा कन्या के दूषण पर ५४ पण अर्थदण्ड विहित किया है। मनु (८।३६८) के अनुसार सकामा कन्या को दूषित करने वाला तुल्य (जाति, गुण या धन वाला) पुरुष अङ्गुलिच्छेदन का दण्ड नहीं पाता, किन्तु अपराध की पुनरावृत्ति रोकने के लिए उससे दो सौ पण अर्थदण्ड लिया जाय। सकामा कन्या के दूषण पर मत्स्य-पुराण (२२७।१२६) में भी दो सौ पण अर्थदण्ड और विष्णुधर्मोत्तरपुराण (२।७२।१०८) में प्रथमसाहस दण्ड विहित किया गया है। मनु (८।२२५) के अनुसार जो पुरुष किसी कन्या को अकन्या बतलाये वह उसके उस दोष को सिद्ध न कर पाने की स्थिति में एक सौ पण अर्थदण्ड का भागी होता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस अपराध पर कौटिल्य (अर्थ० ४।१२।१७) को भी यही दण्ड अभिप्रेत था।

कौटिल्य (अर्थ० ४।१२।२४) ने बलपूर्वक कन्या का अपहरण करने वाले के लिए दो सौ पण अर्थदण्ड तथा स्वर्णाभूषणों से अलङ्कृत कन्या के अपहरण पर उत्तमसाहस दण्ड विहित किया है। याज्ञवल्क्य (स्मृ० २।२८७) ने भी अपने वर्ण की अलङ्कृता कन्या के अपहरण पर उत्तमसाहस दण्ड और अनलङ्कृता कन्या के अपहरण पर मध्यमसाहस दण्ड विहित किया है। कौटिल्य (अर्थ० ४ १२।२५) के अनुसार कन्यापहरण के अपराध में अनेक पुरुष सम्मिलित हों तो उनमें से प्रत्येक से यथोक्त अर्थदण्ड लिया जाय।

१. कन्यायामसकामायां द्वयङ्गुलच्छेदो दण्डश्च। शङ्खलिखित (कृत्यकल्पतरु, व्य० का० पृ० ५९६।

२. मिता० (याज्ञ० २।२८८) के अनुसार यह दण्ड अनुलोम वर्ण की कन्या के दूषण पर भी विहित है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कौटिल्य ने अपने दण्ड-विधानों में कन्यादूषक की जाति की चर्चा नहीं की है, किन्तु उसके लिए वरपक्ष को शुल्क वापस देने तथा कन्या के विवाह का व्यय वहन करने का विधान किया है। जब कि मनु प्रभृति आचार्यों को यह व्यवस्था अभीष्ट थी कि किसी कन्या को दूषित करने वाला सजातीय पुरुष उसी के साथ विवाह करे। मनु (८।३६६) के अनुसार ऐसा पुरुष कन्या के पिता को अभीष्ट हो तो शुल्क भी प्रदान करे। मेधातिथि (मनु८।३६६) के अनुसार यदि कन्या का पिता शुल्क न चाहे तो अपराधी पुरुष कन्याशुल्क के तुल्य धनराशि अर्थदण्ड के रूप में राजा को देगा। नारदस्मृति (स्त्रीपुंस० १२।७२) के अनुसार भी सकामा कन्या को दूषित करने वाले सवर्ण पुरुष को कोई अतिचार का दोष नहीं लगता, किन्तु उसे उस कन्या को अलङ्कृत और स्त्रीधन आदि से सम्मानित करके उसके साथ विवाह करना पड़ेगा। इस प्रसङ्ग में शङ्खलिखित ने यह स्पष्ट कहा है कि समान (कुल, जाति की) कन्या को दूषित करने वाला पुरुष उसके पिता को शुल्क प्रदान करे तथा उस कन्या को आभूषण एवं द्विगुणित स्त्रीधन देकर उसके साथ विवाह करे।[1] यह व्यवस्था उस स्थिति में तो अच्छी है जबकि उसे दूषित करने वाला पुरुष अविवाहित हो। उसके पूर्वतः विवाहित होने पर भी यह व्यवस्था यद्यपि बहुपत्नीप्रथा वाले प्राचीन समाज के लिए कथञ्चित् सह्य हो सकती थी, किन्तु आधुनिक समाज के लिए कथमपि व्यावहारिक नहीं कही जा सकती है।

उत्तम वर्ण की कन्या को दूषित करने वाले अवर वर्ण के पुरुष के लिए प्रायः सभी प्रमुख स्मृतिकारों ने वध दण्ड विहित किया है।[2] विज्ञानेश्वर (याज्ञ० २।२८८ पर मिता०) के अनुसार उत्तम वर्ण की कन्या सकामा हो अथवा अकामा, उसको दूषित करने वाला सर्वथा वध दण्ड का भागी होता है। नारद (स्मृति, स्त्रीपुंस० १२।७१) ने उत्तम जाति की कन्या के दूषण पर सर्वस्वहरण पूर्वक वध दण्ड विहित किया है (उत्तमायां वधस्त्वेव सर्वस्वहरणं तथा)। संभवतः नारद को उत्तम वर्ण की सकामा कन्या के दूषण पर वध और अनिच्छुक कन्या के दूषण पर सर्वस्वहरण पूर्वक वध दण्ड अभीष्ट था। उत्तम वर्ण के पुरुष के द्वारा अवर वर्ण की इच्छुक कन्या के दूषण को संभवतः कोई गम्भीर अपराध नहीं माना जाता था। याज्ञवल्क्य के अनुसार उत्तम वर्ण के पुरुष को अनुलोम वर्ण की सकामा कन्या के दूषण में कोई दोष नहीं लगता, किन्तु यदि वह अकामा (अनिच्छुक) हो तो उसे दूषित करने पर वह दण्डनीय होता है।[3] विज्ञानेश्वर (याज्ञ० २।२८८ पर मिता०) के अनुसार वह प्रथमसाहस दण्ड का पात्र होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कन्यादूषण के दण्ड निर्धारण में उसके प्राप्तरजस्का या

---

१. शङ्खलिखित (कृत्यकल्पतरु, व्य० का० पृ० ५६६ में उद्धृत)।

२. मनु ८।३६६; याज्ञ० २।२८७; २।२८८; नारदस्मृ० (स्त्रीपुंस०) १२।७१।

३. सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथा दमः। याज्ञ० २।२८८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अप्राप्तरजस्का एवं सकामा (इच्छुक) या अकामा (अनिच्छुक) होने का ध्यान रखा जाता था। इसके साथ ही यद्यपि कौटिल्य अर्थशास्त्र में कन्यादूषण के दण्ड निर्धारण में अपराधी की जाति आदि विषयक तथ्य का कोई उल्लेख नहीं है, किन्तु धर्मशास्त्रों में इस तथ्य को भी ध्यान में रखा गया है। प्राप्तरजस्का की अपेक्षा अप्राप्तरजस्का तथा सकामा की अपेक्षा अकामा कन्या के दूषण में सर्वथा अधिक दण्ड विहित किया जाता था। इसी तरह सवर्णा की अपेक्षा अनुलोमवर्ण की कन्या के दूषण में कम और उत्कृष्ट वर्ण की कन्या के दूषण में सर्वाधिक कठोर दण्ड विहित किया जाता था। कन्यादूषण के दण्ड-विधान के प्रसङ्ग में कौटिल्य का दृष्टिकोण अधिक व्यापक रहा है। अर्थशास्त्र में वेश्या की पुत्री तथा दासी की पुत्री के दूषण के लिए भी दण्ड-विधान प्राप्त होता है। कौटिल्य के अनुसार वेश्या की पुत्री के साथ बलात्कार करने वाला ५४ पण अर्थदण्ड के साथ ही उस वेश्या को भी [दण्ड या वेश्याशुल्क की राशि का] सोलह गुना अधिक भोग-धन देगा (अर्थ० ४।१२।२६)। इसी तरह दास या दासी की जो पुत्री किसी की दासी न बनी हो उसे दूषित करने वाला २४ पण अर्थदण्ड तथा उसके विवाह हेतु शुल्क (व्यय ?) और आभूषण भी देगा (अर्थ० ४।१२।२७)। कन्यादूषण विषयक ये दण्ड-विधान प्राचीन सामाजिक स्थिति के लिए पर्याप्त और समुचित कहे जा सकते हैं।

(६) दासी एवं वेश्या के साथ बलात्कार एवं भिक्षुणीगमन का दण्ड—इच्छुक दासी के साथ उसका स्वामी संभोग कर सकता था, किन्तु उसके अनिच्छुक होने पर उसके साथ बलात्कार करने पर वह दण्डनीय होता था। कौटिल्य (अर्थ० ३।१३।९) के अनुसार [क्रीत या बन्धक रूप में रखी हुई] दासी के साथ अमर्यादित आचरण करने वाला स्वामी उसके मूल्य रूप में प्रदत्त धन को पाने का अधिकारी नहीं रह जाता। याज्ञवल्क्य ने दासी के साथ बलात्कार करने वाले स्वामी के लिए दश पण अर्थदण्ड और यदि अनेक पुरुष उसके साथ बलात्कार करें तो उनमें से प्रत्येक के लिए २४ पण अर्थदण्ड विहित किया है।[१] जिस दासी को स्वामी ने अवरुद्ध किया हो (अन्य पुरुष संसर्गवर्जन एवं कार्य में व्यवधान न होने देने के उद्देश्य से घर में रोका हो) तथा जो भुजिष्या (पुरुष नियतपरिग्रहा ?) हो उसके साथ व्यभिचार करने वाले के लिए पचास पण अर्थदण्ड विहित किया गया है।[२] कौटिल्य ने बन्धक रूप में रखी हुई (आहितिका) अपनी अधीनस्था धात्री के अनिच्छुक होने पर भी उसके साथ समागम करने वाले पुरुष के लिए प्रथमसाहस दण्ड तथा दूसरे की अधीनस्थ अनिच्छुक धाय के

---

१. याज्ञ० २।२९१; अग्नि २५८।७३।

२. याज्ञ० २।२९०; अग्नि २५८।७२; द्र० व्यास (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ५९९)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साथ समागम पर मध्यमसाहस दण्ड विहित किया है (अर्थ० ३।१३।११)। बन्धक रूप में रखी हुई (आहितिका) कन्या को स्वयं दूषित करने अथवा दूसरे पुरुष के द्वारा दूषित कराने वाला उसके निमित्त प्रदत्त धनराशि को वापस नहीं पा सकेगा तथा उसके विवाह हेतु शुल्क देने के साथ ही उसका द्विगुणित अर्थदण्ड भी देगा[1] ।

वेश्या को निर्धारित शुल्क देकर उसकी सहमति से उसका भोग करना ब्राह्मणेतर वर्णों के पुरुषों के लिए कोई दण्डनीय अपराध नहीं माना गया है। मत्स्य एवं विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वेश्यागामी द्विज के लिए उसे प्रदत्त शुल्क के तुल्य धनराशि का अर्थदण्ड विहित किया गया है।[2] वेश्या के साथ बलात्कार सभी के लिए दण्डनीय अपराध था। अनिच्छुक वेश्या के साथ संभोग पर कौटिल्य ने १२ पण (अर्थ० ४।१३।३८) तथा व्यास ने दस पण अर्थदण्ड विहित किया है।[3] यदि वेश्या के साथ अनेक पुरुष बलात्कार करें तो उनमें से प्रत्येक के लिए कौटिल्य (अर्थ० ४।१३।३९) ने २४ पण अर्थदण्ड विहित किया है जब कि मत्स्य (२२७।१४८) एवं विष्णुधर्मोत्तर-पुराण (२।७२।१३२-३) के अनुसार उनमें से प्रत्येक से [वेश्या के साथ बलात्कार पर विहित का] द्विगुणित अर्थदण्ड लेने के साथ ही उस वेश्या को भी प्रत्येक पुरुष से द्विगुणित शुल्क (वेतन) दिलवाया जाय। वेश्या को ले जा कर या उसका भोग करके उसे निश्चित शुल्क न देने वाले से उस वेश्या को द्विगुणित शुल्क दिलवाया जाय और [उसके साथ बलात्कार पर विहित का] द्विगुणित अर्थदण्ड भी लिया जाय (मत्स्य २२७।१४७)। कौटिल्य (अर्थ० ३।१३।३७) के अनुसार वेश्या को शुल्क न मिलने के आवेदन पर जाँच करने से यदि उसके साथ संभोग किये जाने की बात प्रमाणित हो जाय तो उसे शुल्क दिलवाया जाय, किन्तु यदि अपनी दुष्टबुद्धि अथवा धृष्टता के कारण वेश्या निश्चित शुल्क से अधिक धन चाहती हो तो उसकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकती। किसी एक पुरुष के निमित्त वेश्या को ले जाकर उसे दूसरे के पास पहुँचा देने वाले से एक सुवर्ण-माषक अर्थदण्ड लिया जाय।[4] वेश्या की अपेक्षा गणिका का स्तर उन्नत होने के कारण उसके साथ बलात्कार पर अधिक दण्ड विहित किया जा सकता था। कौटिल्य (अर्थ० २।२७।१३) ने अनिच्छुक गणिका या उसकी पुत्री के साथ बलात्कार पर उत्तमसाहस तथा यदि वह सकामा हो तो उसके साथ संभोग पर प्रथमसाहस दण्ड विहित किया है। अनिच्छुक गणिका को बलात् अपने पास रोकने आदि अपराधों पर भी कौटिल्य ने एक सहस्र पण अर्थदण्ड विहित किया है (अर्थ० २।२७।१४)। उपर्युक्त साक्ष्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेश्या के साथ बलात्कार की अपेक्षा गणिका के साथ

---

१. अर्थ० ३।१३।१२। २. द्र० पीछे २३३ टि० १।

३. प्रसह्य वेश्यागमने दण्डो दशपणः स्मृतः। व्यास (कृत्यकल्पतरु, व्य० का० पृ० ५९६)। ४. मत्स्य—२२७।१४६; विष्णुधर्मो० ६।७२।१३०-१३१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यभिचार पर अत्यधिक अर्थदण्ड विहित किया जाता था। संभवतः भिक्षुणी (प्रव्रजिता) के साथ दुष्कर्म को कोई गम्भीर अपराध नहीं माना जाता था। अतः इसके लिए अधिक दण्ड का विधान नहीं किया गया था। कौटिल्य (अर्थ० ४।१३।३६) तथा याज्ञवल्क्य (स्मृ० २।२९३) ने प्रव्रजितागामी पुरुष के लिए मात्र २४ पण का अर्थदण्ड विहित किया है। सम्भवतः इन आचार्यों ने प्रव्रजिता के चरित्र को संदिग्ध मान कर ही उसके साथ संभोग पर अल्प दण्ड विहित किया है।

(७) अप्राकृतिक मैथुन का दण्ड—किसी भी स्त्री या पुरुष के साथ गुदामैथुन करने वाले अपराधी के लिए कौटिल्य ने प्रथमसाहस,[१] किन्तु याज्ञवल्क्य ने मात्र २४ पण का अर्थदण्ड विहित किया है।[२] कौटिल्य ने कामोन्मत्त होकर पशुगमन करने वाले पर १२ पण एवं देवप्रतिमा के साथ दुराचार पर इसका दुगुना (२४ पण) अर्थदण्ड विहित किया है।[३] याज्ञवल्क्य एवं नारद ने गोव्यतिरिक्त पशुओं की योनि में मैथुन पर एक सौ पण तथा अन्त्यजा एवं गोगमन पर मध्यमसाहस दण्ड विहित किया है।[४] गोगमन में अधिक दण्ड उसके प्रति सम्मान-भाव के कारण ही विहित है। मत्स्यपुराण (२२७।१४३-४) तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण (२।७२।१२७-८) में गोव्यतिरिक्तपशु-गमन में वपन [सहित पूर्वाचार्यों के द्वारा विहित अर्थदण्ड ?] एवं गोगमन में एक सुवर्ण अर्थदण्ड विहित किया गया है। संभवतः दासीगमन एवं वेश्यागमन की अपेक्षा अप्राकृतिक मैथुन तथा पशुगमन को अधिक अनैतिकतापूर्ण और अस्वास्थ्यकर या रोगजनक मान कर ही इसके लिए पर्याप्त दण्ड निर्धारित किया गया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन आचार्यों ने प्रायः पुरुषों की अतिचार की प्रत्येक संभावना को ध्यान में रख कर उसके लिए देश-काल और परिस्थिति के अनुरूप दण्ड विहित किये हैं।

(ध) अतिचारिणी नारी का दण्ड—

सामान्यतः स्त्रियों को दण्ड देना प्रशंसनीय नहीं समझा जाता था। उनके अव्यक्त अपराधों का दण्ड देने में विलम्ब करने वाले (चिरकारी) को ही प्रशंसनीय माना जाता था।[५] कुलार्णवतन्त्र में कहा गया है कि स्त्री भले ही सौ अपराध की हो, उसे पुष्पों से भी ताडित न करे।[६] बृहत्पराशरस्मृति १२।४७ में कहा गया है कि शय्या में स्थित पुरुषों को भी अपनी पत्नी के साथ स्नेहवश पुष्पों से भी युद्ध (झगड़ा) नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसके साथ किसी भी प्रकार का युद्ध (मार-पीट या कलह) विपत्ति का कारण बनता है। शूद्रक ने कहा है कि स्त्रियों की चोटी भी नहीं पकड़नी चाहिए

---

१. अर्थ० ४।१३।४०। २. याज्ञ० २।२९३। ३. अर्थ० ४।१३।४१।

४. याज्ञ० २।२८९; अग्नि २५८।७१; नारदस्मृ० (स्त्रीपुंस०) १२।७६।

५. शान्तिपर्व २६६।७१; स्कन्द १।१।१७।१२६।

६. स्त्रियं शतापराधां चेत् पुष्पेणापि न ताडयेत्। कुलार्णवतन्त्र ११।६५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(मृच्छ० ८।२१)। महाकवि भारवि का कथन है कि अपने यश की कामना वाले वीर पुरुष मन में भी स्त्रियों के प्रति हिंसा का भाव नहीं लाते।[1] महाभारत (उद्योगपर्व ३६।६१) में कहा गया है कि ब्राह्मणों, गौओं तथा स्त्रियों में शूरता दिखाने वाले पेड़ से पक कर गिरे फल की भाँति नष्ट हो जाते हैं। इसमें यह मान्यता व्यक्त की गयी है कि पापोपहत घरों में ही स्त्रियों को मारा जाता है।[2] धर्मशास्त्रों में स्त्री को अवध्य बतलाया गया है।[3] अतः उसके द्वारा किये गये गम्भीर अपराध पर भी उसे यथा-सम्भव कम से कम दण्ड दिया जाता था। अतिचार सम्बन्धी अपराधों के लिए नारी की अपेक्षा पुरुष को ही अधिक दोषी माना जाता था।[4] ब्रह्मवैवर्त पुराण (४।६१।५३) में यह स्वीकार किया गया है कि स्त्री को यदि अनिच्छापूर्वक अपने जार को शरीर-समर्पण के लिए विवश होना पड़ा हो तो तब वह दोषी नहीं होती, उसे तभी दोषी माना जा सकता है जब कि वह स्वेच्छया प्रवृत्त हुई हो। जिस स्त्री के साथ बलात्कार किया गया हो उसे पुराणों में निरपराध बतलाया गया है।[5] पारस्परिक सहमति से व्यभिचार में लिप्त होने पर भी पुरुष की अपेक्षा स्त्री को आधा दण्ड दिया जाता था।[6] एक जातक (सं० ५३६) कथा से यह विदित होता है कि एक राजा ने अपनी रानी के व्यभिचार पर उसे वध, बन्ध या अङ्गच्छेदन का कोई दण्ड नहीं दिया, अपितु केवल राजमहिषी के पद से वञ्चित किया था।[7] राजतरङ्गिणी (६।७४-८३) के अनुसार राजा यशस्कर ने जिस वेश्या को राजमहिषी बनाया था, वह रात में पहरा देने वाले चाण्डाल युवक में आसक्त हो गयी थी, किन्तु तब भी राजा ने उस रानी का वध नहीं किया था। मनु (स्मृ० ८।३६५) ने उत्कृष्ट वर्ण के पुरुष का सेवन करने वाली कन्या के लिए दण्ड का नितान्त निषेध किया है और हीन वर्ण के पुरुष का सेवन करने वाली कन्या को घर में संयत रखने और बाहर न जाने देने के अतिरिक्त उसके लिए कोई दण्ड नहीं विहित किया है। इस तरह के कुछ वचनों से यह प्रकट होता है कि प्राचीन आचार्य यथासंभव स्त्रियों को कम से कम दण्ड देना चाहते थे, किन्तु उनके द्वारा कामतः कृत व्यभिचार तथा कुछ अन्य गम्भीर अपराधों पर उन्हें यथोचित कठोर दण्ड भी अवश्य ही दिया जाता था।

---

१. किरात ६।४५।
२. योषितश्चैव हन्यन्ते कश्मलोपहते गृहे। महा० १३।१२७।३।
३. उद्योगपर्व ३६।६६; ब्रह्माण्ड २।३६।१८५; वायु उ० ११।५७; स्कन्द १।२।१।४२।
४. द्र० पीछे, २३७ टि० ५ क एवं ख।
५. मत्स्य २२७।१२७; विष्णुधर्मो० २।७२।१११।
६. कात्या० श्लोक ४८७; द्र० अर्थ० ४।१२।६।
७. द्र० वूमेन अण्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, पृ० ६७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(१) पति के द्वारा अतिचारिणी का निग्रह—प्राचीन आचार्यों के द्वारा प्रवर्तित दण्ड-विधियाँ सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर आधारित रही हैं। भारतीय संस्कृति में पति को ही स्त्री का सर्व-सर्वा माना गया है।[1] अतः उसको दण्डित करने का अधिकार भी पति और उसके अभाव में अन्य संरक्षकों का ही रहा है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में राजा को यह स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि वह स्त्रियों को उनके किसी भी अपराध के लिए न्यायाधिकरण में आहूत न करे। उनके द्वारा किये गये अपराध के लिए [उन्हें अनुशासित न करने के कारण] उनका पति अथवा [उसके अभाव में] पुत्र [अथवा अन्य संरक्षक] ही दण्डनीय होता है। राजा सीधे उन्हें दण्डित नहीं कर सकता।[2] कात्यायन ने भी कहा है कि स्त्रियाँ स्वतन्त्र नहीं, अपितु पति के आधीन होती हैं, अतः राजा उन्हें निगृहीत न करे, बन्दी न बनावे। उनके दुष्कर्म के लिए पुरुष ही अपराधी और दण्डनीय होता है। उन्हें उनका पति ही दण्डित करे। राजा केवल उनके अपराध के लिए उत्तरदायी पुरुष को ही पकड़ कर ले जा सकता है।[3] पति और पारिवारिक जनों को अतिचारिणी नारी के निग्रह का अधिकार देने का प्रत्यक्ष लाभ यह था कि उनके भय से वह सदैव अनुशासित और मर्यादित रह सकती थी। यद्यपि अपने इस अधिकार का दुरुपयोग करके कुछ मूढ पुरुष अकारण भी नारी का उत्पीडन कर सकते थे, किन्तु यह एक स्वीकृत तथ्य है कि प्राचीन काल की अधिकांश स्त्रियाँ राजदण्ड की अपेक्षा पति अथवा पारिवारिक जनों के द्वारा दण्डित किये जाने के भय से ही मर्यादित रहती थी। राजदण्ड में काल और देश का व्यवधान हो सकता है, किन्तु पारिवारिक जन अतिचारिणी नारी को तत्काल दण्डित करने के अतिरिक्त अपने प्रतिशोध और आक्रोश की अभिव्यक्ति को दीर्घकाल तक जारी रख सकते हैं। अतः प्राचीन समाज में पति या पारिवारिक जनों के द्वारा दिये जाने वाले दण्ड का भय नारी को मर्यादित रखने में अधिक सार्थक रहा होगा।

पत्नी के अपराध पर पति उसे ताडित कर सकता था और कभी-कभी उसे पत्नीत्व एवं स्त्रीधन के प्रयोग के अधिकार से भी वञ्चित कर सकता था। कदाचित् कोई नृशंस पुरुष व्यभिचारिणी पत्नी का अङ्गच्छेदन भी कर डालता था। कथासरित्सागर (१०।७।४३) में एक पति के द्वारा अपनी दुष्ट पत्नी की नाक काट कर उसे घर से

---

१. स्वामी कर्ता च हर्ता च शास्ता पोष्टा च रक्षिता।
अभीष्टदेवः पूज्यश्च न गुरुः स्वामिनः परः॥ ब्रह्मवै० १।१५।१५।

२. नाहूयेदपराधेषु दण्ड्यस्तासां पतिर्भवेत्।
पुत्रो वाप्यथवा नीतौ नैव राजा प्रभुः क्वचित्॥ विष्णुधर्मो० २।३३।५।

३. नास्वतन्त्राः स्त्रियो ग्राह्याः पुमांस्तत्रापराध्यति।
प्रभुणा शासनीयास्ता राजा तु पुरुषं नयेत्॥
कात्या० श्लोक, ४८८ (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ५६४)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

निकाले जाने की कथा प्राप्त होती है। कोई अधम पुरुष व्यभिचारिणी पत्नी का वध भी कर डालता था। विनयपिटक (४, पृ० २२५-६) के अनुसार एक लिच्छिवि ने अपने कुलपुरुषों की सभा में उनकी अनुमति से अपनी व्यभिचारिणी स्त्री का वध किया था।[1] पाचित्तिय (२०१) में एक लिच्छिवि के द्वारा भरी सभा में अपनी व्यभिचारिणी स्त्री के वध की घोषणा किये जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[2] किन्तु सनातन संस्कृति के साहित्य में स्त्रीवध में महान् अधर्म बतलाया गया है।[3] मृच्छकटिक (८।२३) में अधर्मिष्ठ पात्र विट् ने भी यह स्वीकार किया है कि वह परलोक-भय से भी वसन्तसेना को नहीं मार सकता। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, स्त्रियों पर किसी भी प्रकार का प्रहार अथवा उनका वध उचित नहीं समझा जाता था। यम ने स्वच्छन्दचारिणी स्त्री का वध, अङ्गच्छेदन, बन्धन और विरूपीकरण वर्जित करते हुए केवल उसके त्याग की संस्तुति की है।[4] अतिचारिणी नारी को स्वयं उसके पति के हाथों अति कठोर दण्ड दिलाना भी संभवतः प्राचीन विधिशास्त्रियों को अभीष्ट नहीं था। संभवतः वे यह जानते थे कि ऐसी नारी उल्टे पति पर ही कोई घातक प्रहार कर सकती है। अतः उन्होंने इस विषय में कोई विशेष विचार नहीं प्रस्तुत किये हैं। कौटिल्य (अर्थ० ३।३।७-८) के अनुसार पत्नी के किसी भी तरह के अपराध के लिए पति उसे गाली दिये विना कड़े शब्दों में अनुशासित कर सकता है या उतने से भी काम न चलने पर बाँस की खपच्ची या रस्सी या हाथ से उसकी पीठ में तीन बार प्रहार कर सकता है। किन्तु इससे अधिक उत्पीडन की अनुमति कौटिल्य ने नहीं दी है और अधिक ज्यादती करने वाले पति को वाक्पारुष्य या दण्डपारुष्य के आधे दण्ड का भागी बतलाया है (अर्थ० ३।३।९)। किन्तु यह निर्विवाद है कि पति या पारिवारिक जनों के द्वारा अतिचारिणी नारी के निग्रह के अपने अधिकार का प्रयोग उसे डाँटने और ताडित करने के अतिरिक्त उससे प्रायश्चित्त कराने में अथवा [प्रायश्चित्त से शुद्ध न हो सकने की स्थिति में] उसके त्याग में भी किया जा सकता था।

(२) अतिचारिणी का त्याग—कुछ पुरुष दुराचारिणी स्त्री का त्याग असहिष्णुतावश करते थे और इस प्रवृत्ति के कारण कभी-कभी निर्दोष स्त्रियाँ भी भ्रान्तिवश त्याग दी जाती थीं (द्र० पीछे, पृ० २५७-८)। वामनपुराण (७२।१८-९) के अनुसार एक राजा के आकाशगमन के समय स्खलित वीर्य को अमृत की भ्रान्ति में पीने से तेजोहीन हुई अपनी पत्नियों को सदोष समझ कर सप्तर्षियों ने त्याग दिया था। इसी तरह की दो अन्य कथाओं की चर्चा पीछे (द्र० पृ० २५७ टि० ६-७) की जा चुकी

१. द्र० वूमेन अण्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, पृ० ६७।
२. द्र० बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन, पृ० १०५।
३. वायु० उ० ११।१५३। ४. यम (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ६१८)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। धर्मशास्त्रों में केवल कुछ अतिचारिणी स्त्रियों का त्याग उनके प्रायश्चित्त से शुद्ध न हो सकने की स्थिति में अथवा प्रतिशोधात्मक दण्ड के रूप में ही विहित है। हारीत ने गर्भ नष्ट करने वाली तथा अधम पुरुष (शूद्र या अन्त्यज), शिष्य एवं पुत्र के साथ यौनाचार करने वाली स्त्री को त्याज्य बतलाया है।[1] वसिष्ठ (ध० सू० २१।१०) के अनुसार शिष्यगामिनी, गुरुगामिनी, पतिघातिनी तथा जुङ्गितोपगता (अन्त्यजसंसर्ग से दूषित) स्त्री विशेषतः त्याज्य है। चतुर्विंशतिमत के एक वचन में भी श्वपाक (चाण्डाल) के द्वारा दूषित, पतिघातिनी, पितृगामिनी तथा पुत्रगामिनी स्त्री को त्याज्य बतलाया गया है।[2] याज्ञवल्क्य (स्मृ० १।७२ तथा स्कन्दपुराण ४।४०।५३) के अनुसार स्त्री का त्याग परपुरुष के साथ व्यभिचार से गर्भधारण, गर्भनाश, पति की हत्या तथा महापातक (जिसमें पिता या पुत्र के साथ यौनाचार भी सम्मिलित है) के अभियोग में किया जा सकता है। यही मत व्यास को भी अभिप्रेत है।[3] परपुरुष से कामतः व्यभिचार के फलस्वरूप गर्भधारण करने वाली नारी के त्याग की संस्तुति अनेकत्र प्राप्त होती है।[4] वसिष्ठ (ध० सू० २१।१२) के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य की स्त्री शूद्र के साथ दुराचार के फलस्वरूप गर्भधारण कर लेने पर प्रायश्चित्त से शुद्ध नहीं हो सकती।[5] तात्पर्य यह कि ऐसी स्थिति में वसिष्ठ को उसका त्याग ही अभीष्ट था। ब्राह्मणी की अल्पमात्र भी चारित्रिक विच्युति क्षम्य नहीं थी। पराशर ने परपुरुषसंसर्ग से दूषित ब्राह्मणी के त्याग का अधिकार उसके गोत्र के पुरुषों को भी दिया है।[6] पद्मपुराण ४।१८।२३-४ में भी परपुरुषगमन करने वाली ब्राह्मणी को त्याज्य बतलाया गया है। कामतः परपुरुष के साथ व्यभिचार में प्रवृत्त स्वेच्छाचारिणी नारी को भी कुछ आचार्यों ने त्याज्य बतलाया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार जो नारी कामार्त होकर अपने सुख के लिए स्वेच्छया जार का सेवन करती है वह प्रायश्चित्त से शुद्ध नहीं होती, अतः स्वामी (पति) के द्वारा त्याज्य है।[7] जो नारी परपुरुष के द्वारा दूषित की जा चुकी हो और पुनः उसीकी कामना करती हो उसे भी कमलोद्भव ने त्याज्य बतलाया है।[8] यम ने स्वच्छन्दचारिणी नारी के त्याग का विधान करते हुए अपने मत के समर्थन में यह कहा

---

१. गर्भघ्नीमधोवर्णगां शिष्यसुतगामिनीं च। हारीत (कृत्यकल्पतरु व्य० का० पृ० ६१८)।

२. चतुर्विंशतिमत (परा० मा०, प्रा० का०, पृ० २८५)।

३. सात्ववाप्याऽन्यतो गर्भं त्याज्या भवति पापिनी।
महापातकदुष्टा च पतिगर्भविनाशिनी ॥ व्यासस्मृति २।४६-७।

४. याज्ञ० १।७२; पद्म ४।१८।२०; स्कन्द ४।४०।५३।

५. द्र० पीछे, पृ० ३१४, टि० ३। ६. द्र० परा० स्मृ० १०।३३-४।

७. ब्रह्मवै० २।६१।८२। ८. वही ४।१८।११६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है कि ऐसी नारी का त्याग विवस्वान् ने भी विहित किया है।[1] व्यभिचारिणी स्त्री के त्याग के विधान पुराणों में भी प्राप्त होते हैं।[2] याज्ञवल्क्य (स्मृति २।१४३-५) एवं अग्निपुराण (२५६।२७-६) के अनुसार पतित, नपुंसक, पङ्गु आदि जितने पुरुषों को पैतृक सम्पत्ति का अंश नहीं दिया जाता, उनकी स्त्रियाँ यदि व्यभिचारिणी हों तो उन्हें निर्वासित कर दिया जाय। व्यभिचार की आशङ्का वाला कोई भी आचरण किसी भी स्त्री, विशेषतः ब्राह्मणी के त्याग का कारण बन सकता था। पराशर स्मृति (१०।२८-९) में कहा गया है कि परपुरुष के साथ अतिशय प्रीति के द्योतक हास्यादि व्यवहारपूर्वक संयुक्त होकर दूसरे ग्राम अथवा परदेश में जाने वाली नारी को चरित्रभ्रष्ट मान कर त्याग देना चाहिए। पराशर (स्मृ० १०।२९-३२) के विचार से कामवश अथवा मोहवश अपने बन्धुओं, पुत्रों और पति को त्याग कर निकल पड़ने वाली स्त्री के साथ लौकिक और पारलौकिक सम्बन्ध समाप्त हो जाता है, किन्तु मद-मोहवश अथवा डण्डे आदि से ताडित होने पर क्रोधावेश में घर से पलायित स्त्री यदि किसी दूसरे पुरुष के साथ संसर्ग में न आयी हो और दश दिनों के अन्दर घर में लौट आये तो वह त्याज्य नहीं होती, परन्तु दश दिनों के पश्चात् वह प्रायश्चित्त से भी शुद्ध नहीं होती। उनका यह आशय हो सकता है कि तत्पश्चात् वह त्याज्य होती है। पद्मपुराण (४।१८।२१) के अनुसार भी अपना घर-परिवार और बन्धुओं को छोड़ कर निकल पड़ने वाली स्त्री कुल से च्युत हो जाती है और उसके साथ पुनः सम्बन्ध नहीं हो सकता। प्राचीन साहित्य में दुराचारिणी स्त्री को पति के लोक और परलोक को बिगाड़ने वाली,[3] उसके कुल का नाश करने वाली[4] अथवा प्राण-संकट का हेतु बतलाते हुए उसके त्याग की संस्तुति की गयी है। शास्त्रों में अप्रियवादिनी के सद्यः त्याग का जो परामर्श दिया गया है, उसके शाब्दिक अर्थ को अस्वीकार करते हुए हेमाद्रि ने यह तात्पर्य व्यक्त किया है कि कलियुग में साक्षात् व्यभिचार ही अप्रिय बोलने के समान है। अतः साक्षात् व्यभिचार पर ही उसका त्याग करे, अन्यथा पति को दोष लगता है।[5] विधवा स्त्री यदि असती (व्यभिचारिणी) हो तो उसके कुल-गोत्र के बान्धव उसका त्याग कर देते थे। पराशर (स्मृ० १०।२७-८) के अनुसार पति के मरणोपरान्त अथवा लापता या प्रवासी होने पर जार से गर्भधारण करने वाली पतिता स्त्री

१. स्वच्छन्दगा च या नारी तस्यास्त्यागो विधीयते।—
—स्वच्छन्दव्यभिचारिण्यां विवस्वांस्त्यागमब्रवीत् ॥
यम (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ६१८)।

२. विष्णुधर्मो० ३।३२९।२०; द्र० पीछे, पृ० २५८, टि० २।

३. बुधोऽसतीं न बिभृयात् तां बिभ्रदुभयच्युतः। भाग० १०।६०।४८।

४. कुलक्षयो भवेद् यस्मात् तस्माद् दुष्टां न धारयेत्। पद्म १।५४।२८।

५. चतुर्वर्गचिन्तामणि, प्रायश्चित्तखण्ड, पृ० ३६७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को अपने देश से बाहर दूसरे राष्ट्र में निर्वासित कर देना चाहिए। अतिचारिणी के त्याग विषयक इन वचनों के आधार पर यह नहीं मान लेना चाहिए कि पुरुष केवल अतिचार-दोष पर ही नारी का त्याग करता था। अन्य तरह के अपराधों पर भी उसका त्याग किया जा सकता था।[1] उदाहरणार्थ—नारद ने स्त्रीधन को नष्ट करने वाली, गर्भपात कराने वाली, पति के वध की इच्छा करने वाली, अनर्थकारिणी, अप्रियवादिनी तथा पति से पहले भोजन करने वाली स्त्री को घर से निकाल देने का विधान किया है और वन्ध्या; स्त्रीजननी एवं प्रतिकूल स्वभाव की स्त्री की भी उपेक्षा करने को कहा है।[2] यम के अनुसार जो ऋतुस्नाता स्त्री पति के पास नहीं जाती, उसे भ्रूणघ्नी घोषित करके निर्वासित कर देना चाहिए।[3] स्त्री के त्याग विषयक उपर्युक्त अधिकारों का प्रयोग अपरिहार्य अवस्था में ही किया जा सकता था।

अतिचारिणी के त्याग विषयक उपर्युक्त विधानों की आड़ में कोई पुरुष निरपराध नारी का मनमाना त्याग नहीं कर सकता था। निष्पाप स्त्रियों का त्याग सर्वथा वर्जित और दण्डनीय था (द्र० पीछे, पृ० ३१०)। हरिवंशपुराण में यह तथ्य स्वीकार किया गया है कि यदि पुरुष निष्पाप स्त्रियों का त्याग करेंगे तो उनमें भी अकारण पति का त्याग करने की प्रवृत्ति आ सकती है।[4] व्यास ने अपनी स्मृति में कहा है कि सच्चरित्र स्त्री का त्याग करने वाले पुरुष का धर्मतः पतन (या उसके धर्म का लोप) हो जाता है।[5] चतुर्विंशतिमत के एक उद्धरण में कहा गया है कि ब्रह्महत्यादि पापों के विना नारी का त्याग नहीं करना चाहिए और उन पापों के लिए भी उसे घर पर ही प्रायश्चित्त करवाना चाहिए। अन्यथा परित्यक्त और निष्कासित होने पर वह जो पाप करती है वह शतगुणित होकर उसके बान्धवों को लगता है तथा उसके कुल की सन्तानें समस्त नारी रोगों से ग्रस्त होतीं हैं और उसके ज्ञातिजन कुम्भीपाक नरक में गिर कर यातना पाते हैं।[6] इस तरह के वचनों से स्पष्ट हो जाता है कि नारी का अकारण त्याग तो वर्जित था ही, सामान्य अपराध पर भी उसका त्याग नहीं किया जा सकता था। जैसा कि पीछे (पृ० ३१० में) उद्धृत विष्णु, अत्रि और बृहस्पति के वचनों से भी स्पष्ट हो जाता है, अनेक स्थितियों में परपुरुष के द्वारा दूषित स्त्री भी अत्याज्य थी। स्कन्दपुराण (४।४०।१७) में भी यह कहा गया है कि जिस

१. द्र०—पीछे, पृ० ३२१, टि० ४-५।
२. द्र०—नारद स्मृ० (स्त्रीपुंस०) १२।९४-६।
३. यम (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ६१७)। द्र० पीछे, पृ० ३२१, टि० ५।
४. अपापास्त्यज्यमाना वै त्यजेयुरपि योषितः। हरिवंशपुराण ३।५।३८।
५. सद्वृत्तचारिणीं पत्नीं त्यक्त्वा पतति धर्मतः। व्यासस्मृ० २।४७।
६. चतुर्विंशतिमत (परा० मा०, प्रा० का०, पृ० २८४)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नारी के साथ बलात्कार किया गया हो अथवा जिसे चोर उठा ले गये हों वह त्याज्य नहीं होती।[1] बृहस्पति ने कहा है कि अन्त्यज के द्वारा दूषित स्त्री का भी त्याग नहीं करना चाहिए।[2] तात्पर्य यह है कि यदि स्त्री की मनोभावना शुद्ध रही हो, किन्तु विषम परिस्थिति में उसकी विवशता का लाभ उठा कर बलात्कारी पुरुष के द्वारा उसे दूषित किया गया हो तो तब उसका त्याग प्राचीन आचार्यों को अभीष्ट नहीं था।

(३) अतिचारिणी का दण्डस्थानीय प्रायश्चित्त—दूषित चरित्र की नारी के वध, अङ्गच्छेदन अथवा त्याग की अपेक्षा उससे प्रायश्चित्त करवा कर उसके तन और मन की शुद्धि करवाना अधिक उपयोगी कहा जा सकता है। यद्यपि ब्रह्मवैवर्तपुराण (२।५८।१०५-६) में बलिष्ठ जार के द्वारा दूषित अनिच्छुक एवं निर्बल नारी को विना प्रायश्चित्त के भी शुद्ध बतलाया गया है, किन्तु इस धारणा का कोई दृढ समर्थन इसके पूर्व या परकालीन साहित्य में कहीं नहीं प्राप्त होता। स्वयं इसी पुराण में आगे यह कहा गया है कि बलिष्ठ जार के द्वारा दूषित निर्बल और अनिच्छुक स्त्री त्याज्य नहीं होती, वह प्रायश्चित्त कर लेने पर शुद्ध हो जाती है (ब्रह्मवै० २।६१।८१)। दूषित चरित्र की नारी से प्रायश्चित्त कराने का दायित्व प्रमुखतः पति का ही था। धर्मसूत्रों[3] के समय से ही पति सवर्ण पुरुष के साथ व्यभिचार से दूषित नारी को एक कोठरी में बन्द रख कर और पिण्डमात्र भोजन देकर उससे प्रायश्चित्त करवाता था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।१०।२७।१०) में शूद्र के द्वारा दूषित त्रैवर्णिक नारी को [व्रतोपवास नियम आदि से] कर्षित कराने का निर्देश दिया गया है (दारं चास्य कर्षयेत्)। मनु आदि आचार्यों ने निर्देश दिया है कि व्यभिचार से दूषित स्त्री से पति वही प्रायश्चित्त करावे जो कि परस्त्रीगामी पुरुष के लिए विहित है।[4] इस विषय में बृहस्पति और उशना के द्वारा प्रदत्त व्यवस्था का उल्लेख पीछे किया जा चुका है।[5] इन आचार्यों ने व्यभिचारिणी नारी के लिए प्रायश्चित्तावधि में एक अपराधिनी के योग्य पिण्डमात्रभोजन, मलिन वस्त्र धारण तथा एक कोठरी में निवास और भूमि में शयन की व्यवस्था दी है। याज्ञवल्क्यस्मृति एवं अनेक पुराणों में भी यह विधान है कि ऐसी नारी को उसके पत्नीत्व-सम्बन्धी अधिकारों से वञ्चित करके मलिनवसना, पिण्डमात्रोपजीविनी, तिरस्कृता एवं भूमिशायिनी बना कर रखे।[6] नारदस्मृति (स्त्रीपुंस०

---

१. बलात्कारोपभुक्ता वा चोरहस्तगतापि वा।
न त्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते॥

२. अन्त्यदूषिताऽपि स्त्री न त्यागमर्हति। बृहस्पतिस्मृ० ५।६३।

३. द्र० पीछे, पृ० ३११, टि० ३। ४. द्र० पीछे, पृ० ३११-२।

५. द्र० पीछे, पृ० ३१०, टि० ५–६।

६. याज्ञ० १।७०; गरुडपु० ९५।१८; मत्स्य २२७।१३३; विष्णुधर्मो० २।७२।११८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१२।६३) में ऐसी नारी के लिए मुण्डन, भूमिशयन, कदन्नभोजन, कुत्सितवस्त्र धारण के साथ ही झाड़ू लगाने तथा उञ्छन (दाने बटोरने) का भी कार्य विहित किया गया है। यह जीवनचर्या प्रायः वैसी ही है जैसी कि वन्दीगृह में रखी हुई अपराधिनी की हो सकती है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र से विदित होता है कि सूत्रकाल में राजा का यह कर्तव्य था कि वह परपुरुष के द्वारा दूषित स्त्री या कन्या को अपने संरक्षण में लेकर उसका भरण-पोषण करे तथा तत्पश्चात् पुनः शील दूषित होने से उसकी रक्षा करे और यदि वह प्रार्यश्चित्त करना चाहे तो उसे उसके स्वामी या संरक्षक को लौटा दे।[1] हरदत्त ने स्पष्ट किया हैं कि प्रायश्चित्त करने को उद्यत स्त्री को उसके पति या श्वशुर को तथा कुमारी को उसके पिता या भ्राता को लौटावे। यदि वह स्त्री या कुमारी प्रायश्चित्त करना स्वीकार नहीं करती तो उसे यावज्जीवन [वन्दीगृह में] निरुद्ध रखा जाय।[2] इससे स्पष्ट हो जाता है कि धर्मसूत्रों के समय में व्यभिचारिणी स्त्री को उसकी मनोभावना के शुद्ध होने तक अथवा उसके द्वारा अपने पति या संरक्षक के पास जाकर प्रायश्चित्त करना स्वीकार किये जाने तक राजा के संरक्षण में रहना पड़ता था। अतिचारिणी नारी को वन्दीगृह में रखने की व्यवस्था संभवतः परवर्ती आचार्यों को प्रिय नहीं थी। संभवतः अनेक आचार्यों को यह आशङ्का रही होगी कि वन्दीगृह से संबद्ध कर्मचारी भी ऐसी नारी को पुनः दूषित कर सकते हैं। पराशर (स्मृ० १०।२३), गौतम तथा मार्कण्डेय ने ऐसी संभावना के आधार पर ही वन्दीकृत नारी की शुद्धि हेतु प्रायश्चित्त की व्यवस्था दी है।[3] अतः यह कहा जा सकता है कि अतिचारिणी नारी को पुनः दूषित होने से बचाने के उद्देश्य से ही उसे पति या संरक्षक पुरुष के घर में वन्दिनी की तरह रख कर उससे उसकी शारीरिक एवं मानसिक या आध्यात्मिक शुद्धि हेतु प्रायश्चित्त करवाने की व्यवस्था की गयी थी।

(४) अतिचारिणी के लिए विहित राजदण्ड—राजा किसी नारी को तभी दण्डित कर सकता था जब कि उसके अपराध के लिए मात्र प्रायश्चित्त करना अपर्याप्त मान कर उसे प्रतिशोधात्मक दण्ड देना भी आवश्यक समझा जाता था अथवा जब वह पति के लिए असाध्य हो जाती थी और उसे अनुशासित या दण्डित करना पति के लिए दुष्कर हो जाता था। विष्णु ने कहा है कि जिस स्त्री को अनुशासित करने में उसका पति असमर्थ हो और जो अपने पति का अतिक्रमण करके परपुरुष-संसर्ग करती हो, उसे राजा वध दण्ड से दण्डित करे।[4] इस प्रसङ्ग में विष्णुधर्मोत्तर पुराण में स्पष्ट

१. आप० धृ० सू० २।१०।२६।२२–४।
२. द्र० आप० ध० सू० २।१०।२६।२४ पर हरदत्त कृत 'उज्ज्वला' व्याख्या।
३. द्र० पीछे, पृ० ३१५ का प्रथम परिच्छेद।
४. स्त्रियमशक्तभर्तृकां तदतिक्रमणीं च। विष्णुस्मृ० ५।१८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कहा गया है कि पति की अनुमति के विना राजा उसकी स्त्री को दण्डित नहीं कर सकता ।[१] जिस स्त्री को अनुशासित करने में उसका पति असमर्थ हो उसे उसकी अनुमति से ही राजा दण्डित करे ।[२] राजा प्रायः निकट-सम्बन्ध के पुरुष के साथ कामतः व्यभिचार में प्रवृत्त होने वाली, परपुरुष के पास जाकर उसे उत्तेजित करके अपने साथ व्यभिचार में प्रवृत्त करने वाली तथा अधम पुरुष के साथ कामतः व्यभिचार में प्रवृत्त स्त्री को तीक्ष्ण दण्ड दे सकता था। अब हम अतिचारिणी नारी के लिए विहित कुछ दण्ड-विधियों को यहाँ उद्धृत करेंगे। कौटिल्य (अर्थ० ४।१३।३०–३१) ने बुआ, मौसी, मामी, आचार्याणी, पुत्रवधू, पुत्री और भगिनी के साथ दुष्कर्म करने वाले पुरुष के लिए त्रिलिङ्गच्छेदन (सवृषणलिङ्गच्छेदन) का दण्ड विहित करते हुए इन स्त्रियों के लिए भी उसके साथ कामतः व्यभिचार में प्रवृत्त होने पर वही दण्ड (दोनों स्तनों और भग का छेदन) विहित किया है। दास, परिचारक तथा आहित (बन्धक रूप में रखे हुए) पुरुष के द्वारा संभुक्त नारी के लिए भी कौटिल्य ने यही दण्ड विहित किया है। याज्ञवल्क्य ने भी बुआ, मौसी आदि स्त्रियों के साथ दुष्कर्म करने वाले गुरुतल्पग के लिए लिङ्गच्छेदनपूर्वक वध दण्ड का विधान करते हुए उसके साथ कामतः प्रवृत्त होने वाली अथवा उसे अपने साथ दुष्कर्म हेतु प्रवृत्त करने वाली स्त्रियों के लिए भी वही दण्ड (भगच्छेदन पूर्वक वध) विहित किया है।[३] परपुरुष-गामिनी नारी को उसकी आपराधिक भावना की तीव्रता या अपराधाचरण में प्रमुख भूमिका रहने पर राजा वध दण्ड दे सकता था। उदाहरणार्थ- बृहस्पतिस्मृति (व्य०का० २४।६–७) के अनुसार जो नारी स्वयमेव किसी पुरुष के घर में आकर उसे अपने स्पर्श (एवं अङ्गप्रदर्शन) आदि से उत्तेजित करके उसके साथ दुष्कर्म करे, उसके नाक, होंठ और कान कटवा कर राजा उसे नगर में घुमा कर जल में डुबो दे अथवा बहुजन-समक्ष कुत्तों से कटवा कर मरवा दे। यह दण्ड उसे स्त्रीजनोचित स्वाभाविक लज्जा का त्याग कर व्यभिचार में प्रमुख भूमिका निभाने के कारण हो दिया जाता था। गौतम धर्मसूत्र[४] तथा महाभारत (शान्तिपर्व १६५।६४) में राजा को यह निर्देश दिया गया है कि वह हीन वर्ण के पुरुष के साथ व्यभिचार करने वाली उच्च वर्ण की नारी को बहुजनसमक्ष कुत्तों से नुचवा कर मरवा दे। यम ने कहा है कि कामोन्मत्त होकर शूद्र-सेवन करने वाली ब्राह्मणी को राजा चाण्डालों के बीच कुत्तों से कटवा

१. भर्त्रनुज्ञां विना राजा स्त्रीणां न प्रभवेत् क्वचित् । विष्णुधर्मो० ३।३२६।२१ ।
२. अशक्तभर्तृकां नारीं शासयेत् तदनुज्ञया । वही, ३।३२६।२२ ।
३. याज्ञ० ३।२३२–३; गरुड पू० १०५।१०–११; द्र० मिता० (याज्ञ० ३।२३२)।
४. श्वभिरादयेद् राजा निहीनवर्णगमने स्त्रियं प्रकाशम् ।
गौ० ध० सू० ३।५।१४ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(नुचवा) कर मरवा दे।[1] हारीत ने हीनवर्ण के पुरुष के साथ व्यभिचार करने वाली नारी को जला कर मारने का दण्ड विहित किया है।[2] वसिष्ठ (ध०सू० २१।२-३) तथा यम (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ५९३ में उद्धृत) ने वैश्य अथवा क्षत्रिय के साथ दुराचार से दूषित ब्राह्मणी के लिए मुण्डन, घृतलेप और नङ्गी करके गधे में बैठा कर महापथ पर प्रस्थान करवाने का दण्ड विहित किया है। याज्ञवल्क्य (स्मृ० २।२८६ = अग्निपुराण २५८।६९) ने हीन वर्ण के पुरुष के साथ कामतः व्यभिचार करने वाली स्त्री के कान आदि काट लेने का दण्ड विहित किया है, किन्तु अन्य अनेक आचार्यों ने हीन वर्ण के पुरुष का सेवन करने वाली नारी को वध्य बतलाया है।[3] कौटिल्य ने (अर्थ० ४।१३।३५ में) श्वपाक (चाण्डाल) के साथ व्यभिचार करने वाली नारी के कान और नाक को काट लेने का विधान किया है। हीन वर्ण के पुरुष की अपेक्षा उत्कृष्ट वर्ण के पुरुष के द्वारा दूषित नारी के लिए कुछ मृदु दण्ड विहित किया जाता था। पुराणों में उत्कृष्ट वर्ण के पुरुष के द्वारा दूषित नारी का मुण्डन कर उसे मलिन वस्त्र तथा दश चोटियाँ धारण कराने का विधान किया गया है।[4] कौटिल्य (अर्थ० ४।१२।३०-३१) के अनुसार अतिचारिणी प्रोषितपतिका को उसके पति के लौटने तक बान्धव अथवा अन्य कोई संरक्षक पुरुष अपने संरक्षण में रखे। कात्यायन ने ऐसी नारी को पति के लौटने तक बन्धन में रखने का विधान किया है।[5] कौटिल्य (अर्थ० ४।१२।३२-३) के अनुसार प्रवास से लौटने पर यदि पति उसे क्षमा नहीं करता तो राजा उस स्त्री के कान और नाक कटवा दे। कथासरित्सागर (१२।१०।६७-८७) की एक कथा के अनुसार एक स्त्री के मृत प्रेमी के शव में प्रविष्ट वेताल ने उसकी नाक काट ली थी, किन्तु उस स्त्री ने अपने पति पर ही अपनी नाक काटने का मिथ्याभियोग लगाया तो राजा ने तथ्य ज्ञात करके उस स्त्री के कान कटवा कर उसे निर्वासित कर दिया था।

(५) कुमारी के अतिचार का दण्ड—प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में कोई कन्या ऋतुमती हो जाने के पश्चात् किसी तुल्य (जाति, शील, धन या विद्या वाले) पुरुष

---

१. वृषलं सेवते या तु ब्राह्मणी मदमोहिता। तां श्वभिः खादयेद् राजा संस्थाने वध्यघातिनाम्॥ यम (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ५९२।

२. काष्ठैश्चैनां दाहयेत्। यम (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ५९१।

३. बृहस्पति (प्रायश्चित्तमयूख; पृ० १६६ में उद्धृत); मत्स्य २२७।३१ विष्णुधर्मो० २।७२।११६; २।३२९।२१।

४. ज्यायसा दूषिता नारी मुण्डनं समवाप्नुयात्।
वासश्च मलिनं नित्यं शिखां सम्प्राप्नुयाद् दश॥
मत्स्य २२७।१३४; तु० विष्णुधर्मो० २।७२।११९; मत्स्य २२७।४३।

५. प्रोषितपतिका नारी प्रापिता यद्यभिगृहे। तावत्सा बन्धने स्थाप्या यावत्प्रत्यागतः प्रभुः॥ कात्यायन ४८९ (कृत्यकल्पतरु, व्य० का०, पृ० ५९४)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के साथ स्वेच्छया सङ्गत हो जाने पर दण्डनीय नहीं होती थी। उन्होंने तो उसे आर्तव की एक सीमा के पश्चात् तुल्य ही नहीं, अतुल्य पुरुष के भी वरण की अनुमति प्रदान की है (द्र० पीछे, पृ० १०५, टि० ५-७)। किन्तु ऐसी कन्या का निम्न जातीय पुरुष के साथ सहवास संभवतः अनेक आचार्यों को अभीष्ट नहीं रहा होगा। मनु (८।३६५) के अनुसार उत्कृष्ट पुरुष का सेवन करने वाली कन्या को कोई दण्ड न दिया जाय, किन्तु जघन्य (अधम) पुरुष का सेवन करने वाली कन्या को घर में संयत (नियन्त्रित) रखा जाय। मेधातिथि (मनु ८।३६५) के अनुसार कन्या के लिए स्वातन्त्र्य विहित नहीं है, अतः उसके द्वारा उत्कृष्ट (जाति, धन, शील या विद्या में श्रेष्ठ) पुरुष का वरण किये जाने पर उसकी रक्षा आदि के दायित्व का निर्वाह न करने वाले पिता आदि ही दण्डनीय होते हैं। उनके अनुसार हीन जाति के पुरुष से बद्धानुराग कन्या को उससे निवृत्ताभिलाष होने तक अथवा ऐसा न हो सकने की स्थिति में अन्तिम साँस तक घर में नियन्त्रित रखा जाय। भावुकतावश और कामान्ध होकर जाति-गौरव एवं रक्तशुद्धि की वैज्ञानिक मर्यादा भूल बैठने वाली कन्या के लिए प्राचीन विधिशास्त्रियों को यह दण्ड संभवतः बहुत कठोर नहीं लगता था। विवाह के पूर्व कौमार्य को नष्ट करने वाली या किसी भी रूप में क्षतयोनि होने वाली कन्या भी दण्डनीय होती थी। कौटिल्य (अर्थ० ४।१२।१५) के अनुसार जो कन्या पति के साथ समागम के पूर्व ही क्षतयोनि हो चुकी हो वह ५४ पण अर्थदण्ड देने के अतिरिक्त वर पक्ष को शुल्क एवं विवाह का व्यय वापस करेगी। तदनन्तर यदि वह किसी दूसरे के साथ भी मर्यादित न रहे तो उससे उपर्युक्त का द्विगुणित (१०८ पण) अर्थदण्ड लिया जाय (अर्थ० ४।१२।१६)। जो सकामा कन्या किसी स्त्री के द्वारा [अङ्गुलिप्रक्षेप करके] दूषित की जाय वह १२ पण तथा उसे दूषित करने वाली स्त्री उसका द्विगुणित (२४ पण) अर्थदण्ड देगी (अर्थ० ४।१२।२०)। अकामा कन्या को दूषित करने वाली स्त्री एक सौ पण अर्थदण्ड तथा उसके विवाह हेतु शुल्क भी प्रदान करेगी (अर्थ० ४।१२।२१)। मनु (८।३७०) के अनुसार किसी कन्या को क्षतयोनि करने वाली स्त्री का मुण्डन करके अथवा उसकी दोनों अङ्गुलियों को काट कर गधे पर बैठा कर राजमार्ग पर घुमाया जायेगा। जो कन्या किसी कुमारी को ही [अङ्गुलिप्रक्षेप आदि से क्षतयोनि करके] दूषित करेगी वह उसके पिता को द्विगुणित शुल्क प्रदान करेगी तथा उसे १० बार शिफा (बेंत) से ताडित किया जायेगा (मनु ८।३६९)। कौटिल्य (अर्थ० ४।१२।२२) के अनुसार स्वयं क्षतयोनि होने वाली कन्या को राजा की दासी बना दिया जायेगा। इस तरह के दण्ड-विधानों से कन्याओं को कौमार्य की रक्षा की प्रेरणा मिल सकती थी। कौमार्य को नष्ट करने के लिए किसी कन्या को दण्डित करने का एक उद्देश्य यह भी हो सकता था कि उसके विषय में जान कर अन्य कन्याएँ अपने कौमार्य की रक्षा कर सकती थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(६) वेश्या का दण्ड—यह आश्चर्य की बात है कि प्राचीन विधिवेत्ताओं ने वेश्यावृत्ति को कोई गम्भीर अपराध नहीं माना था। यद्यपि मनु (९।२५९-२६०) ने पण्यस्त्रियों को प्रकाश (प्रत्यक्ष विचरणशील) लोक-कण्टकों में गिना कर यह कहा है कि राजा उन (लोककण्टकों) को चारों के द्वारा वशीभूत करे। किन्तु उन्होंने वेश्यावृत्ति करने वाली महिला के लिए कोई दण्ड नहीं विहित किया है। इसका कारण संभवतः यही था कि उन दिनों तक वेश्यावृत्ति का समाज की आवश्यकता से अधिक प्रसार नहीं था, यह एक बुराई के रूप में नहीं फैली थी और इसके कारण समाज के आर्थिक-शोषण एवं चारित्रिकदूषण का अधिक भय नहीं था। अन्यथा मनु, याज्ञवल्क्य, नारद आदि आचार्य वेश्यावृत्ति के लिए अवश्य दण्ड-विधान प्रस्तुत किये होते। उन दिनों वेश्या के लिए अपने दायित्व का सम्यक् निर्वाह न करना ही दण्डनीय अपराध था। याज्ञवल्क्य (स्मृ० २।२९२) एवं नारद (स्मृ० ६।२०) के अनुसार यदि वेश्या वेतन लेकर ग्राहक को शरीर-दान नहीं करती तो वह उसे वेतन का द्विगुणित धन लौटावे और यदि ग्राहक को बुला कर वेतन लेने के पूर्व ही अपनी अस्वीकृति दे देती है तो वह उसे अपने वेतन के तुल्य धनराशि लौटावे। मत्स्यपुराण (२२७।१४५ तु० विष्णुधर्मोत्तरपुराण २।७२।१२९-१३०) के अनुसार एक ग्राहक से वेतन लेकर भी उसे छोड़ कर लोभवश अन्य पुरुष के पास जाने वाली वेश्या उस (प्रथम) ग्राहक को वेतन की द्विगुणित धनराशि लौटाने के साथ ही राजा को भी द्विगुणित अर्थदण्ड देगी। वेश्या की अपेक्षा विशिष्ट स्तर रखने वाली गणिका को भी अपने कर्तव्य का निर्वाह न करने पर दण्डित किया जा सकता था। कौटिल्य (अर्थ० २।२७।१९) ने कहा है कि राजाज्ञानुसार यथानिर्दिष्ट पुरुष के पास न जाने वाली गणिका को एक सहस्र कोड़े मारे जायं या उससे पाँच सौ पण अर्थदण्ड लिया जाय। इसी तरह कामुक पुरुष से भोग-शुल्क लेकर रतिदान न करने वाली गणिका उसे भोग की धनराशि का द्विगुणित धन लौटायेगी तथा किसी पुरुष से रात भर या किसी निश्चित अवधि के लिए भोगद्रव्य प्राप्त करके स्वयं रुग्ण न होने या उस पुरुष में कोई दोष न होने पर भी उसे रतिदान न करने पर वह आठ गुना अधिक धन लौटायेगी। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि वेश्या एवं गणिका को व्यभिचार में प्रवृत्त होने पर नहीं, अपितु वेश्यावृत्ति या गणिकावृत्ति का सम्यक् निर्वाह न करने पर ही दण्डित किया जाता था।

निष्कर्ष—वैदिक संहिताओं में अतिचार सम्बन्धी अपराधों के लिए दण्ड-विधानों के नितान्त अभाव से यह प्रकट होता है कि सुदूर अतीत में अतिचार की प्रवृत्ति नगण्यप्राय रही होगी। दूसरी बात यह भी हो सकती है कि आरम्भिक समाज में ऐसे अपराधी को स्त्री का संरक्षक पुरुष स्वयमेव दण्डित कर सकता था और वही अतिचारिणी स्त्री का भी निग्रह कर सकता था। धर्मसूत्रों में अतिचार विषयक अपराधों के लिए थोड़े से दण्ड-विधान प्राप्त होते हैं। जैसे-जैसे समाज में अनैतिकता की प्रवृत्ति बढती

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गयी, वैसे-वैसे अतिचार विषयक अपराध भी बढते गये और इसीलिए परवर्ती साहित्य में तद्‌विषयक दण्ड-विधानों की मात्रा भी बढती गयी। प्राचीन भारतीय विधिशास्त्रीय साहित्य में यद्यपि तत्कालीन परिस्थितियों में संभावित सभी प्रकार के अपराधों के लिए यथेष्ट दण्ड-विधान प्राप्त होते हैं, किन्तु अतिचार सम्बन्धी अपराधों के लिए विहित दण्ड-विधानों की मात्रा सर्वाधिक है। इन दण्ड-विधानों की ओर ध्यान न देकर केवल प्राचीन साहित्य में प्राप्त अतिचार की प्रवृत्ति विषयक कुछ उद्धरणों के आधार पर अनेक समाजशास्त्रियों ने यह भ्रान्त धारणा व्यक्त की है कि प्राचीन काल में अतिचार की प्रवृत्ति को सह लिया जाता था। उनकी भ्रान्त धारणा के निराकरण हेतु दण्ड-विधानों का उपर्युक्त विवेचन अपर्याप्त नहीं कहा जा सकता।

प्राचीन भारतीय विधि-शास्त्रियों ने अपने दण्ड-विधानों का प्रवर्तन वर्णाश्रम-व्यवस्था के आदर्शों को दृष्टि में रख कर किया है। यद्यपि कालान्तर में इस व्यवस्था में कुछ दोष आ जाने से कुछ आधुनिक समाजशास्त्री इसकी आलोचना करते हैं, किन्तु यह निर्विवाद है कि प्राचीन भारत की समृद्ध एवं सर्वाङ्गीण संस्कृति इस वर्णाश्रम व्यवस्था के निर्दोष स्वरूप की ही देन रही है। अतः राजदण्ड का उद्‌देश्य वर्णाश्रम व्यवस्था का उल्लंघन रोकना तथा इसके प्रति अनादर भाव को समाप्त करना था। मनु ने कहा है कि सम्यक् दण्ड-प्रणयन के अभाव में सभी वर्ण दूषित हो सकते हैं, सभी मर्यादाओं का अतिक्रमण हो सकता है तथा समस्त प्रजा प्रकुपित हो सकती है।[1] प्रायः सभी धर्माचार्य वर्ण-व्यवस्था के विघटन के विरोधी रहे हैं। वर्णव्यवस्था का अतिक्रमण अपने वर्ण के लिए निर्दिष्ट कर्तव्यों के पालन न करने से ही नहीं, अपितु इतर वर्ण की स्त्रियों के साथ यौनाचार आदि से भी हो सकता था। अतः अतिचार-सम्बन्धी दण्ड-विधानों में वर्णव्यवस्था के प्राचीन स्वरूप और आदर्श को विशेष प्रश्रय दिया जाता था। किन्तु जहाँ तक आश्रमों का प्रश्न है, गृहस्थेतर आश्रमियों (ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं भिक्षु) के लिए अतिचार विषयक दण्ड का कोई निर्देश नहीं मिलता। संभवतः इनको दण्डित करना उचित नहीं समझा जाता था। अतः इनके द्वारा कृत स्त्रीसंगम के पाप पर मात्र प्रायश्चित्त के विधान देखे जाते हैं। किन्तु प्रव्रजिता (भिक्षुणी) के चरित्र को संदिग्ध माना जाता था। अतः कौटिल्य (अर्थ० ४।१३।३७) ने किसी पुरुष के साथ सकाम होकर मैथुन करने वाली प्रव्रजिता के लिए २४ पण अर्थदण्ड विहित किया है। अतिचार विषयक दण्ड-निर्धारण में अन्य भी अनेक तथ्यों को ध्यान में रखा जाता था। उदाहरणार्थ—यदि स्त्री निकट-सम्बन्ध की या उत्कृष्ट वर्ण की या पतिव्रता या अभिभावक के द्वारा संरक्षित या अनिच्छुक हो तो उसके साथ दुराचार पर कठोरतम

१. दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन् सर्वसेतवः।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद् दण्डस्य विभ्रमात्॥ मनु ७।२४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दण्ड, किन्तु अवर वर्ण की या असंरक्षिता या असाध्वी या स्वैरिणी या इच्छुक स्त्री के साथ व्यभिचार पर अपेक्षाकृत मृदु दण्ड दिया जाता था। पारस्परिक सहमति से व्यभिचार पर मृदु, किन्तु बलात्कार पर कठोरतम दण्ड दिया जा सकता था। सामान्यत: स्त्रियों के लिए दण्ड में कुछ छूट रहने पर भी निकट-सम्बन्ध के पुरुष के साथ कामत: व्यभिचार में प्रवृत्त होने पर तथा अपने साथ दुष्कर्म के लिए किसी पुरुष को स्वयं प्रलोभित और उत्तेजित करके प्रवृत्त करने पर उसे पूरा दण्ड भोगना पड़ता था। उत्कृष्ट वर्ण के पुरुष के साथ व्यभिचार में प्रसक्त स्त्री की अपेक्षा अवर वर्ण के पुरुष के साथ व्यभिचार में प्रसक्त स्त्री को अधिक दण्ड भोगना पड़ता था। कुल, शील, विद्या और वित्त में उत्कृष्ट पुरुष की स्त्री के साथ इन गुणों की दृष्टि से हीन पुरुष यदि व्यभिचार करे तो उसके लिए अधिक दण्ड के विधान को प्राचीन समाज में अमानवीय एवं पक्षपातपूर्ण नहीं माना जाता था।

अतिचार सम्बन्धी अपराधों के शोधन हेतु दण्ड के प्रतीकारात्मक (Retributive) अवरोधक (Deterrent), निरोधात्मक (Preventive) तथा सुधारात्मक (Reformative) चारों भेदों का प्रयोग प्राप्त होता है। अतिचार-सम्बन्धी दुष्कर्म में प्रयुक्त अङ्ग के छेदन को प्रतीकारात्मक दण्ड, अतिचारी पुरुष को भग के चिह्न से अङ्कित करने और मुण्डित करने तथा अतिचारिणी को भी मुण्डित कर गधे में बैठा कर घुमाने को अवरोधक दण्ड, अतिचारिणी को घर में बन्द करके उससे प्रायश्चित्त कराने को निरोधात्मक दण्ड तथा उससे कूड़ा साफ करवाने एवं अन्न के दाने बिनवाने को सुधारात्मक दण्ड में गिना जा सकता है। तुल्य या उत्कृष्ट पुरुष का सेवन करने वाली कन्या का उसी के साथ विवाह करवाना भी सुधारात्मक दण्ड में गिनाया जा सकता है। इन सभी प्रकार के दण्डों का उद्देश्य समाज में अतिचार की प्रवृत्ति को नियन्त्रित करके दाम्पत्य-मर्यादा के आदर्श को अनुप्राणित रखना ही था।

प्रायश्चित्त-संस्था अतिचारी के मनोभावों को शुद्ध करके उसे आध्यात्मिक दृष्टि से अभ्युन्नत बनाकर दुष्कर्म से विरत और मर्यादित बनाये रखने में सहायक रही है। जबकि राजदण्ड अतिचारी स्त्री-पुरुषों को उत्पीडित और भयभीत करके उन्हें तथा उनके निदर्शन से शेष समाज को भी अतिचार-सम्बन्धी अपराधों से विरत और मर्यादोन्मुख बनाने में सहायक रहा है। अतिचार की प्रवृत्ति के प्रशमन तथा समाज को मर्यादित रखने के लिए राजदण्ड का प्रयोग सदैव अत्यावश्यक रहा है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दशम अध्याय

उपसंहार

१. विवाह-संस्था के उद्भव-विषयक विचार--

मैकलेनन, मोर्गन, हर्बर्ट स्पेन्सर जैसे अनेक पाश्चात्य विचारकों की यह अवधारणा रही है कि आदिम मानव समाज में स्वैराचार या अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था (Promiscuity) का अस्तित्व था और कालान्तर में नैतिक मान्यताओं और मर्यादाओं के विकास के साथ ही स्वैराचार की प्रवृत्ति के नियन्त्रित होने पर विवाह-संस्था का प्रादुर्भाव हुआ। इस धारणा के समर्थन में उन्होंने मिस्र में मेन्स, चीन में फोही, ग्रीक देश में सेक्रोपस तथा भारत में श्वेतकेतु के द्वारा विवाह-संस्था के प्रवर्तन के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। किन्तु टेलर, स्टार्च, वेस्टरमार्क, ईवन्स-प्रिचार्ड प्रभृति विद्वानों ने उपर्युक्त मत को प्रायः विदेशी यात्रियों, धर्म-प्रचारकों एवं प्रशासकों के द्वारा लिखित सतही, अपूर्ण और असङ्गत विवरणों पर आधारित होने से भ्रान्तिपूर्ण बतलाते हुए उसका खण्डन किया है। वेस्टरमार्क के अनुसार इस मत के समर्थकों ने प्राचीन साहित्य के कुछ उद्धरणों या तथाकथित विवरणों में विवाह शब्द के अभाव, धार्मिक कृत्यों के बिना सम्पन्न होने वाले विवाह, सम्बन्ध-विच्छेद की बहुलता एवं नैतिक शिथिलता (Sexual laxity) के उल्लेखों को ही अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था का प्रमाण मान लिया है जो कि नितान्त अनुचित है। वस्तुतः अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था विषयक अवधारणा प्रायः कल्पना पर ही आधारित है। इसको सिद्ध करने के लिए कोई भी पुष्ट प्रमाण विश्व की किसी भी भाषा के प्राचीन साहित्य में नहीं है। वेस्टरमार्क जैसे पाश्चात्य तथा प्रो० के० जी० गोस्वामी जैसे भारतीय विद्वानों की मान्यता है कि विवाह-संस्था का अस्तित्व मानव-सृष्टि के आरम्भ से ही रहा होगा, भले ही इसमें नैतिक शिथिलता कभी अधिक या कम जो भी रही हो।

प्राचीन भारत में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था को सिद्ध करने के लिए प्राचीन साहित्य से जो भी उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं उनसे उसका अस्तित्व प्रमाणित नहीं हो पाता। इन उद्धरणों में प्रायः महाभारत के श्वेतकेतु उपाख्यान की विशेष चर्चा की जाती है। स्वयं सन्तानोत्पादन में असमर्थ पाण्डु ने अपनी पत्नी कुन्ती को परपुरुष से सन्तानोत्पादन हेतु प्रेरित करते हुए प्राचीन काल की नारियों की कामचारिता आदि के उल्लेख के साथ ही श्वेतकेतु के द्वारा अपनी माता के एक ब्राह्मण के साथ जाने से क्षुब्ध होकर नर-नारी के लिए दाम्पत्य-मर्यादा के पालन का विधान तथा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अतिचार में पाप की प्रकल्पना किये जाने की चर्चा की थी। किन्तु यदि प्राचीन काल की स्त्रियाँ वस्तुतः कामचारिणी होती और श्वेतकेतु ही एक पुरुष के साथ एक नारी के मर्यादित यौन-सम्बन्ध या दाम्पत्य के प्रवर्तक होते तो ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना का ज्ञान केवल पाण्डु को ही नहीं होता, प्राचीन काल के अन्य शत-सहस्र मनुष्यों को भी इसकी जानकारी अवश्य होती और ऋग्वेद एवं इतर वैदिक साहित्य, रामायण एवं पुराणों तथा स्वयं महाभारत में भी किसी अन्य प्रसङ्ग में इसकी चर्चा अवश्य हुई होती। अतः यह कहा जा सकता है कि संभवतः पाण्डु ने इस कल्पित घटना को एक कथा के रूप में केवल कुन्ती को नियोग से सन्तानोत्पादन हेतु प्रवृत्त करने के लिए सुनाया था। पाण्डु के द्वारा प्राचीन समाज में गम्यागम्य विवेक-रहित गोधर्म की जो स्थिति बतलायी गयी है वह भी सत्य नहीं मानी जा सकती, क्योंकि प्रथम बार मानव-समाज में गोधर्म के प्रवर्तन का प्रयास करने वाले दीर्घतमा को स्वयं ही इसका दुष्परिणाम भोगना पड़ा था। प्राचीन भारत में अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था को सिद्ध करने के लिए अन्य जो उदाहरण दिये गये हैं वे वस्तुतः मर्यादित दाम्पत्य जीवन वाले समाज में अपवाद रूप में संभाव्य अतिचार की प्रवृत्ति या नैतिक-शिथिलता (Sexual laxity) के द्योतक हैं। प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास के स्रोतों का सम्यक् विश्लेषण किये बिना कई लेखकों ने श्वेतकेतु को विवाह-संस्था का प्रवर्तक बतलाने की भूल की है, जब कि भारतीय साहित्यिक स्रोतों के अनुसार विवाह-संस्था का उदय दिव्य-सृष्टि के साथ ही हो गया था। श्वेतकेतु के बहुत पूर्व के ऋषियों के समय से ही विवाह-संस्था का अस्तित्व रहा है। अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था के अस्तित्व की कल्पना करने वाले लेखकों की दृष्टि में यह अवस्था सुदूर अतीत में इण्डो-आर्यन या भारोपीय आर्य जातियों के समान पूर्वजों के विभिन्न देशों में बसने के बहुत पूर्व कभी रही होगी, क्योंकि इन जातियों के विवाह संस्कार में प्राप्त कुछ समान वैवाहिक कृत्यों तथा इनकी प्राचीन भाषाओं में वैवाहिक-सम्बन्धों के वाचक समान शब्दों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इनके समान पूर्वज जब किसी एक भूमि में निवास करते थे या परस्पर सम्पर्क में थे, तभी विवाह-संस्था का विकसित रूप अस्तित्व में आ चुका था। मानव-संस्कृति के प्राचीनतम इतिहास के साहित्यिक स्रोत ऋग्वेद में विवाह-संस्था का सुविकसित स्वरूप दृष्टिगत होता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में अमरीकी नृतत्त्वशास्त्री मोर्गन के द्वारा कुछ अविकसित संस्कृतियों वाले समुदायों की विचित्र विवाह-प्रथाओं के आधार पर उपस्थापित तथा ब्रिफाल्ट जैसे लेखकों के द्वारा बहुशः पोषित सामूहिक विवाह विषयक मत को प्रमाणित करने वाला कोई ठोस प्रमाण प्राचीन साहित्य में न होने के कारण यह समादरणीय नहीं है। प्राचीन भारत में सामूहिक विवाह के प्रचलन को सिद्ध करने के लिए जो उदाहरण दिये गये हैं वे प्रायः बहुपत्नीप्रथा या बहुपतिप्रथा आदि के ही

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हैं। ब्रिफाल्ट ने अयोध्या के राजा दशरथ के चार पुत्रों के साथ विदेहराज जनक तथा उसके भ्राता की पुत्रियों के विवाह को सामूहिक विवाह के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है, जो कि नितान्त अनुचित है, क्योंकि राम का सीता, लक्ष्मण का उर्मिला, भरत का श्रुतकीर्ति एवं शत्रुघ्न का माण्डवी के साथ विवाह व्यक्तिगत विवाह की श्रेणी का ही था और प्रत्येक भ्राता ने दाम्पत्य-मर्यादा का पूर्ण पालन किया था। पुनश्च मिथिला एवं अयोध्या के राजवंशों में अथवा किसी दूसरे राजवंश में भी अन्य कोई ऐसा विवाह-सम्बन्ध नहीं हुआ था जिसे कि सामूहिक विवाह की तथाकथित परिभाषा के अन्तर्गत रखा जा सके। सामूहिक विवाह के प्रचलन को ख्यापित करने वाला कोई भी साक्ष्य प्राचीन भारतीय साहित्य में नहीं है।

वेस्टरमार्क प्रभृति कुछ विद्वानों के अनुसार मानव-सृष्टि के आरम्भ से ही प्रायः एक पुरुष तथा एक या अधिक नारियों के सहवास, परस्पर मैथुन तथा इससे उत्पन्न सन्तानों के पालन आदि की स्वाभाविक प्रवृत्ति से विवाह-संस्था का आविर्भाव हुआ होगा।

२. विवाह-संस्था की दैवी उत्पत्ति—

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में विवाह-संस्था का आविर्भाव सृष्टि के आविर्भाव के साथ और एक दैवी-परिवेश में कल्पित किया गया है। द्यावापृथिवी में दाम्पत्यभाव की वैदिक कल्पना भले ही प्राकृतिक जगत् विषयक मान ली जाय, एक प्रजापति के पति और पत्नी के रूप में द्विधा विभक्त होने की कल्पना तो चेतन जगत् में विवाह-संस्था के उत्स का प्रथम निदर्शन है ही। इसी को विवृत करते हुए पुराणों में कहा गया है कि एक परमात्मा ही प्रकृति और पुरुष के रूप में द्विधा विभक्त हुआ था। प्रकृति की अंशजा स्त्रियाँ हैं तो पुरुष के अंशज सभी मनुष्य हैं। देवों के वामार्द्धाङ्ग से उनकी पत्नियों के आविर्भाव की भी कल्पना की गयी है। डॉ० भगवतशरण उपाध्याय के द्वारा (वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० १२४ में) उद्धृत प्रो० राथ के एक उद्धरण के अनुसार हिब्रू साहित्य में भी आदि-पुरुष के शरीर के एक अंश से नारी के उत्पन्न होने का उल्लेख प्राप्त होता है। विश्व के अन्य अनेक देशों के प्राचीन साहित्य में भी आदि पुरुष के शरीर से ही नारी की उत्पत्ति कल्पित की गयी है। विवाह-संस्था के विकास की अगली कड़ी के रूप में पुराणों में एक मूल पुरुष (प्रजापति) की मानसी-सन्तानों में दाम्पत्य भाव की कल्पना प्राप्त होती है। ब्रह्मा के द्वारा नौ प्रजापतियों एवं उनकी पत्नियों तथा मानवों के मूल पुरुष स्वायंभुव मनु एवं उनकी पत्नी की मानसी सृष्टि की गयी थी। ईश्वरीय सृष्टि में मिथुन सन्तानों में दाम्पत्य भाव की कल्पना प्राप्त होती है। पुराणों में प्रजापति द्वारा आदि कल्प में क्रमशः चारों वर्णों के सहस्र-सहस्र मिथुनों की सृष्टि किये जाने का उल्लेख है। आदि युग के मिथुन दम्पती को भी उनकी आयु के अन्त में उनके सत्यसङ्कल्प से मिथुन सन्तानों का जन्म होता था। इस मानसी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सृष्टि में मिथुन सन्तानों (भ्राता-भगिनी) के दाम्पत्य-भाव में कोई दोष नहीं माना जाता था। प्राचीन काल में मन के सङ्कल्प से मनुष्य की सृष्टि कर सकने की क्षमता में किसी भी प्रकार की आशङ्का नहीं की जाती थी। यह कहा गया है कि इस मानसी सृष्टि में यथेष्ट वृद्धि न हो पाने पर प्राचेतस दक्ष ने वीरण प्रजापति की पत्नी के साथ विवाह करके मैथुनी सृष्टि प्रारम्भ की थी। आदि कल्प की मानसी सृष्टि ही नहीं, मैथुनी सृष्टि भी अतिमानवीय धरातल की होने के कारण तत्कालीन युगलों के दाम्पत्य-सम्बन्ध में निकटाभिगमन के दोष की कल्पना नहीं की गयी है।

प्राचीन साहित्य में ऐतिहासिक दम्पतियों के अतिरिक्त अतिमानवीय दम्पतियों विषयक वर्णनों के भी उल्लेखनीय दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। पौराणिक साहित्य में देव, दानव, गन्धर्व, अप्सरा आदि अष्टदेवयोनियों के प्राणियों, नागों तथा नभचर एवं जलचर प्राणियों के अतिरिक्त नदी-पर्वतादि की अभिमानी देवताओं के भी एक दूसरे वर्गों एवं मनुष्यों के साथ दाम्पत्यभाव अथवा कहीं-कहीं केवल यौन-सम्बन्ध को दिखलाया गया है और ऐसे वर्णनों को प्राचीन ऋषि-मुनियों, योगियों, दार्शनिकों और कवियों ने कहीं भी असंभव या अविश्वसनीय नहीं बतलाया है। संभवतः अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न एवं योगबल से नाना रूप धारण करने में समर्थ देवों, ऋषि-मुनियों, राजाओं आदि के लिए ऐसे सम्बन्ध असंभव नहीं रहे होंगे। प्राचीन ऋषियों और आचार्यों को समस्त सृष्टि के जीव दाम्पत्यभाव में आबद्ध प्रतीत होते थे। उन्होंने पशु-पक्षिओं के मिथुनों, प्राकृतिक तत्त्वों और कभी-कभी अमूर्त तत्त्वों में भी दाम्पत्य भाव का आरोप किया है। वैदिक और पौराणिक साहित्य में एक तो इस विश्वास की अभिव्यक्ति हुई है कि प्रत्येक पुरुष का किसी नारी के साथ और प्रत्येक नारी का किसी पुरुष के साथ दाम्पत्यभाव आरम्भिक सृष्टि से ही चला आया है, दूसरे इस जगत् की नियामक कोई ईश्वरीय शक्ति ही किसी पुरुष एवं नारी को दम्पती रूप में संयोजित करती है। वैदिक संहिताओं में मनुष्यों में ही नहीं, देवों में भी विवाह-संस्था की पूर्ण प्रतिष्ठा बतलायी गयी है। वैदिक साक्ष्यों के अनुसार विवाह-संस्था का आविर्भाव पहले देवों में ही हुआ था। विवाह संस्कार का प्रथम वर्णन भी देवों के सन्दर्भ में ही प्राप्त होता है। देवों के द्वारा मानव-समाज में विवाह-संस्था को प्रोत्साहित किये जाने के उल्लेख भी अनेकत्र प्राप्त होते हैं।

३. विवाह की आवश्यकता, उद्देश्य एवं वैवाहिक कर्तव्य—

प्राचीन भारतीय समाज को यौन-सम्बन्धों की दृष्टि से मर्यादित और सदाचारी बनाने में सुव्यवस्थित विवाह-संस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वैदिक-संहिताओं एवं परवर्ती साहित्य में विवाह की कामना वाले युवक-युवतियों के उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि उनके मन में स्वच्छन्द यौनाचार का कोई विचार नहीं था। प्राचीन

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भारतीय समाज में आश्रम-व्यवस्था का पालन अनिवार्य था। यद्यपि आरम्भ में ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात् किसी भी आश्रम में प्रवेश की भी छूट थी, किन्तु कालान्तर में कुछ आचार्यों के द्वारा कलियुग के लिए नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रमों के वर्जित किये जाने के कारण विद्याध्ययन के पश्चात् विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना अनिवार्य हो गया था। वैदिक संहिताओं के काल से ही यह माना जाता था कि पत्नी रहित पुरुष अधूरा होता है। अतः व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए विवाहित होना आवश्यक था। वैदिक काल से ही चली आ रही ऋणत्रय के परिशोधन की भावना के कारण भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए विवाह को आवश्यक माना जाता था। इसके अतिरिक्त विवाह को प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक संस्कार माना जाता था। महर्षि मन्दपाल एवं कुणि-गर्ग की कन्या विषयक कथाओं से सूचित होता है कि अविवाहित स्त्री-पुरुषों को उत्तम लोकों या सद्गति की प्राप्ति के अयोग्य समझा जाता था। यज्ञयागादि धार्मिक कृत्यों के सम्पादन का अधिकार भी केवल विवाहित स्त्री-पुरुषों को ही प्राप्त था, अविवाहितों को नहीं। प्राचीन अवेस्ता में भी अविवाहित स्त्री-पुरुषों के द्वारा प्रदत्त आहुतियाँ देवों और पितरों के द्वारा अस्वीकार्य मानी जाती थी।[१] अतः धार्मिक कृत्यों के सम्पादन की क्षमता तथा धार्मिक दृष्टि से सम्मान का पात्र बनने के लिए भी विवाह आवश्यक था। अर्थसाधन, सामाजिक प्रतिष्ठा, सुखी-जीवन तथा काम-भावना की मर्यादानुसार सन्तुष्टि हेतु और दाम्पत्य जीवन में समस्त एषणाओं की सम्यक् सन्तुष्टि के द्वारा वीतराग होकर अन्तिम पुरुषार्थ—मोक्ष की प्राप्ति का अधिकारी बनने के लिए भी विवाह आवश्यक था। पुरुषों के समान ही स्त्रियों के लिए भी उपर्युक्त कारणों से विवाह आवश्यक था। विवाह का उद्देश्य मात्र काम-भावना की सन्तुष्टि नहीं थी। प्राचीन ग्रीक एवं रोम आदि देशों में भी पुत्रोत्पादन ही विवाह का मुख्य उद्देश्य माना जाता था।[२] भारत में विवाह का प्रमुख उद्देश्य माना जाता था—धर्मसम्पादन एवं वंश-रक्षा के लिए पुत्रोत्पादन। इन उद्देश्यों की पूर्ति हो जाने पर केवल कामोपभोग की दृष्टि से विवाह करना निरर्थक माना जाता था। इसीलिए पुराणों में वृथा-दारपरिग्रह को वर्जित बतलाया गया है,[३] क्योंकि इसके अनेक दुष्परिणाम हो सकते थे।[४] वृथादारपरिग्रह करने वाले पुरुष को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। ब्रह्माण्डपुराण (३।५।२२) में ऐसे ब्राह्मण को श्राद्ध में वर्ज्य बतलाया गया है। प्राचीन भारत में विवाहोचित वय के पुत्र-पुत्रियों के विवाह की व्यवस्था एक धार्मिक कर्तव्य के रूप में वैदिक काल से ही उनके माता-पिता या उनके अभाव में अन्य संरक्षक करते आ रहे हैं।

---

१. द्र० वूमेन इन ऋग्वेद, पृ० ५०, टि० २ में उद्धृत अशीयस्त का वचन।

२. द्र० फार्मस आफ मैरेज इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० ६-१०।

३. वामन १४।४१। ४. द्र० वही, १४।४३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किसी संरक्षक के अभाव में अपने विवाह के विषय में जातीय मर्यादाओं के अन्तर्गत आत्मनिर्णय का अधिकार युवकों को ही नहीं, कन्याओं को भी प्राप्त था। कन्याएं ऋतुमती होने की एक अवधि के पश्चात् पितादि संरक्षक के द्वारा विवाह न किये जाने पर स्वयं भी किसी योग्य वर का वरण कर सकती थी। प्राचीन समाज के व्यवस्थापक आचार्यों ने न केवल यौन-सम्बन्धों को मर्यादित रखने और दाम्पत्य-मर्यादा के अन्तर्गत काम-भावना की सन्तुष्टि के लिए, अपितु समाज को सुव्यवस्थित और सदाचारी बनाये रखने के ध्येय से भी अनेक तरह से विवाह की आवश्यकता बतलाते हुए इसके उदात्त उद्देश्यों की भी कल्पना की है और विवाह करना एवं कराना एक पुनीत धार्मिक कर्त्तव्य बतलाया है।

४. विवाह-संस्कार एवं दाम्पत्य-निष्ठा—

विवाह तथा इसके पर्यायवाची शब्द इसके संस्कारपक्ष को ख्यापित करते हैं और इसकी परिभाषाएं भी इसके संस्कार-पक्ष को ध्यान में रखकर की गयी हैं। वैवाहिक जीवन के अर्थ में दाम्पत्य शब्द का प्रयोग ही समीचीन है। प्राचीन काल में विवाह-संस्कार को ही दाम्पत्य-सम्बन्ध का घटक माना जाता था। दम्पती कहलाने के लिए किसी भी स्त्री और पुरुष का परस्पर यौनाचार अथवा सहवास मात्र पर्याप्त नहीं, अपितु इसके लिए उनका विवाह-संस्कार होना आवश्यक था। राक्षस या पैशाच विधियों से अपहृत अथवा गान्धर्व विधि से प्राप्त कन्या के साथ यौन-सम्बन्ध को दाम्पत्य का स्तर प्रदान करने के लिए विवाह संस्कार के कुछ कृत्यों यथा होम आदि का सम्पादन आवश्यक था। इस तरह विवाह-संस्कार नारी और पुरुष के यौन-सम्बन्ध को वैध बनाते हुए इसे दाम्पत्य का स्तर प्रदान करता है। इसके विभिन्न कृत्य आज के किसी अबोध मनुष्य को आडम्बर मात्र लग सकते हैं, किन्तु इनका उद्देश्य दाम्पत्य जीवन में प्रेम, माधुर्य और स्थायित्व लाना ही है। विवाह-संस्कार के सप्तपदी आदि कृत्यों के फलस्वरूप ही नववधू पितृगोत्र से पृथक् होकर पति गोत्र में संपृक्त हो जाती है और वर-वधू में आध्यात्मिक दृष्टि से अभेदात्मक तथा अविच्छेद्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। हमारी सनातन-संस्कृति के विवाह-संस्कार के विभिन्न कृत्यों के समानान्तर अनेक कृत्य प्राचीन विश्व की ग्रीक, रोमन आदि संस्कृतियों में भी प्राप्त होते हैं।[1] अतः यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि विवाह संस्कार के विभिन्न कृत्यों का आविर्भाव सुदूर अतीत में इण्डो-यूरोपीय (भारोपीय) भाषा-भाषी जातियों के पूर्वजों के पारस्परिक सम्पर्क में रहने तक हो चुका होगा।

---

१. विशेष विवरण हेतु द्र०—चटर्जी, चञ्चलकुमार:—राइट्स एण्ड रिच्युअल्स् आफ हिन्दू मैरेज, पृ० १३३-१५७; डा० कृष्णलाल : गृह्यमन्त्र और उनका विनियोग, पृ० ६४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह-संस्कार के विभिन्न कृत्यों के पीछे वैज्ञानिक चिन्तन की एक समुन्नत सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रही है। मन्त्रों की चमत्कारिक शक्ति से आधुनिक युगीन आस्तिक मनस्वी जन सुपरिचित हैं। किसी निश्चित उद्देश्य या मनोकामना विषयक सङ्कल्प करके मन्त्रोच्चारण सहित विधि-विधान पूर्वक सम्पादित धार्मिक कृत्यों के द्वारा उद्बोधित एक अदृष्ट दिव्य शक्ति के अव्यक्त प्रभाव के फलस्वरूप उस (उद्देश्य या मनोकामना) की पूर्ति हेतु अनुकूल वातावरण बनने लगता है। समन्त्रक और विधि-विधान पूर्वक सम्पादित विवाह-संस्कार के विभिन्न कृत्यों के प्रभाव से दम्पती का जीवन-डोर लौकिक दृष्टि से ही नहीं, अलौकिक दृष्टि से भी एक सूत्र में बँध जाती है, उनका दाम्पत्य-सम्बन्ध अविच्छेद्य हो जाता है, उनमें पारस्परिक प्रेम, सौमनस्य तथा अपने कर्तव्यों के प्रति सचेष्टता का बोध उत्पन्न होता है। किन्तु देश, काल, पात्र और द्रव्य आदि के दोषयुक्त होने पर अथवा श्रद्धा के अभाव में संपादित कृत्यों का यथेष्ट प्रभाव दाम्पत्य-जीवन में नहीं भी पड़ सकता। अतः उस स्थिति में इन कृत्यों को दोष नहीं दिया जा सकता। संस्कार के बिना सम्पन्न विवाह मात्र काम-सम्बन्ध बनकर रह जाता है, जिसमें आध्यात्मिक दृढ़ता आ पाना संभव नहीं है। प्राचीन साहित्य के सर्वेक्षण से विदित होता है कि जिन धर्मों या जातियों में विवाह के संस्कार-पक्ष में कोई त्रुटि या अभाव रहता था, उनमें विवाह-बन्धन की शिथिलता भी अपेक्षाकृत अधिक रहती थी। पुनश्च संस्काररहित विवाह के समाज-स्वीकृत और वैधानिक होने पर भी उसमें संस्कार-जनित पावनता, आध्यात्मिक आह्लाद एवं धार्मिक कृत्यों के सम्पादन से जन्य आत्मतोष दम्पती में कैसे आ सकता है? आधुनिक युग में चोरी छिपे 'कोर्ट-मैरेज' कर चुकने के पश्चात् भी कई दम्पती रूढ़ि-निर्वाह के रूप में या अपने सम्बन्ध की सामाजिक विश्रुति हेतु अथवा केवल अपने अभिभावकों के मनस्तोष हेतु विवाह-संस्कार कराते हैं। यह लज्जा की बात है कि ये लोग विवाह-संस्कार के वास्तविक महत्व को नहीं समझते। विवाह के संस्कारपक्ष की अवज्ञा दाम्पत्य-सम्बन्ध के स्थायित्व के लिए घातक हो सकती है। अतः न केवल सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अपितु उपयोगिता की दृष्टि से भी इसकी लोकप्रियता और प्रचलन को बनाये रखना चाहिए।

५. सुखमय दाम्पत्य जीवन—

प्राचीन समाज में दाम्पत्य जीवन के सुखी और मर्यादित होने के तीन प्रमुख कारण रहे हैं—दाम्पत्य सम्बन्ध की अविच्छेद्यता, दम्पती की सहधर्मिता तथा पारस्परिक प्रेम। भारतीय संस्कृति में पति-पत्नी को एक दूसरे का अर्द्धाङ्ग मानने, उनमें आध्यात्मिक दृष्टि से अभेदात्मक-सम्बन्ध के बोध तथा उनके साहचर्य के लोक-लोकान्तर और जन्म-जन्मान्तर व्यापी मानने की प्रवृत्ति के बीज वैदिक साहित्य से ही मिलने लगते हैं। महाकाव्यों और पुराणों में यह धारणा व्यक्त की गयी है कि एक बार विवाह-संस्कार से एक सूत्र में बँध जाने पर दम्पती का सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अविच्छेद्य हो जाता है। दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए पति-पत्नी के द्वारा अपने-अपने कर्तव्यों का पालन अत्यावश्यक है। नैतिक दृष्टि से समुन्नत प्राचीन समाज में पति-पत्नी अपने कर्तव्यों का निष्ठा से पालन करते थे। केवल अर्थ और काम के प्रति सचेष्टता से दाम्पत्य जीवन में स्थायी माधुर्य संभव नहीं है, इसके लिए दम्पती में धर्मभावना का उद्रेक भी आवश्यक है। इतिहास साक्षी है कि प्राचीन काल में किसी परिवार, जाति, कुल या देश को संगठित रखने में धार्मिक भावना का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। दम्पती के द्वारा मिल कर धर्माचरण करने की प्रवृत्ति दाम्पत्य-सम्बन्ध को स्थायित्व प्रदान करने में सहायक हो सकती है। वैदिक काल से ही दम्पती एक दूसरे के सहयोग से ही धर्माचरण करते रहे हैं। शास्त्रों में उनके लिए त्रिवर्ग की प्राप्ति परस्पर निरपेक्ष रह कर नहीं, अपितु मिल कर ही संभव बतलायी गयी है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में प्राप्त दाम्पत्य जीवन विषयक शाश्वत आदर्शों और उपदेशों का आधुनिक सन्दर्भ में पुनर्मूल्याङ्कन अपेक्षित है। दाम्पत्य जीवन को सुखी और मर्यादित बनाने में दम्पती के पारस्परिक अनुराग की प्रमुख भूमिका होती है। वैदिक और पौराणिक साहित्य में प्राप्त विवरणों के अनुसार पुरुष के लिए कोई अन्य नारी नहीं, अपितु पत्नी ही प्रेमिका थी और नारी के लिए भी पति ही प्रियतम था। प्राचीन कवियों ने यही देखा है कि विवाहोपरान्त दम्पती में उत्तरोत्तर प्रेम की वृद्धि होती जाती है (द्र० पीछे, पृ० १४६ टि० ३)। किन्तु पौराणिक साहित्य में कलियुग के दम्पतियों के विषय में प्राप्त भविष्यवाणियाँ निराशाजनक संकेत देती हैं। महाभारत (वनपर्व १३०।३६) के अनुसार कलियुग में न तो कोई कन्या की याचना करेगा और न कोई कन्यादान ही करेगा। इस युग के स्त्री-पुरुष स्वेच्छया जीवन-साथी का चयन किया करेंगे। स्वेच्छाचारिता-पूर्ण आचरण धर्मसम्मत कैसे हो सकता है ? इसीलिए पुराणों में बतलाया गया है कि कलियुग में विवाह धर्म-सम्मत नहीं हुआ करेंगे[1]। इस युग में स्त्री-पुरुषों की पारस्परिक अभिरुचि ही दाम्पत्य-सम्बन्ध का हेतु बनेगी।[2] यदि मात्र स्त्री-पुरुष की इच्छा ही दाम्पत्य-सम्बन्ध की घटक बनेगी और इसकी पृष्ठभूमि में कोई अन्य आध्यात्मिक आदर्श नहीं होगा तो इसमें स्थायित्व नहीं आ सकता। महाभारत में कहा गया है कि कलियुग के पति-पत्नी एक दूसरे से सन्तुष्ट नहीं रहेंगे (वनपर्व १९०।५०)। उनमें स्वच्छन्दाचरण की प्रवृत्ति होने के कारण वे एक दूसरे को सहन नहीं करेंगे (वनपर्व १९०।४५)। परस्पर असन्तुष्ट एवं असहिष्णु दम्पती में पारस्परिक प्रेम तो रह ही नहीं सकता। अतः पुराणों में कहा गया है कि इस युग के दम्पती पारस्परिक प्रेम से रहित होते हैं।[3] वस्तुतः जब विवाह धर्म-सम्मत न हो

१. विवाहा न कलौ धर्म्या। ब्रह्म २३०।११; विष्णु ६।१।११।

२. भाग० १२।२।३; विष्णु ४।२४।७६। ३. ब्रह्मवै० २।७।२८; देवीभाग० ६।८।२७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और केवल काम-सम्बन्ध पर आधारित हो तब दम्पती के प्रेम का उत्तरोत्तर ह्रास होने पर दाम्पत्य जीवन विघटन के कगार पर पहुँच सकता है, जिसके प्रत्यक्ष उदाहरण आज पाश्चात्य जगत् में तथा कहीं-कहीं भारतीय समाज में भी दृष्टिगत होते हैं। प्राचीन काल में भी कुछ दम्पती एक दूसरे के प्रति प्रेम-भाव से रहित हो सकते थे। इसीलिए विरक्त पति या पत्नी के मन में प्रेम का सञ्चार करने के लिए तथा उसे अन्य किसी के प्रति आकृष्ट न होने देने के लिए अथर्ववेद, गृह्यसूत्रों तथा कामसूत्र आदि में भी मन्त्रौषध आदि के प्रयोग दिये गये हैं। कौटिल्य (अर्थ० ४।१३।२८-६) ने विरक्त पति या पत्नी को अनुकूल बनाने के लिए आभिचारिक कृत्यों के प्रयोग की अनुमति के साथ ही यह भी विधान दिया है कि इसके फलस्वरूप कोई अनिष्ट होने पर इसे करने वाला मध्यमसाहस दण्ड का भागी होगा। स्त्रियों के द्वारा पति के वशीकरण हेतु किये गये चूर्णप्रयोग, मूलकर्म आदि के घातक दुष्परिणाम बतलाते हुए इनका प्रयोग सर्वथा वर्जित बतलाया गया है। विरक्त पति या पत्नी को अनुकूल बनाने के लिए पुराणों में होम, व्रतोपवास, देवताराधन आदि के हानिरहित विधान प्राप्त होते हैं। इस तरह हम पाते हैं कि प्राचीन काल के विभिन्न आचार्यों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए यथासंभव स्तुत्य प्रयास किया था।

६. मर्यादा का अनुपालन—

ऋग्वेद के प्राचीन सूक्तों के काल से ही भारत-भूमि में दाम्पत्य-मर्यादा की पूर्णतः प्रतिष्ठा रही है। वैदिक तथा लौकिक संस्कृत साहित्य में कुछ अपवादों को छोड़ कर ऐसे अनगिनत उद्धरण हैं जिनसे सूचित होता है कि पुरुषों को अपनी पत्नी से ही प्रेम रहता था। वे उसी के साथ यौन-सम्बन्ध करते थे और परायी स्त्रियों के प्रति उनका मन आकृष्ट नहीं होता था। धर्मशास्त्रों में पुरुषों के लिए धर्मपत्नी के साथ रति का विधान करते हुए परस्त्री मात्र को अगम्या बतलाया गया है। चारित्रिक स्खलन की आशङ्का को देखते हुए एकान्त स्थान में किसी भी स्त्री, भले ही वह माता, बहिन और पुत्री ही क्यों न हो, के निकट रहना वर्जित बतलाया गया है। ब्रह्मचारी और भिक्षु (यति) को भी यथासंभव स्त्रियों से दूर रहने के उपदेश दिये गये हैं। प्राचीन भारत में स्त्रियों से भी पूर्णतः दाम्पत्य मर्यादा के पालन की अपेक्षा की जाती थी। काम-भावना की सन्तुष्टि अथवा सन्तान-लाभ हेतु भी पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष के साथ संसर्ग करना कभी भी भारतीय नारी को अभीष्ट नहीं रहा है। प्राचीन भारतीय साहित्य में चित्रित अनेकानेक पतिव्रताओं का उज्ज्वल चरित्र आज भी नारी-समाज के लिए आदर्श-स्वरूप है। नारी को मर्यादित और कर्तव्य-निष्ठ बनाने के ध्येय से ही हमारे धर्मग्रन्थों में पातिव्रत्य-धर्म का श्लाघनीय उपदेश दिया गया है। चारित्रिक दृष्टि से स्त्रियों को तीन कोटियों में रखा गया है—(१) उत्तम स्त्रियाँ, जो स्वभावतः मर्यादित और पतिव्रता होती हैं; (२) मध्यम कोटि की स्त्रियाँ, जिनका चरित्र दुरा-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चार के अवसर के अभाव में सुरक्षित रहता है और (३) अधम स्त्रियाँ, जो कि स्वभावतः दुश्चरित्र बतलायी गयी हैं। प्राचीन साहित्य में निन्दापूर्ण वचन इन्हीं अधम कोटि की स्त्रियों को लक्ष्य करके कहे गये हैं। प्राचीन ग्रन्थों में अनेकत्र यह स्वीकार किया गया है कि कोई नारी जन्मना दुश्चरित्र नहीं होती, अपितु अनेक अवाञ्छित परिस्थितियाँ उसके शील नाश का कारण बनती हैं। हमारे शास्त्रों में नारी की शील रक्षा के लिए आवश्यक उपाय के रूप में सर्वप्रथम उसके स्वातन्त्र्य (स्वच्छन्द विचरण) आदि का नियमन किया गया है और उसे बाल्य, यौवन एवं वृद्धावस्था में क्रमशः पिता, पति और पुत्र एवं इनके अभाव में अन्य संरक्षकों के अधीन रहने को कहा गया है। उसको परतन्त्र बतलाने का तात्पर्य एक नागरिक के रूप में उसके मौलिक अधिकारों को प्रतिबन्धित करना नहीं, अपितु स्वच्छन्द विचरण की स्थिति में उसकी स्वाभाविक चञ्चलतावश सहज सम्भाव्य चारित्रिक स्खलन की प्रवृत्ति को नियन्त्रित करना था। पुनश्च, संभवतः इसके साथ ही यह सोचकर भी नारी को अस्वतन्त्र बतलाया गया था कि स्वतन्त्र रहने पर कदाचित् कोई नारी समुचित शिक्षा या यथेष्ट बौद्धिक विकास के अभाव में कोई असंवैधानिक या हानिप्रद आचरण भी कर सकती थी। नारी के शील-दूषण से क्या हानियाँ हो सकती हैं और उसकी चारित्रिक रक्षा कैसे की जा सकती है ? इस विषय में धर्मसूत्रों के काल से ही विचार होने लगा था। नारी के चरित्र की रक्षा के ध्येय से जो भी उपाय हो सकते थे उनका विवरण मनु आदि की स्मृतियों एवं पुराणों में किया गया था। प्रोषितपतिका तथा विधवा नारी के लिए खान-पान तथा सादे परिधान सम्बन्धी प्रतिबन्धपूर्ण नियम उनको चारित्रिक दूषण से बचाने के लिए ही बनाये गये थे। प्राचीन मनीषियों के द्वारा यौन-सम्बन्धों को मर्यादित बनाने के लिए जो भी नियन्त्रण स्त्री-पुरुषों पर लगाये गये थे उनका उद्देश्य समाज को जड़ीभूत करना नहीं, अपितु उसे अनैतिकता के संकट से बचाना तथा आनुवंशिक गुणों एवं जातीय रक्त की शुद्धि को बनाये रखना था।

७. अतिचार की प्रवृत्ति—

अद्यावधि अनेक इतिहासकार और समाजशास्त्री प्राचीन साहित्य के उन साक्ष्यों को प्रामाणिक नहीं मानते जिनमें नैतिक मूल्यों और चारित्रिक गुणों के क्रमिक ह्रास की चर्चा है, क्योंकि वे इन दोनों को ही सांस्कृतिक विकास का अनुगामी मानते हैं। इसीलिए अनेक इतिहासकारों ने यह भ्रान्त कल्पना की है कि आदिकाल में विवाह-संस्था के अभ्युदय से पूर्व अनियमित यौन-सम्बन्धों की अवस्था में मनुष्य किसी भी स्त्री के साथ यौन-सम्बन्ध कर लेता रहा होगा। ऐसे इतिहासकारों के द्वारा अपने मत के समर्थन में प्रदत्त अनेक उद्धरणों की समीक्षा इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में करने पर हमने पाया है कि उनके आधार पर उनकी धारणा की पुष्टि नहीं हो पाती। उनके द्वारा अपने मत के समर्थन में वैदिक एवं पौराणिक साहित्य से जो अन्य प्रमाण दिये गये हैं वे सुप्रतिष्ठित विवाह-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संस्था एवं मर्यादित दाम्पत्य के आदर्शों वाले समाज में से कुछ कामोन्मत्त स्त्री-पुरुषों की अतिचार की अस्थायी प्रवृत्ति के परिचायक मात्र हैं। अतिचार की प्रवृत्ति विषयक जो उदाहरण वैदिक और पौराणिक साहित्य में प्राप्त होते हैं उनमें से कुछ तो निकटाभिगमन (पिता-पुत्री, माता-पुत्र एवं भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध) के हैं तथा शेष परस्त्रीगमन आदि विषयक हैं। कुछ इतिहासकारों ने प्राचीन-समाज में निकटाभिगमन की प्रवृत्ति को सिद्ध करने के लिए उत्साहातिरेक दिखाया है। वैदिक तथा पौराणिक साहित्य में निकटाभिगमन सम्बन्धी जो उदाहरण हैं उनमें से अधिकांश अतिमानवीय-सृष्टि विषयक या प्रतीकात्मक या काल्पनिक कथाओं में उपनिबद्ध होने से अविश्वसनीय हैं और उनका भौतिक यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रजापति के द्वारा अपनी पुत्री के साथ यौन-सम्बन्ध के प्रयास का जो संकेत ऋग्वेद में है उसका तादात्म्य आकाशस्थ नक्षत्र-पिण्डों की गतिविध से स्थापित करते हुए भी ब्राह्मणग्रन्थों में उसे अकृतपूर्व और पापपूर्ण बतलाने के साथ ही व्याधरूपधारी रुद्र के द्वारा मृगी का रूप धारण करके पलायन करती हुई पुत्री का पीछा करने वाले मृगरूपधारी प्रजापति को बाण से बींधे जाने की कल्पना की गयी है, जिसे परवर्ती पौराणिक साहित्य में भी दुहराया गया है। इस अतिमानवीय धरातल की कथा के द्वारा मानव में संभाव्य ऐसी अनैतिकता की भावना के प्रशमन का प्रयास किया गया है। माता-पुत्र में यौन-सम्बन्ध विषयक जो वचन ब्राह्मणग्रन्थों में हैं वे विशुद्ध रूप से पशुओं के विषय में कहे गये हैं और उनका तात्पर्य मनुष्यों के लिए पुत्र के महत्त्व को व्यञ्जित करना मात्र है। पिता-पुत्री एवं माता-पुत्र में यौन-सम्बन्ध को सदैव वर्ज्य और पापपूर्ण माना जाता था। कुछ प्राचीन कथाओं में ऐसे यौन-सम्बन्धों की जो चर्चा है उसका उद्देश्य वासना के उद्दाम आवेग को नियन्त्रित करने में मनुष्य की दुर्बलता एवं विफलता का बोध कराते हुए ऐसा संयोग न घटित होने देने के लिए मनुष्य को चेतावनी देना भी हो सकता है।

भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध की पुष्टि हेतु कोई भी असंदिग्ध प्रमाण वैदिक साहित्य में नहीं है। यम-यमी संवाद से स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वैदिक काल से पूर्व भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध कभी भी नहीं होता था। पौराणिक साहित्य में दिव्य, मानसी एवं अतिमानवीय सृष्टि के मिथुनों या भ्राता-भगिनी में दाम्पत्य-भाव के जो वर्णन हैं वे मानवीय इतिहास से सम्बन्धित नहीं कहे जा सकते।[1] कुछ लेखकों ने पौराणिक वंशावलियों के संदिग्ध पाठ के आधार पर भ्रमवश या पूर्वाग्रहवश भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध के प्रचलन को सिद्ध करने का जो प्रयास किया है वह तत्तत् प्रसङ्गों के विवेचन के पश्चात् असंगत और अनुचित प्रतीत होने के कारण समादरणीय नहीं लगता।[2] कई

---

१. द्र०—पीछे, पृ० ४३-५। २. द्र० पीछे, पृ० २०३-४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विद्वानों ने विश्व के अनेक प्राचीन देशों में भ्राता-भगिनी में यौन-सम्बन्ध का प्रचलन बतलाया है। जैसा कि डॉ० हेमन्त चटर्जी ने बतलाया है बाली द्वीप में जुड़वाँ भाई-बहिनों में विवाह होता था।[१] डॉ० चन्द्र चक्रवर्ती ने लिखा है कि प्राचीन इजिप्ट के १८ वें राजवंश में नौ पीढियों तक भ्राता-भगिनी में विवाह होता रहा था। इसके एक सहस्र वर्ष पश्चात् वहाँ के शासक तोलेमिक्स ने भी यही परम्परा अपनायी थी। वहाँ की प्रसिद्ध सुन्दरी क्लीओपेत्रा के कुल में छः पीढी पूर्व तक भ्राता-भगिनी में विवाह प्रचलित था। पेरू का एक शासक भी ऐसे परिवार में उत्पन्न हुआ था जिसमें कई पीढियों से भ्राता-भगिनी में विवाह-सम्बन्ध प्रचलित था। पार्थियन जाति के लोग भी निकटतम सम्बन्ध में विवाह किया करते थे।[२] आस्ट्रिक जाति में भी प्रति-भ्रातृव्य विवाह का प्रचलन था।[३] पं० एस० के० दीक्षित ने अपने अध्ययन के निष्कर्ष में बतलाया है कि भ्राता एवं भगिनी में विवाह या यौन-सम्बन्ध प्राचीन इजिप्ट, रोम, चीन सुमेरु, येजिदी (एक अरब जाति), कडियक तथा आइरिश जातियों में भी होता था।[४] प्राचीन भारत में यद्यपि शाक्यों में आपत्कालिक व्यवस्था के रूप में भ्राता-भगिनी में यौन सम्बन्ध का प्रचलन हुआ था, किन्तु इसे निन्दा की दृष्टि से देखा जाता था। पुराणों के अनुसार पिता-पुत्री, भ्राता-भगिनी जैसे निकट-सम्बन्धियों में दुराचार प्राचीन काल में प्रचलित नहीं था, अपितु भविष्य में ऐसा हो सकता है।[५]

वैदिक संहिताओं में देवताओं की परस्त्री-कामिता की कोई चर्चा नहीं है, किन्तु इतिहास-पुराण में इन्द्र की परस्त्रीलम्पटता के कुछ प्रसङ्गों के अतिरिक्त सोम के द्वारा तारा के अपहरण एवं नौ देवियों के साथ सहवास और बृहस्पति के द्वारा भ्राता उतथ्य की पत्नी के साथ बलात्कार की चर्चा प्राप्त होती है। कदाचित् पुराणकारों की नयी कथा की उद्भावना की प्रवृत्ति के कारण भी किसी देवता का चरित्र आविल हुआ होगा। विष्णु के द्वारा शङ्खचूड के वेश में उसकी पत्नी तुलसी को दूषित करने की कथा से उनके मर्यादारक्षक स्वरूप को ठेस पहुँचती है। ब्रह्मपुराण (८९।४-१२) के अनुसार कार्तिकेय के द्वारा देवताओं की स्त्रियों का बलात् भोग किये जाने पर पार्वती ने उन स्त्रियों में अपने स्वरूप को प्रकट करके उसको लज्जित करके विरत किया था। यह कथा बाद में कल्पित प्रतीत होती है। ऐसी कथाओं से देवता के चरित्र पर अकारण आक्षेप आने के साथ ही सांस्कृतिक इतिहास के लिए भी त्रुटिपूर्ण और भ्रामक साक्ष्य उपस्थित होते हैं, अतः हमें ऐसे साक्ष्यों के तात्पर्य को समझे बिना उन्हें

---

१. द्र०—फार्म्स् ऑफ मैरेज इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० १२८।

२. सेक्स लाइफ इन एन्सेण्ट इण्डिया, पृ० ७२-३।

३. वही, पृ० ८१।

४. द मदर गोडेस, पृ० १६८।

५. द्र० पीछे, पृ० २०५ टि० २।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तद्वत् प्रमाण मान कर कोई निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए। भारतीय संस्कृति में देवताओं को प्रायः सदाचारी और मर्यादापालक बतलाया गया है। परस्त्रीधर्षण की जघन्य प्रवृत्ति असुरों में विशेष बतलायी गयी है। मनुष्य समाज में परायी स्त्रियों के शील को दूषित करने की प्रवृत्ति के उल्लेख ऋग्वेद संहिता से ही प्राप्त होने लगते हैं। किन्तु ऐसे उल्लेख वेदों में मात्र चार छः ही हैं। इस दुष्प्रवृत्ति के उल्लेख परवर्ती साहित्य के कथात्मक अंशों में अधिक प्राप्त होते हैं। रामायण में इन्द्र को व्यभिचार की प्रवृत्ति का प्रसार करने वाला, मनुस्मृति में राजा वेन को वर्णसाङ्कर्य को बढाने वाला तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में विश्वामित्र को स्त्री-पुरुषों (जार और नवज्ञा) के अनैतिक सम्बन्धों का प्रवर्तक बतलाया गया है। यद्यपि यौवनोन्माद से हतबुद्धि कोई भी पुरुष अनैतिक आचरण कर सकता था, किन्तु सामाजिक व्यवस्था और मर्यादा की रक्षा के लिए उत्तरदायी राजा तथा प्रशासन के अधिकार से सम्पन्न राजकर्मचारी भी परस्त्रीगमन करते थे। प्राचीन साहित्य में महापुरुषों के अतिचार की निन्दा नहीं की गयी है, परन्तु उनकी ऐसी दुष्प्रवृत्ति का अनुकरण सामान्य मनुष्य के लिए वर्जित बतलाया गया है।

ऋग्वेद में अग्रू-पुत्र, यजुर्वेद में कुमारी-पुत्र तथा अथर्ववेद में कानीन के उल्लेख एवं महाभारत में व्यास और कर्ण जैसे कानीन पुत्रों के जन्म के वृत्तान्त यह प्रकट करते हैं कि समस्त नैतिक प्रतिबन्धों के बावजूद कुछ पुरुष कन्यादूषण जैसा गर्हित दुष्कर्म भी करते थे। वैदिक काल में कन्याओं का विवाह युवावस्था में होने एवं उन्हें समनों में युवा मित्रों से मिलने की छूट के कारण किसी मनचले युवक के द्वारा किसी कन्या को भ्रष्ट करने की सम्भावना हो सकती थी। किन्तु परवर्ती काल में अप्राप्तरजस्का कन्याओं के विवाह के प्रचलन के पश्चात् वैसी सम्भावना नहीं रह गयी थी।

पाश्चात्य विद्वानों ने वैदिक काल में वेश्या-प्रथा को सिद्ध करने के लिए संहिताओं के जिन शब्दों को आधार माना है और जो तर्क प्रस्तुत किये हैं वे सभी असङ्गत हैं। वेदों में वेश्याप्रथा के प्रचलन का कोई ठोस प्रमाण नहीं है। पुराणों के अनुसार युद्ध में पराजित असुरों की स्त्रियों के लिए इन्द्र ने वेश्याधर्म विहित किया था। गणिका प्रथा का सूत्रपात तो स्पष्टतः बुद्ध के पश्चात् गणराज्यों के काल में हुआ था। यद्यपि वेश्यागमन को प्राचीन काल से ही युवकों के चरित्र और धन के नाश का हेतु माना जाता था, किन्तु उन दिनों तक वेश्याप्रथा समाज के लिए गम्भीर समस्या नहीं बनी थी।

प्राचीन भारतीय साहित्य में स्वयं चरित्रभ्रष्ट होने वाली स्त्रियाँ नहीं के बराबर बतलायी गयी हैं। उन्हें भ्रष्ट करने के लिए कामोन्मत्त पुरुष को ही प्रथम अपराधी बतलाया गया है। पौराणिक साहित्य में स्त्रियों की तीन कोटियाँ (उत्तम, मध्यम और अधम) बतलाते हुए तीसरी (अधम) कोटि की स्त्रियों में ही चारित्रिक-स्खलन की प्रवृत्ति बतलायी गयी है। ऐसी स्त्रियों के द्वारा भी स्वतः निकट-सम्बन्ध के पुरुष

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के साथ यौन-सम्बन्ध का कोई उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु कदाचित् कोई स्त्री देवर के साथ यौन-सम्बन्ध कर लेती थी। जार के पास जाने वाली स्त्री का उल्लेख ऋग्वेद में भी मिलता है। कामसूत्र (५।५।३२-६) में आन्ध्र, वात्सगुल्म, विदर्भ, अपरान्त एवं सौराष्ट्र जनपद की स्त्रियों के किसी निमित्त विशेष से राजकुल में प्रवेश तथा वहाँ से संभोगोच्छिष्ट होकर लौटने की चर्चा तथा बृहस्पति के द्वारा पूर्वी भारत की स्त्रियों को व्यभिचारत बतलाये जाने के विषय में यह कहा जा सकता है कि इस विषय में समस्त दोष स्त्रियों को ही नहीं दिया जाना चाहिए। प्राचीन साहित्य में दूषित परिवेश में रहने वाली अकुलीन, पितृगृह में रहने वाली, एवं कुरूप, वृद्ध या शक्तिरहित पुरुष की स्त्री, युवती प्रोषितपतिका तथा युवती विधवा स्त्रियों के चरित्र-भ्रष्ट होने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इतिहास-पुराण में कलियुग में पुरुषों, स्त्रियों और कन्याओं के अधिकाधिक चारित्रिक पतन की संभावनाएँ व्यक्त की गयी हैं और यहाँ तक कहा गया है कि इस युग में ऐसा अनाचार फैल जायेगा कि यह निर्णय करना कठिन हो जायेगा कि कौन स्त्री किसकी पत्नी है और कौन पुरुष किस स्त्री का पति है।[1] प्राचीन साहित्य में कुछ विशेष स्थितियों में पुरुषों को परायी स्त्रियों के सहवास की अनुमति देने वाले वचनों को नैतिकता की दृष्टि से क्षम्य नहीं कहा जा सकता।

८. अतिचार का दुष्परिणाम—

प्राचीन साहित्य में अतिचार के कुछ दृष्टान्तों के आधार पर यह कल्पना नहीं कर लेनी चाहिए कि समाज में यह क्षम्य था। ऋग्वेद में 'अग्रू' के पुत्र-त्याग तथा 'रहसू' के उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल से ही अनैतिक यौन-सम्बन्धों को समाज में सहन नहीं किया जाता था। परवर्ती साहित्य के साक्ष्यों से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि उन दिनों अतिचारी स्त्री-पुरुषों को समाज में क्षमा नहीं किया जाता था। प्रायः स्त्री का पति या संरक्षक उसको दूषित करने वाले दुराचारी का वध कर डालता था और वही अतिचारिणी नारी का यथोचित निग्रह अथवा त्याग करने में भी सक्षम था। किन्तु परवर्ती काल की कुछ पत्नियाँ पति के प्रतीकार में असमर्थतावश अथवा उसके प्रति देववत् समादर भाव के कारण उसके दुराचार को तूष्णीं सह लेती थी। दुराचारी और अनैतिक यौन-सम्बन्धों के दोषी स्त्री-पुरुषों को प्राचीन समाज में अत्यन्त गर्हित दृष्टि से देखा जाता था, उनकी निन्दा की जाती थी और सामाजिक एवं धार्मिक कृत्यों में उन्हें बहिष्कृत अथवा उपेक्षित करके उनका तिरस्कार किया जाता था। प्राचीन साहित्य में व्यभिचार के विविध सामाजिक दुष्परिणामों को गिनाने के साथ ही इसके सर्वाधिक घातक दुष्प्रभाव व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों के व्यक्तिगत जीवन पर आँके गये हैं। यद्यपि प्राचीन भारत में व्यभिचार की प्रवृत्ति अत्यल्प

१. देवीभाग० ९।८।४६; ब्रह्मवै० २।७।४८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होने के कारण समाज में किसी को आज के जैसे यौनरोग होने का भय नहीं था, किन्तु इसके अन्य अनेक दोषों से अतिचारी पुरुष पीडित होता ही था। अतिचारी पुरुष के इष्टापूर्त्त धर्म, आयुष्य, बल, यश और धन के नष्ट होने एवं मारे जाने तथा अतिचारिणी नारी के धर्मनाश और आक्षेपभाजन होने के साथ ही पारिवारिक जनों द्वारा परित्यक्त होने की भी आशंका रहती थी। अतिचार को पाप, पतन, नरक-यातना और पुनर्जन्म में नाना-कुत्सितयोनियों के पश्चात् पुनः मनुष्य योनि पाने पर भी कष्ट-प्राप्ति का हेतु बतला कर भारतीय मनीषियों ने सामान्य जन के मनोभावों के नियमन के द्वारा इसकी दुष्प्रवृत्ति को हतोत्साहित करके दाम्पत्य-मर्यादा की प्रतिष्ठा बनाये रख कर जातीय चरित्र की रक्षा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, क्योंकि प्राचीन समाज के अधिकांश धर्मभीरु नर-नारी सामाजिक बहिष्कार, धर्मनाश, पाप की प्राप्ति, नरक एवं पुनर्जन्म में प्राप्त होने वाले कष्टों के भय से ही मर्यादित रहते थे।

९. अतिचार का प्रायश्चित्त एवं दण्ड—

भारतीय ऋषियों ने सुदूर अतीत में संभवतः ऋग्वैदिक काल की आरम्भिक अवस्था के पूर्व ही इस तथ्य का साक्षात्कार कर लिया था कि मनुष्य को अपने असत्कर्म का फल अपने जीवन काल में, मृत्यु के समय, परलोक में तथा पुनर्जन्म में भी भोगना पड़ता है। इस सिद्धान्त पर दृढ विश्वास के कारण ही प्राचीन काल के मनुष्य सदाचार और सामाजिक मर्यादाओं का पालन करते थे। किन्तु कदाचित् किसी प्रलोभन वश बुद्धि विचलित हो जाने से या अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण न रख पाने पर मनुष्य कोई त्रुटि कर सकता था। फलतः उसकी नियति से दुष्कर्म का दुष्परिणाम तो जुड़ता ही था, साथ ही उसे समाज में लाञ्छित, तिरस्कृत और उपेक्षित भी होना पड़ता था। प्रायश्चित्त की धारणा इस मनोवैज्ञानिक चिन्तन पर आधारित है कि कोई मनुष्य अपने त्रुटिपूर्ण आचरण के कारण सदा के लिए दोषी नहीं हो जाता। पाप-विशेष के लिए दोषी और पश्चात्तापान्वित मनुष्य के चारित्रिक विकार का संशोधन तथा उसके दुष्कर्म के दुष्प्रभाव का अपाकरण ही प्रायश्चित्त व्यवस्था का उद्देश्य रहा है। बौधायन जैसे बहुमान्य धर्मसूत्रकार ने कहा है कि कोई मनुष्य युवावस्था में चित्तविभ्रम के कारण चाहे जब जैसा भी सदसद् आचरण करे, वह अपनी शेष अवस्था में यदि सदाचारी रहता है तो उसको अपने द्वारा पहले किये गये असदाचरण का दुष्परिणाम नहीं भोगना पड़ता।[१] किन्तु पूर्वतः किये गये पापाचरण के दुष्परिणाम के परिहार के लिए बौधायन तथा अन्य धर्मसूत्रकार भी प्रायश्चित्त करना आवश्यक समझते थे, अन्यथा वे विभिन्न पापों के लिए प्रायश्चित्तों के विधान ही न किये होते।

---

१. यद् यौवने चरति विभ्रमेण सद् वाऽसद् वा यादृशं वा यदा वा।
उत्तरे चेद् वयसि साधुवृत्तस्तदेवास्य भवति नेतराणि ॥
बौ० ध० सू० १।५।१०।३३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दाम्पत्य मर्यादा का अतिक्रमण एक तो दम्पती के द्वारा एक-दूसरे के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह न करने एवं एक-दूसरे के अकारण त्याग पर होता है और दूसरे किसी अन्य के साथ अनैतिक यौन-सम्बन्ध पर। जितने प्रायश्चित्त विधान पुरुष के लिए पत्नी के प्रति कर्तव्य च्युत होने या उसके अकारण त्याग पर प्राप्त होते हैं, उतने कर्तव्यच्युत पत्नी के विषय में नहीं प्राप्त होते। इसका एक कारण यह हो सकता है कि प्राचीन काल की नारियाँ यथासम्भव अपने कर्तव्यों का निष्ठा से पालन करती थी। अतिचार के प्रायश्चित्त विधानों में प्राचीन आचार्यों ने पाप की गुरुता-लघुता, दूषित स्त्री के साथ अतिचारी पुरुष के सम्बन्ध की निकटता या दूरी, गम्यात्व-अगम्यात्व तथा वर्ण, जाति, अवस्था, चरित्र आदि अनेक तथ्यों को ध्यान में रखा है। अतः समान परिस्थितियों में व्यक्ति विशेष के अनुसार और समान व्यक्तियों के लिए भी परिस्थिति विशेष के अनुसार प्रायश्चित्त की मात्रा में अन्तर पाया जाता है। निकटाभिगमन के लिए प्रायः मरणान्तिक प्रायश्चित्त विहित है। फुफेरी, ममेरी या मौसेरी बहिन के साथ देशविशेष या जातिविशेष में विवाह-सम्बन्ध का प्रचलन देखते हुए इनके साथ यौन-सम्बन्ध के प्रायश्चित्त रूप में प्रायः चान्द्रायण का विधान किया गया है। परस्त्रीगमन का प्रायश्चित्त उस स्त्री के उच्च या निम्न वर्ण में जन्म अथवा उसके पति के वर्ण एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुसार अधिक या कम हो सकता था। दुष्कर्म के अभ्यास (पुनरावृत्ति) पर अथवा दुष्कर्म के फलस्वरूप परस्त्री के गर्भिणी हो जाने पर प्रायश्चित्त की मात्रा अधिक विहित की गयी है। कन्यागमन के लिए प्रायः कठोरतम तथा वेश्यागमन के लिए मृदु प्रायश्चित्त की व्यवस्था दी गयी है। स्त्रियों के लिए कायिक ही नहीं, मानसिक और वाचिक व्यभिचार पर भी प्रायश्चित्त विहित था। बलात् दूषित स्त्री के लिए मृदु प्रायश्चित्त का विधान प्राप्त होता है। स्त्री और पुरुष दोनों के लिए अकामतः कृत व्यभिचार पर कम तथा कामतः कृत व्यभिचार पर अधिक प्रायश्चित्त विहित किया जाता था। रहस्य (गुप्त) पाप के लिए रहस्य प्रायश्चित्त की व्यवस्था का लाभ प्रायः उसके ज्ञाता द्विज ही उठा सकते थे।

समस्त संवैधानिक सद्व्यवस्थाओं, उच्च चारित्रिक आदर्शों और प्रचुर सदुपदेशों के होते हुए भी किसी देश-काल में समाज के कुछ स्त्री-पुरुष दुराचारी हो सकते हैं। उन्हें नियन्त्रित करने के लिए राजा का अस्तित्व प्राचीन काल से ही आवश्यक माना जाता रहा है। राजदण्ड आदिकाल से ही समाज में मर्यादा के अतिक्रमण को रोकने का अन्तिम अस्त्र रहा है। दण्ड के भय से ही स्त्री-पुरुष मर्यादा का पालन करते रहे हैं। यद्यपि स्मृतिकारों को दम्पती के पारस्परिक कलह आदि को निपटाने के लिए राजा का हस्तक्षेप अभीष्ट नहीं था, किन्तु कर्तव्यच्युत दम्पती के लिए राजदण्ड के विधान स्पष्टतः कौटिल्य अर्थशास्त्र, स्मृतियों और पुराणों में दिये गये हैं। विज्ञानेश्वर ने (याज्ञ० २।२९५ के प्राक्कथन में मिताक्षरा में) स्पष्ट कहा है कि यद्यपि पति-पत्नी का

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परस्पर वादी-प्रतिवादी बन कर राजा के समक्ष वाद उपस्थापन प्रतिषिद्ध है, तथापि राजा को प्रत्यक्ष अथवा कर्ण-परम्परया भी उनके पारस्परिक अतिचार का ज्ञान हो जाय तो वह दण्ड-भय आदि से उन्हें उनके स्वधर्म में स्थापित करे अन्यथा उसे दोष लगता है। इस तरह राजा का यह दायित्व रहा है कि वह दम्पती को स्वधर्म (स्वकर्तव्य) से विचलित होने से रोके तथा अतिचारी स्त्री-पुरुषों को दण्डित करके उन्हें मर्यादित रखे।

प्राचीन सामाजिक परिस्थितियों में अतिचार की घटनाओं के अनुसार यथोचित दण्डविधान धर्मशास्त्रों में प्राप्त होते हैं। प्रायः निकटाभिगमन करने वाले, उच्च वर्ण की, अनिच्छुक और साध्वी स्त्री तथा उच्च वर्ण की कन्या को दूषित करने वाले पुरुष के लिए और निकट-सम्बन्ध के पुरुष अथवा अन्त्यज के साथ कामतः व्यभिचार करने वाली नारी के लिए भी प्राणान्तिक दण्ड, पारस्परिक सहमति से व्यभिचार करने वाले स्त्री-पुरुषों के लिए अल्प दण्ड, अधमवर्णागमन पर भी अल्प दण्ड की व्यवस्था पायी जाती है। ब्राह्मण को वधदण्ड के स्थान पर सर्वस्व-हरण पूर्वक निर्वासित किया जा सकता था। किन्तु ब्राह्मण अपने दुष्कर्म के लिए स्वेच्छया मरणान्तिक प्रायश्चित्त कर सकता था। प्रायश्चित्त-व्यवस्था और दण्ड-व्यवस्था में अतिचारी स्त्री-पुरुषों का शोधन करके समाज को मर्यादित रखने में उद्देश्यगत समानता और वर्णाश्रम व्यवस्था को सुरक्षित रखने आदि के रूप में दृष्टिकोण की समानता भी लक्षित होती है।

सृष्टि के आरम्भ के साथ ही विवाह-संस्था का अभ्युदय बतलाने वाले भारतीय साहित्य में आरम्भिक अवस्था से ही मर्यादित दाम्पत्य जीवन का चित्रण प्राप्त होता है। दाम्पत्य जीवन को सुखपूर्ण बनाने के लिए ही विवाह को एक संस्कार का रूप दिया गया था और दाम्पत्य सम्बन्ध को अविच्छेद्य माना गया था तथा दम्पती को पारस्परिक कर्तव्यों के निर्वाह करने एवं अतिचार की प्रवृत्ति को वर्जित करने के लिए यथासम्भव सभी तरह के उपदेश दिये गये थे। अतिचारी स्त्री-पुरुषों के दुराचार का वर्णन उनकी निन्दा को ध्वनित करके समाज को दुष्प्रवृत्तियों से सजग करने के ध्येय से ही किया जाता था। अतः ऐसे वर्णन कदाचित् काल्पनिक और अतिरञ्जनापूर्ण भी हो सकते थे। कलियुग में दाम्पत्यमर्यादा के अतिक्रमण विषयक भविष्यवाणियों को पुराणकारों के द्वारा बीते युगों के कटु अनुभवों की प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति मात्र नहीं मान लेना चाहिए, क्योंकि ऐसी भविष्यवाणी करने वाले हमारी तरह सामान्य मनुष्य नहीं थे, अपितु वे यौगिक-शक्तियों एवं अतीन्द्रिय अनुभवों की क्षमता से सम्पन्न ऋषि-मुनि थे। उन्हीं के वचनों को पुराणकारों ने अपने वर्ण्य-विषय से सङ्गति के कारण पुराणों में जोड़ा था। दुराचार से संभाव्य जितने और जैसे दुष्परिणामों की चर्चा प्राचीन साहित्य में प्राप्त होती है, प्रायः वैसे ही और कदाचित् उससे भी अधिक दुष्परिणाम

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आज के समाज में भी हो सकते हैं। आधुनिक युग में मनुष्य को प्रायः पाप, नरक-यातना और पुनर्जन्म में कष्ट की कल्पना से कोई भय नहीं रह गया है और न वह अपने दुष्कर्म का कोई प्रायश्चित्त करना चाहता है। आज कानून से भी सन्देह की छूट का लाभ दण्डनीय अपराधी को मिल जाता है। अतः ऐसी परिस्थितियों में प्रशासन यौन-सम्बन्धों को मर्यादित बनाने में कितना सफल हो सकता है? आधुनिक परिस्थितियों में धनार्जन के लिए परिवार से दूर रहने वाले, होटल-संस्कृति में पलने वाले, चित्रपट के अश्लील दृश्यों तथा सस्ते उपन्यासों के प्रभाव से भ्रमित चित्तवृत्ति वाले युवकों तथा पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित कुछ युवतियों को भी कदाचित् उन्मुक्त यौन-सम्बन्ध सुखद प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु इससे एक तो उनको स्थायी सुख नहीं, अपितु उसका तात्कालिक मिथ्या आभास ही मिल सकता है, दूसरे उनके कदाचार से सच्चरित्र युवक-युवतियों की चित्तवृत्ति भी दुष्प्रभावित हो सकती है, तीसरे इसके दुष्परिणाम स्वरूप वंश-परम्परा की विशुद्धि तथा भावी पीढी की चारित्रिक निष्ठा संदिग्ध हो सकती है और परिणामतः समाज का दीर्घकालिक अहित हो सकता है। अतः ऐसी प्रवृत्ति को यथासंभव नियन्त्रित करते हुए दाम्पत्यमर्यादा की अखण्ड प्रतिष्ठा बनाये रखने में ही किसी देश, जाति और समाज का हित निहित है। इस विषय में अपने सांस्कृतिक इतिहास से यथोचित शिक्षा ग्रहण करके उसके आधार पर नये सन्दर्भों में युवापीढी को दिशा-निर्देश देते हुए मर्यादित बनाना प्रशासन (सरकार) और शिक्षा-संस्थाओं का भी नैतिक दायित्व हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आधारग्रन्थानुक्रमणी

अग्निपुराणम् : (१) गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता, (२) नागपब्लिसर्स, दिल्ली, १९८५, (३) हिन्दी सा० स०, प्रयाग १९८५

अथर्ववेदसंहिता : (१) सायणभाष्य सहित होशियारपुर १९६१

(२) सुबोधभाष्य स्वाध्यायमण्डल, पारडी १९५८-१९६०

अभिज्ञानशाकुन्तलम् : (कालिदासग्रन्थावली में संकलित, सं० डा० रेवाप्रसाद द्विवेदी) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय १९८६

अमरकोश : सं० सत्यदेव मिश्र क्वालालम्पुर १९७२

अर्थशास्त्रम् : सं० आर० पी० कांग्ले बम्बई १९६९

अवन्तिसुन्दरी : दण्डीकृत त्रिवेन्द्रम् १९५४

अष्टाङ्गसंग्रह : वाग्भट कृत निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९५१

अष्टाध्यायीसूत्रपाठः रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ १९७७

आग्निवेश्यगृह्यसूत्रम् त्रिवेन्द्रम् १९४०

आपस्तम्ब-धर्मसूत्रम् : (सं० जार्ज बूल्हर) B. O. R. I. पूना १९३२

ऋग्वेदसंहिता : (१) मूल, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (२) सायण भाष्य सहित, १-५ भाग वैदिकसंशोधन मण्डल, पूना १९३३-१९५१

(३) स्कन्दस्वामी, उद्गीथ, वेङ्कटमाधव एवं मुद्गल भाष्य सहित, होशियारपुर

उत्तररामचरितम् : मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी १९६३

१०८ उपनिषदें संस्कृति संस्थान, बरेली १९६४

एकादशोपनिषदः मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९६६

ऐतरेय-आरण्यकम् आनन्दाश्रम, पूना १९५९

ऐतरेयब्राह्मणम् भाग १-२ : सं० डॉ० मालवीय, तारा पब्लिकेशन्स् वाराणसी १९८०

कथासरित्सागर मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७७

कर्पूरमञ्जरी चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९६३

काठकसंहिता स्वाध्याय मण्डल, पारडी

कात्यायन श्रौतसूत्रम् चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९७२

कादम्बरी मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली (पूर्वार्द्ध) १९७६ (उत्तरार्द्ध) १९७७

कामन्दकीयनीतिसारः (१) आनन्दाश्रम, पूना (२) वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई सं० २००९

कामसूत्रम् चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९८२

काव्यालङ्कारः : रुद्रटकृत मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९८३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किरातार्जुनीयम् — किताबमहल, इलाहाबाद १९५८
कुट्टनीमतम् — वाराणसी १९६१
कुन्दमालानाटकम् : दिङ्नागकृत — साहित्य भण्डार, मेरठ १९७२
कुमारसम्भवम् (कालिदास ग्रन्थावली) : सं० रेवाप्रसाद द्विवेदी, का.हि.वि.वि. १९८६
कुलार्णवतन्त्र — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७५
कूर्मपुराणम् (१)गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता (२)काशिराज न्यास, वाराणसी १९७१
कृत्यकल्पतरु—व्यवहारकाण्डम् — बड़ोदा १९५३
कौशिकसूत्र — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७२
कौशीतकिगृह्यसूत्रम् — वाराणसी १९०८
क्षेमेन्द्र-लघुकाव्यसंग्रह । सं० डॉ० आर्येन्द्र शर्मा — हैदराबाद १९६१
गरुडपुराणम् (१) पण्डित पुस्तकालय काशी १९६३ (२) नागपब्लिसर्स, दिल्ली १९८४
गाथासप्तशती — चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९६१
गृह्यसूत्रसंग्रह — संस्कृति संस्थान, बरेली १९७२
गौतमधर्मसूत्रम् — आनन्दाश्रम, पूना १९६६
चरकसंहिता — चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९६२
छान्दोग्योपनिषत् (१०८ उपनिषदें, ज्ञानखण्ड) — संस्कृति संस्थान, बरेली १९६४
जातकमाला : आर्यशूर कृत — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७१
तापसवत्सराजनाटकम् : अनङ्गहर्षकृत — साहित्य भण्डार, मेरठ १९६६
तिलकमञ्जरी : धनपालकृत — बोटाद, सौराष्ट्र सं० २००८
तैत्तिरीय आरण्यक — आनन्दाश्रम, पूना १९६७
तैत्तिरीयसंहिता : (१) मूल, स्वाध्याय मण्डल, पारडी
(२) सायण भाष्य सहित, आनन्दाश्रम, पूना
दशकुमारचरितम् — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७४
दशरूपकम् — चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी १९७९
देवीभागवतपुराणम् — (१) पण्डित पुस्तकालय, काशी
(२) चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली १९८६
नवसाहसाङ्कचरितम् : पद्मगुप्तकृत — चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी सं० २०२०
नागानन्दनाटकम् — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७०
नाट्यशास्त्रम् — भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली १९८३
नारदपुराणम् — नागपब्लिसर्स, दिल्ली १९८४
नारदस्मृति : स्मृतिसन्दर्भ भाग १ में संकलित — गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता
निघण्टु तथा निरुक्त : सं० लक्ष्मण सरूप — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९६७
निर्णयसिन्धु — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९४९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नीतिकल्पतरु : क्षेमेन्द्रकृत — BORI, पूना — १९५६
नीतिशृङ्गारवैराग्यशतकत्रयम् : भर्तृहरिकृत — वाराणसी
नैषधीयचरितम् — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई — १९५५
पञ्चतन्त्रम् — चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी — सं० २०१५
पञ्चसायक : ज्योतिरीश्वरकृत — मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर
पद्मपुराणम् (१) गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता (२) आनन्दाश्रम पूना (३) नाग पब्लिसर्स, दिल्ली
पराशरस्मृति भाग १-२ (पराशरमाधव) — एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता — १९७३-७४
पारस्करगृह्यसूत्रम् — भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी
प्रबोधचन्द्रोदयनाटकम् — चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी — १९५५
प्रशस्तपादभाष्यम् न्यायकन्दलीहितमूस — स० सं० वि०, वाराणसी — १९७७
प्रसन्नराघवनाटकम् : जयदेवकृत — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली — १९७०
प्रायश्चित्त खण्ड : हेमाद्रि — चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी — १९८५
प्रायश्चित्तमयूख : नीलकण्ठ — गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई — १९४०
प्रायश्चित्तविवेक : शूलपाणिकृत — कलकत्ता
प्रियदर्शिका नाटिका — चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी — १९७६
बुद्धचरितम् — चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी — १९७२
बृहत्संहिता — वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई — १९५३
बृहदारण्यकोपनिषत् — गीताप्रेस, गोरखपुर
बृहद्देवता — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली — १९६५
बृहद्धर्मपुराण — चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी — १९७४
बृहस्पतिस्मृति — बड़ोदा — १९४१
बौधायनधर्मसूत्रम् — चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी — १९७२
ब्रह्मपुराणम् (१) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १९७६ (२) नाग पब्लिसर्स, दिल्ली
ब्रह्मवैवर्तपुराणम् (१) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई (२) नाग पब्लिसर्स, दिल्ली (३) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली — १९८४-८५
ब्रह्माण्डपुराणम् — मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी — १९७३
भविष्यपुराणम् — वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई — १९५९
भागवतमहापुराणम् (१) श्रीधरीसहितमोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी १९८३ (२) हिन्दी व्याख्या सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर
भासनाटकचक्रम् (प्रथम संस्करण) — चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
मत्स्यपुराणम् (१) आनन्दाश्रम, पूना १९८१ (२) मेहरचन्द लछमनदास, दिल्ली
मदनमहार्णवः — बड़ोदा — १९५३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मनुस्मृति (१) टीकासप्तकोपेत, भारतीय विद्याभवन, बम्बई १९८५
(२) सानुवाद, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली १९७१
महाकालसंहिता गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद
महाभारत (१) पाठसमीक्षात्मक संस्करण, पूना (२) नीलकण्ठी सहित पूना, १९२९-३३ (३) गीताप्रेस, गोरखपुर[1]
महाभाष्यम् : पतञ्जलिकृत हरयाणा साहित्य संस्थान, झज्झर १९६३
महावीरचरितम् कलकत्ता १९०६
मानसोल्लास : सोमेश्वरकृत बड़ोदा १९३९
मार्कण्डेयपुराणम् नाग पब्लिसर्स, दिल्ली
मालतीमाधवनाटकम् चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९७१
मालविकाग्निमित्रम् (कालिदास ग्रन्थावली) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय १९८६
मुद्राराक्षसनाटकम् चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९६१
मृच्छकटिकम् चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९६२
मेघदूतम् (कालिदास ग्रन्थावली) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय १९८६
मैत्रायणीसंहिता स्वाध्यायमण्डल, पारडी
याज्ञवल्क्यस्मृति (मिताक्षरायुक्त) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९४९
रघुवंशमहाकाव्यम् (कालिदास ग्रन्थावली) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय १९८६
रतिरहस्यम् : कोक्काकक्कृत काशी १९२२
रत्नावलीनाटिका कलकत्ता १९४४
राजतरङ्गिणी पण्डित पुस्तकालय, काशी १९६०
राजमार्तण्ड : भोजकृत वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई सं० १९५३
रामायण (१) पाठसमीक्षात्मक संस्करण, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ोदा
(२) सानुवाद, गीताप्रेस, गोरखपुर,[1]
लिङ्गपुराणम् मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९८०
वराहपुराणम् (१) नागपब्लिसर्स, दिल्ली (२) काशिराज न्यास, वाराणसी १९८१
वसिष्ठधर्मसूत्रम् BORI, पूना १९३०
वामनपुराणम् (१)नागपब्लिसर्स, दिल्ली १९८३ (२)काशिराज न्यास वाराणसी १९६७
वायुपुराणम् नागपब्लिसर्स, दिल्ली
वाराहगृह्यसूत्रम् मुजफ्फरपुर १९३४
वासवदत्ता : सुबन्धुकृत चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९६७
विक्रमाङ्कदेवचरितम् : बिल्हणकृतम् काशी हिन्दू विश्वविद्यालय सं० २०१५
विक्रमोर्वशीयम् (कालिदास ग्रन्थावली) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय १९८६

[1] प्रस्तुत ग्रन्थ में बहुशः प्रयुक्त।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विद्धशालभञ्जिका कलकत्ता १९८३
विवादरत्नाकरः : चण्डेश्वरकृत कलकत्ता १९३१
विष्णुपुराणम् गीताप्रेस, गोरखपुर
विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् नागपब्लिसर्स, दिल्ली १९८५
विष्णुस्मृति । केशववैजयन्ती सहित अड्यार, मद्रास १९६४
वेणीसंहारनाटकम् मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७६
व्यक्तिविवेकः चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९६४
शतपथब्राह्मणम् : वेबर सम्पादित चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९६४
शांखायनगृह्यसंग्रह वाराणसी १९०८
शिवमहापुराणम् (१) पण्डित पुस्तकालय, काशी, (२) नागपब्लिसर्स, दिल्ली १९८६
शिशुपालवध-महाकाव्यम् चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९६१
शुक्रनीतिः चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९६८
शुक्लयजुर्वेदसंहिता : उवटमहीधरभाष्योपेत मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७१
समयमातृका निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९२५
सर्वदर्शनसंग्रहः चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९६४
साम्बपुराणम् कृष्णदास अकादमी, वाराणसी १९८३
सुश्रुतसंहिता चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९६६
सौन्दरनन्दम् मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली सं० २०३१
सौरपुराणम् आनन्दाश्रम, पूना १९२४
स्कन्दमहापुराणम् (१) गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता (२)नागपब्लिसर्स, दिल्ली १९८४
स्मृतिचन्द्रिका : देवणभट्ट कृत मैसूर
स्मृतिसन्दर्भ भाग १-६ गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता १९५२-५५
हरिवंशपुराणम् (१) गीताप्रेस, गोरखपुर (२) नागपब्लिशर्स, दिल्ली १९८५
हर्षचरितम् चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९७२
हितोपदेशः चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

●

सहायक ग्रन्थसूची

अग्निहोत्री, प्रभुदयाल : पतञ्जलिकालीन भारत पटना १९६३
उपाध्याय, कृष्णदेव : हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास वाराणसी
उपाध्याय, बलदेव : पुराण विमर्श, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९६५
,, : वैदिक साहित्य और संस्कृति शारदा संस्थान, वाराणसी १९६३
,, : संस्कृत साहित्य का इतिहास खण्ड १-२, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उपाध्याय, रामजी : भारत की संस्कृति साधना इलाहाबाद १६६७
: भारतीय संस्कृति का उत्थान इलाहाबाद १६७८
उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन
मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १६६१
काणे, पी० वी० : धर्मशास्त्र का इतिहास, १-५ भाग (अनु० अर्जुन चौबे), लखनऊ
कापडिया, के० एम० : भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार
मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १६७७
गैरोला, वाचस्पति : संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी '६०
चित्राव, सिद्धेश्वरशास्त्री ; भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोश पूना १६६४
जैन, कोमलचन्द : बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन अमृतसर १६६७
ज्ञानी, शिवदत्त : वेदकालीन समाज चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १६६७
पाण्डेय, राजबली : हिन्दू संस्कार चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १६७८
पाण्डेय, विमलचन्द्र : भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास इलाहाबाद १६६०
भट्टाचार्य, सुखमय : महाभारत कालीन समाज इलाहाबाद १६६६
भवालकर, वनमाला : महाभारत में नारी सागर सं० २०२१
मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पटना १६७४
: ग्यारहवीं सदी का भारत वाराणसी १६६८
मिश्र, राजछत्र : अथर्ववेद में सांस्कृतिक तत्त्व इलाहाबाद १६६८
मैकडोनल : संस्कृत साहित्य का इतिहास, वैदिकयुग, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी '६२
राय, सिद्धेश्वरी नारायण : पौराणिक धर्म एवं समाज इलाहाबाद १६६८
विद्यालंकार, सत्यकेतु : प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिकयुग मसूरी १६७६
विन्टर्निट्स् : भारतीय साहित्य का इतिहास (हिन्दी अनुवाद) भाग १, खण्ड १-२,
तथा भाग ३, खण्ड १ मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
वियोगी, एम० एल० : जातक-कालीन भारतीय संस्कृति पटना १६५८
वेदालङ्कार, हरदत्त : हिन्दू परिवार मीमांसा दिल्ली १६७३
: हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास लखनऊ १६७०
व्यास, शान्तिकुमार नानूराम : रामायण कालीन समाज दिल्ली १६६४
शर्मा, चित्रा : संस्कृत नाटकों में समाज चित्रण दिल्ली १६६६
शास्त्री, शिवराज : ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध मेरठ १६६२
सिंह, मदनमोहन : बुद्धकालीन समाज और धर्म पटना
सूर्यकान्त : वैदिककोश काशी हिन्दू विश्वविद्यालय १६६३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

SECONDARY SOURCES

Altekar, A. S. : The Position of Women in Hindu Civilization, Delhi, 1978.
Apte, V. M. : The Sacrament of Marriage in Hindu Society, Delhi. 1978.
: Social & Religious Life in Gṛhyasūtras, Bombay, 1954.
Avasthi, Abha : Hindu Marriage in Continuty and Change Luck.
Bandyopadhyaya, S : Foreign Accounts of Marriage, Calcutta,'73.
Basu, Jogiraj : India of the Age of the Brahmanas, Calcutta, '69.
Briffault, Robert : The Mothers, Vol. I, London, 1952.
Cakravarti, Candra : Sex Life in Ancient India, Calcutta, 1963.
Chakladar, H. C. : Social Life in Ancient India, Calcutta, 1975.
Chatterjee, C. K. : Studies in the Rites and Rituals of Hindu Marriage in Ancient India., Calcutta, 1978.
Chatterjee, Heramb : (1) Studies in Some Aspects of Hindu Sanskaras in Ancient India in the light of Sanskaratattva of Raghunandana, Calcutta, 1967.
(2) The Social Background of the Forms of Marriage in Ancient India, Calcutta, 1972.
Chatterjee, K. N. : Hindu Marriage–Past & Present, Varanasi, '72
Chaudhuri, J. B. : The Position of Women in Vedic Ritual, Calcutta, 1956.
Dange, S.A. : (1) Cultural Sources from the Veda, Bombay, 1977.
(2) Sexual Symbolism from the Vedic Ritual, Delhi, 1979.
DAS, A. C. : Ṛgvedic Culture, Indological Book House, Varanasi.
Das, R.M.: Women in Manu & his Seven Commentators, Vns. '62.
: Crime & Punishment in Ancient India, Bodhgaya, '82.
Dikshit, Ratnamayidevi : Women in Sanskrit Dramas, Delhi, 1964.
Dikshit, S. K. : The Mother Goddess, Delhi.
Goodsell, W. : A History of Marriage & Family, New York, 1934.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

Griffith, R.T.H. : The Hymns of the Ṛgveda, M.L.B.D. Delhi, '76
Gupta, D.K. : Society & Culture in the time of Dandin, Delhi, '72
Horner, I.B. : Women Under Primitive Buddhism, Delhi, 1975.
Kane, P. V. : History of Dharmasastra, 1-5 Vols. 2nd ed. Poona, 1968-1977.
Kantawala, S. G. : Cultural History from the Matsya Purana, Baroda, 1964.
Kapadia, K. M. : Hindu Kinship, Bombay, 1947.
Karambelkar, V.W. : The Atharva Vedic Civilization, Nagpur, '59
Karve, Irawati : Kinship Organisation in India, Poona, 1953.
Krishnamacharjar, M. : History of Classical Sanskrit Literature, M.L.B.D., Delhi, 1974.
Macdonell, A, A. & Keith, A. B. : Vedic Index, Delhi, 1967.
Majumdar, R. C. : The Vedic Age Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, 1965
Meyer, J. J. : Sexual Life in Ancient India, Delhi, 1971.
Mitra, Veda : Happy Married Life in Ancient India, Delhi, 1965.
Oldenberg, Herman : The Grihya-Sutras (S.B.E. Vol.29-30) Delhi '73
Pargiter, F. E. : Ancient Indian Historical Tradition, Delhi, 1972.
Ram Gopal : India of Vedic Kalpa Sutras, Delhi, 1959.
Rao, R. R. : The Aryan Marriage, Delhi, 1975.
Sarcar, D. C. : Some Aspects of Earliest Social History of India, London, 1928.
Sengupta, Nilakshi : Evolution of Hindu Marriage, Bombay, 1965
Singh, S. D. : Polyandry in Ancient India, Delhi, 1978.
Upadhyaya, B. S. : Women in Ṛegveda, Delhi, 1974.
Varadachari, V. : A History of the Sanskrit Literature, Allahabad.
Vyas, S. N. : India in the Ramayana Age, Delhi, 1967.
Westermarck : (1) History of Human Marriage, London.
(2) Future of Marriage in Western Civilisation.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शब्दानुक्रमणिका

अगम्य २७९, २८०, २८३, ३१२, ३२४।

अगम्या १६२, २४८, २५१, २७०, २७८ -गमन १५८, १६२, १९८, २०५, २६१, २६२, २६४, २७०, २७५… २७९, २९५…२९९, ३२२, -गामी २७०, २७७, २८१, २८३, २८७, २९८, ३१८।

अग्नि २०९, २१०, -प्रदक्षिणा १०९, ११४, १२२, -साक्षित्व ११२, ११४, १२२, १३०, २१८।

अग्रज ९४, २०६…२०८, २६२, २७६।

अग्रू २२०, २२१, २२३, २३०, २५५।

अतिक्रमण ६, ८, ११, १४०, १५७, १६८, १७५, २७४, २७९, २८१, २८९, ३०८, ३२१, ३४४, ३६६, ३६७।

अतिचार, व्यभिचार २०, १२९, १४०, १५३, १५५, १५७, १६५, १७६, १९२, २१३…२१८, २३३…२३५, २३७, २३९, २४०, २४२…२४८, २५२…२५५, २५७…२६०, २६४, २६६…२७०, २७२…३०६, ३०८…३१८, ३२२…३२४, ३२६…३३१, ३३४, ३३६…३३८, ३४०…३४३, ३४५, ३४६, ३४८ …३५०, ३६०…३६७।

अतिचारिणी, व्यभिचारिणी १७९, २२०, २३७, २४१, २४४, २५५, २५७, २५८, २६५…२६७, २७४, २७५, २७९, २८४, २८५, २९०, २९१, ३०२, ३०६, ३०८, ३१०, ३११, ३३८…३४६।

अतिचारी, व्यभिचारी १३, १५७, २३९ २४४, २४८, २५२, २५३, २५५, २५८…२६१, २६४, २६८…२७०, २८३, २८४, ३२१, ३२२, ३२५, ३५०, ३६४…३६७।

अधर्म ९, १२, ४५, ५५, १८७, २१४, २५१, २६९, २७४, २७९, २८१, २९२, ३१८।

अधर्म्य विवाह ११८, ११९, १३०।

अधिविन्ना ३२०।

अधिवेदन १३६, २८२, ३२०।

अनियमित यौन-सम्बन्ध १…८, १३, १४, १७…२२, २९, १९०, ३५१, ३५२, ३६०, द्र०-कामाचार।

अनुलोम-वर्ण ३३४, -विवाह ९५, २१४।

अनुज ९४, २०६…२०८, २६२, २७६।

अनैतिक-आचरण २१२, २१५, ३१०, -पुरुष २१६, २३५, २४१, -यौन-सम्बन्ध १८, ८२, १२७, २००, २०५, २१३, २१७…२१९, २३३, २४४, २६१, २९०, ३६३, ३६६।

अन्त्यजा (चाण्डाली)-गमन २६२, २२७, २८८, २९७, २९८, ३०४, ३०५, ३३०, ३३१, ३३६, -गामी २८७, २८८, ३०५, ३३०, ३३१।

अपहरण २०९, २५९, २६९, ३१६, ३१८, ३२३, ३३२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अप्रियवादिनी १३६, ३२१, ३४१ ।

अप्सरा ७, ८, ३४, ३५, ५०....५२, ७६, ८०, २२६, २२७, २३१, २३५, २३८, २४६ ।

अभिसार २३८, २४० ।

अभिसारिका १८३, २४०, २४१ ।

अमर्यादित ८०, २०५, २३८, २३९, २६१ ।

अर्द्ध-नारीनर ४०, -नारीश्वर ३६, १३१ ।

अर्द्धाङ्ग ६८, ६९, ७५, १३२, ३५३ ।

अर्द्धाङ्गिनी ३७, ४०, ६८, १३२, १३५, १६४ ।

अर्य २१२, २१३, -जारा २३९, -पत्नी २३९ ।

अवकीर्णी ७७, ३०८ ।

अवगुण्ठन (पर्दा) १८६, १८७ ।

अविवाहित २३, ३६, ५६....६२, ७१, ७२, ७४, ७५, ८४....८६, ८८, २२०, २२२, २३५, २५०, ३३३, ३५५ ।

अविवाहिता २२२, २२३ ।

अवैध[यौन]सम्बन्ध २१०, २१५, २१८, २१६, २२१, २५५ ।

असंस्कृता ७२, ८५, ८६, २२२ ।

असती, असाध्वी १५३, २२६, २४१, २४३, २४५, २४७, २५६, २६६, २७५, ३४१, ३५० ।

अस्वतन्त्र १८०, १८१, २२४, २५८, ३३८, ३६० ।

आचार-संहिता १६५, १७२, १८२, १८८, १८६ ।

आदि-पुरुष ३५३, -युगल ३०, १३३, -सृष्टि ४५, १६५ ।

आधिवेदनिक ३२० ।

आवाह १०८ ।

आसुरविवाह ११४, १२६ ।

उद्वाह १०७, १०६ ।

उद्दालक ६, १०, ११, १२ ।

उन्मुक्त यौनसम्बन्ध २२६, २२७, ३६८ ।

उप-पति १६६, २१२, २१३, २१८, २६७, २६८, २७५, -पत्नी २१३ ।

उप-यम १०७, -न १०६, -याम १०७ ।

ऋण ६६, ७०, ७१, ६०, १०६, ३५५ ।

ऋतु-काल १२, १४३, १५७, १५६, १६०, १६१, १७६, १७७, ३२१, -मती ३४६, ३५६, -स्नाता १७६, १७७, ३४२ ।

एकपत्नीव्रत ८, १५६, १६०, १६२ ।

कन्या २५, ३६, ५०, ५४, ५५, ५८, ६०, ६२, ६३, ६७, ७१, ८४ ८८, ९२, ९५, ११३....११५, ११७, १२०, १२१, १२३, १२५, १२८, १३२, २०९, २१०, २१५, २२३, २४९, ३३७, ३४४, ३४६, ३४७, -गमन, -दूषण २१८—२२६, २३३, २६३, २६९, २७७, २७८, २८७, २९७, २९८, ३०६, ३०७, ३३१.... ३३५, ३६३, ३६६, -गामी (-दूषक) २२६, ३०७, ३२५, ३३३, -चयन ९२, ९५—९९, १०८, -त्व (कौमार्य) १०, ११४, २०२, २०९, २१८, २२३....२२५, २३५, ३३१, ३४७, -दाता ११७, ११९, १४१, -दान ९१, १०१, १०५, ११०, ११८.... १२०, १२९, १९२, २२४, ३५८, -योग्य वर १०२-१०४, -विवाह कराने का दायित्व ९९-१०२, -स्वयं वर का वरण १०४-१०६, ११४ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कानीन २१५, २२१, २२२, २४२।

काम १, ७६....८४, ८७....९१, ११९, १३५, १४९, १५६, १६०....१६२, १९४, १९५, २०१, २२७, २२९, २४०, ३५८,-चारिणी ८, १०, १७, २२३, ३५२,-ज २०७, -ज्वर २५२, -दशा ७८, २५०-२५२,-वासना ६, १८, २६, २८, ३७, ९१, १४२, १५४, १६८, १८८, २३५, २४४, ३१७,-सुख ८१-८२।

कामाचार १, ३, ७....१०, १३....१९, ८४, ३५४। द्र०-प्रोमिस्क्युटी।

कामार्त, कामुक २८, १५८, १७०, १८८, २२४, २३५, २४०, २४२, २४८, २४९, २५०, २८८, ३३६, ३४०, ३४५।

कुन्ती ८, ९, १०, १२, १३, ४८, १७०।

कुमारीपुत्र २२१, २३०।

कुम्भविवाह ११७।

कुल ६५....९७, १०२, १०३, १८०, १८५, २२४, २२६, २३६, २३७, २६९, २८४, ३००, ३४१, ३५०, -पुरुष १०१—बान्धव १८१।

कुलटा १८७, २२८, २२९, २४१, २४२ २६५, २७८, २८५, २८८।

कौमारब्रह्मचारिणी ६३, ८४।

क्षत्रिया-गमन ३०२, ३०३, ३३०—गामी ३२९, ३३०।

गणिका १८३, २२७, २२८, २३१.... २३५, ३४८, ३६३।

गन्धर्व ३४, ३५, २०९, २१०।

गम्या १६२, २१७, २२८, २३१, २४९, २५०, २५१।

गर्भ २३७, -धारण, -वती २०२, २२१, २२२, २२५, २३७, २३९, २४३, २९९....३०२, ३०९....३११, ३१३....३१६, ३२१, ३२२, ३४०, ३४१, -पात १३६, २२०, २२१, २३७।

गर्भाधान १०८, १५६, ३०५, ३१४।

गान्धर्व-विवाह ९२, ११४, ११६, ११८, १२९, १४६।

गुरुतल्प ३२६, -ग, -गामी १५७, २६१, २६२, २७६, २७७, २८१,....२८३, २८७....२८९, २९४....२९७, ३०० ३०५, ३२६, ३४५,—गमन २३३, २६१, २७०, २७७, २७८, २८८, २८९, २९२, २९४....२९६,२९८.... ३००, ३२६, -व्रत ३०५, ३०६, -सम २७७।

गुरुशिष्य-भाव १३१, १४०, १४२।

गूढज २१५, २४२, २४३।

गृहस्थ ३७, ६४, ६५, ६७, ६८, ८१.... ८५, ९४, १०६, १४९, १६५, १६६, १८७, २४९।

गृहस्थाश्रम ६४....७०, ७६, ८३, ८४, ९३, ११९, १२३, १३०, १३७, १३८, १४९, ३५५।

गृहिणी ६८, १४२, १४६, १७३।

गोत्र ४५, ४६, ९५, ९६, १२५, १२८, ३०२, ३२१, ३२२, ३४०, ३४१,

गोधर्म ८, १३, १४, ३५२।

चतुर्थीकर्म १०८, ११०, ११७, १२७.... १२९, २०३, २१०।

चरित्र १७०, १८३, १८४, १८८, १८९, २०७, २१०, २३६, २४५, २५१,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

२५७, २६६, २७०, २७५, ३२१, ३२४, ३४३, ३४४, ३६२,-भ्रष्ट १८१।
चारित्रिक-गुण १९, २४५,-दोष १८२, २०५, २३५....२३७, २४६, २५८, २६८, २६९,-निधि ३२६,-निष्ठा ३६८,-पतन ८८, १७६, १८१ १८२, १८७, ३०९, ३४०, ३६४, -रक्षा १८१....१८३,१८६, १८७.... १८९, २४७, ३६०,-लाञ्छन १६६, २५०, २५७,-विकार १८२, १८७, २४६, २४७, २५२, ३६५,-शिक्षा १८२, २३९,-शिथिलता १६, १७७, १७८, २३६, २४१, २४३,-शुद्धि १८३, २१८, २३५, २६२, ३०३, -स्खलन १६४, १८८, २१५, ३५६, ३६०, ३६३।
जाति ६५, १०३, २१४, २१५, ३१४, ३४७, ३६६,-च्युत, बहिष्कृत २९२।
जामि २००....२०३, २१८,२७६, २८१।
जार १२७, १५०, १७७, १९६, १९९, २००, २०२, २०८, २११....२१३, २१८, २१६, २३८....२४१, २४४, २४६, २५५, २६४, २६५, २७५, ३१०, ३१६ ३३३, ३३७, ३४०, ३४३, -कर्म ३२८, -जात २०७, २६८,-ज़ारिणी २००, २३८,२३६।
जास्पत्य १३५, १४८।
तपस्विनी ६२, ६३, २६०, ३२६।
त्रिवर्ग ८०, ८८, १०६, १४५, १८५।
त्रिरात्रव्रत १२७, १२९, २०३।
दण्ड १०४, २०८, २१६, २३४, २४३, २४८, २५६, २८६, २६४, ३०८, ३१७, ३२२, ३२३, ३३८, ३४४, ३६६।
दम्पती २८, ५८, ७६, १११....११३, ११७....११६, १२२....१२४, १२८, १२९,१५३,१५४, १८९,२०१,२०३ २०६, २९५, ३१९, ३२०, ३५३, ३५४, ३५६....३५९, ३६७.—आदि सृष्टि के दम्पती ३०, ३१, ३५, ३६, ३९....४५, ४७, ५४....५६।
दाम्पत्य १, १२, ३१, ३४....३८, ४२ ... ४६, ४९, ५४, ५८, ६२, ६३, ७१, ८३, ६१, ९२, ६६, ६७, १०७, १०८, ११०....११३, ११६, ११८, १२०, १२२ ...१२४, १२६, १३१, १३४, १३६, १३७,....१४०, १४२, १४५ ...१४८, १५०, १५३.. १५५, १६०, १६६, १७१, १७२, १७४... १७६, १८६, १८६, १६४, १६६,२०३, २०४, २३६, २५२, २५७, २५८, २८१, ३२०, ३२२, ३५३, ३५५ .. ३५६, ३६७.— मर्यादा १, ४, ६, ८, ११ ...१४, १६...१८, २०, २२, ८६, १५५, १५७, १५८, १८३, १८६, २२६, २८१, २८४, २६२, २९५, ३५०, ३५१, ३५३, ३५६, ३५६, ३६५.... ३६८.—सम्बन्ध ७, ११२, ११७, १२२, १२३, १२५, १२७ ...१४२, १४५, १५३, १५५, २८१, २६०, ३४१, ३५४, ३५६....३५८, ३६७।
दारसंग्रह ४७, ६७, ६९, ८९....९१, १०७, १३२, ३५५।
दासी ११३, १३०, १७३, १७४, १८७,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

२१६, २२३, २२४, २२८, २४८, २५८, ३२५, ३३४, ३४७,-गमन २१६, २४८, २८२, ३३६,-पति २१६, २२८।
दिव्य-सृष्टि २९, ३५, ३६, ३९, ४३.... ४५, ५४----५६, १९०, १९३, १९५, २२६, २३७।
दीर्घतमा ८, १३, १४, ४८, २६४।
दुश्चरित्र १७, १७८, २४६, २९०।
देवता ७, ८, ३०....३४, ४३, ४५, ४९, ५० ११२, १२१, १२३, १२७, १४८, १५०, १९४, २०४, २०८, २१४, ३६२,-पत्नी ३२....३४, २२६।
देवर १२०, १३९, २०५ .. २०७, २४२, २६४।
द्यावा-पृथिवी ३०, ३१, ३५, ३५३।
धर्म ९, १२, ४५, ५५, ७३----७५, ८१, ८२, ८८, ९०... ९५, ११९, १३५, १३७, १४०, १४२... १४५, १५९, १६१, १६३, १७२, १७४, १७६, १८०, १८५, १८७, २१४, २२४, २३३, २४७, २६२, २६५, २६९, २७१, २७५, ३४२, ३५८,-कन्या ९५, -नाशक २७१, -पत्नी १५९, २७०, ३५९,-पीडाकर २५१, -बहिष्कृत २६२,-भ्रष्ट ३१२,-रति १५९।
धर्म्यविवाह ११८, १२९ १४६।
धर्षिणी २२९, २४२, २८१।
धार्मिक कर्तव्य ५८, ६६, ९२, १०६-कृत्य ४, ७३----७५, ११४, १४८, १८८, २६२, २७५।
धृष्टा २८१, -गामी २८८.
नपुंसक ७२, ८७, ९३, १०३, १५२, १६०, १६८, १७४, १७५, २३६, २४८, २४९, २८७, २८९, ३४१।
नरक,-यातना १५२, १८७, २८०,२८६।
नर्तकी २२७, २२८, २५३.
नवज्ञा २१३, ३६३.
नववधू, नवोढा १२१, १२२,१२७, २०२ ३२६, ३५६.
नाग (सर्प) ४६, ५२, ५३, ५७, ३५४।
नारी १४, १७, २६....२८, ३८, ४०, ८२...८९, १६४, १६५, १७६... १८९, २१५, २२४, २३५.... २५२, २५६, २५८, २५९, २६४.... २६९, २७४, २७५, २७९, २८४, २८५, २९०, २९१, २९९,....३०६, ३०८ ... ३२१, ३२४, ३२५, ३३६...३४७; अतिचार की प्रवृत्ति २३५-२४६; अस्वतन्त्र १८०-१८२, ३६०; कामभावना का आधिक्य ८७, १६१,२३७; चारित्रिक दृष्टि से भेदोपभेद १७६-१७८, २३५, २४१-२४२, २४६, ३५९-३६०; परपुरुष-संसर्ग अक्षम्य और वर्जित ११, १८२-१८३; परपुरुषासक्ति के हेतु २३९, २४१, २४३, २४४, रक्षणीय १८१, १८३-१८९; शीलनाश के हेतु १७९-१८०; इस विषय में अन्य विवरण हेतु अगम्या, अतिचारिणी, पतिव्रता, पुंश्चली, प्रोषितपतिका, विधवा, स्वच्छन्दता, स्वैराचारिता, स्वैरिणी आदि शब्द द्रष्टव्य हैं।
निकट-सम्बन्ध ४५, १६४, १९१, २०८, २७६, २७७, २८१, २८२, २८७, २९७ ..३००, ३१२, ३२६, ३४५,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

३४९, ३५०, ३६२, ३६३, ३६७, -सम्बन्धी ४४, ४५, १९०, २०३, २०४, ३६२।
निकटाभिगमन ४, ६, ७, १९०, १९१, १९८. २०२, २०४, २०५, २६२, २९७, ३५४, ३६१, ३६६, ३६७.
नियोग ८ ···१०, १२, १३, १७०, २०६ २०७, २३६, २४७, २५३, २६२, २७६, २९९, ३५२।
नैतिक-आदर्श १०, ८२, १५५, २२५, २५४, ३१७,-गुण १७०-ता २०, १५८, १९३, १६५, १९७, २०४, २०५, २११, २१३, २१८, २५२, २८२, ३६४.-पतन २१८, २५१, -बल १७०,२२३, २९२,-मान्यता २, ३५१.-मूल्य ४५, १८६, १६०, २०० २१५, २५२, ३६०,-शिथिलता ४ ··· ६, १२, १७, २०, ११७, १६०, २११···२१३, २१५, २१७, ३५१, ३५२, -स्तर २१३, -संकट २५०, -समस्या २३७।
पतन २६१, २६२, २६४, २६५ २७९, २८०।
पति १०, ११, १३, ३१, ३२, ३४, ३७, ६२, ८६, १०२, १३१, १४४, १५१, १६१, १६६···१६८, १७२, १७३, १७५, १८१···१८३, १८५, २०४, २ ६, २४१, २४६, २५४, २५६···२५६, २६४····२६८, २७४, २७५, २७९, २८४, २८५, २९१, ३०८···३१०, ३१२, ३१८··· ३२१, ३३८ ·· ३४६।
पतिव्रता ८, १३८, १३९, १५५, १६६···· १७८, १८३, १८७, १८९, २३२··· २३४, २४४ · २४६, २५३, २५९, २७६, ३२६, ३४९।
पत्नी १०····१२, १४, ३१ ३४, ८५, १२४, १३१, १३४, १३९, १४१, १४२, १५१, २०४, २१६, २१८, २५३, २५६, २५८, २५९, २९१, ३१९, ३३६. की कामना ५९-६०, गार्हस्थ्य का आधार ६७-८-त्याग १३६ १३७, १४१, २५७, २५८, २७२, २८२, २९५, ३०२, ३१०, ३१४, ३१५, ३२०, ३२१, ३३९,··· ३४२, त्रिवर्ग प्राप्तिमें सहायक ७३-७६,८०, ८३, १४५,-त्व (भार्यात्व०) १०८, ११३, ११५, ११७, १२०, १२३, १२४, १३०, २१८, ३४३,-दण्ड की भागिन ३२१, ३३८-३३९,-दान २५३-२५४,-दैव कृत सखा ५७, द्र० सखा;-धर्म में सहायक ७३-७४, १४३; पति केव्यक्तित्व कीपूरक ६८-९, रक्षणीय १८३-१८८,-सुखप्रद ७५-७६, द्र० अर्द्धाङ्गिनो, पतिव्रता, प्रोषितपतिका।
परपुरुष १०, ११, १३, १७५ ·· १८१, १८३, १८५···१८७, २३९···२४१ २४३, २५५, २५६, २६०, २६६, २६८, २९१, ३०९, ३४१, ३४२, ३४४,-गमन ११, २३९, ·· २४२, २५३, २६४, २६५, २७४, २७५, २७९, ३०९··· ३१२, ३४०.-गामिनी १८१, २४५, २८३, ३१०, ३४५,-संसर्ग १६८, १७०, २३७, २३८, २६७, ३४४।
परस्त्री १५१, १५८ ··१६०, १६२,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१६४, २३९, २५८, २६०, २६३, २८४, ३२३ ·· ३२५,-गमन ११, १५८, १६३, २०८–२१७, २३३, २४७··· २५३, २६१, २७१····२७४ २७७, २७८, २९४, ३०२, ३०३, ३२७,-गामी १५७, २१७, २४०, २६३, २७१, २७२, २८१ ·· २८३, २८७, २८९, ३००, ३१८, ३१९, ३२२, ३२३,-संसर्ग २७०,-सेवन अक्षम्य १४, २५८,-हरण (द्र० अपहरण) २११, २६९, २७२, २७३, २८१।

परिणय १०७, १०९, ११४।

परिणीता २९८, ३२०।

परित्यक्ता १६६, २३५, २४७, २४८।

पशुगमन २८८, २९०,२९८,३०८,३३६।

पाणिग्रहण ३२, १०७, १०९, ११०, ११४, ११५, ११७, १२०, १२३···· १२५, १२९, २२२, २४६, ३२२, -ग्राह्य १२०, १२५, १८१, २२२।

पाण्डु ८····१०, १२····१५, ८९।

पातिव्रत्य १८, १५३, १६५, १६६, १६८, १६९, १७१, १७२, १७४···· १७६, २४२, २५३, ३१९।

पाप ११, ४४, १३५, १८७, १९४, २००, २०१, २१२, २३७, २४९, २७५ ·· २८२, २९४, ३६५।

पिता २५, ७०, ९२····९४, ९९ ···१०१, १०४ ···१०६, ११५, ११६, ११९, १३८, १५२, १६८, १७१, १७६, १८१, १८२, १८५, १९०····१९३, १९६, २२४, २८४, ३२४, ३४४, ३४७।

पितृ-ऋण ६९····७१, ९०, -कन्या २०४, -गामिनी ३४०।

पुंश्चली २१९, २२७····२३०, २३५, २४१, २४२, २४३, २५६, २६५, २६६, २७५, २७९, २८२, २८८।

पुंस्त्व ८७, १ ३, १५२, १६८।

पुत्र २६, २७, ४७, ४९, ५३, ६०, ६१, ६७, ७०··· ७२, ७५, ८४, ८९···· ९४, ११०, १११, १२०, १३२, १३८, १६१, १६४, १६७, १६८, १८१····१८६, १९६, १९७, २०६, २०७, २१४, २१५, २२०····२२३, २३६, २४२, २४३, २ ८, २६९, २७४, ३०८, ३१८, ३२०, ३२२, ३४२, -गामिनी ३४०. -वधूगमन २६३, २७६, २७७, २८३, २८७, २९६···· २९८, ३२६, ३४५।

पुत्री ९२, ९३, ९९, १००, १६४, १९१····१९६, २०५, २०८, २१६, २१८, २२०, २८३, -गमन २६१, २७६, २७७, २८९, २९६··· २९८, ३२६, ३४५।

पुत्रोत्पादन ८, १०, १२, १३, ४७, ४८, ५०, ७१, ८२, ९१, ११९, १४३, १५६, १६०, १६४, १६७, १७०, १९५, १९७, २०६, २१४, २४३, २४७, २५३।

पुनर्जन्म १५२, २७५, २८०, २८६···· २९२।

पुनर्भू ८८, १०२, २०७, २३६, २४९, २५१, २५५, २६८, २७४।

पुनर्विवाह ८८, ८९, ९४, १०२, ११५, १४०, २३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुरुष २६....२८, ३८, ४०, ६८, ६९, ७१, ७३....७६, ९२, १५६.... १६०, १६४, १८२, १८४, १८६, २३२, २५०, २५६....२५८, ३२८, ३३६, ३४२....३४५ ।

पुरुषार्थ ८०, ८२, ८६, १३५ ।

पैशाच विवाह ११३, ११४, ११८, १२९ ।

प्रजापति ७, ३०, ३१, ३५, ३७, ३८, ४०, ४१, ४४....४६, ५६, ५७, २१३ ।

प्रतिलोम-ज २१४, २४३, -विवाह ९६, २१४, २४३ ।

प्रवर ४६, ९५, ९६ ।

प्रव्रजित, भिक्षु, यति ६१, ६६, १६५, १८३, १९८, २३२, २३६, ३०८, ३४९ ।

प्रव्रजिता, भिक्षुणी ६३, ६६, ८४, १८३, १८७, २१७, २३४, २३५, २३७, २५१, २७६, २८८, २९८, २९९, ३२५, ३३६, ३४९, -गमन ३३४ ।

प्रव्रज्या ६४, ६६, ८४, १०१, २३७, २५४, ३०८ ।

प्राग्विवाहस्थिति १, ७, १२, १३ ।

प्राजापत्य विवाह ११८, ११९ ।

प्रायश्चित्त २८०, २८१, २६५, ३२६, ३४१....३४४, ३४९, ३६५....३६८ ।

प्रिय, प्रेमी १४१, १४५, १४३, १५३, १९९, २१२, २१८, २१९, २३८, २३९, २४० ।

प्रिया, प्रेमिका १४५, १४६, १४९, १९९, २११, २४०, २५९, २७४ ।

प्रीति, प्रेम २७, २८, ११८, १२३, १३१, १४५....१५५, १७२, १७६, २१९, २२४, २३२, २४७, २७३ ।

प्रोमिस्क्युटी १ ५, १७, २०, १९०, २३५, २३६, २४४ ।

प्रोषितपतिका १५८, १७३, १८८, २२०, २४४, ३२७, ३४६ ।

बन्धकी १७, १८७, २२६, ३०२, ३०२ ।

बान्धव ११८, १३०, १३९, १५२, १८१, १८३, २२४, २२, २५७, २६२, २६७, २६९, २७५, २७९, ३२१, ३२२, ३४१, ३४२, ३४६ ।

बलात्कार १३, २८, १७०, १८३, १९८, २०७, २११, २१६, २४८, २५६, २५९....२६१, २६४, २६९, २७८, ३१४....३१६, ३२५, ३२७, ३३४, ३३५, ३३७, ३४३, ३५० ।

बहुपतिप्रथा २३, २४, २५, ३५२ ।

बहुपत्नीप्रथा २३, २५, २१३, २५८, ३२०, ३३३, ३५२ ।

ब्रह्मचर्य ६१, ६४....६७, ६९, ७८, ८८, १८८, २०३, २१२, २२३, २२६, ३००, ३०१, ३११, ३५५ ।

ब्रह्म-चारिणी ८४, १८८, -चारी ६१, ६५, ७७, ९४, १६५, २३२, २६६, ३०८, ३४९ ।

ब्राह्मविवाह १०७, ११८, १२९ ।

ब्राह्मणी-गमन २७८, ३००....३०३, ३०६, ३२९, -गामी २७८, २७९, २८८, ३०२, ३२६ ।

भगविक्रय २४२, २४४ ।

भगिनी ४३, ४४, १६१, १६७....२०१, २०३....२०५, २०८, २१८, २८१, २८३, ३५४, ३५९, -गमन २६१, २६३, २७६, २७७, २८७, २८९, २९६....२९८, ३२६, ३४५ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow